यह पथ बन्धु था

यह पथ आनेवाले का साक्षी है,

यह पथ जानेवाले का वन्धु है।

श्री नरेश मेहता

उपन्यास

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा० लि०
गिरगाँव, बम्बई-४

१९६२ — प्रथम संस्करण

मूल्य — बारह रुपये पचास नये पैसे

प्रकाशक — यशोधर मोदी
मैनेजिंग डाइरेक्टर
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई।

मुद्रक — लीडर प्रेस इलाहाबाद।

मानुष सत्य

श्री वाचस्पति जी पाठक को

ए पथरे ग्रामे प्रवेश लुब्ध वधू
विथारि पुकुर ममता मुखर मधु
पुष्प सुषम नारी-आरुणी ए रवि

मध्यमणि ए पथे फेरे।
भाविबा जनर साथी ए पथ
फेरिबा जनर बन्धु।

—श्री विनोदचन्द्र नायक

यह उपन्यास बीसवीं शती के पूर्वार्ध के सामाजिक जीवन मूल्यों एवम मान्यताओं पर आधारित है। यह युग तथा इसके चरित्र एवम इस की विशिष्टताएँ अभी-अभी लोप हुई सी है अतएव स्मृति अधिक है इतिहास कम। हमारा इन से अभी भी सायुज्य-भाव है लेकिन अनागत में जब ये इतिहास बन जाएँगे तब इस काल के केवल सफल पुरुष ही स्मरण किये जाएँगे। इतिहास सफल शूरों तथा महापुरुषों का ही होता है जब कि हमारी स्मृतियों में ऐसे अनेक साधारण जन होते हैं जो व्यक्ति भी नहीं बन पाते केवल संख्या होते हैं लेकिन हम जानते हैं कि ये असफल सामान्य जन इतिहास न हों महापुरुष न हों किन्तु मानुष होते हैं।

मानस के एक ऐसे ही साधारण अव्यक्ति को व्यक्तित्व दिया गया है। परिपार्श्व आंचलिक है किन्तु शील-निरूपण में सार्वजनीनता रखी गयी है। किसी अंचल विशेष की कथा कहना मेरा प्रतिपाद्य नहीं रहा है बल्कि उस काल के मानव को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करना ही प्रयास था।

इतिहास में नाम संज्ञाएँ सत्य होती हैं जब कि साहित्य में संज्ञाएँ काल्पनिक। इतिहास सफलता को गौरव देता है जबकि साहित्य केवल मानवता को। इसलिए दोनों में आमूल अन्तर यह है कि इतिहास सफलता का चारण है जब कि साहित्य मानवता का उद्गाथा। इतिहास में अमर होने के लिए क्रूर घटनाएँ होती हैं जब कि साहित्य बनती है। कब कौन एकान्त फूल लोहित अंकुर फूट कर वासुदेव बन जाएगा कोई नहीं कह सकता।

धीवर अक्रूर, सरो आदि साधारण मानवता के अज्ञात अनाम नक्षत्र सदा दूर हैं। नभराशि में भर-भर ऐसे नक्षत्र प्रस्फुटित होते हैं जो फसल की संज्ञा तो ग्रहण नहीं करते किन्तु समर्पण होते हैं। ये अज्ञात व्यक्ति भी नहीं होते इसलिए अनजाने ही समाज का प्रतिनिधित्व कर ले जाते हैं जब कि बड़े से बड़ा युग-पुरुष भी निरा व्यक्ति होता है। यह साधारण का नहीं महापुरुषत्व का प्रतीक होता है। इसलिए इस उपन्यास में समाज को मुठ्ठा ले जाने वाली न राजनीति न युगपुरुष न जननायक कोई भी प्रतिच्छायित नहीं है।

यह एक निपट साधारण जन की युग-गाथा है जो धरती को वसित करण की चाह में व्यापक बनी रहती है। इसमें न ऊर्ध्व का दम्भ है न अध की आशंका। अस्तु—

अन्त में मैं महिमा एवम विपिन का आभारी हूँ जिन्होंने उपन्यास की मुद्रण-प्रति तैयार करने में अपूर्व योग दिया।

प्रस्तावना खप हुई। इति नमस्कारान्ते।

१० अगस्त १९६१
९१ ए, लूकरगंज
इलाहाबाद।

सूत्र पथ

आज से दस वर्ष पूर्व उस दिन भी कस्बे में काफी हलचल हुई थी जब श्रीधर बाबू द्वारा सम्पादित साप्ताहिक "शंखनाद" काशी से आया था। उनके अज्ञातवास को तब पन्द्रह वर्ष हो चुके थे। लोक स्मृति तो उन्हें प्राय भुला ही चुकी थी। एक दिन सहसा एक पत्र-सम्पादक के रूप में श्रीधर बाबू का नाम और वह भी 'काशी जी' के एक साप्ताहिक पर देखकर लोगों को अविश्वास ही हुआ। लेकिन जब प्रति सप्ताह "शंखनाद" आने लगा तो निराधार अविश्वास आश्चर्य में परिणत हो गया। कस्बे के जीवन में पिछले कुछ बरसों में आश्चर्यजनक बातें घटने लगी थीं। बना रेल लाइन आने के पहले आश्चर्य की कौन कहे साधारण घटनाएँ भी सहज नहीं थी। रेल लाइन ने इस कस्बे में अवश्य ही क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये थे। अब आये दिन लोग उज्जैन आने-जाने लगे थे। नहीं तो पहले 'मेलकार्ट' (मेल कार्ट डाक ताँगा) में बैठकर उज्जैन जाने का मतलब बहुत बड़ी बात होती थी। बड़े-बड़े साहूकार, साहूकारी के लिए या फिर कोई जमींदार या अफसर ही सरकारी कोर्ट-कचहरी के काम स आया-जाया करते थे।

इस रेल लाइन की पहली आश्चर्यजनक घटना के बाद श्रीधर बाबू को उनकी इतिहास की पुस्तक पर स्वयं श्रीमन्त सरकार ने जो प्रशंसापत्र भेजा था वह इस कस्बे की दूसरी महान आश्चर्यजनक घटना थी। और बरसों बाद उन्हीं श्रीधर बाबू ने काशी जैसी तीर्थनगरी से पत्र का सम्पादन कर कस्बे वालों को गौरवान्वित होने का मौका दिया। बस्ती के लोगों ने गर्व का अनुभव किया कि —चलो इस पठारी भूमि से भी एक ऐसा व्यक्ति तो निकला जिसका नाम अखबार में प्रति सप्ताह छपता है। पिता श्रीनाथ ठाकुर 'कीर्तनिया जी' का महत्त्व 'शंखनाद' से जितना बढ़ा उतना उनके शेष दोनों पुत्रों के सिरस्तेदार या घोड़ा-डाक्टर बन जाने से भी नहीं बढ़ा था। अब आये दिन श्रीधर बाबू का कब कौन और कितना मित्र रहा इस पर बहसें होने लगीं। अपने कस्बे का समाचार भी छपे इसके लिए गणेशोत्सव सरस्वती-पूजा से लेकर थानेदार की बदली तक में सरगर्मी आ गयी। आये दिन "शंखनाद" कार्यालय के पते पर उन सब लोगों की बातें काट-छाँट के साथ पहुँचायी जाने लगीं जिन्होंने श्रीधर बाबू के विरुद्ध उनके बड़े भाई सिरस्तेदार श्रीमोहन ठाकुर को प्रसन्न करने के लिए फैलायी थीं या उड़ायी थीं।

लोकमुख के आँखें नहीं होतीं मात्र जिह्वा होती है। श्रीधर बाबू के जाने को जिन्होंने उस समय 'भागना' कहा था वे ही अब पन्द्रह साल बाद इस अज्ञातवास को एक कर्मठ व्यक्ति का 'समाधिकाल' कहने लगे। भला सिरस्तेदार साहब की बात का विरोध कोई कर सकता था?

—हम तो कहें कि जब संसार चलाने का ढंग नहीं आता था तो भाई! यह बाल बच्चों का प्रपंच किया ही क्यों? क्या नाक चुई जा रही थी? भाई भौजाई पर दो-दो लड़कियाँ एक लड़के और पत्नी को छोड़ जाना कहाँ की भलमन-साहत है? और फिर भाई! तुम जानो कै दिन? अपनी साँसत ही कोई कम है जो भला दूसरे की भी बाँधी जाए? ये तो बेचारे सिरस्तेदार साहब पर जिन्दगी भर का बोझ हो गया।

पिता श्रीनाथ ठाकुर जिधर जाते लोग उनसे सहानुभूति जताते।

—अभी तो भंडार में देरी है आज राजभोग देर से होंगे। मंडली हो गयी? तैनी तो रा जाओ कीर्तनियाजी!

चूना मिलाते हुए तर्जनी से तम्बाकू ही नहीं मली जाती बल्कि दुनिया जहान की बातें भी मिलायी जातीं फटकारी जातीं।

—तुम जानो कीर्तनिया जी ! कैसी बुढ़ौती बिगड़ी तुम्हारी भी। तीन तीन लड़के उछेर कर बड़े किये। ब्याह किया। काम-धंधे से लगाया। बड़े और छोटे में अपनी और कुल की इज्जत बढ़ायी। गाँव का भी नाम हुआ साहब लेकिन इस सिरीधर ने कसी किवाम किसी कि क्या बतायें। ठाकुर जी की सेवा करने के दिन तो तुम जाना अब आये में। राम राम इस सिरीधर ने कैसी करी। अपने तो ऊँचा मुँह किये जाने कहाँ गया लेकिन बच्चों और बहू की साँसत कर गया अरे तुम और ठकुराइन माँ हैं तब तक तो गाड़ी खिंचेगी ही और क्या। लेकिन कीर्तनिया जी ! उसके बाद क्या होगा ? भाई-भौजाई कभी किसी के सगे हुए हैं जो इन्हीं के होंगे ?

और सैनी मुँह में दाबे श्रीनाथ ठाकुर इस तरह दस बरस चुपचाप मंदिर की ओर बढ़ जाया करते रहे हैं। रोज रात मंडली की कथा बाँच सब कुछ समाप्त करके दुपट्टे में 'प्रसाद जी' बाँध पीछे की गली से होते हुए जिस समय बाजार में पहुँचते अधिकांश दुकानें बंद हो गयी होतीं। दो-एक हलवाइयों तथा पनवाड़ियों की दुकानों के ही गैस या हण्डे जलते मिलते। इमली वाले नुक्कड़ पर उनके बालमित्र वासुदेव दवे की पेड़े की प्रसिद्ध दुकान थी जहाँ वे नित्य मन्दिर से लौट कर बैठते। मंडली के बाद शतरंज की बाजी जमती और इस तरह रात बारह के पहले घर कभी न पहुँचते। वासुदेव की दुकान पर इस तरह वे पिछले पचास बरस से भी अधिक हो गया बैठते रहे हैं। इस दुकान के सामने सेठ-साहूकारों की दुकानें चौक तक चली गयी थीं। जहाँ इस समय उन की गद्दियों पर मखमल के ढक्कनों में रखी समइयाँ जल रही होतीं। उस दूध रंग के प्रकाश में दुकानों के बड़े-बड़े गाव तकिये ऊँघते से लगते। कभी-कभी भान होने लगता कि उन गाव तकियों ने ही लाल पगड़ियाँ पहन रखी हैं और वे ही साहूकार हैं। दूर किले के कँगूरों पर सप्तर्षि देख कर ही समय का अंदाजा किया जाता और श्रीनाथ ठाकुर का दिन समाप्त होता। ऊँघती गलियों और चौबारे मकानों में अपने चलने की प्रतिध्वनि किये वे घर पहुँचते।

लेकिन श्रीधर बाबू की माता के लिए तो ठाकुर जी के दर्शन करने जाना और करना दोनों ही मुश्किल हो जाते। न हुआ कोई, तो जैन सेठानी माँ ही रास्ते में साथ हो लीं। उन्हें 'धामक जी' या 'केसरिया जी' के मंदिर जाना होता ही था। भला श्रीधर बाबू की माँ से अच्छा और क्या साथ हो सकता था ? मकान

पहलों से बात चलते चलते श्रीधर बाबू पर अवश्य ही आती। तरस खाया जाता। सहानुभूति दिखलायी जाती। दोनों घूँघट निकाले बाजार पार करतीं और अस्पताल वाली गली पकड़तीं जहाँ से दोनों के रास्ते अलग हो जाते। श्रीधर बाबू की माता इन बातों से बचने के ख्याल से 'मंगला' में न जाकर 'शृंगार' के दर्शनों को जातीं। लेकिन कुछ नहीं तो सुनारन माँ ही मिल जातीं।

—क्यों बहू ! सिरीधर का पता लगा ? अरे ऐसा भी क्या जाना।

उधर दर्शन होते मुखिया जी दर्पण में ठाकुर जी को शृंगार दिखाते होते और इधर सारे कीर्तन को चीरते हुए सुनारन माँ 'गोविन्द-गोविन्द' की टेक के साथ सहानुभूति जताती होतीं। या कभी 'मंगला' के बाद 'शृंगार' के लिए फूलों की माला मंदिर के चौक में बैठकर बनाते हुए बड़ी हवेली वाली सासू माँ ही खोद-खोद कर पूछतीं

—बहू ! सच्ची ही सिरीधर अपने से गया ? मुझे तो लगे है कि बड़े की बहू ने जरूर ऊँच-नीच कह दिया होगा। अब तुम तो जानो ही हो मरद की जात ठहरी। कोई बात लग गयी होगी। अरे नहीं तो उस जैसा सुशील लड़का आस-पड़ौस ही नहीं दूर-दूर तक नहीं दिखेगा। इन औरतों के मारे ही घर का बंटा धार होवे है। लेकिन बहन ! कीर्तिमिया जी को थोड़ा कड़ा होना चाहिए, इतना सीधा भी मरद किस काम का !

भगवान के दर्शन और अपना जीवन दोनों ही दुश्वार हो गया दोनों का। मंदिर के उस बड़े से चौक में 'शयनारती' के बाद मण्डली रोज ही जमती। जिधर कुआँ है उधर ही एक खंभे पर लालटेन टिमटिमाती रहती। तुलसी क्यारे के ऊपर तोता 'जय श्रीकृष्ण' 'जय श्रीकृष्ण' चीखा करता। श्रीनाथ ठाकुर "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" सुनाते होते। दो कथाओं के अन्तराल में कोई न कोई परचूनी गंधी या मुनीम छेड़ बैठता

—कुछ पता चला मँझले का ? उज्जैन में तो तुम जानो वो है नहीं। अभी कल ही तो कँवर दर्जी गया था। वहाँ होता तो सिद्धनाथ हरसिद्धि गोपाल मन्दिर, देवास गेट कहीं न कहीं तो मिलता ही। तुम जानो मेरी समझ में तो वो नर्मदा पले पार ही निकल गया होगा। इन्दौर-बम्बई में खोजिन की ? आज कल के छोरों को जरा सा पता था तो बस सीधे बम्बई ही पहुँचते हैं। मैंने तो तुम जानो इसीलिए भरत को अभी से दुकान पर बिठाल दिया। खूँटे से बाँध दो फिर कहो—बच्चू कितना उछलोगे ?

और फिर असली कथा आरंभ हो जाती मन्दिर के अलमदिया नामादर से जब "शंखनाद" की प्रति देखी और आश्चर्य हुआ तब उसने उतनी ही तन्मयता से श्रीधर बाबू की स्तुति आरम्भ कर दी जितनी कि वह निन्दा किया करता था।

जिस दिन "शंखनाद" की प्रति आयी थी उस रात देर तक बंगलई (बड़े बाला मूला या गुजराती घरों में प्राय: होता है) के कमरों की आवाज में 'विष्णु सहस्रनाम' का पाठ करते हुए पिता श्रीनाथ ठाकुर आकुल बने रहे। रात की तरह आज भी पास ही बैठी श्रीधर की माँ 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का जाप करती बाहर के दरवाजे पर टकटकी लगाये थीं कि कभी तो श्रीधर के पैरों की हल्की आहट सुनायी दे जाए। श्रीधर जिस तरह दरवाजे की कल खोलता है, उसके पैरों की आहट कैसी है, वह किस तरह घर में आने पर सबसे पहले उनके पास आकर बैठता है न कि बड़े और छोटे बेटे की तरह अपने कमरे में जाकर बीवी से ही-ही करने सीधे पहुँच गये। हँसने में कैसे उसके दाँत मोती जैसे चमकते हैं। भले ही दस नहीं पचास बरस भी हो जाएँ वे दूर से पहचान सकती हैं कि हाँ वह श्रीधर ही है। श्रीधर का पसीना 'इनकी' तरह नहीं गन्धाता नहीं तो गैर मर्दों का तो—बस भगवान बचाए।

दोपहर में "शंखनाद" की प्रति लेकर वे अपने पूजाघर में जाकर कैसे फफक-फफक कर रोती रहीं थीं कि जैसे श्रीधर ही हो। वह 'काशी जी' में है। इस अखबार को उसने खास तौर से अपनी माँ के लिए भेजा है। वे उस अखबार का एक-एक अक्षर बिना समझे पढ़ गयीं। और रात भर नहीं सो सकीं।

"शंखनाद" की प्रति लेकर माँ सरो के कमरे में पहुँची और उसे सीने से लगाकर फूट पड़ीं। उसके आँचल तक भर उठे थे जैसे श्रीधर सारे बरसों को

चीरकर उनकी गादी में आ गया है। श्रीधर है, 'काशी जी' में है इस बात से उन्हें परम सन्तोष हो रहा था। और इसका निश्चय वे बार-बार बहू के मुँह पीठ हाथ पैर पर अपने काँपते हाथ फेरकर कर रही थीं। बहू बेटा हो गयी थी। पिछले पंद्रह बरस के बहू के सारे तन और मन के भाव वे आज छूकर एक बार में ही भर लेना चाहती थीं। आज ही बहू उन्हें सौभाग्यवती विवाहिता न जाने क्या-क्या लग रही थी।

जैसे ही पति के आने की आहट हुई, ओसारे का दीया बड़ा कर वे बिना पाठ किये ही करवट ले उदास हो लेट गयीं। दीवार पर अँधेरापुता उजाला चिपक आया था। वे चारों ओर से असम्पृक्त हो इस समय श्रीधर में ही बसी हुई थीं। रह रह कर धुएँ जैसे श्रीधर से लेकर गोल इटालियन टोपी घुटी चोटी वाले मास्टर श्रीधर बाबू याद आ रहे थे। वे उस अनदेखी अनजान 'काशी जी' में अपने श्रीधर को ढूँढ़ती रहीं। तभी पति दरवाजे की कुंडी लगा आँगन में आये। उनकी ओर पीठ होते हुए भी वे जान गयीं कि पति ने एक क्षण ठिठक कर देखा है कि क्या वे सो गयीं? खूँटी वाली चट्टियाँ खटकाते जब वे बेंचपई पर आकर पास तकिये का सहारा लेकर पलथी मार बैठ गये और अभ्यस्तों का अनायास "विष्णुसहस्र नाम" का पाठ आज सायास आरम्भ हुआ तब भी वे वैसी ही पड़ी रहीं। वे सोच रही थीं कि अब तो मानता अवश्य पूरी करनी होगी। श्रीधर का पता लगने पर वे मन्दिर में एक सोने की झारी भेंट करेंगी तथा माघ भर अपरस में स्नान करेंगी —ये मानता वे अब अवश्य ही पूरी करना चाह रही थीं।

भाद्रपद था। बादल घिर आये थे जिनमें से चन्द्रमा कभी-कभी झलक उठता था। बस्ती जैसे मुँडेरों झुक आयी थी। पाठ समाप्त कर पति तकिये

के सहारे अधलेटे कुछ सोच रहे थे । श्रीधर की माता ने करवट बदली और ओसारे के झिलमिले अँधेरे में देखा कि पति अर्धनिमीलित से विचारमग्न हैं । 'इस का' मुख श्रीधर से कितना मिलता है ? वह भी तो ऐसे ही सिर के नीचे हाथ रखकर सोता है । ठीक ऐसा ही आकार है उसका भी । बस अन्तर है तो यही कि उसने रंग और कद अपनी माँ का प्राप्त किया है । तभी पति सचेष्ट हुए । दूर पुलिस लाइन के घंटे ने बारह की गजर बजायी । सिरहाने रखी ताँबे की कलसी से उन्होंने जल पिया और वापस बँसखट को एक पैर से झूला देकर लेटे ही थे कि वे बोलीं

—सुनो श्रीधर सचमुच ही 'काशी जी' में है न ?

—अरे तुम अभी सोयीं नहीं क्या ?

—नींद नहीं आयी ?

—नींद तो मुझे भी नहीं आयी । कैसा दुष्ट है तुम्हारा लड़का । पंद्रह-बीस बरस हो गये बेचारी बहू की भी कुछ चिन्ता नहीं उसे । कोई इस तरह भाग जाता है ? कैसा नाम निकाला इसने ।

—अब तुम तो उसके पीछे ही पड़ गये । मुहल्ले-टोले वाले ही क्या कम थे ? पता नहीं वह वहाँ किस तरह होगा । इसकी तो कुछ चिन्ता नहीं । अरे, उसने कितना बड़ा अखबार काशीजी' से निकाला कि वहाँ से यहाँ तक नाम हो गया । सब लोग किसी दूसरे की इतनी चर्चा करते हैं जितनी तुम्हारे श्रीधर की ?

—हरि इच्छा ! !

और श्रीनाथ ठाकुर लेटने के लिए करवट बदलने लगे ।

—बात टालो नहीं । सुनो क्या हम लोग 'कासी जी' चलकर उसे लिवा नहीं ला सकते ? तीरथ भी हो जाएगा गंगा जी भी नहा लेंगे और

—अब जब उसने अपने होने की खबर दी है तो वह आएगा भी बहू को भी ले जाएगा हम भी चलेंगे । पहले उसे

—यही तो तुम्हारी बुरी आदत है कि पहले वह लिखे आये तब कहीं कुछ तुम करोगे । है न ? आखिर लड़का तो है । हमें जैसे ही खबर लगी है उसे देखने

—तो फिर मुझसे क्या पूछ रही हो, करो अपने मन की ।

—तुमसे तो बात करना भी कठिन है । ठीक है फिर लड़ो तुम बेटे से लड़ाई । मैं तो अब एकादशी से ही मन्दिर में अपरस में नहाया करूँगी । मुखिया जी से कह देना ।

—चौमासा तो हो जाने दो । श्राद्धपक्ष आ रहे हैं मुझे महादुर्गा में भागवत जी

बाँचने नरसिंहमल महाराज के यहाँ जाना होगा । कैसे क्या होगा जरा सोचो तो ?

—सारी उमर तो यही सब विचारते-करते बीती । मैंने तो मानता मानी थी जो पूरी करनी होगी । अभी तो ठाकुर जी के लिए सोने की झारी भी बनवाने का प्रबन्ध करना है ।

—लेकिन सोने की झारी के लिए पैसे आदि

—मेरे पास एक गलसरी अभी भी चार तोले की है । उसी से मेरा प्रण पूरा हो जाएगा । ईश्वर से ज्यादा गलसरी नहीं है ।

—हरि इच्छा !!

और पति ने बेचैनी को भुला दिया । बातों की बातें होने लगी । बातों में बहुत रात बीत गयी थी यह दोनों को ही पता नहीं चला । दूर कोई बहू पिसना पीसते चक्की के संग गा रही थी ।

लेकिन आज जबसे लोगों को मालूम हुआ कि स्वयं श्रीधर बाबू पूरे पच्चीस बरस बाद मालवा लौट रहे हैं तब से कस्बे में बहुत बड़ी हलचल होनी स्वाभाविक ही थी।

देवीसिंह डाकिये ने जब डाक का थैला खोला और मुहल्लेवार चिट्ठियाँ लगायीं तभी उसने देखा कि एक ही लिखावट की अनेक चिट्ठियाँ हैं और जो कि छावनीवाले सेठ पूनमचंद जी, रिटायर्ड मास्टरमिजाज नारायण बाबू, बड़ी हवेली वाले विट्ठलनाथ जी, वामन माधव चितले वकील साहब, कांग्रेसी मंत्री दुर्गासिंह जी नागर तथा श्रीनाथ ठाकुर कीर्तनियाजी के नाम लिखी गयी हैं। देवीसिंह ने मात्र उत्सुकतावश एक कार्ड अवश्य पढ़ लिया था। उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ कि उसके 'गुरु जी' श्रीधर बाबू? जो बिना कुछ कहे-सुने एकदिन अनायास चले गये थे, वापस आ रहे हैं। तो क्या उन्हें यह भी नहीं मालूम कि उनके पिता-माता का देहान्त हो गया है? 'कीर्तनिया जी' को पत्र लिखने का प्रयोजन? कदाचित घर के लोगों को सूचित करने के लिए लिखा हो।

और देवीसिंह के सामने आज से पच्चीस बरस पूर्व के 'गुरु जी' मूर्त हो उठे।

पूर्व पथ

और देवीसिंह के सामने आज से पच्चीस बरस पूर्व के 'गुरु जी' अपनी उसी इटालियन गोल टोपी, बन्द गले का एकबर्ड कोट, चुन्नटी धोती, गले में दुपट्टा, पैरों में पम्प शू पहिने तेज चाल में दिखायी दिये। मुख पर सदा यह भाव कि किसी को नहीं पहचानते। आयु यही २५–२६ की रही होगी। आँखें मँजे हुए ताँबे के पत्रपात्र सी चमकवाली किन्तु उनमें लाल डोरियों पर डोलती उदास दोपहरी की छाया का एकान्त भी सदा मुखर रहता। हल्की पतली मूँछें उनके लम्बे मुँह को सन्तुलित ही करती थीं। एक नासिका के लम्बेपन को छोड़कर उस मुख में कोई विशेषता गिनाना कठिन ही था। जो था अति साधारण ही था। विशिष्ट या आचार के अतिरेक के नाम पर देवीसिंह को यही याद रहा कि वे अब्राह्मण होते हुए भी नित्य पार्थिव-पूजन किया करते थे।

आज की भाँति न तो अंग्रेजी मिडिल स्कूल ही था और न स्कूल की यह वर्तमान इमारत ही थी। बल्कि उन दिनों तो हिन्दी फाइनल मिडिल स्कूल था और यह भी आजकल छावनी में जहाँ कोआपरेटिव बैंक है, वहाँ लगा करता था। स्कूल बनने के पहले वह फौजी डाकघर था। ऊँचे टीले पर बना स्कूल किले की घाटी से ही दिखायी देता। उसका घन्टा तो तालाब पर नहाने वालों को दिन भर सुनायी पड़ता। स्कूल के आँगन में जहाँ घन्टे के पास बड़ा सा भाला था उसमें गार्डनिस हैड मास्टर साहब का पीने का पानी रखा रहता था। पानी का जर्मन सिल्वर का चमकता लोटा दूर से ही दिखायी देता था। कोई उसे छू नहीं सकता था क्योंकि मार्डनिस साहब कट्टर दक्षिणी ब्राह्मण थे। उनका बरारी ब्राह्मण नौकर जूते निकाल कर ही पानी पिलाता था।

श्रीधर बाबू मिडिल कक्षा को हिन्दी इतिहास तथा भूगोल पढ़ाया करते थे। *स्कूल की दीवाल-घड़ी का 'बैलेन्स' आये दिन ड्राइंग मास्टर रघुराज सिंह* कुर्सी पर चढ़े ठीक करते हुए देखे जाते। एक से लेकर बारह तक घड़ी बजाती फिर भी कभी ठीक नहीं चलती। अतएव पूरे स्कूल का टाइम टेबल श्रीधर बाबू की एकमात्र जेबघड़ी पर निर्भर रहता था जो उनके कोट की ऊपरी जेब में काले डोरे से बँधी रखी रहती तथा जिसका काला डोरा गले में पड़ा रहता। घण्टा कब बजाना है इसके लिए चपरासी को हर बार उनके पास आना पड़ता था और वे पढ़ाते हुए हाथ की अँगुलियों से मिनिट बता दिया करते थे कि अभी कितना समय है। फलस्वरूप घण्टा प्रायः देर से ही बजा करता था। श्रीधर बाबू स्कूल से लौटते हुए तारघर से घड़ी मिलाना कभी नहीं भूलते थे। उनकी धारणा थी कि श्रीधर बाबू सीधे अवश्य हैं किन्तु अत्यन्त नीरस व्यक्ति हैं जो राह चलते भूल कर भी सिर नहीं ऊँचा करते। प्रायः लोगों ने उन्हें चुप्पा ही देखा था। पढ़ाते हुए भी वे कभी ऊँचा नहीं बोलते थे। बल्कि हाजिरी भरते हुए भी वे लड़कों का नाम तक नहीं पुकारते थे। रजिस्टर खोला चुपचाप लड़कों की ओर देखते चले गये और भर लिया कि कौन आया कौन नहीं आया। श्रीधर बाबू नियम निष्ठ थे बल्कि यह कहा जाए कि वे अपनी सीमाओं को भली भाँति जानने वाले व्यक्ति थे।

ऐसे श्रीधर बाबू ने "   राज्य का गौरवमय इतिहास" नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। इसलिए वे इतिहास लेखक भी थे। वह इतिहास जो न केवल मिडिल कक्षा के लिए ही उपयुक्त समझा गया बल्कि स्वयं श्रीमन्त सरकार ने इस पुस्तक पर एक प्रशंसापत्र उन्हें भेजा था। वह प्रशंसापत्र सुनहरी फ्रेम में

मेंढा उनकी बैठकी में टँगा रहता था और जिसकी सुन्दर अक्षरों में एक प्रतिलिपि हेड मास्टर साहब के कमरे में भी टँगी रहती थी।

निष्ठावान वैष्णव ब्राह्मणकुल में पण्डित श्रीधर बाबू का जन्म एक इतिहास लेखक के रूप में किस प्रकार हुआ इस पर आश्चर्य करना व्यर्थ है। क्योंकि नार्मल स्कूल के लिए, उन्होंने जो निबन्ध परीक्षा के समय लिखा था उसमें वे सारे आधार भूत तत्व मौजूद थे जो आगे चलकर उनसे इतिहास लिखवा ले गये। इतिहास का प्रणयन नहीं बल्कि उसका निरूपण आश्चर्य की बात थी। अपने राज्य को गौरवमय सिद्ध करने के लिए श्रीधर बाबू ने पाण्डवों के अज्ञातवास से लेकर मगध सम्राटों की दक्षिण यात्राओं के सारे अभियानों का सम्बन्ध इस प्रदेश से जोड़ा। अपने यहाँ के कालिका के मन्दिर की प्रसिद्धि का ऐतिहासिक कारण वे यह मानते थे कि कालिदास ने इसकी स्थापना की थी और इसीलिए उनका नाम कालिदास प्रसिद्ध हुआ। भारतीय इतिहास की अधिकांश महत्वपूर्ण घटनाओं का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में इस प्रदेश से या तो उनके आरम्भिक कारणों के साथ सम्बद्ध मिलेगा या फिर उनके प्रतिफल के साथ संयुक्त। इस प्रकार श्रीधर बाबू की यह ऐतिहासिक कृति न तो असत्य ही कही जा सकती थी और न ही प्रामाणिक ही। गौरवमय वह अवश्य थी और (संभवतः) लेखक का भी अभीष्ट मात्र इतना ही तो था।

लेकिन इस पुस्तक के कारण जो भी मौलिकता या यश उन्हें उपलब्ध हुआ उससे उनके व्यक्तित्व में कोई विकार नहीं आया। वे उन दिनों स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें पढ़ा करते थे। वे कब इतिहास और भूगोल पढ़ाते-पढ़ाते साहित्य और कब साहित्य पढ़ाते-पढ़ाते विवेकानन्द पर आ जाएँगे इस बारे में कोई निश्चित नहीं कह सकता था। वे चाहे अधिक छात्रप्रिय न रहे हों किन्तु श्रद्धा के पात्र माने जाते थे।

इतिहास लेखक श्रीधर ठाकुर कुलीन तो नहीं हो थे लेकिन कल्पनाशील वाले अवश्य थे। शान्त एवं नीरस लगने वाले इस व्यक्ति के बारे में सभी की धारणा थी कि कुछ भी हो श्रीधर बाबू शील सम्पन्न आज्ञाकारी हैं। लेकिन स्वयं के बारे में उनकी धारणा थी कि मैं यह सब हूँ नहीं पर ऐसा आभास देता हूँ। कोई क्यों नहीं मानता कि मैं भी कभी विद्रोह कर सकता हूँ? पुस्तकों ने अनेक अध्यस्त विचारों का उनके निकट व्यक्त कर दिया था। स्कूल और कस्बे के पुस्तकालय की अधिकांश पुस्तकें वे पढ़ चुके थे। एक साथ अनेक विभिन्न विषय उन्हें भाते थे। श्रीधर ठाकुर को कोई व्यसन नहीं था। लेकिन कभी-कभी वे

अपने दो एक मित्रों के यहाँ शतरंज खेलने पहुँच जाते। नारायण बाबू जो कि अब आबकारियों से रिटायर्ड हो चुके हैं उनके गहरे मित्र हैं। दूसरे उन दिनों एक बंगाली तारबाबू थे पेमेन मजूमदार। सितार के बड़े शौकिन थे। पाँच बजे आफिस का काम पूरा कर पेमेन बाबू सड़क के सामने वाले बगीचे में मसनद और कुर्सियाँ डलवाकर एक टेबल पर ग्रामोफोन में रेकार्ड चढ़ा मित्रों की प्रतीक्षा में बैठ जाते। बड़े ही हँसमुख मिलनसार पेमेन बाबू का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि उनकी पत्नी पागल हो गयी थी। एक मात्र सन्तान के चल जाने से पेमेन बाबू का भी जीवन एक दम उदास हो गया था लेकिन किसी तरह संगीत तथा मित्र मण्डली में बैठकर उसे भूले रहते थे। पत्नी के लिए यह घटना अत्यन्त हानिकर हुई। वे एक कमरे में बन्द रहती थीं। देर रात तक सितार शतरंज की गप-शप के साथ-साथ रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द रवीन्द्र से भी परिचय हुआ। लेकिन यह कभी-कभी ही होता था क्योंकि पेमेन बाबू के दरबार में और भी लोग आ जाते थे और यह सब श्रीधर बाबू को प्रिय नहीं होता था। प्रायः तो यही होता था कि स्कूल की छुट्टी के बाद शहर जाने वाली बड़ी सड़क पर दो-तीन मील रोज हवा खाने जाना और लौटकर बादशाही पुल पर बैठकर जल में गिरती किले के कँगूरों की परछाइयाँ देखते रहना। दूर सूर्यास्त का पीलापन चारों ओर जैसे लुटा पड़ता था। जंगल से लौटते पशुओं के रँभाने की आवाज किले की ऊँची ऊँची पत्थरों वाली काली दीवारों से प्रतिध्वनित होकर जब लौटती उसमें एक अजीब सी रहस्यात्मकता तब और भी आ जाती थी जब सांझ का पीलापन जल में भरने लगता। उस ऐकान्तिक सूर्यास्त को, पक्षियों का शब्द तथा नदी का पत्थरों पर टकराना एक ऐसी दूरागत सिम्फनी बना देते थे कि अभीकित। इक्के-दुक्के कंधे पर उठाये जब हाली-मवाली कच्चे रास्तों से पक्की सड़क पर आते तो 'राम-राम मालिक' कहकर या तो पास से निकल जाते या फिर रास्ते की धूल को पोंछने के लिए नदी में धँस जाते। पत्थरों पर दौड़ता प्रसन्न सलिल अपने एकान्त भाव में असम्पृक्त बहता होता और पानी में हाथों पैरों से छोटे-छोटे टूट जाने वाले कुण्डल बनने लगते। ढोरों की घण्टियाँ दूर तक सुनायी पड़तीं जैसे आकाश भी एक साँझी गाय हो और उसकी घण्टियाँ बज रही हों। चरवाहों की हाँक सुनायी पड़ती। और तभी किसी अजान के स्वर के साथ ही श्रीधर बाबू अनायास हो लौटते। लेकिन मन में अव्यक्त ऐसा सदा ही कुछ शेष छूट जाता जिसे न वे न सूर्यास्त न आकाश की साँझी गाय की घण्टियाँ कुछ भी तो नहीं पकड़ पाते थे। उस शेष

कौन तो असन्ताप न दुख न भरना न परिताप कुछ भी था नहीं वह
सकते थे।

लौटते में रोज ही चितले वकील साहब से साक्षात हो जाता। अक्सर मातृ के गुणी व्यक्ति के सारे चिह्न उनके अंग और मुखा में स्पष्ट थे। वे उस समय अपने बाद में चबूतरे पर आराम कुर्सी पर विश्राम करते होते। सामने बिछा हुआ लाल जाजम और सफ़ेद चाँदनी के एक सिरे पर स्टूल पर बड़ा हण्डा वाला लैम्प जलती होती तथा पेशकार मुवक्किलों से घिरा मिसल मिलता हुआ। यह नहीं हो सकता था कि चितले साहब श्रीधर बाबू को देख लें या वे बिना मिले बिना कुछ देर बैठे चले जाएँ। चितले साहब का उस पेशवाई ढंग की प्राचीन मकान का बड़ी हवेली में दरवाजे के ऊपर जहाँ आगे निकला मकड़ा का गवाक्ष था जो कि प्रायः शहनाईवाला के बैठने के लिए बनाया जाता था उस पर सदा चिक पड़ी रहती थी। वहाँ से सगीत के रियाज का स्वर आता रहता—कैसी निकसी 'बदेमा'—'उपवनि पाव कोकिला'। किसी घर से रामायण की चौपाइयाँ सुनने में आ जाती। घर के मोड़ पर फड़नवीस का बाड़ा पड़ता था। जहाँ मराठिया राव रहा करते थे जो सूबात में पेशकार थे लेकिन अब बैठकबाज। इनके साथ ही जब बैठक उठ जाती तब अपने चबूतरे पर टहलते हुए जोर-जोर से रुद्र पाठ किया करते थे। उनका स्तोत्रपाठ दूर तक सस्वर सुनायी पड़ता था। रास्ते में 'थानक जी' (स्थानक) के अँधेरे हाल में प्रार्थनाएँ गाते हुए जैन साधुओं की यतियों की (यतियों) मुँहबँधी आवाजें सुनायी पड़ती या फिर जमायतेग बजता रहता। इस समय तक रात की लगभग शुरुआत हो चुकी थी पर म्युनिसिपैलिटी का लैम्पपोस्ट चमकता ही मिलता। नौ बजे रात तक जल सके—इतना तेल डालने का हुक्म होने पर भी पता नहीं क्यों कभी तो समीसांझ लैम्प बुझने लगती और नागनाथ की गली से लेकर अस्पताल तक एकदम अँधेरा घुप हो रहता। दिनभर पानी में पिलकर बैल बाहर बँधा हुआ सानी खाता हुआ मिलता। सानी की गन्ध दूर से ही आती जिसके साथ कच्चे तेल की सी चिपचिपाहट होती। घर के सामने कोने में बना बड़ी सी बावड़ी में वहीं दुबके कबूतरों की गुटरगूँ बहुत गहरे में आती लगती। बिना किसी खास उत्साह के श्रीधर बाबू घर पहुँचते रहे हैं। उनकी पत्नी तब पूजाघर में या तो कुछ काम करती होती या फिर बर्तन माँजे जाते। अपने कमरे में जाने के पूर्व वे अवश्य ही माँ के पास पाँच-दस मिनट बैठना नहीं भूलते। जब उनकी पत्नी सासूमाँ के हाथ पैर दाबने के लिए आती तब कहीं श्रीधर बाबू वहाँ से उठते।

अपनी उस कोठरी में एक समई के प्रकाश में सोये बच्चों के मुख चूम चूमे लगते।

इसी प्रकार के समरस जीवन में वे जन्मे थे बड़े हुए थे और बीस वर्ष तक पहुँचते न पहुँचते वे पति बन गये थे। वैवाहिक जीवन के गत पाँच-छः वर्षों में वे नियमानुसार दो पुत्रियों और एक पुत्र के पिता भी बन गये थे। इस प्रकार पच्चीस-छब्बीस वर्ष की आयु तक कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ था। जहाँ तक स्मरणीय घटना का सवाल था उसमें दो ही बातें महत्वपूर्ण मानी जा सकती थीं। एक तो नार्मल स्कूल के लिए बाहर पढ़ने जाना तथा दूसरे इतिहास लिखकर अनायास प्रशंसा की प्राप्ति। इन दो छोटी-छोटी उपलब्धियों के बल पर श्रीधर बाबू कितने दिन तक परिवार तथा दूसरों की दृष्टि में महत्वपूर्ण बने रह सकते थे? जब कि उनके दोनों भाइयों ने न केवल प्रगति ही की बल्कि अपनी प्रगति का परिचय भी पत्नियों के आभूषणों द्वारा अवसरों पर दिया करते थे। श्रीधर बाबू का ध्यान कभी इस ओर नहीं गया। यह कोई अस्वाभाविक भी नहीं माना जा सकता लेकिन पत्नी सरस्वती देवी ने कभी उलाहने के रूप में एक क्षण को भी अपने इतिहास लेखक पति से जेठानी तथा देवरानी की इस 'प्रगति' पर कोई असन्तोष प्रकट नहीं किया। जब पत्नी ही वीतरागी हो जाए तब भला कौन पति चाहेगा कि ओखली में सिर दे? कदाचित इसका कारण यही था कि सरस्वती देवी अपने माता-पिता की एकमात्र संतान थी। इसलिए संतोषी माता-पिता अपनी सन्तान में वे सब 'सद्गुण' सहज उपलब्ध न कर सके जो परिवारों की 'बहुओं' के कारण बच्चों को सहज प्राप्त हो जाते हैं। दूसरे शायद यह भी कारण था कि सरस्वती मास्वा की नहीं थी। उसका मायका सौरों में था। पिता अंग्रेजी के अध्यापक थे तथा अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक। पुत्री को थोड़ी बहुत अंग्रेजी संस्कृत तथा हिन्दी से परिचित करा रखा था। इस कारण सरस्वती में वे सब 'सद्गुण' नहीं थे जो एक भरे-पूरे परिवार की बहुओं में होने चाहिए—दो कि चार किस प्रकार की जाती है, बड़ियों का मसाला पूछने के बहाने दूसरे की गतिविधि से स्वयं को किस प्रकार अवगत रखा जाता है तथा दूसरों को किस प्रकार उससे अवगत कराया जाता है। ये ही तो 'ज्ञान' के वे सोपान हैं जिनके माध्यम से बहुएँ प्रगति एवं उन्नति करते हुए एक दिन सास के परमपद को सुशोभित करती हैं। सबेरे से देर रात तक काम तो महरी भी करती है श्रीधर की बहू ने किया तो क्या लाल लग गये? किसी पर उपकार किया गया? और भले ही सासूमाँ पर उपकार हो लेकिन जेठानी या देवरानी

पर नहीं । जब सामूनी का मन्दिर से ही फुर्सत नहीं मिल पाती तब भला घर कौन सम्हाले ? क्या बिना उनके घर नहीं चलेगा ? ऐसी हालत में बड़ी बहू ही न सम्हालेंगी ? पर सम्हालना कोई आसान काम है ? इतने लोग । इतने बच्चे । इतने आने-जाने वाले । कभी यह चीज कभी वह चीज । कोई एक मुसीबत है ? क्या यह सब काम नहीं है ?—रही 'डाक्टर की बहू' तो बेचारी अभी तो दो बरस हुए ब्याह कर आयी है । खेलने-खाने के यही तो दिन होते हैं । अरे आगे पीछे चूल्हे-चक्की में तो बेचारी को खटना ही है । और सच्ची बात तुम जानो तो यह भी है कि डाक्टर का कभी भी तबादला हो सकता है । मान लो हो ही गया, तब घर का काम-काज कौन देखे-भालेगा ? मँझली बहू ही को न करना पड़ेगा ? अरी बहना अपने अपने बच्चों का तो सभी करते ही हैं । बड़ी के तो सारे बच्चे बड़े हो गये । छोटी के अभी हैं ही नहीं । और इस प्रकार मँझली बहू श्रीमती सरस्वती देवी 'अपने बच्चों' का काम-काज करते करते आधी रात फुर्सत पातीं । लेकिन न तो कभी श्रीधर बाबू ने ही पूछा और न सरस्वती देवी ने ही कभी भूलकर 'फूंक-फूंककर' ही बताया कि गृहस्थी किस तरह चल रही है । दोनों पति-पत्नी अपने-अपने ढंग से उदास, अभ्यस्त, सांसारिक पारिवारिक जन थे ।

लेकिन उन दिनों भी उन्हें कुछ लोग असाधारण तो मानते ही थे । विशेष कर पेमेन मजूमदार । भले ही उन्हें असाधारण न भी माना जाए, कुछ विशिष्ट जरूर माना जा सकता था । इस मानने में उनकी सफलताओं से अधिक उनकी असफलताओं का ही महत्व होगा । उनके बड़े भाई श्रीमोहन ठाकुर ने बन्दोबस्त के दिनों में पूरे राज्य की पैमाइश की थी । जिस जरीब से उन्होंने यह ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया था वह आज भी उनकी पत्नी की खास हिफाजत में है । पति उस जरीब को पकड़ कर सूबात में सिरस्तेदारी तक पहुँच गये थे और पत्नी ने उसी जरीब से पूरा मुहल्ला-टोला नाप डाला था । छोटा भाई श्रीवल्लभ ठाकुर घोड़ा-डाक्टर हो गया था । जिसके लिए यह जनश्रुति थी कि यह महाशय यदि आदमियों के भी डाक्टर होते तब भी जानवरों वाली सुई का ही प्रयोग करते । पिता श्रीनाथ ठाकुर आजन्म वैष्णव मन्दिर में 'कीर्तनिया जी' रहे तथा ब्रजभूमि तक रासमण्डली ले जाया करते थे । अतिरिक्त इसके वे नवदुर्गा में भागवत आदि बाँचने पास-पड़ोस के राजा-महाराजाओं के यहाँ जाया करते थे । वे बड़े ही पंडित तथा भागवत व्यक्ति माने जाते थे । पूरे भारत में दो ही स्थानों पर कंस वधमी का उत्सव मनाया जाता है—या तो मथुरा में या फिर यहाँ । लोग रामस-

पूतना आदि बनते हैं। कंस-चौरे पर कंस की एक विशाल मूर्ति बनायी जाती है। कृष्ण आते हैं और तब कंस-दहन होता है। श्रीनाथ ठाकुर जितने अच्छे राक्षस बना करते थे वैसा फिर दूसरा कोई नहीं बन सका। वे विशाल काय, गौर वर्ण वाले पूरे कद्दावर व्यक्ति थे।

ऐसी लौह देह का व्यक्ति यदि विद्रोह करता तब भी सब की समझ में आता लेकिन वे तो आजीवन शान्त सन्तोषी ब्राह्मण ही बने रहे। किस प्रकार श्रीनाथ ठाकुर को उनकी सौतेली माँ ने परेशान किया यह क्या कस्बे के लोग नहीं जानते? लेकिन 'हरि इच्छा' कह कर जिस सन्तोष तथा धैर्य का परिचय उन्होंने दिया उसे यह 'कल का छोकरा' भला क्या समझ सकता है। जरा-जरा सी बात पर यदि आदमी नौकरी छोड़कर घर से भाग निकले तो फिर यह संसार जाने कब का डूब ही गया होता।

एक दम निरीह 'असमा की गाय' लगने वाले श्रीधर बाबू ने जब सहसा विद्रोह किया तब किसी को कैसे विश्वास आता ? स्वयं गाडगिल साहब भी आश्चर्य में आ गये जब श्रीधर बाबू ने दृढ़ता से अस्वीकार किया । बात कितनी साधारण थी लेकिन कौन कहे ? एक दिन सतवी क्लास से श्रीधर बाबू को गाडगिल साहब ने बुलवाया और शिक्षा विभाग के इंसपेक्टर का पत्र सामने कर दिया । लिखा था कि श्रीधर बाबू ने अपने इतिहास में श्रीमन्त सरकार तथा उनके पुण्य स्मरणीय पितामहों का बारबार उल्लेख करते हुए उचित राजकीय सम्बोधनों एवम पदवियों का प्रयोग नहीं किया इस कारण राज्य में बड़ा असन्तोष फैल गया है । लेखक इस भूल को तत्काल सुधारे तथा एक क्षमा पत्र श्रीमन्त की सेवा में विभाग के मार्फत लिख कर अविलम्ब भेजे ।—श्रीधर बाबू ने बीसियों उदाहरण देकर बताया कि इस प्रकार के विशेषण इतिहासों में नहीं लगाये जाते इसलिए क्षमा पत्र का प्रश्न ही नहीं उठता । हेड मास्टर साहब ने लाख समझाने की चेष्टा की लेकिन श्रीधर बाबू और भी तेज होते गये । बल्कि इस प्रश्न को उन्होंने अपने स्वत्व का प्रश्न बना लिया । हेड मास्टर साहब तो जमाना देखे आदमी थे । उन्होंने

पहले तो श्रीधर बाबू के मित्रों से कहा, जब उससे भी कुछ न हुआ तो बड़े भाई श्रीमोहन ठाकुर से कहा। पति की बात सुनकर श्रीमोहन की पत्नी ने ऐसा डाँटा कि उनकी हिम्मत न हुई

—तुम्हें क्या करना है? जाने कैसी किताब लिखी। न लिखते समय न सरकार की चिट्ठी आयी उस समय, जब हमसे कुछ पूछा ही नहीं तब अब हम बीच में क्या पड़ें? सरकारी मामला है। तुम बीच में मत पड़ना। अपनी नौकरी और बाल-बच्चे भी तो देखने हैं। अरे देवर जी की नौकरी ही क्या है मास्टरी की न? न होगा दूसरी कर लेंगे। और मान लो न करें कुछ हमें किसी से क्या? मैं तो रोज ही कहती हूँ कि अभी मौका है। ये सामने वाला हलवाई का मकान बिकाऊ है। जल्दी से इस कीचड़ से अलग हो जाएँ तो मर पायें। दिन भर दूसरों के लिए खटो और

और श्रीमोहन का फिर साहस नहीं हुआ कि अपने छोटे भाई से कुछ भी चर्चा करते। गार्डिनर साहब ने पूछा तो टाल गये। बात आखिर में श्रीनाथ ठाकुर से होती हुई श्रीधर बाबू की माँ और सबसे अन्त में पत्नी तक पहुँची।

नित्य की तरह उस रात भी जब श्रीधर बाबू घर पहुँचे देखा माँ अपनी माला कर रही है। कुछ देर बैठने के बाद वहाँ से चलने को हुए ही थे कि माँ ने आँखों से आदेश किया कि तनिक रुको। माँ ने माला समाप्त कर दोनों आँखों से छुलाकर [illegible] समेटी और पूछा

—आज सवेरे गार्डिनर साहब तुम्हारे बाबू के पास आये थे।

—हूँ मालूम है।

—तूने ऐसा किताब में क्या लिख दिया रे?

—कुछ नहीं माँ! तुम नहीं समझ पाओगी।

—कुछ समझा भी तो?

—बस माँ! कुछ नहीं। मैं काम तो ठीक हूँ।

—सरदार के दादा-बाबा के नाम से आगे कुछ नहीं जोड़ेगा तो वे नाराज नहीं होंगे ? सच ही तो कह रहे हैं ।

—जो बात तुम नहीं जानतीं उसे मैं क्या समझाऊँ ।

—मान लो मैं नहीं समझती तो आज अपने बापू को समझाना । सबेरे तुम्हें पूछ गया था लेकिन तू जा चुका था । वे आते ही होंगे । अरे बेटा जमाना और हैसियत देख के बात करनी चाहिए ।

खिन्न होकर श्रीधर बाबू उठने को हुए । वे जानते थे कि उनकी माँ सबसे अधिक उनके लिए ही चिन्तित रहती हैं । दुनिया की ऊँच-नीच सदा समझाने में लगी रहती हैं । माँ के निकट जो इतना महत्त्वपूर्ण था वह उनके निकट कितना नगण्य था इसे वे लाख चाहने पर भी न तो कह पाते थे और यदि कभी कह देते थे तो माँ को नहीं समझा पाते थे । माँ दबे-छुपे कभी-कभी संकेत भी कर देती थीं कि श्रीमोहन अलग होने की सोच रहा है । डाक्टर का कुछ भरोसा नहीं किया जा सकता । क्योंकि उसकी पत्नी अपने माता-पिता की अकेली सन्तान है इसलिए उसे किसी बात की कमी होगी नहीं । अब केवल रह गया श्रीधर जिस पर सारा घर गृहस्थी का बोझ आ जाता है । चार पैसे नहीं जोड़ेगा तो यह बाप-दादों का जीर्ण मकान के दिन चलेगा ? तुम लोगों के बापू ने कभी कोई संसार का काम किया जो यह घर बनवाने का काम ही करेंगे ? श्री मोहन और डाक्टर क्यों इस पुराने घर में पैसा लगाएँ ? वे जानते हैं न कि इस मकान में तीन भाई बँट नहीं सकते । श्रीधर विवश हो कर कुछ करेगा ही और तब वे लोग इस घर में भी हिस्सा माँगने खड़े हो जाएँगे । और किसे पता पहले ही हिस्सा माँगकर उसे बेच दें । श्रीधर को यह सब भी सोचना होगा । लेकिन लेकिन श्रीधर बाबू कुछ नहीं सोचते । जो सोचते हैं वह सब इतना हवाई काल्पनिक, असांसारिक होता है कि बेचारी माँ सदा भरी आँखें लिये उठ जाती रही हैं ।

—तो तू अपने बापू से बात तो कर ले ।

—माँ ! यह बात ऐसी है कि इसे तुम या बापू कोई नहीं समझ सकते । जो बात आप चाहते हैं वह मैं अपनी किताब में कर नहीं सकता । इन लोगों में से एक भी नहीं जानता कि दुनिया कितनी बड़ी है । कितने बड़े-बड़े लोग हुए हैं । ये लोग सब कूपमण्डूक हैं जो इन छोटी-छोटी बातों में उलझे हुए हैं । ये जानते नहीं कि इतिहास क्या होता है लेकिन अपना इतिहास भी लिखवाना चाहते हैं । मैं तुम से कहे देता हूँ कि समाज मुझे बाहर ही निकाल दे लेकिन मैं एक अक्षर भी अपनी पुस्तक में से नहीं काटूँगा ।

और माँ हतप्रभ सी जाते हुए श्रीधर को देखने लगीं। क्या यह वही श्रीधर है जो अपने संकोच अबोलेपन के लिए ही जाना जाता है ? सहसा एक क्षण को माँ को लगा कि यदि इसने पुस्तक में से नहीं काटा तो उनके पुत्र पर कहीं कोई आपत्ति तो नहीं आ जाएगी ?

शाम वर्षा हुई थी। कच्चे आँगन में ओलती के पानी गिरने से जगह-जगह मिट्टी निकल आयी थी। आँगन की दीवार के दीवट में रखी चिमनी जल रही थी जिसकी छाया दीवार पर पत्तों सी झिलमली लग रही थी। श्रीधर बाबू ने परेंडी से पानी लिया और हाथ-पैर धोये कुल्ला किया और अपने कमरे वाला जीना चढ़ने लगे। कच्चा जीना भी जगह-जगह से भीगा-उखड़ा था। चारों ओर सीलेपन की एक अजीब गंध आ रही थी। कमरे में पहुँचते ही उन्हें सरस्वती के होने की आशा थी लेकिन दूर पीछे रसोईघर से बर्तनों के माँजने की आवाज आ रही थी। बच्चे दीवट के आलोक में सो रहे थे। उन्होंने कपड़े बदले और खाने के लिए रसोईघर पहुँचे।

पता नहीं क्यों पिता ने श्रीधर से इस बारे में बात करना ठीक ही नहीं समझा। खाना खाकर लौटते हुए जब श्रीधर बाबू ने देखा कि पिता अँगनाई पर लेटे हुए 'विष्णु सहस्रनाम' का पाठ कर रहे हैं तो एक क्षण रुक कर उन्होंने अपना वही निर्णय पिता को भी सुना दिया जो कि माँ को सुनाया था। पिता एक क्षण को हतप्रभ अवश्य हुए लेकिन वे पुनः पाठ में लग गये।

कमरे में पहुँच श्रीधर बाबू कुछ क्षण तो उस सीली छत वाले अपने कमरे में पीछे हाथ बाँधे टहलते रहे। दीवट की रोशनी में उनकी छाया गोबर लिपी दीवारों पर डोल रही थी। अम्बर बड़ा घुटा-घुटा सा लग रहा था। शायद मेघ घिर रहे थे। अतः वे अपने आगे वाले कमरे में निकल आये थे जो कभी छत था।

लेकिन अब लकड़ी की दीवारों से तथा खिड़कियों से कमरा बना दिया गया था। यह कमरा ही श्रीधर बाबू की बैठक था। छत बहुत ऊँची नहीं थी। लेकिन फिर भी सरस्वती ने सफेदी पोत कर टाट लगा दिया था और उसमें काटे-हुए कागज के फूल चिपका दिये थे। अपने मँझले बेटे की बैठक सजाने के लिए माँ नीचे की बैठक व सीढ़ियों पर बने हुए राधाकृष्ण शिव-पार्वती के चित्र ले आयी थीं। मराठी परिवेश के रवि वर्मा के भी दो चार चित्र थे। एक खाट थी लेकिन पुरानी खाट जाजम बिछ पर एक गद्दा और चादर तथा एक गाव-तकिया। कोने में एक आलमारी जिसमें श्रीधर बाबू की अपनी पुस्तकें।

प्रायः वे आकर इस बेला पढ़ते हैं लेकिन आज किसी बात में मन नहीं लग रहा था। वे गाव तकिये के सहारे अधलेटे से अँधेरे में ही बैठे रहे। बिजली की कौंध से खिड़की की राह आस-पास के मकान एकदम अभ्रक उठते या फिर मेघ गर्जन में दीवारें तक काँप उठतीं। आज तीन दिन से धारासार हो रहा था। आकाश खुलने का नाम ही नहीं लेता था। इस समय भी खूब वर्षा हो रही थी। टिन की छतों पर पानी इतनी धारों से गिर रहा था कि दूसरी कोई आवाज नहीं सुनायी पड़ती थी। वैसे भी रात काफी कुछ आ चुकी थी। पता नहीं वे अर्धनिमीलित से कब झिप गये।

सरस्वती जब ऊपर आयी और उसने बैठक में आज रोशनी नहीं देखी तथा बिस्तरे पर भी पति को नहीं देखा तो उसे हल्का आश्चर्य हुआ। खिड़की की राह आते हुए घुटे प्रकाश में देखा कि पति तकिये के सहारे लेटे हैं। उसने बैठक की लैम्प जलायी। देखा हाथों पर सिर रखे सो गये हैं। उसने श्रीधर बाबू का सिर छुआ कि कहीं तबियत तो खराब नहीं है? हाथ के स्पर्श से श्रीधर बाबू की झपकी टूटी। सम्हलते हुए बोले

—अरे कब आयीं तुम?

—आज आप पढ़ नहीं रहे हैं? तबियत तो ठीक है न?

—सब ठीक है।

और वे खिड़की की राह बरसते पानी को देखने लगे।

—आज आप चिन्तित लग रहे हैं, क्या बात है?

—नहीं तो खास तो कुछ नहीं। सहेजना-समेटना हो गया?

बात टालते हुए बोलीं

—बच्चे जागे तो नहीं थे।

—नहीं तो।

दोनों को ही प्रति-एकान्त खल रहा था। दोनों को ही लगने लगा कि अगर अधिक देर तक साथ रहे तो बहुत सी बातें जो घिरी हुई हैं ठीक बाल के धाराधर सी बरस पड़ेंगी। क्योंकि ऐसे अवसर बहुत ही कम या बिल्कुल ही नहीं आये हैं जब कि दोनों साथ-साथ बैठकर कभी सहज हुए हों। दोनों के जीवन के दो वृत थे जो छूते थे लेकिन काटते नहीं थे। आज सहसा इस प्रकार प्रति-निकट देख दोनों अजीब ठण्डापन अनुभव करने लगे। जैसे कोई अज्ञात भय रोम-रोम में समाहित हो गया हो। सरस्वती ने अधलेटे पति का सिर दाबना शुरू किया। श्रीधर बाबू वैसे कभी इस प्रकार की सेवाएँ कराने के पक्षपाती नहीं हैं। अन्य दिन यदि ऐसा होता तो निश्चय ही बरज भी देते किन्तु आज वैसा नहीं कर सके। देर तक पानी में काम करते रहने के कारण सरस्वती का हाथ काफी ठण्डा था किन्तु फिर भी इस समय बहुत अच्छा लग रहा था। उन्हें वह दिन याद हो आया जब यही हाथ प्रथम दिन उन्होंने थामा था तब यह कितना कोमल था। लेकिन आज वही हाथ किंचित कड़ा हो गया था। सिर दाबते हाथ की चूड़ियाँ कान के पास आज प्रथम बार इस तरह बोल रही थीं। श्रीधर बाबू ने अपने हाथ से सरस्वती का सिर दाबता हाथ थाम लिया जैसे कुछ कहना चाहते हों जैसे यह बात उन्हें बहुत पहले ही कहनी चाहिए थी। लेकिन कौन सी बात?

—सरो!

—जी।

—तुम क्या सोचती हो?

—किस बारे में? क्या इतिहास के बारे में?

—हाँ।

—न बदलने के पीछे कुछ कारण होंगे ही तभी न आप ऐसा कर रहे हैं।

—मेरे इस निर्णय पर तुम्हें संतोष है?

—यदि आपको हो तो।

—मुझ पर इतना निर्भर मत रहो सरो! सबका अपना व्यक्तित्व स्वतन्त्र होता है।

—मेरा तो स्वयं व्यक्तित्व लोक परलोक सब उसी दिन आप में लीन हो गया।

तभी दूसरे कमरे से एक बच्चे के दांत किटकिटाने की आवाज आयी।

—अभी तक छोटी के पेट के कीड़े साफ नहीं हुए।

—क्या कोई दांत किटकिटा रहा है?

—हाँ अब जमा।

और सरस्वती उठ गयी।

दूसरे दिन।

पाकगिल साहब को अपने निश्चय की सूचना देकर स्कूल समाप्त होने पर श्रीधर बाबू अपने मित्र नारायण बाबू से मिलने छावनी की ओर चल दिये। नारायण बाबू वैसे आयु में बड़े ही थे लेकिन मिलनसार स्वभाव होने के कारण श्रीधर बाबू उनके साथ मैत्री का ही व्यवहार करते थे। नारायण बाबू घर के बड़े आदमी थे। कई पुश्तों से हुण्डियों के लेन-देन का व्यापार होता था। नारायण बाबू के पिता राय बहादुर गोकुलनाथ तो छोटे-मोटे राजा ही माने जाते थे। फौज में उनकी बड़ी धाक थी। गोरों की इस छावनी में राय बहादुर की यह पहली कोठी थी जहाँ किसी 'काला आदमी' को घुसने दिया गया था। आज भी नारायण बाबू के बड़े भाई गोवर्धननाथ उसी अपनी गद्दी पर बैठ कर व्यापार करते थे। गोवर्धननाथ को फूल की बीमारी थी। आगे चल कर भरी जवानी में उन्हें पैरों में लकवा मार गया। उन्होंने फिर आजन्म विवाह न करने का निश्चय किया। नारायण बाबू को अपना भाई ही नहीं बल्कि पुत्र मानकर सन्तोष कर लिया। नारायण बाबू ने भी तथा उनके परिवार ने भी

वही सौजन्य निभाया। गोवर्धननाथ को कहीं घर से बाहर जाना होता तो वह पालकी पर चढ़ कर जाते थे। उनका नियम था कि सवेरे गिरिधर वाले बगीचे की ओर निकल गये। वहीं सन्ध्या वन्दन करके 'शृंगार' के दर्शन करते हुए छावनी लौट आना। शाम को फिर पहाड़ वाली का किला जी के दर्शनों के लिए पालकी पर निकल जाना। इस प्रकार दिन भर पालकी और कहार ड्योढ़ी पर तैनात रहते थे। रायबहादुर गोकुलनाथ के समय में तो कर्नल वगैरा तक दूकान पर आते थे। राय साहब तो बहुत हुआ कमाण्डिंग आफिसर से मिलने चल गये। लेकिन अब क्रमश: स्थिति दिनोंदिन बदलती जा रही थी। अब धीरे धीरे छावनी की ताकत भी कम की जा रही थी। गोवर्धननाथ को भी अब कभी इस कर्नल कभी उस कप्तान के पास किसी न किसी मामले के लिए दौड़ना पड़ता था। बेचारे अपंग होते हुए भी कभी नारायण बाबू से नहीं कहते थे कि तुम भी व्यापार में हाथ बटाओ।

जिस समय श्रीधर बाबू नारायण बाबू के यहाँ पहुँचे वे अपनी फिटन से उतर कर बड़े भाई से बातें कर रहे थे जो कि काली मन्दिर जाने के लिए नौकरों का सहारा लेकर लूले पालकी में चढ़ रहे थे।

—कहिए श्रीधर बाबू! बहुत दिनों पर दिखायी दिये। सब कुशल है न? गोवर्धननाथ बोले।

—आपकी कृपा है।

—नारायण कह रहा था कि आपकी किताब को लेकर सरकार की तरफ से कोई चिट्ठी आयी है।

—जी हाँ।

—कुछ बदलने को कह रहे हैं तो बदल क्यों नहीं देते?

—वे जो चाहते हैं वह किसी इतिहास में नहीं हुआ। महारानी विक्टोरिया या पंचम जार्ज से तो ये लोग बड़े नहीं हैं न? क्या इंग्लैण्ड के इतिहास में बार-बार उन्हें राजरानी या सम्राट आदि लिखा जाता है?

—अरे भाई तुम लोगों की ये सब बातें हम पुराने लोगों की समझ में तो आने से रहीं। हम तो यही जानते हैं कि जल में रह कर मगर से बैर कैसे पाला जा सकता है?

नारायण बाबू ने देखा कि श्रीधर बाबू को व्यावहारिकता पर लाकर कहा जा रहा है तो बोले

—भाई साहब! यह सिद्धान्त की बात है। और मैं समझता हूँ कि

श्रीधर बाबू इस मामले में सही हैं। मुझसे भी गार्डगिल साहब ने कहा कि श्रीधर बाबू को समझाओ। मैंने कहा कि श्रीधर बाबू सिद्धान्तवादी आदमी हैं। यदि बदलना उचित होता तो वे शुरू में ही कभी ऐसा नहीं लिखते।

पालकी कहारों ने कंधे पर उठा ली थी और वह बाँसों पर टिकी थी।

—भैया ऐसा काम करना जिसमें सबको सुख हो। बेचारे कीर्तनिया जी का यह बीता काल है। उन्हें सहारे की जरूरत है। और साफ बता दूँ वे तुम पर ही अधिक निर्भर हैं।

और पालकी चल पड़ी।

—आओ श्रीधर ! दो मिनिट बैठो मैं अभी आया।

कह कर नारायण बाबू भीतर चले गये। और श्रीधर बाबू दालान वाली बैठक की चौकी पर बैठ गये।

आज कई दिनों बाद श्रीधर बाबू से नारायण बाबू की भेंट हुई थी। छावनी का यह पूर्वी भाग था। छावनी कस्बे से लगभग मील भर दूर पहाड़ी पर थी। काले पत्थरों की यह पहाड़ी पूरब से पश्चिम मीलों फैली हुई थी। अचार और आम के बीसियों गाछ तथा वन यहाँ से वहाँ तक फैले हुए थे। लेकिन सबसे अधिक पेड़ तो बरगद के थे। छावनी के लिए पता नहीं कब अंग्रेजों ने इसे चुना था लेकिन प्रसिद्ध यही था कि काली मन्दिर वाले पहाड़ के सामने वाले मैदान में १८५७ के समय लक्ष्मीबाई के साथ अंग्रेजों की मुठभेड़ हुई थी। संभव है उसके आसपास ही गोरों ने यहाँ छावनी बनायी हो। लेकिन चारों ओर झील जैसे बड़े-बड़े तालाबों से घिरे इस पठार पर दिन-रात बहुत अच्छी हवाएँ चला करती थीं।

नारायण बाबू की यह कोठी छावनी की दूसरी इमारतों की ही भाँति बना थी। बात यह थी कि राय बहादुर गोकुलनाथ को जिस कर्नल ने छावनी में मकान बनवाने की आज्ञा दिलवायी थी उसी ने इस मकान का नकशा बनाया था। इसलिए यह काफी हद तक बंगले ढंग की थी। चारों ओर ऊँचे ऊँचे सफेदे के गाछ गोलाई में लगवाये गये थे। इस मकान के बाद ही पहाड़ एकदम समाप्त हुआ था और दूर तक एक घाटी सी चली गयी थी जहाँ छावनी का पोलो ग्राउण्ड था। सामने की पहाड़ी पर काली का मन्दिर बना था।

तीसर-पहर बादल बरस कर इस समय छँट गये थे। सावन का सन्ध्या आकाश एकदम नीला हो आया था। नारायण बाबू और श्रीधर बाबू पहले तो

प्रायः बैजनाथ महादेव के मन्दिर की ओर जाया करते थे। यह मन्दिर उत्तर की तरफ कोई दो मील दूर था। नारायण बाबू ने आते ही पूछा
—क्यों श्रीधर! कई दिनों से बैजनाथ नहीं गये हैं क्या इरादा है ?
—मैं भी सोचता तो यही था।
—यदि वर्षा हुई तो ?
—अभिषेक हो जाएगा और क्या ?
और दोनों हँसते हुए निकल पड़े। फिटन नये फौजी डाकघर की सड़क की ओर बढ़ी। परेड ग्राउण्ड पर कुछ फौजी कवायद कर रहे थे। दो-दो चार चार के झुण्ड में फौजी अफसर अवकाश का समय बिताने के लिए क्लब की ओर जा रहे थे। फौजी स्नानघर के सामने नहाने वालों की भीड़ ज्यादा नहीं थी। सामने के बड़े से कुँए का पानी निकालने के लिए ऊँट मोट चला रहा था। कुछ कर्नल और कैप्टन रैंक के फौजी या तो घोड़ों पर सवार या फिर पत्नियों के साथ कुत्तों की जंजीर पकड़े हवाखोरी को निकले हुए थे। तीसरे-पहर की वर्षा में भीग गाछों से रह रह कर बूँदें टपक रही थीं। पहाड़ी इलाका था इसलिए वर्षा के बाद कीचड़ नहीं थी। लाल बजरियों वाली साफ सुथरी सड़क पर फिटन के पहिये किरकिराते दौड़ रहे थे। किसी-किसी बँगले के लान में माली निराई करने में व्यस्त थे। बैजनाथ के रास्ते पर दोनों ओर घने सागौन के पेड़ों की कतार मीलों चली गयी थी। यह उतार का रास्ता था। आगे नाले के पास एक दूसरी सड़क और मिलती थी जो कस्बे की ओर जाती थी। इसी रास्ते से गाय भैंसें दिन भर जंगलों से चर कर लौटा करती थीं। नाका दूर पर था। डूबते सूर्य की छाँह में नारायण बाबू की फिटन बैजनाथ पहुँची।

बरगद इमली आम और यूकेलिप्टिस के सघन जंगल में एक छोटी सी नदी बहती है। जिसका जल एक पक्के कुण्ड में एकत्रित कर लिया जाता रहा है। जिसमें सभी रंग के कमल खिले रहते थे। जिस समय वे दोनों पहुँचे उस वन में केवल मोरों के बोलने की आवाज आ रही थी। उसके एक सिरे

पर बैजनाथ महादेव का विशाल मन्दिर है तथा उसके दूसरे सिरे पर एक पक्का आश्रम बना हुआ है, जो कि एकदम निर्जन था। केवल आश्रम के आँगन में एक चौकी तथा उसके ऊपर एक शीतलपाटी बिछी थी। एक खंभे पर पिंजरे में एक तोता रह-रह कर चीख रहा था। नाले पर बना एकमात्र पक्का घाट था जिसकी सीढ़ियों को भिगोता हुआ पानी कलकल करता बह रहा था। ऊपर थोड़ी ऊँचाई पर एक बड़ी धर्मशाला थी। जहाँ इस समय कोई यात्री न था। थोड़े आगे वह विशाल वन था जहाँ शिवरात्रि पर तथा कार्तिक की यात्राएँ जमती थीं।

साँझ हो चुकी थी। विजन जैसे सहस्त्रमुखी होकर घिरने लगा था। दोनों ने नाले में जाकर हाथ-मुँह धोया और उपरान्त दर्शन किये। शिवलिंग पर सन्ध्या—आरती के ताजे फूल तथा बिल्वपत्र चढ़े हुए थे। एक बड़े से दीपाधार में इक्कीस बत्तियाँ जल रही थीं। शिवलिंग के सामने के हवन—मण्डप की रेलिंग थाम कर दोनों खड़े हो गये! छतनारे पेड़ों से सँवराते आकाश के टुकड़े दिख रहे थे। रास्ते भर तो श्रीधर बाबू लगभग चुप ही रहे जब कि नारायण बाबू ने दुनिया-जहान की खबरें सुना डाली थीं। उस समय कस्बे में एकमात्र नारायण बाबू के यहाँ ही "टाइम्स आफ इण्डिया" आता था। उनकी रुचि धीरे धीरे कांग्रेस की ओर बढ़ रही थी जिसे उनके बड़े भाई गोवर्धननाथ जानते थे कि इससे उनके व्यापार पर हानि होने की सम्भावना है लेकिन वे यह भी जानते थे कि नारायण बाबू कोई बच्चे नहीं हैं।

—क्यों श्रीधर! हम लोग भी अपने यहाँ कांग्रेस की शाखा खोल लें तो कैसा रहे?

—सरकारी नौकरी करते हुए यह कैसे कर सकते हैं?

—लेकिन माईडियर! तुमने सरकारी नौकरी करने का कोई पट्टा तो लिखा नहीं है।

और वे बड़े जोर से हँस दिये।

—हाँ यह तो ठीक है। मैं भी सरकारी नौकरी को बाधा ही पाता हूँ।

—तो उस झगड़े का आखिर हुआ क्या?

—वह इतिहास वाला? मैंने गार्डनर साहब से साफ इन्कार कर दिया।

—यह तो मैं जानता ही था कि तुम नहीं मानोगे लेकिन——

—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं नारायण बाबू! बहुत होगा तो यह नौकरी छोड़ दूँगा।

—उसके बाद?

—उसके बाद ये दो पाँव हैं और पूरी पृथ्वी है। विवेकानन्द की भाँति परिक्रमा पर निकल जाऊँगा।

—तो लगता है तुम सारे परिणामों पर पहुँच चुके हो। लेकिन बहू-बच्चों को लेकर

—यही तो एक बाधा लग रही है।

—श्रीधर! अपने भाइयों को तो तुम जानते ही हो। जहाँ तक पिताजी का सवाल है वे बेचारे तो अब

—नारायण बाबू! सब बातों की सीमा होती है। निश्चय ही इन बाधाओं की भी सीमा होगी ही। और हमें किसी न किसी प्रकार उस सीमा तक चलकर पहुँचना ही होगा यदि हम कुछ करना चाहते हैं। जीवन तो महाप्रस्थान का पथ है। जहाँ के हिम में प्रत्येक सम्बन्ध जो कि बाधा होता है गल जाता है। और नारायण बाबू! सब कुछ हम ही सोचकर व्यवस्थित कर ले जायेंगे इस बुद्धिवादी स्वांग की क्या आवश्यकता है? कम से कम मुझे तो नहीं ही है।

श्रीधर बाबू की बात नहीं किन्तु लिखा मुख जोगे अँधेरे में अस्पष्ट लग रहा था। सामने वाले आश्रम में कोई लौट आया था। वहाँ अब एक दीप जल चुका था। पक्के फर्श पर उस कोई की लकड़ी की पाटुकायें खट-खट् बोल रही थीं। तोता-अड्डे जोरों पर चील रहा था। कदाचित् यह वह पुराना तोता नहीं था जो प्रत्येक आगन्तुक से "ओम नमः शिवाय" कहता था। सामने के कुण्ड में कभी किसी मछली के कारण पानी गहरा हिल जाता था और तब आकाश और तारों की प्रतिच्छाया खो जाती थी।

—आओ अब चला जाए।

नारायण बाबू ने कहा। दोनों फिटन की ओर बढ़े। तभी आश्रम से कोई बोला

—कौन है भाई? छावनी वाले नारायण बाबू हैं क्या?

—हाँ ब्रह्मचारी जी!

—चिन्ह से ही मैं समझ गया था। क्या चल दिये? आज बहुत दिनों पर आए?

—हाँ महाराज!

—सत्संग नहीं होगा?

—आज जरा जल्दी है। फिर आऊँगे।

—और कौन है साथ में?

—श्रीधर बाबू।

—अच्छा जय शंकर।

और फिटन पर दोनों चल दिये। रास्ते भर दोनों चुप ही रहे।

रोज की तरह श्रीधर बाबू आज भी घर पहुँचे। माँ माला फेर रही थीं। चिमनी आले में वैसे ही जल रही थी। पिता अभी मन्दिर से नहीं लौटे थे। जो हाथ-मुँह धोकर आ ही रहे थे कि माँ बोलीं
—कहाँ रह गया था ?
—बैजनाथ चला गया था। छावनी वाले नारायण बाबू मिल गये थे।
—आज श्रीमोहन कुछ बकझक कर रहा था उनसे।
—कोई नयी बात है क्या ?
—तेरे लिये तो वैसी पुरानी जैसी नयी। तुझे तो विधाता ने बैठ दुनियादारी के अलावा सब दिया है। पता नहीं तुझे ये सब क्यों नहीं समझ में आती ? सिर से माला छुआ कर गोमुखी की तह करते हुए एक गहर निश्वास के साथ बोलीं।
—माँ ! दादा के पास बहुत पैसा हो गया है। वे बेचारे मामी के लिए घर बनवाना चाहते हैं तो तुम क्यों रोकती हो ?
—कभी ऐसा हुआ है रे ? अभी तो घर का मालिक बैठा है।

—यही तुम भूलती हो माँ ! जिसके पास पैसा होता है वही घर का मालिक होता है । सुनो क्या वो हिस्सा माँगते हैं अपना ?
—जब तक हम बैठे हैं तब तक इस घर के टुकड़े तो होने से रहे । भले ही वह अलग से अपना मकान बना ले ।
—तो इससे क्या हुआ ? तुम जो कुल की प्रतिष्ठा के लिए सब समेटे रहना चाहती हो ताकि चार लोग हँसे नहीं उससे तुम कैसे बच सकोगी ?
—नहीं अभी तो वह नहीं कहता कि हिस्सा हो लेकिन अलग रहना चाहता है । मकान छोड़ सब बातों का हिस्सा करने को कहता है ।
—तो कर दो इसमें क्या मुश्किल है ? सब अपना-अपना सम्हालें । ठीक तो है ।
—बड़ा आया कहने वाला कि कर दो हिस्सा । कुछ जानता भी है ? बड़े के पास तो रिश्वत का पैसा आ गया । डाक्टर को उसकी ससुराल से मिल गया । लेकिन तेरा क्या ?
—क्यों मेरा जेवर-गहना तो तुम हो ही ।
और श्रीधर बाबू बड़े जोरों से हँस दिये ।

सावन घिर रहा था । बादलों की गड़गड़ाहट जैसे दीवालों में भर गयी थी । हल्की ठंडी हवा चलने लगी थी । माँ बोली
—जा अब भोजन कर ले ।
जाते हुए श्रीधर को देख कर, माँ अत्यन्त चिन्तित थी कि इसका क्या होगा ? जैसा यह वैसी इसकी बहू । उसे भी जरा दुनियादारी नहीं आती । अरे मरदों में तो ऐसी बेफिक्री होती ही है और फिर श्रीधर जैसा आदमी जो कि जाने कौन-कौन सी किताबें पढ़ता रहता है और दिमाग खराब किये हुए है लेकिन आदमी को चुस्त-चालाकी से बाँधे रखना तो औरत का ही न काम है ?

खाना खाकर श्रीधर बाबू जब रसोईघर से लौटे तो देखा कि पिता अपनी चटाई पर अधलेटे हो पाठ कर रहे हैं । माँ पीढ़े पर चौरासी वैष्णवन की वार्ता" रखे पढ़ रही हैं । जाते हुए श्रीधर को पुकारते हुए बोलीं
—सुना तू ने किताब में बदलने से मना कर दिया है ?
तब तक पिता श्रीनाथ ठाकुर ने पाठ के बीच ही कहा ।
—आज मार्शमन साहब आये थे मन्दिर । बेचारे बड़े दुःखी थे लेकिन क्या करते ?
माँ फिर बोलीं

—अब क्या होगा ?

—होगा क्या ? सरकारी मामला है । निकाल दिये जाएँगे बाबू साहब । पिता की आवाज में किंचित रोष दुःख सभी कुछ था । भीगे जीने पर सिर नीचा किये श्रीधर बाबू सारी बात समझ रहे थे । माता-पिता की चिन्ता भी वे सहज समझते थे । क्षण भर में सारी वास्तविकता आँखों के आगे कौंध गयी । इतना बड़ा परिवार, जिसके कि वे सदस्य हैं, इस टूटे घर की तरह ही भीगा-टपक रहा था । रातभर में इतनी रात बरतन मलती सरस्वती की विवशता भी वे बूझ रहे थे तथा यह भी कि भाभी अपने कमरे में क्यों छप्पर पलंग पर बैठी दाल-चावल का हिसाब लिखती रहती हैं और वे परेशानी का नाटक आये दिन करती रहती हैं । फिर भी न पति न सास न ससुर, किसी की हिम्मत क्यों नहीं पड़ती यह कहने की कि अकेली सरस्वती सबेरे से देर रात तक खटती रहती है और तुम भी बहू हो लेकिन तालियों का गुच्छा हिलाते रहने के अलावा और क्या करती हो ? क्यों श्रीधर बाबू के बच्चे फटे कपड़े पहने घूमते रहते हैं और दादा-भाभी के बच्चे   और वे लगभग चीख पड़े ।

—माँ ! मेरी चिन्ता न करो । अपना अपना भाग्य ।

कहते हुए श्रीधर बाबू अपने कमरे की ओर बढ़ गये । बड़ी लड़की गुणवती अभी तक जाग रही थी ।

—बाबा ! आज बहुत देर कर दी ।

—हाँ बेटा ! बैजनाथ चला गया था ।

श्रीधर बाबू बिना कुछ बोले-चाले अपने कमरे में पहुँच जाना चाहते थे लेकिन गुणवंती जैसे आज बाबा से बातें करने के लिए ही जाग रही हो ।

—बाबा ! आज सिर में बहुत दर्द है ।

पास बैठते हुए श्रीधर बाबू ने कहा

—शायद इसीलिए नींद नहीं आ रही है न ? अच्छा लाओ मैं दाबे देता हूँ । अच्छे बच्चे जल्दी सो जाते हैं ।

गुणवती को सुलाते हुए श्रीधर बाबू अपने में जैसे खोये हुए थे । कब सरस्वती आयी और पानी की कटोरी आगे कर खड़ी हो गयी उन्हें पता न चला । वह बोली

—लीजिए, पानी पी लीजिए ।

—अरे !!

और चौंक कर उन्होंने सरस्वती की ओर देखा, जैसे रिवाला बादल देख लिया

हो । दीप के मंद मीठे आलोक में कंपमा सरस्वती पीली कनेर सी लग रही थी । पहले का भरा बदन सिटकने लगा था । इसलिए वह कुछ लम्बी लग रही थी । सिधे-बँधे बालों में सूनी माँग चौड़ी लग रही थी । बिना किनारे की सादी धोती में वह भोर के भोरे होते हुए आकाश सी लग रही थी । मुख पर कोई भाव नहीं था बल्कि एक अव्यक्त उदासी रेंगी हुई थी । सबेरे की काजल-अँजी आँखें इतनी रात तक कैसे कजरी रह सकती थीं ? जाने कितनी बार उनमें धुँआ लगा हो गा । पोंछी अनेक बार भीले ठंडे हाथ लगे होंगे । जाने कैसी भरी-भरी आँखें पोंछी गयी होंगी । अब भला इतने सब के बाद आँखों में काजर कहाँ तक बैठा रह सकता था ? पलकें खुली नहीं लग रही थी बल्कि जैसे पलकों के बाल-चिपके हुए हों । पानी देकर सरस्वती आँचल से चूड़ियाँ पोंछती खड़ी रही ताकि कलछी ले सके ।

—आज गुनवंती के सिर में दर्द क्यों हो रहा था सरो ?

—बहुत मना किया कि बरसात का पानी हाथा तालाब न जाओ लेकिन चाची की रम्भा और दूसरी सहेलियों के साथ सबेरे से गयी थी तो तीसरे पहर होने पर जब बुलवाया गया तब आयीं ये लोग । सिर नहीं दुखेगा तो क्या होगा ?

—तुम्हें मना कर देना चाहिए था ।

—मुझसे भला इस घर में कभी कोई बात पूछी जाती है ?

सरस्वती ने बात बहुत सहज कहनी चाही थी लेकिन समाप्त करते न करते वह स्वयं भी अचकचा गयी कि यह क्या कह गयी । बात सुन श्रीधर बाबू को आश्चर्य नहीं किन्तु ठेस लगी कि क्या उनकी पत्नी इतनी निरीह है कि स्वयं के बच्चे तक कोई बात पूछने की आवश्यकता नहीं समझते ? उन्हें क्रोध आना चाहिए था लेकिन उन्हें खेद हुआ । चुनौती अनुभव करने पर ही तो क्रोध आता है ? और श्रीधर बाबू कभी क्रोध नहीं करते क्योंकि प्रायः चुनौती नहीं अनुभव करते । शायद इसीलिए वे क्रोध की जगह खेद ही अनुभव करते हैं ।

पत्नी बात कह कर वस्तुस्थिति टालने के विचार में थी अतः छिन भर की काम-काज वाली धोती भी बदलने के लिए मलगनी से चूनट की हुई धोती उठा कर पति की बैठक में चली गयी । श्रीधर बाबू गुनवंती के सिर पर हाथ रखे जानें क्या सोचते रहे । लेकिन वे जो भी सोच रहे थे वह बहुत टूटा-फूटा सा था । बैजनाथ महादेव का वह लम्बा निर्जन रास्ता याद हो आया । भीगते पेड़ों की टपकती बूँदें । पानी ऊँची किये देहातिनें जंगल से बीनी लकड़ियाँ

का भारा बनाये कोठरी। कहीं पर दूर उत्तर में जरा सा नीला आकाश सूखा ही था कि ढेर सारे बादल उसे ढँकने को जैसे दौड़ रहे हों। विवेकानन्द किस चट्टान पर बैठ कर रामेश्वरम के हिल्लोलते सागर को देखते होंगे ? एक अनन्त जलस्थल आलोड़ित होता हुआ सूर्योदय से सूर्यास्त में बदल जाता है। इतिहास राजाओं का ही होता है क्यों ? साधारण जनों का क्या कोई इतिहास नहीं होता ? पानीपत की लड़ाई थी लेकिन सरो जो अस्त्रहीन एक लड़ाई लड़ रही है उसका क्या कोई महत्व नहीं ?

सरो शर्मा के पास बैठकर रामायण पढ़ने का उपक्रम करने लगी। लेकिन वह वास्तव में पढ़ने के बजाय चाह रही थी कि कुछ बातें हों।

—सरो !

—जी ।

श्रीधर बाबू सहसा बोले थे। कोई प्रयोजन नहीं था। सरो ने जब 'जी' कहा तो न समझ न सके कि क्या कहें।

—थक गयी होगी। अब आराम करो।

—आप नहीं लेटिएगा ?

—सुना दादा अलग होने की सोच रहे हैं।

—मुझे तो मालूम नहीं।

—भाभी ने कुछ भी नहीं कहा ?

—मुझसे ?

—हाँ क्यों ?

—मैं भला उनकी दृष्टि में कौन होती हूँ ?

—सरो ! तुम इतनी निस्पृह क्यों हो ?

—निस्पृह तो नहीं हूँ लेकिन

—लेकिन क्या ?

—लेकिन मुझे केवल दुख है। अपने लिए नहीं। इन लोगों की समझ पर। ये जिन बातों से डरते हैं कि कल से कुछ हो-हुआ जाए तो हम लोग उन पर कहीं बोझ न बन जाएँ।

—सचमुच दादा-भाभी ऐसा ही सोचते हैं ?

—और दूसरा भला क्या कारण हो सकता है ?

—अच्छा मान लो कल से मेरी नौकरी छूट ही जाए तो क्या होगा ?

—यह सोचना आपका काम है।

—लेकिन तुम्हें भी तो सोचना चाहिए।
—आपके रहते मुझे यह सब सोचने का अधिकार नहीं है।
—लेकिन कम से मान लो
—क्या यही सब कहने के लिए आज बरसों बाद बातें करने बैठे हैं?
सरस्वती हल्की रुआँसी हो आयी। अनेक दिनों से वह घर में तरह-तरह की बातें सुनती आ रही थी। किन्तु अलस्स सवेरे खारा-मीठा पानी लाने, चूल्हे के पास बैठे हुए भी तरकारी काटने से लेकर दाल बीनना, मसाला रखने तक तथा सब लोगों को खिला-पिलाकर तीसरे पहर बर्तन साफ करने तक लगी रहती है। उसके बाद अनाज फटकना, कभी अचार बनाना, बड़ियाँ कूटना कितने ही ऐसे काम होते कि सांझ होने तक करती रहती। और उसके बाद तो फिर रात का खाना है ही। घर में आये-गये कुछ मिला कर न सही तो पन्द्रह-बीस आदमियों का रोज खाना दोनों जून बनाना। इसमें सरस्वती को केवल यही याद पड़ता कि वह अपने कमरे से जब आयी थी तब शुक्र डूब रहा होता और जब चौका-बासन, ढँकना-मेलना पूरा होता तब सप्तर्षि उग आये होते। कभी बच्चों को बाहर घूमता हुआ देख लिया नहीं तो सोता हुआ छोड़ कर जाती और प्रायः सोता हुआ ही देखती। गुणवती तो जागती ही मिलती। कभी छोटी सुशीला भी जागती होती लेकिन रात सोंदेपन के अभावा देवव्रत तो सदा सोता ही मिलता। इतने बरस हो गये सरस्वती न घर में जो देखा या जो सुना वह काम करते हुए, सिर झुकाये ही। वह विवाह के आठ दिन बाद ही जेठानी के रुख से समझ गयी कि इस घर को एक दासी की आवश्यकता थी और वही सरस्वती इस इतने बड़े परिवार में हो सकती है। बिना पति को कुछ बताये सरस्वती ने अपने इस 'महात्म्य' को स्वीकार लिया।

सहसा सरस्वती के मन में यह फिर आया कि उसने इतना सब क्या यही बात सुनने के लिए स्वीकारा था? सहा था? और वह भर उठी। वैसे तो वह रोज ही भर उठती है विवशता से। लेकिन इस बार अपने स्वामी की इस बात में था कि उसके जीवन के लिए घोर अपमान है जिसके बिना उसकी क्या दुर्गति हो सकती है इसे वह भली भांति समझती है—इतने बड़े अपमान को ये जिसने सहज ढंग से वह टाल रहे हैं। ये कहते हैं कम से मान लो... मान लो की भी भली चलायी। और अपने ही पक्ष में क्या मानना है? क्या लेना मान लो मेरे पक्ष में नहीं हो सकता? हो सकने की बात हो क्या है उसे तो कभी का ही हो जाना चाहिए था। मन-मन जैसे गिर रहा था।

इन हड्डियों में अब क्या रह गया है ? बाँसी की तरह खोखली हो गयी है। इन्हें क्या मालूम ? ब्याह के बाद से घड़ी भर भी कभी चैन नहीं मिला। कोई कहाँ तक खट सकता है ?

और आज सहसा वह सहज हो आयी। रोज की भाँति नहीं कि बड़ी से बड़ी बात चाहे वह ताना किस का बुझा हुआ ही क्यों न हो आज हँस कर झेल-गयी हो या चवासें रह कर ही मूक स्वीकार ली हो। पहले सीने के पास जैसे बहुत कुछ फूल आया हो और फिर देखते-देखते जैसे गला फँसा-फँसा सा होने लगा। सरस्वती स्वयं नहीं बूझ पा रही थी कि वह क्या है जो बड़े बुलबुले सा गाल-पोछ घिरता हुआ गले के बाद नाक और आँखों में भर आने को घिर आया है।

श्रीधर बाबू ने देखा कि देवव्रत की सटा सरस्वती हठात रोने लगी है। व आपाद सिहर उठे। बाहर श्रावण बरस रहा था और सरो आपाद भीगी हुई थी। बाहर आँगन में घर के पीछे कम्हड़े तथा तुरई की बेलें भीग रही थीं और यहाँ अनजाने ही श्रीधर बाबू का परिवार भीग रहा था। बैठक से आती हुई श्रावण भीगी तेज हवा में समाई की बाती झिलमिला रही थी। इस झिल-मिलाने से दीवारों पर जैसे सोनाली रोसनी भी बड़ी-बड़ी हिल रही थी। सूनी डेरियों में पानी तेज सपाटे मारता झिरझिरा रहा था। आज कई दिनों स तेज धूप नहीं निकली थी इसलिए कपड़े दीवारें सभी चीजें सिला गयी थीं। कमरे बिस्तरों की हल्की गर्मी में कुनमुना रहे थे। पारापर अँधेरी श्रावण रात में श्रीधर बाबू न शब्द न संकेत कुछ नहीं पकड़ पा रहे थे जिसके द्वारा सरस्वती को सान्त्वना दे सकें। सरस्वती आज पहली बार फूट आयी थी। सरस्वती को भी दुख है, उस दुख को भले ही उसने न कहा हो या न कहे लेकिन वह आँसू बन चुका है यह श्रीधर बाबू को पता न था। उनके निकट सरो सहिष्णुता की मूर्ति थी। जिसे कोई बात ताना परिस्थिति नहीं व्यापती। इसलिए सरो का वह आदर करते थे। वही सरस्वती आज मानुषी बनी रो रही थी। श्रीधर बाबू इन आँसुओं में जन्म-जन्म के श्रावण नहा गये। वे गले-गले हो आये ताकि भीग सकें। आज दोनों ही रोज के पति-पत्नि नहीं लग रहे थे जिन्हें किताबें और बड़ियाँ घूँटना सन्तोष दे दिया करते थे।

बच्चों को ठीक तरह से ओढ़ाकर सरस्वती का हाथ पकड़ श्रीधर बाबू बैठक में निकल आये। खिड़की खुली थी। सोती की फुहारें आ रहीं थीं। घुटा हुआ प्रकाश था। सरो उठी और कम्बल ले आयी। दोनों कम्बल ओढ़कर अबोल ही बरसत श्रावण मन देखते रहे।

—सरो ! तुम्हें इस घर में बिल्कुल सुख नहीं मिल सका न ?
बिजली की कौंध से तथा गड़गड़ाहट से पुश्तैनी मकान की दीवारें एकदम काँप उठीं । सरो भला पति की इस बात का क्या उत्तर देती ? वह एकदम पति से सट गयी और उनके सीने पर सिर रख एक छोटे जल भरे बादल सी फूट पड़ी । श्रीधर बाबू ने सरो को बाहुओं में कस लिया । वह कभी खिड़की की राह तथा कभी बैठक के अँधेरे में निर्मम और निष्कृति खोजने लगे । बाहुओं में बँधी सरो आज उन्हें पहली बार लगा कि अभी तो यह मुश्किल से युवती हुई ही है । कितना छोटा सा सिर है । कैसे चिकने-चिकने बाल हैं । धोये गये सिर में से आँवले की गंध अभी तक आ रही थी । कैसी समर्पिता बनी रात चार बजे पिसना और पानी लाने के लिए इसे उठ जाना पड़ता है । पहले खारा पानी लाना है सबके नहाने के लिए और फिर मीठा पानी कुँए से लाना होता है । जबकि दूसरे सब सोते रहते हैं । बच्चों को स्कूल जाने से पहले खाना भी देना होता है । दादा को कचहरी जाने के पूर्व पूरा खाना मिलना ही चाहिए और वह भी उतरती हुई रोटियाँ । पिता जी मन्दिर से बारह-एक तक लौटते हैं तथा इसी समय के लगभग छोटा भाई डाक्टर भी लौटता है उन्हें भी गरम खाना मिलना ही चाहिए । रात भी यही हाल होता है । और घर की यह सारी नियम-व्यवस्था केवल सरो को ही सम्हालनी होती है । जबकि श्रीधर बाबू ने कभी यह नहीं कहा होगा कि उन्हें सर्दियों में नहाने के लिए गरम पानी मिलना ही चाहिए या तवे की उतरी रोटी ही चाहिए । लेकिन इससे क्या ? सब लोग तो ऐसे होते नहीं । सरो को प्रायः तीसरे या चौथे दिन तालाब भी तीसरे पहर कपड़े लेकर जाना ही पड़ता था अपने बच्चों के कपड़ों के लिए । खारे पानी में जब रात के कपड़े तक कमाल जाते हैं तब बच्चों की कमीजें पजामे भला कैसे साफ रह सकते हैं ? और जब आज तालाब जा रही हो तो भला यहाँ चार कपड़े वहाँ छह कपड़े । और इस प्रकार जेठानी के बच्चों के भी कपड़े ले ही जाने पड़ते । वैसे तो धोबी आता है लेकिन मर्दों के ही कपड़े दिये जाते हैं और वह भी खास-खास कपड़े ही । इस प्रकार सरो को बाल्टी के कपड़े लेकर तालाब तीसरे पहर जाना ही होता । साथ में गुणवती या छोटी कोई न कोई रहती । उस दिन सरो को माड़ने-पटकने से अवश्य छुट्टी मिल जाती । लेकिन यह भी था कि बिना सरो के घर में अँधेरा ही पड़ा रहता । लौटने पर दिया-बत्ती का तेल-पानी करके तब यहीं बुड्ढे के पास जाना पड़ता ।

श्रीधर बाबू की अपनी सरो की इस दिनचर्या का सोचते-सोचते न केवल

थकान बल्कि हाथों में दर्द अनुभव होने लगा। रोज रोज यही सवेरे से देर रात तक। उन्होंने उसका मुँह दोनों हाथों में भर कर बैठक के उस मटमैले प्रकाश में देखना चाहा कि उस दिन अग्नि के सामने बैठे हुए मन्त्रोच्चार करते हुए जिसे इतना सुन्दर देखा था वह आज भी वैसा ही है या नहीं? आँसुओं से भीगा सरो का मुख उन्हें अपनी सबसे बड़ी पराजय लगा। जाने कब आवाज थम गया था लेकिन बिजली और गड़गड़ाहट अवशेष थी। पुलिस लाइन के घंटे में बारह की गजर बज रही थी। कहीं किसी के खाँसने की आवाज आ रही थी।

—सरो! चलो अब सोओ। बारह बज गया।

—हाँ देर रात हो गयी।

और दोनों अपने बिस्तरों पर आकर लेट गये। सरस्वती ने समई बुझा दी। कमरे में घोर अन्धकार हो गया। कदाचित श्रीधर बाबू तो सो गये लेकिन सरस्वती उस रात न सो पायी।

दूसरे दिन रविवार था। तालाब नहाने वालों की भीड़ थी। तीन ओर पहाड़ों से घिरा छलछटी वाला यह तालाब किसी झील से कम नहीं था। मनुष्य से अधिक प्रकृति ने इसे सजा रखा था। जिस ओर कोई पहाड़ नहीं था एक बड़ा भारी बाँध था। जिसका निर्माण कहते हैं शाहजहाँ ने अपनी दक्षिण यात्रा के समय किया था। बाँध की पुख्ता तथा चौड़ाई और घाट आदि से भलीभाँति इस किंवदन्ति को सत्य माना जा सकता था। इस तालाब के बीच में एक छोटी छतरी बनी हुई थी जहाँ लोग तैर कर जाया करते थे। शौकीन गोठ के लिए नाव से भी जाया करते थे। दूर पर तीनों ओर से पहाड़ों से टकराती पुर्वा या पछुआ दिन रात इतनी तेज चलती थी कि लोग अपनी धोतियाँ एक तरफ से अकेले पकड़कर आसानी से सुखाया करते। तालाब में बड़ी ऊँची ऊँची लहरें दिन भर उठा करती थीं। बाँध में जगह-जगह अन्दर की तरफ तालाब में ऊँचे ऊँचे बुर्ज बने हुए थे जहाँ से लोग नहाने के लिए कूदा करते थे। यह तालाब इस कस्बे का तीर्थ माना जाता था इसलिए लोग नदी के बजाय यहीं नहाने रोज आया करते। लेकिन रविवार या किसी छुट्टी के दिन नहान-पर्व

का सा दृश्य रहता । बाँध के सिरे पर उत्तर में एक मराठा सरदार बाला साहब की किले जैसी कोठी बनी हुई थी जिसकी पत्थरों की दीवार से तालाब सदा लहराता रहता । ठीक उसी पर कोठी का खुला बारजा बना हुआ था जहाँ सामन्त युग के स्वर्ण युग में खुला दरबार लगा करता था । या फिर, कभी किसी राजा-महाराजा की सवारी आती थी तो यहीं बैठकर तालाब में जलक्रीड़ा की जाती । गुम्बदों वाली इस कोठी का वैभव अब केवल इतिहास हो गया था । चारों ओर घनी अमराई भी अब जीर्ण हो आयी थी । अमराई का परकोटा गिर चुका था और वहाँ दलदल हो गया था । इस किनारे पर धोबियों ने अपने पत्थर रख लिये थे और दिन भर 'छीनो-छीयो' किया करते थे । बाला साहब की कोठी की हरे पल्लोंवाली खिड़कियाँ अपने में बड़ी सी कोठी समेटे बन्द रहा करती थीं । पिता जी कहा करते थे कि बाला साहब ने इसी दाहिने हाथ क बुर्ज से कूद कर आत्महत्या की थी तब से यह कोठी अपना कुल समस्त सब लोग यहाँ स हमेशा के लिए चले गये । बाला साहब ने क्यों आत्महत्या की इस पर नाना प्रकार के मत हैं । कुछ लोग कहते हैं कि उनकी तीसरी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी थीं और श्रीमन्त सरकार की दृष्टि उन पर पड़ गयी अतएव श्रीमन्त उन्हें ले गये । कुछ का कहना था कि वे स्वयं गयीं क्योंकि वे स्वयं एक बड़े राजघराने से आयी थीं और बाला साहब एक छोटे-मोटे मात्र सामन्त थे । भला वे वैभवहीन कैसे रह सकती थीं ? अतः लोक-लाज से बचने के लिए एक दिन अपने इसी बारजे के बुर्ज पर से छलाँग मार कर तालाब में कूद पड़े । बाला साहब की कोठी के यहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं और वहीं पर वे परलोकवासी हुए । उसके बाद यह कोठी ऐसी बन्द हुई कि आज तक इसमें फिर कोई नहीं आया ।

लेकिन जब तक बाला साहब जीवित रहे इस कस्बे में राजधानी की सी चमक-दमक रहती थी । बाला साहब के दरवाजे पर चार हाथी सदा बँधे रहते थे । छोटी-मोटी फौज सदा लैस रहती थी । दशहरे-दीवाली पर न केवल दरबार ही होता था बल्कि सवारी भी निकला करती थी । बाला साहब ब्राह्मन सरदार थे । सदा पालकी पर चढ़कर बस्ती के बीच वाले महादेव मन्दिर में नित्य आया करते थे । इस मन्दिर का जीर्णोद्धार भी उन्होंने करवाया था । वे बड़े उदार तथा पण्डित व्यक्ति थे । बुढ़ापे में तीसरा विवाह कर बाला साहब न अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की थी । इतने लोकप्रिय तथा यशवान व्यक्ति के लिए आत्महत्या के अतिरिक्त और कोई मार्ग शेष ही नहीं रह गया था।

बाला साहब इस प्रदेश के लोकख्यात व्यक्ति हो गये थे। उनकी वीरता तथा दानशीलता की अनेक सत्यासत्य कहानियाँ फैली हुई थीं। कहते हैं उनके पूर्वज पेशवाई के पतन के बाद अनेक ऐतिहासिक जय-पराजय देखते हुए मालव के इस अंचल में आ बसे थे। या हो उनके पूर्वजों ने कब कौन सी लड़ाई लड़ी इसका प्रमाण ऐतिहासिक रूप से चाहे हमारे पास न हो लेकिन बाला साहब स्वयं प्रथम विश्वयुद्ध में गये थे और उन्हें विक्टोरिया क्रास तक मिला था। श्रीधर बाबू को इन सब बातों की बहुत धुंधली स्मृति है। लेकिन कस्बे के जीवन में इस राजकीय सम्मान की प्राप्ति के अवसर पर जैसा महोत्सव हुआ वैसा न कभी हुआ था और न होगा ही। बाला साहब के वैभव का वह चरम क्षण था। पूरी कोठी दीपों से सज्जित की गयी थी। हाथियों को सज्जित किया गया था। चाँदी के हौदे उस दिन विशेष रूप से चमकाये गये थे। छावनियों पर नौबत का प्रबन्ध किया गया था तथा उनके कदमों में घुँघरू बाँधे गये थे। फौजफाटे और लावलश्कर का ठाठ देखकर अंग्रेजी छावनी के सारे फिरंगी अफसर चकित रह गये थे। रूपा-निधान फाल्गुन की सोनाली धूप में छोटे-छोटे सूर्यों और पुच्छल तारे से चमक रहे थे। आस-पास के सारे मराठे और राजपूत सामन्त इस महोत्सव में सम्मिलित हुए थे। इसी गोपाल चौक के सामने वाले मैदान में कनातें तान कर रावटियाँ ठोकी गयी थीं। आस-पास के गाँवों तक के लोगों के लिए तीन दिन तक खीर मालपुआ का प्रबन्ध किया गया था। काशी उज्जैन और बड़ौदा से शहनाई वाले बुलाये गये थे जो नगरकोट के प्रत्येक दरवाजे पर चौबीसों घण्टे शहनाई बजाते रहते। लखनऊ और बनारस की रंडियाँ बुलवायी गयी थीं। तालाब के पास जो 'कबड़ा स्वामी' का वन है उसमें तम्बू तान कर उन्हें ठहराया गया था। लगता था जैसे पूरा कस्बा वधू का घर हो। तीन दिन के लिए क्या मीना बाजार, प्रदर्शनी नाच रंग-रंग नौटंकियाँ नट सभी कुछ तो लोगों को उपलब्ध थे। कहते हैं बालासाहब के पिता अप्पा साहब ने सामन्ती सम्हालने पर ऐसा ही उत्सव मनाया था लेकिन बाला साहब का यह महोत्सव तो लोकगीतों लोकगाथाओं का विषय बन गया था। तालाब की यह बीच की छतरी इस महोत्सव के पहले बिल्कुल ही जीर्ण हो गयी थी। इस वर्तमान रूप में सुन्दर, बाला साहब ने किया था। वे शैव थे किन्तु उदार धार्मिक थे इसलिए वैष्णव मन्दिर भी प्रायः जाया करते थे। उन तीन दिनों कस्बे का प्रत्येक घर, मन्दिर नगर-कोट तक आलोकित किया गया था। जाने कितनी कँवारी ब्राह्मण कन्याओं

तथा गरीब कन्याओं का सामूहिक विवाह उन्होंने उन तीन दिनों में करवाया था। लाग चकित थे कि बाला साहब क्यों इतना रुपया फूंक रहे हैं? वे विशिष्ट महाराष्ट्री ब्राह्मण की भूषा में सज्जित एक श्याम आसन पर स्वस्थ बैठे सबका स्वागत हँसकर कर रहे थे। उनके निकट उस महोत्सव के लिए एक ही तर्क था कि भाई! यह सब सम्पत्ति मेरे पूर्वजों ने कहाँ स अर्जित की? क्या अपने साथ लाये थे भगवान के यहाँ से? अरे आपने ही दी थी और यह इतना बड़ा कर्ज आपका मनोरंजन कर आपको ही इस कस्बे को ही लौटा रहा हूँ। और फिर पता नहीं कब आप सबसे इस प्रकार मिल सकूँ। अच्छा है आपके आशीष लिये ही यहाँ से विदा होऊँ।

बाला साहब के पितामहों पर दूर-दूर तक के सेठों का बड़ा रुपया निकलता था। लेकिन बाला साहब पाई-पाई चुका कर रहे। लोगों ने देखा कि उस महोत्सव के बाद कोठी बरसों मेघों सी रिक्त रही। शायद इस महोत्सव के बाद ही उनकी तीसरी पत्नी वाली दुर्घटना हुई। बाला साहब तब पैंसठ वर्ष के हो चुके थे और उनकी पत्नी सम्भवतः पच्चीस वर्ष की थीं। वे अत्यन्त सुन्दर महिला थीं। उनके विवाह को दस वर्ष हो चुके थे। जिन दस वर्षों में पाँच वर्ष तो बाला साहब जर्मन की लड़ाई में यूरोप चले गये थे। इस बीच लोग जो बताते हैं वह यह कि श्रीमन्त की सवारी इस कस्बे में कम से कम दो बार आयी थी और बाला साहब की पत्नी भी अपने मायके में ही प्राय रहीं। लोगों का शक है कि वे मायके में न रह कर श्रीमन्त सरकार के साथ पहाड़ों या समुद्र तटों की सैर करती रहीं। जो भी हो इस महोत्सव के पूर्व बाला साहब और उनकी पत्नी में कुछ बातों को लेकर झगड़ा हुआ। बाला साहब अपनी सारी जायदाद का बराबर हिस्सा अपने एक लड़के एक लड़की और इस नयी पत्नी के बीच कर देना चाहते थे। बाला साहब की पहली पत्नी स लड़की इन्दु थी जो महाराष्ट्र में किसी सामन्त स ब्याही गयी थी लेकिन ब्याह के थोड़े ही दिनों बाद विधवा हो गयी थी। उसके बाद वे काशीवास करने के लिए सदा के लिए बनारस चली गयी थीं। दूसरी पत्नी स वामनराव थे, जो अजमेर 'मेयो कालेज' में पढ़े थे। पढ़ाई के बाद घर आ जाना चाहिए था लेकिन नयी माँ के रंग-ढंग देखकर वे फौज में भरती होकर क्वेटा की छावनी में ही रहते थे। बहुत कम लोगों ने वामनराव को देखा था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि उन्होंने किसी अब्राह्मण महिला से विवाह कर लिया था जो बाला साहब के लिए असहनीय था। बाला साहब अपने इस वैभव में

बाला साहब इस प्रदेश के लोकप्रिय व्यक्ति हो गये थे। उनकी वीरता तथा दानशीलता की अनेक सत्यासत्य कहानियाँ फैली हुई थीं। कहते हैं उनके पूर्वज पेशवाई के पतन के बाद अनेक ऐतिहासिक जय-पराजय देखते हुए मालव के इस अंचल में आ बसे थे। जो हो उनके पूर्वजों ने कब कौन सी लड़ाई लड़ी इसका प्रमाण ऐतिहासिक रूप से चाहे हमारे पास न हो लेकिन बाला साहब स्वयं प्रथम विश्वयुद्ध में गये थे और उन्हें विक्टोरिया क्रास तक मिला था। श्रीधर बाबू को इन सब बातों की बहुत धुँधली स्मृति है। लेकिन कस्बे के जीवन में इस राजकीय सम्मान की प्राप्ति के अवसर पर जैसा महोत्सव हुआ वैसा न कभी हुआ था और न होगा ही। बाला साहब के वैभव का वह चरम क्षण था। पूरी कोठी दीपों से सज्जित की गयी थी। हाथियों को अभिषिक्त किया गया था। चाँदी के हौदे उस दिन विशेष रूप से चमकाये गये थे। छावनियों पर नौबत का प्रबन्ध किया गया था तथा उनके चरणों में घुँघरू बाँधे गये थे। फौजफाटे और लावलश्कर का ठाठ देखकर अंग्रेजी छावनी के सारे फिरंगी अफसर चकित रह गये थे। डंका-निशान फाल्गुन की सोनाली धूप में छोटे-छोटे सूर्यों और पुच्छल तारे से चमक रहे थे। आस पास के सारे मराठे और राजपूत सामन्त इस महोत्सव में सम्मिलित हुए थे। इसी गोपाल चौक के सामने वाले मैदान में कनातें तान कर भट्टियाँ खोदी गयी थीं। आस-पास के गाँवों तक के लोगों के लिए तीन दिन तक खीर मालपुआ का प्रबन्ध किया गया था। काशी उज्जैन और बड़ौदा से शहनाई वाले बुलाये गये थे जो नगरकोट के प्रत्येक दरवाजे पर चौबीसों घण्टे शहनाई बजाते रहते। लखनऊ और बनारस की रंडियाँ बुलवायी गयी थीं। तालाब के पास जो 'केवड़ा स्वामी' का वन है उसमें तम्बू डाल कर उन्हें ठहराया गया था। लगता था जैसे पूरा कस्बा वधू का घर हो। तीन दिन के लिए क्या मीना बाजार, प्रदर्शनी नाच राग-रंग नौटंकियाँ नट सभी कुछ तो लोगों को उपलब्ध थे। कहते हैं बालासाहब के पिता अप्पा साहब ने सामन्ती सम्हालने पर ऐसा ही उत्सव मनाया था लेकिन बाला साहब का यह महोत्सव तो लोकगीतों लोकगाथाओं का विषय बन गया था। तालाब की यह बीच की छतरी इस महोत्सव के पहले बिल्कुल ही जीर्ण हो गयी थी। इसे वर्तमान रूप में सुन्दर, बाला साहब ने किया था। वे शैव थे किन्तु उदार धार्मिक थे इसलिए वैष्णव मन्दिर भी प्रायः जाया करते थे। उन तीन दिनों कस्बे का प्रत्येक घर, मन्दिर नगर-कोट तक आलोकित किया गया था। जाने कितनी कुँआरी ब्राह्मण कन्याओं

तथा गरीब कन्याओं का सामूहिक विवाह उन्होंने उन तीन दिनों में करवाया था। आप चकित थे कि बाला साहब क्यों इतना रुपया फूँक रहे हैं ? वे विशिष्ट महाराष्ट्री ब्राह्मण की भूषा में सज्जित एक व्याघ्र आसन पर स्वस्थ बैठे सबका स्वागत हँसकर कर रहे थे। उनके निकट उस महाव्यय के लिए एक ही तर्क था कि भाई ! यह सब सम्पत्ति मेरे पूर्वजों ने कहाँ से अर्जित की ? क्या अपने साथ लाये थे भगवान के यहाँ से ? अरे आपने ही दी थी और यह इतना बड़ा कर्ज आपका मनोरंजन कर आपको ही इस कस्बे को ही लौटा रहा हूँ। और फिर पता नहीं कब आप सबसे इस प्रकार मिल सकूँ। अच्छा है आपके आशीष लिये ही यहाँ से विदा होऊँ।

बाला साहब के पितामहों पर दूर-दूर तक के सेठों का बड़ा रुपया निकलता था। लेकिन बाला साहब पाई-पाई चुका कर रहे। लोगों ने देखा कि उस महोत्सव के बाद कोठी बरसे मेघों सी रिता गयी। शायद इस महोत्सव के बाद ही उनकी तीसरी पत्नी वाली दुर्घटना हुई। बाला साहब तब पैंसठ वर्ष के हो चुके थे और उनकी पत्नी सम्भवतः पच्चीस वर्ष की थीं। वे अत्यन्त सुन्दर महिला थीं। उनके विवाह को दस वर्ष हो चुके थे। जिन दस वर्षों में पाँच वर्ष तो बाला साहब जर्मन की लड़ाई में यूरोप चले गये थे। इस बीच लोग जो बताते हैं वह यह कि श्रीमन्त की सवारी इस कस्बे में कम से कम दो बार आयी थी और बाला साहब की पत्नी भी अपने मायके में ही प्रायः रहीं। लोगों का शक है कि वे मायके में न रह कर श्रीमन्त सरकार के साथ पहाड़ों या समुद्र तटों की सैर करती रहीं। जो भी हो इस महोत्सव के पूर्व बाला साहब और उनकी पत्नी में कुछ बातों को लेकर झगड़ा हुआ। बाला साहब अपनी सारी जायदाद का बराबर हिस्सा अपने एक लड़के एक लड़की और इस नयी पत्नी के बीच कर देना चाहते थे। बाला साहब की पहली पत्नी से लड़की इन्दु थी जो महाराष्ट्र में किसी सामन्त से ब्याही गयी थी लेकिन ब्याह के थोड़े ही दिनों बाद विधवा हो गयी थी। उसके बाद वे काशीवास करने के लिए सदा के लिए बनारस चली गयी थीं। दूसरी पत्नी से वामनराव थे, जो अजमेर मेयो कालेज में पढ़े थे। पढ़ाई के बाद घर आ जाना चाहिए था लेकिन नयी माँ के रंग-ढंग देखकर वे फौज में भरती होकर क्वेटा की छावनी में ही रहते थे। बहुत कम लोगों ने वामनराव को देखा था। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि उन्होंने किसी अंग्रेज महिला से विवाह कर लिया था जो बाला साहब के लिए असहनीय था। बाला साहब अपने इस वैभव में

अत्यन्त दयनीय मनःस्थिति में रह रहे थे। नयी पत्नी सीमा से बाहर खर्च करती थी तथा प्रायः बाबा साहब को उनके साथ कभी बम्बई, कभी नैनीताल कभी दिल्ली जाना पड़ता था। बाबा साहब अपनी भूल अनुभव कर रहे थे लेकिन अब हो ही क्या सकता था? इस पत्नी के लिए बम्बई में मलाबार पर एक कोठी बनवानी पड़ी थी जिसमें लाखों का खर्च हो गया था। इसलिए वे चाहते थे कि अपने सामने इन्दु और वामनराव के हिस्से अलग कर दें। पत्नी इन्दु को जायदाद में से कुछ भी देने की पक्षपाती नहीं थी। साथ ही वह अपना हिस्सा माँगा चाहती थी। यदि इन्दु को कुछ दिया ही जाना है तो वह वामनराव के आधे हिस्से में से ही दिया जाए। इसलिए हुआ यह कि उन्होंने अपनी पत्नी की कोई बात नहीं मानी और जायदाद के चार हिस्से कर दिये। अपने हिस्से में से उन्होंने यह इतना बड़ा महोत्सव सम्पन्न किया था। जहाँ अनेक सामन्तों ने तथा जनता ने हार्दिक योग दिया था वहाँ पत्नी ने कोई योग नहीं दिया बल्कि वे बम्बई चली गयीं। वामनराव के आने का प्रश्न ही नहीं उठता था। इन्दु अवश्य आयी थी। लेकिन वह पर्दे के बाहर कभी नहीं आयी। बाबा साहब ने इस सारे महोत्सव का भार इन्दु पर छोड़ दिया था। संभवतः बाबा साहब और इन्दु दोनों में से किसी को पता नहीं था कि इस सब में कितना व्यय हुआ। लेकिन इन्दु ने अपने पिता के मन को परख लिया था कि पिता अपने अन्तिम दिनों में कोई स्मरणीय काम कर जाना चाहते हैं और उनकी पुत्री होने के नाते उसे पूरा सहयोग देना है। चूंकि पत्नी ने अपनी असहमति ही नहीं बीतरागिता बता दी थी एकमात्र पुत्र को इस प्रकार के सामन्ती धार्मिक अपव्ययता में कोई रुचि नहीं हो सकती थी बाबा साहब की इस ऐकान्तिकता को पुत्री ने भलीभाँति समझ लिया था और वह अपने पिता की साध को जितना स्मरणीय बना सकती थी उतना संकल्पित होकर जुट गयी।

इस महोत्सव के बाद बाबा साहब इन्दु को छोड़ने काशी तक गये। इन्दु ने चलते समय अपनी ओर से एक सौ एक ब्राह्मणों को शास्त्रोक्त दान-दक्षिणा दी तथा कस्बे में एक संस्कृत पाठशाला का प्रबन्ध कर गयी। बाबा साहब कुछ दिनों काशीवास कर बम्बई गये और अपनी पत्नी के साथ कस्बे में लौटे। उसके साल-छह महीने बाद ही बाबा साहब की कोठी का गोपुर जो सबके लिए सदा खुला रहता था अब वह बन्द रहने लगा। दक्षिण वाली खिड़की के बुर्जी के पास एक आराम कुर्सी पर बाबा साहब अपने उसी पीताम्बर, बगलबन्दी

तथा त्रिपुण्ड में दिखते । लेकिन जो वर्ष और तेज चर्चा का विषय था वह अब नहीं था । बल्कि अब वे अत्यन्त वृद्ध लगते । श्रीधर बाबू के पिता कीर्तनिया जी को बाला साहब बहुत मानते थे इसलिए कभी-कभी वे ही उनके पास आया-जाया करते थे । बाकी के लोगों को उनके दीवान भी मिलने ही नहीं देते थे । क्रमशः उस कोठी की खिड़कियाँ बन्द होती गयीं और एक दिन माघ के दिनों की बात है माघ नहाने के लिए कुछ लोग सबेरे-सबेरे तालाब की ओर जा रहे थे उन्होंने देखा कि बुर्जी में एक बड़ी सी लैम्प जल रही है । बाला साहब उसी अपनी आराम कुर्सी पर बैठे हुए हैं । और एकदम उन्होंने अपना दुशाला फेंका तथा वहीं से छलाँग लगायी । देखने वाले एक क्षण का तो सन्नाटे में आ गये । क्षण भर में ही हलचल मच गयी । देखते-देखते कस्बा जाग गया और हजारों की संख्या में सब उस अमराई और बाँध पर एकत्र हो गये । अजीब दुःख क्षोभ परिताप लोगों के चेहरों पर लिखा हुआ था । इस घटना को लेकर कानाफूसी तक करने का किसी को साहस नहीं हो रहा था । पुलिस आयी । छावनी की फौजी पुलिस भी आयी । कानूनी रिपोर्ट के बाद पंचेटा और काशी खबर कर दी गयी । शवदाह, रोकने की बात उठी ताकि कोई आ जाए । लेकिन गाँववालों ने इसे उचित नहीं बताया । और ब्राह्मणों ने ही अर्थी उठाने से लेकर शवदाह तक का कार्य सम्पन्न किया ।

आज कई रविवार के बाद श्रीधर बाबू तालाब नहाने आये थे। छतरी पर इस समय सारस का एक जोड़ा कहीं से उड़कर धूप खा रहा था। दिन खुल आया था। पिछले दिनों भारी वर्षा हुई थी इस कारण तालाब में पानी बढ़ गया था। बड़ी ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं। बाबा साहब की कोठी के गुम्बदों की परछाईं लहरों में टूट पड़ रही थीं। अनेक दिनों के बाद श्रीधर बाबू को बाबा साहब की याद हो आयी। यह तो ठीक नहीं बता सकते कि कब वे पहली बार वहाँ गये लेकिन वे अपनी बचपन की स्मृति में से इस कोठी को अलग नहीं कर सकते थे। अपने पिता के साथ बहुत बचपन में वे इस कोठी में आया करते थे। और उसके बाद तो वे इतनी बार गये हैं कि यह कोठी जैसे उनके जीवन का अविभाज्य अंग हो।

सिर उठाकर उन्होंने चारों देखा। तालाब के पूर्वी सिरे पर उज्जैन के एक बोहरा सेठ का बगीचा पहाड़ की तलहटी में बसा था जहाँ से मोरों का चीखना आ रहा था।

अभी नहाने वालों की भीड़ की शुरुआत ही थी। थोड़ी ही देर में सारे

घाट भर जाएँगे। बचपन से वे इसी तरह की भीड़ यहाँ देखते आये हैं। जब वे बच्चे थे तब कभी-कभी पिता जी के साथ या दादा के साथ आते थे। कैसे एक-एक दिन सरकता गया। कितने पुराने लोग जो यहाँ नहाने आते थे वे इसी श्मशान घाट पर आकर दाहित होकर चले गये। सहसा दाहित होने की बात दूर से 'राम नाम सत्य है' की आवाज से याद हो आयी। आज फिर कोई अन्तिम बार नहाकर सदा के लिए चला जाएगा। श्मशान का टिनशेड रोज की तरह आज भी उजाड़ खाली-खाली सा खड़ा था। अर्थी अब बाँध पर दिखायी दे रही थी। किसी महिला की थी। उन्होंने अपने कपड़े निकाले और तालाब में कूद पड़े। पानी एकदम ठंडा था। पहले तो वे घबड़ाये लेकिन अब तैरते हुए मुक्त लग रहा था। बाँहों से लहरें काटते एक अजीब तृप्ति मिल रही थी। चारों ओर कितना जल फैला हुआ था जिसे उनकी बाँहें और सीना ठेल रहे थे। तट पीछे छूटता जा रहा था। तट पर आने वालों की तथा नहाने वालों की रंगबिरंगी भीड़ थी। छतरी दूर से जितनी छोटी लगती थी उतनी छोटी वह थी नहीं। तालाब का पानी गहरा होता जा रहा था। करीब एक मील वे तैर आये थे। अभी भी छतरी एक मील से कम दूर नहीं थी। उन्होंने तैरना रोककर एक बार तट की ओर देखा। तट पर लोग रेंगते हुए दिख रहे थे। लोगों के बोलने की, डाकने की आवाज पानी पर उड़ती हुई आ रही थी। सूखती हुई धोतियाँ कागज की पट्टियाँ लग रही थीं। बाला साहब की कोठी खिड़कियाँ और गुम्बद सावन की धुली धूप में बहुत अच्छे लग रहे थे। अमराई वाला परकोटा गिर गया था। जिसके भग्नावशेष दिख रहे थे। इस अमराई के साथ उनकी कितनी स्मृति थी। इन्दु दीदी याद हो आयीं।

श्रीधर बाबू से कोई दस वर्ष आयु में बड़ी इन्दु को वे दीदी कहते थे। चूँकि वामनराव तो अक्सर 'मेयो कालेज' में पढ़ते थे, घर में कोई दूसरा था नहीं। पिता के साथ कभी-कभी छोटे श्रीधर बाबू घर में आया करते थे। इनसे पर्दे का प्रश्न ही नहीं उठता था। इन्दु तब श्रीधर बाबू की अभिभाविका

मन मर्जी यह दोनों को ही पता नहीं। अब आये दिन श्रीधर बाबू के लिए कोठी से बुलाया जाने लगा। स्कूल से प्राय वे सीधे कोठी ही पहुँच जाते। स्कूल का बस्ता कंधे पर टाँगे जब वे कोठी में प्रवेशते होते तब बाबा साहब या तो अपनी बग्घी में कहीं जाने को होते या फिर वे अपने बड़े हाल में बैठे हुए कुछ लिखते-पढ़ते होते। इन्दु की सारी शिक्षा वे अपनी देख-रेख में ही करवाया करते थे। स्वय बाबा साहब को घुड़सवारी संगीत इतिहास और गणित में बहुत रुचि थी। उन्होंने अपने यहाँ जाने कितने भारत भर के प्रसिद्ध संगीतज्ञों को कई बार बुलवाया और कुछ को आश्रय भी दिया। उन्हें वीणा प्रिय थी जिसे उन्होंने एक कर्नाटक वादक से विशेष रूप से सीखा था। वे अपने जीवन काल में भारतीय राग-रागनियों पर एक विशाल ग्रन्थ तैयार कर रहे थे। उनका यह संगीत प्रेम इन्दु में मुखरित हुआ था। इन्दु को सिखाने के लिए प्राय उस्ताद लोग देवास इन्दौर और बड़ौदा से आते थे तथा महीनों कोठी में रहा करते थे। स्कूली बस्ता कंधे पर टाँगे श्रीधर को देख कर इन्दु ताली बजा कर हँसते हुए स्वागत करती। दौड़कर बस्ता कंधे से उतार पास की टेबल पर रख दोनों आपस में हाथ पकड़े इन्दु के कमरे की ओर बढ़ जाते। सबसे पहले नाश्ता करवाया जाता। उसके बाद या तो एक घोड़े वाली फिटन में बैठकर वे कोप घूमने चले जाते या फिर कमरे में सामने वाली छत पर खड़े होकर तालाब कितना गहरा है कौन पक्षी कितना ऊँचा उड़ सकता है जल कर मर जाने में सुख है या गाड़े जाने में—ऐसी जाने कितनी ही बातें इन्दु करती और श्रीधर एक अच्छे आज्ञाकारी श्रोता के रूप में सुनता। इसके बाद इन्दु के उस्ताद संगीत सिखाने आ जाते और श्रीधर अपने घर चला आता।

तैरते हुए वे छतरी के एकदम पास आ गये। छतरी के गुम्बद में किसी पाखी ने घोंसला बना रखा था। सम्भवत कबूतर का हो। वे काफी थक गये थे। छतरी पर चढ़कर वे हाँफने लगे। आकाश में बादल घिरे थे। हवा एकदम थम चुकी थी। दूर घोबियों की 'छीयो छीयो' या किसी की भूली भटकी आव

का स्वर सुनायी पड़ जाता। पूरब की ओर मेघ घने झुक आये थे। यहाँ तक कि कुछ बादल तो पहाड़ के शिखर पर भी उतर आये थे। तेजी से बादल धुएँ से बरसते इधर आने लगे। आती हुई बूँदें तालाब पर सरती हुई आवाज कर रही थीं। हल्का शान्त जल इस सिरसिराहट से भर उठा। और देखते-देखते पानी तेज हो गया। वे छतरी में आकर सिमट कर बैठ गये। तट पर लोगों में भाग दौड़ मची हुई थी। कुछ ही देर में तट पर कोई नहीं रहा। या तो लोग झुण्ड बनाकर किसी सघन छतनारे गाछ के नीचे सिमट आये थे या देवस्थानों में छिप गये थे या फिर स्नानाघाट वाले टिनशेड में खड़े थे। थोड़ी देर पहले जो वर्षा आयी थी अब वह चिता बन कर बस रही थी। बरसते पानी के घटाटोप में सारे किनारे छुप गये थे। केवल बरसता जल तेजी से बरसता जा रहा था। वे छतरी के एक खम्भे की आड़ में खड़े हो हल्के भीग रहे थे। सहसा उन्हें याद आया कि वे अपने सूखे कपड़े तो घाट पर सूखे ही छोड़ आये थे। बूँदें और तेज हो गयी थीं जो उनके शरीर पर, मुँह पर तेजी से बौछार कर रही थीं। वे जान रहे थे कि आज वे जरूर ही सर्दी खा जायेंगे लेकिन इससे क्या, और अब क्या हो सकता है। पानी भीनी तेज फुहारों में गिर रहा था।

आज इस तरह वे वर्षों बाद भीग रहे थे। सम्भवतः पहली बार इस तरह वे इन्दु के साथ भीगे थे। तब वे दस वर्ष के रहे होंगे और इन्दु बीस वर्ष की पूर्ण युवती हो चुकी थी। उन दिनों रेल बन रही थी। मीलों तक लाम रेल की पटरियाँ डालने का काम दिन-रात किया करते। ट्रालियों पर सुपरवाइजर बाबू लोग लाल-लाल झंडियाँ फहराते हुए पटरियों की समानान्तरता जाँचा करते। इस रेल के लाने में बाबा साहब का भी बहुत बड़ा हाथ था। छावनी और तालाब के बीच मीलों तक बाबा साहब के खेत फैले थे। उन्हीं में से जमीन की लम्बी पट्टी उन्होंने रेल के लिए दी थी। प्रायः वे किसी ट्राली पर बैठकर घूमने चले जाया करते थे।

एक दिन श्रीधर को लेकर इन्दु भी एक ट्राली पर घूमने गयी थी। दो कुली ट्राली को दौड़ाते और फिर पीछे बैठ जाते। इन्दु और श्रीधर काफी दूर तक निकल आये। यही आषाढ़-श्रावण के दिन थे। लौटते में पानी ने घेर लिया और उसके बाद तो रास्ते भर वे तरबतर ही आये। साँझ पड़े देर भी हो गयी थी और फिर बादलों के कारण बाकी का शेष प्रकाश भी डूब चुका था। तेज बौछारों में भीगती इन्दु बार-बार स्वयं भी काँप रही थी। और काँपते श्रीधर को अपने से सटाये थी। दोनों ही सटे से एक दूसरे

के तन की गर्मी अनुभव कर रहे थे। तेज बौछारों को एक हाथ से पोंछते हुए उस वर्षा-संध्या में श्रीधर ने देखा कि इन्दु पुरइन का सब से बड़ा पात रूप रही थी। वह खूब खिलखिलाकर हँस रही थी। मराठी साड़ी का एक पल्लू अपनी धारीदार गोलाई में श्रीधर को समेटे हुए था। बुढ़ियों को इस भीगती 'रानी बिटिया' की बहुत चिन्ता हो रही थी इसलिए वे सपाटे से ट्राली दौड़ा रहे थे उसके बाद गैस-रोशनी में बनते स्टेशन का प्रकाश दिखलायी देने लगा। इन्दु पता नहीं किस धुन में लेकिन वह गुनगुनाती जा रही थी—रिमझिम बरसत नयन हमारे—दौड़ती हुई ट्राली के साथ जैसे वर्षा भी भाग रही थी पेड़ भाग रहे थे और पहली बार इन्दु के पास सटे बैठकर श्रीधर का मन भी न जाने कहाँ भाग रहा था जैसे एकाकी सारस सहसा खुले आकाश में वर्षा से घिर जाए और तब वह अपने पंखों को अनजान दिशा में चपेटे सहता हुआ भगाने लगे। चारों ओर भीगती दिशाएँ हों। कोसों कोई गाछ न हो। और तब उस नील वर्षा के अरवे रहस्य को चीर कर कोई गाता हो। बस कोई एक गान!! जिसे केवल वह एकान्त सारस ही सुन रहा हो। वे वैसे ही भीगते स्टेशन पहुँचे थे। वहाँ फिटन वाला बहुत परेशान दिखायी दिया।

आज वह इन्दु दीदी पता नहीं कहाँ है? काशी में है। विधवा है। काशी वास कर रही है। आज इस सारी बात को भी लगभग पन्द्रह बरस हो गये। कदाचित उसी वर्ष जाड़ों में इन्दु ब्याह दी गयी थी।

ध्यान टूटा। वर्षा अभी भी हो रही थी। वे उसी वर्षा में छतरी से जूझे। वैसे ही मुँह पर बौछारें लग रही थीं। अन्तर था तो यही कि इस समय वे अनन्त जन से घिरे, संगीतहीन एकान्त से घिरे हैं। हाँ वर्षा का एक नीला शोर उनके चारों ओर बरस रहा था और वे बाँहों से पानी काटते बढ़ रहे थे।

दो दिनों तक श्रीधर बाबू स्कूल न जा सके। उस दिन का भीगना कई दृष्टियों से उनके लिए ठीक रहा। वे वर्षों से कभी घर में शान्त हो कर नहीं बैठे थे। इन दो दिनों में दिन और रात की सभी अवस्थाओं में घर कैसे लगता है, देख सके। उन्हें याद आया कि जब वे बचपन में इन्दु दीदी के साथ भीगे थे तो करीब सात रोज तक तेज बुखार में पड़े रहे थे। उनकी माँ रात रात भर उनके सिरहाने बैठी रहती थीं। बाद में लोगों ने बताया था कि उन्हें हल्का सन्निपात का भी दौरा हो गया था। बेचारी इन्दु भी प्रायः दिन में घंटे दो-घंटे को आ जाती थी। सन्निपात में श्रीधर जाने क्या-क्या और कौन कौन सी असम्बद्ध बातें बकते थे कि माँ को पागलपन का शक होने लगा था। इसलिए ओझा आदि भी बुलाये गये थे। लेकिन उस समय कुछ नहीं हुआ था। श्रीधर बराबर सन्निपात में सारस मगोन और सावन की एक साँझ जिसमें दिशाएँ तक मीठी फुहारों में डूबी हों, भागते पेड़ों की लम्बी कतार, हँसते धुले दाँत आकाश में गोरी धूप बनकर फैल जाते हैं—ऐसी ही बातें बकते। पूरे सात दिन के बाद जब बुखार उतरा तब कहीं माँ ने कथा की अपनी मनौती

का असर देखा। ज्वर की गर्मी में श्रीधर को दूर-दूर तक रेल की पटरियाँ इतनी दूर इतनी दूर तक बिछी दिखतीं कि जैसे दिशाओं में रेल की पटरियाँ ही पटरियाँ बिछी हों। अनेक बार इस तरह बड़बड़ाते देख कर इन्दु भय से पीली पड़ जाती थी। लेकिन जिस दिन श्रीधर का बुखार कम हुआ और उसका बड़बड़ाना कम हुआ उसने सन्तोष की साँस ली।

आज वर्षों बाद साधारण सा ताप और सिर दर्द था लेकिन एक तो पत्नी ने नहीं जाने दिया और दूसरे वे भी बहुत कुछ उस अतीत को पहली बार आज की दृष्टि से देख रहे थे जिसे उन्होंने मात्र एक घटना समझ कर छोड़ रखा था। जैसे आज तक और भी बहुत सी बातें साधारण बातें उनके जीवन में हुई थीं वैसे ही इन्दु वाली भी वे मानते रहे। बस वह साधारण ही मानी जानी चाहिए, जैसे कि आज तक मानी जाती रही है। लेकिन आज उसे वे मात्र साधारण नहीं समझ सकते।

१

वे उनके शैशव के दिन थे। आज जैसे ही वे, तब भी शान्त एवम् असंपृक्त व्यक्ति थे। तब भले ही व्यक्ति न होकर बालक रहे हों लेकिन चंचल वे कभी न थे। आज वे उन विगत घटनाओं में एक ऐसा नैकट्य सम्बन्ध और मोह देख रहे थे जो उन्हें पहले कभी नहीं लगा था। इन्दु उनके लिए एक ऐसा नाम बन गया था जिसके द्वारा एक ऐसी भाषा के पृष्ठ खुल जाते जो उनकी अपनी नहीं है। और यदि है तो वह कम से कम इस जन्म की भाषा तो नहीं ही है। भीमर गंभीर थे जब कि इन्दु में गांभीर्य के साथ आवेग, आवेग भावुकता सभी कुछ थे। वह राग और विराग समान उद्वेग के साथ करती थी। इन्दु की सारी बातें भीमर अत्यन्त गंभीरता से सुनते लेकिन साथ ही वह कहीं और खोये भी रहते। प्रायः बाबा साहब के पुस्तकालय से इन्दु कोई पुस्तक लाकर भीमर को सुनाती। जिसे वह कितना कुछ समझ पाते वे यह बात दूसरी थी लेकिन जिस शान्तभाव से भीमर सुनते उसका प्रभाव इन्दु पर गहरा पड़ता था। दो एक बार ही ऐसा हुआ होगा लेकिन हुआ जरूर कि बीच में हुड़केवाली लालटेन रख कर इन्दु ने कभी रागों की उत्पत्ति के बारे में,

उनके स्वर विस्तार की व्यवस्थित नियोजना के बारे में कई किताबों में से पढ़ कर सुनाया था। या फिर इतिहास की पुस्तकें। आर्य कौन थे। वह मूल प्रदेश कहाँ है जहाँ से आर्य जाति चलकर मध्य एशिया के पठारों काकेशिया की घाटियों को लाँघती आर्यानाम (अर्थात ईरान) बसाती किस प्रकार हिमालय के अंचल तक पहुँची। आर्यों की यह सभ्यता की यात्रा श्रीधर को उस लैम्प की रोशनी में बड़ी रहस्यमय लगती। खिड़कियों के खुले पल्लों से फाल्गुन की शीतोष्ण हवाएँ झिरझिर आती होतीं। खुला फाल्गुनी आकाश तारों में झिलमिलाता रहता। इन्दु के कमरे में कुछ तैलचित्र लगे हुए थे। एक छवि उसकी माँ की भी थी। जरी के पाट की महाराष्ट्रीय साड़ी में वह नथ वाली महिला अप्रतिम सौन्दर्य की प्रतिमा कही जा सकती थी। अपनी माँ की छवि के सम्मुख इन्दु नित्य एक दीपक बालती जो प्रायः रात भर जलता रहता। दो चार समुद्र तट की छवियाँ भी फ्रेमित थीं।

इन्दु जाने क्या-क्या पढ़ कर श्रीधर को सुनाती होती। श्रीधर को आज विशेष तो स्मरण नहीं रहा कि वे कौन पुस्तकें थीं लेकिन कल्पना में उस 'नात्रे दम के कुबड़े द्वारा गिरजे के घंटे का बजाया जाना वे अनेक बार सुन चुके थे। जब कभी आज भी छावनी में वे गिरजे के घंटे की आवाज सुनते हैं उन्हें लगता है कि प्रत्येक गिरजे में घण्टे बजाने का काम कुबड़ा ही करता है। बचपन में तो वे नींद में भी जैसे देखते कि सैकड़ों घण्टे लटक रहे हैं और एक कुबड़ा उन्हें अपने पैरों से बजाये चला जा रहा है बजाये चला जा रहा है। इतना शोर, इतना शोर कि वे चीख पड़ते। आज वे घंटे समय के साथ दूर से दूर पर होते गये हैं। उसी प्रकार उनका शोर भी अत्यन्त क्षीणतर हो गया है। सृष्टि जो पहले एक गोल रहस्य के गुम्बद सी लगती थी अब खुल आयी है। वह गुम्बद भी नीचा हो गया है। अब भी सांझ तारा उगता है लेकिन वह गुप्त-प्रियमिलन का प्रतीक नहीं लगता। दुनिया जो कि पहले दादी की कहानी के राजकुमारों और सोने के हंसों से भरी लगती थी—कोई भूमि का एक टापू है जहाँ प्रत्येक साहसी जाता है और नागों से सुरक्षित तोते की गर्दन मरोड़ कर झील के उस दरवाजे पर पहुँच जाता है जो कि उस नीलम परी का उपवन है और बस फिर तो उस नीलम पंख वाली से ब्याह करना ही शेष रह जाता है। ऐसी काल्पनिक यात्राएँ कोठी के बरामदे पर खड़े-खड़े इन्दु के साथ अनेक बार की थीं। सामने का तालाब शाम की धूप में केसरिया हो जाता है। इन्दु जाने किस मनोलोक में रहती। श्रीधर को भी उत्साह होता लेकिन वह फिर भी

न खुली आँखों न बन्द आँखों सामने के तालाब और शिखरों को जैसे लाँघ नहीं पाता। हवाएँ अमराई में घूमती होतीं। फुनगियों पर पंख फड़फड़ाते पक्षी बैठने का यत्न करते होते। तालाब के बीच में छतरी के ऊपर कबूतरों के झुण्ड किल्लोलते सतरित होते। पहाड़ों के पीछे जाती रेल के इंजन का धुआँ पहाड़ों के ऊपर रेंगता सा लम्बा होता चला जाता और दूर कहीं सूनापन होता।

आज आकाश मेघाच्छन्न नहीं था । धूप एकदम बरसी पड़ रही थी । गुणवंती और सुशीला दोनों स्कूल गयी थीं । देवव्रत नीचे अपनी दादी के पास सो रहा था । सरो अभी-अभी उनके कपड़े बदल कर गरम पानी से हाथ-मुँह धुला वापस रामेश्वर पम्प के लिए चली गयी थी । आज उनके चारों ओर जैसे समय बिखरा पड़ा था । पूरा दिन अपनी सारी वेदनाओं के साथ । ढेर सी धूप और अनन्त महत् नीलाकाश । खिड़की की चौखट पर तकिये टिका कर भीतर बाबू बाहर गली में देखने लगे । लोग गली की कीचड़ से बचते हुए आ-जा रहे थे । सामने का मकान खाली पड़ा था । चाची का जोर जोर से बोलना दीवारों को चीर कर आ रहा था । बाकी चारों ओर अन्दर-बाहर निर्जन सा रहा था । वातावरण में सालन की विचित्र गंध मिली हुई थी । खिड़की से आती धूप का टुकड़ा फर्श पर खामोश बिल्ली की तरह बैठा हुआ दीवारों को पैंच देख रहा था और दीवारें प्रतिभालोकित थीं । बैठक की तरफ का दरवाजा खुला था । बैठक की छत में टँके कागज के फूल अपने-अपने रंगों में चमक रहे थे ।

एक अव्यक्त आशंका उन्हें घेरे थी । यदि विभाग उन्हें इतिहास में फेर

बन्ध न करने के कारण निकाल दे तो क्या होगा ? इस प्रश्न का उत्तर उन्हें नहीं मिल पा रहा था। यहाँ रह कर वे कुछ नहीं कर सकते लेकिन क्या कर सकते हैं सिवाय पढ़ने-पढ़ाने के ? वे और क्या कर सकते हैं ? सम्भव है उन्हें सजा देने के विचार से प्राइमरी स्कूल में भेज दें और साथ ही तबादला भी कर दें। बहरहाल ऐसी किसी भी स्थिति में वे अध्यापकी नहीं करेंगे। तब परिवार का क्या होगा ? कुटुम्ब की वास्तविकता तो स्पष्ट ही थी। पिता स्वयं ही वृद्ध हो चले हैं। भला ऐसी स्थिति में सरो पुत्रवती सुशीला और देवव्रत का क्या होगा ? लेकिन यह भी तो सम्भव है कि श्रीमन्त सरकार श्रीधर बाबू के इस निर्णय को उचित ही मान लें और कुछ भी न हो।

तभी सरो पथ्य लेकर आयी। भरे आलोक में कई दिनों बाद श्रीधर बाबू ने सरो को देखा। पहले गाल जो निकले पड़ते थे अब उनकी जगह गालों की हड्डियाँ हल्की दिखलायी दे रही थीं। ठोढ़ी की हरी गुदने की बिन्दी सरो के गौर वर्ण में खूब खिल आयी थी। बिना किनारे की सादी धोती में रंगहीन मोम सी सरो पास आकर खड़ी हो गयी।

—आप उठिए नहीं। मैं यहीं पथ्य के लिए पाट वगैरा ले आती हूँ।

और पथ्य के लिए उठने को तत्पर श्रीधर बाबू सरो के लिए कृतज्ञता से भर उठे जो उनकी छोटी सी छोटी सुविधा का ध्यान रखती है और बदले में उसके लिए क्या कर सके हैं ?

एक पाट पर पथ्य रखकर वह श्रीधर बाबू के हाथ धुलाने लगी।

—सब लोग खा-पी चुके ?

—अभी कहाँ ?

—स्कूल से कोई डाक दे गया ?

—नहीं तो।

—सरो ! तुमने पूछा नहीं कि मैं क्यों भीगता रहा ?

—भला यह भी कोई पूछने की बात है ? छतरी तक तैरते गये और वहीं पानी ने घेर लिया। क्या इतनी मोटी बात भी आपकी सरो नहीं समझेगी ?

—नहीं यह बात नहीं है।

—तो फिर कौन सी बात है ? तो क्या छतरी पर नहीं भीगे ?

—नहीं भीगा तो छतरी पर ही था।

—तब क्या ?

—तब बड़ी जोर से पानी आया।

—और आप भीग गये हैं न ? लेकिन आप पानी से भीगे यह नहीं मालूम था। और सरो बड़ी जोरों से हँस दी। श्रीधर बाबू काफ़ी देर बाद समझ सके कि इस नारी ने तर्क द्वारा सिद्ध कर दिया कि मैं यह बात बताना नहीं चाहता हूँ इसलिए पानी से भीगने वाली बात पर ही मज़ाक कर बात टाल दी गयी थी।

—सुनिए क्या इतिहास में न बदलने की बात पर आप इतने चिन्तित रहे हैं कि आपको यह तक ध्यान नहीं रहा कि आप बरसात में तालाब नहाने गये और फिर बरसों बाद छतरी तक अकेले तैर कर जाना पड़ा। उसके बाद वहीं इतनी देर बैठे रहे कि कितनी धूप कब चली गयी बादल कब घिर आये और कब वृष्टि आरम्भ हुई, किसी बात का ध्यान ही नहीं रहा ? क्या आप बहुत चिन्तित हैं ? कहीं मेरे या बच्चों के लिए इतनी चिन्ता तो नहीं कर रहे हैं कि अपना भी ध्यान रखना भूल जाते हों ?

एक साथ सरो इतने सतर्क एवम् सटीक बोली कि श्रीधर बाबू के निकट अपना व्यवहार जो बिल्कुल स्पष्ट नहीं था स्पष्ट हो गया। सच ही इन दिनों तालाब में बरसाती पानी होता है और कोई भी अधिक देर नहीं नहाता। दूसरे, वे बरसों बाद छतरी तक तैर कर गये थे जिसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। उनकी अवचेतन-चिन्ता को सरो इतने सहज रूप से बता देगी इसकी कल्पना उन्हें नहीं थी। व सरो को अत्यन्त सीधी नारी मानते रहे हैं जिसे लोक जीवन का मिथ्याचार नहीं आता जो किसी पर क्रोध नहीं कर सकती उस पर कोई कितना ही लाद दे वह कभी भार के वहन से नहीं टूटेगी। इसलिए अनेक गृहस्थियों का भार उस अकेली नारी पर है। जबकि दूसरी बहुओं ने अपने कुल और पति की कमाई पर दम्भ किया था। वह चाहती तो स्वयं भी अपने ज्ञान का दंभ कर सकती थी। पिता भी अच्छे विद्वान पुरुष हैं। लेकिन दूसरों के दंभ को उसने नतमस्तक होकर वास्तविक मानकर अपने को हेठा हो जाने दिया। ऐसी चुप रहने वाली नारी किस प्रकार विभिन्न घटनाओं को जोड़कर सही निर्णयों पर आ जाती है इसका प्रमाण श्रीधर बाबू को मिल गया।

श्रीधर बाबू खा चुके थे। बर्तन समेट, पीढ़ा उठा सरो ने हाथ धोये। पति को लौंग-सुपारी देकर नीचे चली गयी। श्रीधर बाबू अपनी वर्तमान अनिश्चय की स्थिति का कोई मार्ग जानने को उत्सुक हो उठे। नीचे दरवाजे की कुण्डी खोलने की आवाज़ हुई। पिता जी थे। देवव्रत को खेलते देखकर उन्होंने उसी को पुकारा

—देबू! अरे भैया अकेला क्या कर रहा है ? कहाँ गये सब ?

—सब सो रहे हैं।
बसन्त के इस सीधे से उत्तर को सुनकर श्रीनाथ ठाकुर को हँसी आ गयी।
—अरी दोपहर में भी कोई सोता है ?
और उन्होंने फिर श्रीमोहन की बेटी कान्ता को पुकारा। पिता श्रीनाथ ठाकुर की यह आदत है कि वे घर में घुसते ही किसी बच्चे को पहले पुकारेंगे। जिसका अर्थ यह होता है कि यदि बहुओं में या और कोई ऐसे-वैसे बैठा हो तो सावधान हो जाए। बहू-बेटी वाले घर में हमेशा या तो खाँसकर या पुकार कर ही प्रवेशना चाहिए, यह पिता श्रीनाथ ठाकुर का तर्क है और जिसे कुटुम्ब का प्रत्येक सदस्य जानता है। पिता का नियम इतना सधा हुआ है कि उनके शब्दों से आप पहचान सकते हैं कि वे घर में हैं तो कहाँ हैं ? घर से बाहर हैं तो कहाँ गये हैं ? खड़ाऊँ की आवाज से ही पहचाना जाता है कि वे या तो बाहर से लौटे हैं या फिर भोजन के बाद विश्राम रहे हैं।

पिता मन्दिर से लौटे थे। तब तक माँ की आवाज सुनायी दी। पिता माँ से श्रीधर बाबू की तबियत का हाल पूछ रहे थे। झूले के कड़ों की आवाज आ रही थी।
—सुना श्रीवल्लभ ने अपने तबादले की अर्जी दी है।
पिता ने माँ को समाचार देते हुए कहा।
—मुझ से तो कह रहा था कि उसे बड़ी जगह भेजा जा रहा है।
माँ ने अपनी सदा की निश्छलता से कहा।
—तुम भी कैसी हो। तुम अपने लड़कों को ही नहीं समझती ?
—अब दुनिया भर के ये सब छल-प्रपंच मेरी तो समझ में नहीं आते। होगा जिसे रहना हो रहे। नाक-भौं सिकोड़ कर भाई, किसी को रहने की जरूरत नहीं। यहाँ लोग समायें नहीं आएँ। किसी को यह घर पसन्द नहीं किसी को यहाँ देहात जैसा लगता है। एक महारानी जी को बिना नौकरों के नहीं बनता तो दूसरी को कुछ चाहिए। ठीक है भाई जब तक हमसे बन पड़ा किया। अब सब अपना-अपना सम्हालो। अकेली बेचारी मँझली बहू कहाँ तक लगती रहे ? इस घर में तो लोगों के मिजाज ही नहीं मिलते। लोग यहाँ रहते क्या हैं जैसे हम पर उपकार कर रहे हों। ना भाई उपकार करने की कोई जरूरत नहीं जिसको जाना हो जाए। हम किसी के सहारे नहीं हैं।

तब तक शायद सरो ने दरवाजे की कुण्डी खटकायी। ससुर या किसी बड़े को बुलाने का यह संकेत था।

—चलो अब भोजन तैयार है।
माँ ने पिता को आदेश दिया।
—लेकिन तुम इतनी सी बात पर इतना क्यों बिगड़ रही हो ?
पिता ने घड़े में से पानी लेकर कुल्ला करते हुए कहा।
—बिगड़ने की बात नहीं है लेकिन कुटुम्ब-परिवार में कैसे रहा जाता है यह भी लोगों को मालूम होना चाहिए। एक खटता रहे लेकिन दूसरे को अपने आराम से ही फुर्सत नहीं। मझली बहू ! तुम से कह दिया न तुम जाकर उसके पास बैठो। उसकी तबियत खराब है तब भी तुम चूल्हे-चौके में लगी हुई हो ?

शायद पिता भोजन करने चले गये और माँ भी उनके साथ ही। नीचे एकदम शांति हो गयी। पता नहीं माँ आज क्यों इतना बिगड़ रही थीं। वर्ना वे कभी नहीं बिगड़तीं। सम्भव है माँ ने भाभी से या डाक्टर की बहू से चूल्हे का काम सम्हालने के लिए कहा हो क्योंकि काम करते हुए सरो पति की तीमारदारी ठीक से नहीं कर सकती। और उन दोनों ने कोई बहाना बना दिया हो। अपनी अवहेलना देखकर उन्हें क्रोध आ गया हो। सहज है। अभी श्रीधर बाबू यही सब सोच ही रहे थे कि सरो ने प्रवेश किया। उसकी आँखें एकदम लाल थीं। वह धोती में मुँह छुपाये तेजी से बैठक की ओर चली गयी। श्रीधर बाबू सहसा समझ नहीं सके कि पिता अभी तो रसोईघर गये हैं भोजन करने और सरो वहाँ से आ गयी।
—क्यों तुम अभी क्यों आयीं ?
कोई उत्तर नहीं।
—सरो ! क्या बात है ?
कोई उत्तर नहीं। कुछ झुंझलाकर श्रीधर बाबू ने फिर पूछा
—सरो ! मैं तुम से कुछ पूछ रहा हूँ।
एक हल्की क्षीण सुबुक सुनायी दी। तो क्या सरो रो रही है ? लेकिन अभी माँ सरो पर तो नहीं बिगड़ रही थीं। फिर क्या बात हुई ?
—सुनो यहाँ आओ क्या बात हुई ?
केवल सुबुक। कोई उत्तर नहीं।
श्रीधर बाबू चिन्ता में उठे। आशंका तो नहीं थी लेकिन एक विचार तो आया ही कि कहीं सरो ने माँ या पिताजी को कोई ऐसा-वैसा उत्तर तो नहीं दे दिया ? और माँ तब बिगड़ी हों और सरो तब यहाँ चली आयी हो।

श्रीधर बाबू ने देखा कि सरो गाल तकिये में सिर दबाये सुबुक रही है। वे उसके पास पहुँचे। सुबुक के कारण काँपती पीठ पर श्रीधर बाबू ने हाथ रखा।

—क्या बात हुई सरो ? बात तो बताओ।

—कुछ नहीं।

वैसे ही मुँह दाबे भरी भरी आवाज में उत्तर दिया।

—यह नहीं हो सकता। बात कुछ जरूर है। क्या माँ ने कुछ कहा ? या तुमने उन्हें कुछ कह दिया ?

तब तक उस कमरे से इधर आती हुई पैरों की आहट आ रही थी। सरो भी सम्हली। दरवाजे पर माँ खड़ी थीं।

—मँझली ने मुझे कुछ नहीं कहा श्रीधर ! बल्कि मैंने ही इससे कहा कि जब श्रीधर की तबियत खराब है तो चूल्हे चौके का काम छोड़ कर अभी क्यों नहीं जाती ? जब महारानियों को फुर्सत होगी तो लेंगी और सम्हालेंगी चौका चूल्हा। और एक दिन चौका-चूल्हा सम्हाल ही लिया तो कौन रूप घिस जाएगा रानियों का ? बस इस पर बड़ी अपने कमरे से निकली और न ससुर का लिहाज न सास का। लगी फूटी हाँडी सी बड़बड़ाने इस पर। यह बेचारी गाय। आज तक किसी को जवाब दिया जो इन्हीं जेठानी महारानी को देगी ? मैंने तो कह दिया कि या तो सब अपना-अपना काम बाँट लो नहीं तो कोई किसी की ठकुराई कहाँ तक सह सकता है ? अब मैंने इससे कहा कि चलो—तुम खा लो पहले। जिसको खाना होगा खा लेगा।

श्रीधर सकते में आ गये। दोपहर ढल चुकी थी। भाभी और बहू को अभी तक खाने की फुर्सत नहीं ? बिना घर भर को खिलाये भला बनाने वाली कैसे खा सकती है ? रोज ही ऐसे भूखे रह कर सरो खटती है ? ठीक है यह बात उन्हें मालूम थी लेकिन इससे क्या ? वे चीख पड़ते यदि माँ सामने न होतीं। सरो सबेरे से देर रात ऐसे ही बस ऐसे ही खटती रहती है ? उस पर भी किसी को दर्द नहीं ? दिन भर पलंग पर बैठकर पान खाते हुए, हुकुम चलाते हुए भाभी को यह दर्द नहीं कि अब तो तीसरा पहर हो गया। खुद तो जाने क्या-क्या दवाइयों के नाम खाती रहती हैं तो भूख नहीं लगती लेकिन हम खटके की चाकर को तो भूख लग सकती है न ? उन्हें हल्का सा चक्कर आ गया। माँ ने दौड़ कर श्रीधर को सम्हाल लिया।

बात जैसे आयी-गयी सी हो गयी। सब भूल गए कि श्रीधर बाबू के इतिहास पर शिक्षा विभाग ने कभी जवाब-तलब किया था। वही रोज की तरह श्रीधर बाबू स्कूल जाते। बस कहीं अफसोस था तो यही कि वे सरस्वती के लिए कोई विशेष सुविधा उपलब्ध नहीं कर सके। छोटे भाई डाक्टर श्रीवल्लभ ठाकुर ने अपना तबादला करवा लिया था और इस बहाने वह अपने को इस कौटुम्बिकता के जंजाल से मुक्त कर सके थे। अब श्रीमोहन-पत्नी सावित्री के लिए घर में सामाजिक रहने के लिए कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं था इसलिए प्रायः पास-पड़ोस में वे अधिक रहने लगीं लेकिन सरस्वती के प्रति कटु व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया। श्रीधर बाबू के पास अब काफी समय रहता ही था ताकि लिखने पढ़ने का काम किया करें। इस बीच उन्हें इन्दु दीदी के बारे में जानने की काफी इच्छा रही लेकिन वे जो कुछ मालूम कर सके वह यही कि *वे निरन्तर तीर्थयात्रा करती रहती हैं और एक प्रकार से सारे सम्बन्धों से अपने को विरक्त कर चुकी हैं।*

श्रीधर बाबू को पता नहीं आजकल क्यों अतीत घेरता है। लगता कि

वे कोई महत्वपूर्ण सूत्र अनजाने ही पीछे छोड़ आये हैं जिसे उनका अवचेतन पाना चाहता है। लेकिन आज वे जहाँ खड़े हुए थे वहाँ से अतीत गुलकावली विषय की तरह नहीं लगता था जिसे आसानी से यदि न पा सकें तो कम से कम सोच तो सकते ही हैं। उन्होंने सचेत हो कर देखा कि सामने छावनी का पासो ग्राउंड दूर तक बसा गया है। जिसस सट सेण सुदूर दिशाओं तक कचरी के पेवस्यों से पट गये हैं। सूर्यास्त हो रहा था। लेकिन जाड़े की शाम और अँधेरा सूर्य डूबने की भी प्रतीक्षा नहीं करते। हल्का कुहरा शुरू आया था। कस्बे की तरफ धुआँ चादर और पतली तह में घिर था। इन सब के ऊपर एक अजीब सुहाना ठंडापन जो आँखों को हाथों का तथा पूरे तन को नहला रहा था। कालीमन्दिर वाली पहाड़ी की तलहटी में जाने कितना अमरा यहाँ अमरूद के बगीचे शरीफे के जंगल के जंगल खत्म हुए थे। नारायण बाबू और पेमेन बाबू दोनों ही दुर्गापाठ करने के लिए मन्दिर में रुक गये थे। कल से नवरात्रि आरम्भ हो रही थी। काली मंदिर में विशेष आयोजन प्रतिवर्ष की भाँति किया जा रहा था। काली मंदिर के इस शिखर से चारों तरफ का दृश्य दूर-दूर तक दिखलायी देता है। दिन में ट्रेन का धुआँ साँप के आकार में मीलियों मील दूर से दिखलायी पड़ता है। जाड़ों की दुपहर में तालाब एक नीला फर्श सा लगता है। शहर जाने वाली सड़क किला और वाल्याही पुल यहाँ से साफ नहीं दिखते क्योंकि वे एकदम तलहटी में पड़ते हैं।

धीवर बाबू का शैशव के वे दिन याद हो आये जब वे कभी-कभी घर से भाग कर यहाँ इसी छत की तरह निकली बड़ी सी चट्टान पर आकर धूप में लेट जाया करते थे और मन में सोचते थे कि तिब्बत को दुनिया की छत कहा जाता है और वे दुनिया की छत पर लेटे हुए हैं। प्रायः नारायण बाबू इन तरह की साहसिकताओं में साथी रहे हैं। सच्चाई तो यह है कि नारायण बाबू का साथ वे देते थे। कच्चे अमरूद और मरीफों से गिलहरियों तथा गिरगिटों का निशाना लगाया जाता। किसका पत्थर कितनी दूर पानी पर या कितना ऊँचा जाता है इसकी शर्त होती। लेकिन इस तरह की साहसिकताओं की अधिक स्मृति धीवर बाबू के पास नहीं थी। सम्भव था कि इन्दु दीदी न मिली होतीं तो वे कुछ दूसरे भी हो सकते थे।

आज जब भीमर बाबू इन्दु दीदी के साथ के वे दिन स्मरण करते हैं तो वे स्पष्ट नहीं कह सकते कि दोनों के बीच क्या समानता थी। किसी भी बात की समानता नहीं कही जा सकती थी। आयु, पद प्रतिष्ठा कुछ कुछ भी तो नहीं। वे ठीक से नहीं कह सकते कि इन्दु दीदी से पहले-पहल कब भेंट हुई। लेकिन जो याद पड़ता है वह यही कि कभी-कभी किसी पूजा-पर्व पर एक छोटी सुन्दर सी पालकी में हल्की धारादार भरी आँखों की एक लड़की मराठी पोलका और पेटीकोट में दिखती। बाला साहब की राजकुमारी सी कन्या को भला कौन नहीं जानता था।

एक दिन शायद वे अपने पिता के पास बैठे हुए थे। श्रावण के अधिक मास के दिन थे। ठाकुर जी की रथयात्रा की तैयारी थी। इन्दु उनके पास आकर चुप बैठ गयी। कोई पद चल रहा था। उनके हाथों में करताल थी। करताल से ध्यान हटाकर तिरछे से वे उस लड़की की ओर बार-बार देखने लगे। पता नहीं कब वे बेताल होकर करताल बजाने लगे। पिता ने वैसे ही पद गाते हुए दो एक बार घूरा भी। उसके बाद कुहनी से उन्होंने करताल रोक दी। तब कहीं तन्द्रा टूटी। इन्दु करताल वाली मूर्खता समझ गयी थी। जैसे ही वे मन्दिर से बाहर आये। इन्दु ने सहसा पीछे से कमीज खींचते हुए कहा —क्यों करताल भी नहीं आती? कीर्तनिया जी के लड़के को ताल का भी ज्ञान नहीं? और वह जोर से हँस दी। हतप्रभ से वे खिसिया गये। क्योंकि दूर खड़ा दामोदर जगमड़िया खींसे निपोर कर चिढ़ा रहा था। इन्दु पालकी पर चढ़ते हुए स्वस्थ टेढ़ा मुँह बना कर चिढ़ाते हुए बोली
—बुद्धू ! ताल का भी ज्ञान नहीं।
भीमर बाबू को इस के पूर्व की घटना याद नहीं पड़ती। सम्भव है कोई हो ही। आज तो जो याद है वह यही है। इसके बाद शायद फिर कई दिनों तक नहीं देखा। दूसरी बार का मिलना उन्हें ठीक तरह से याद है।

श्राद्धपक्ष के दिन थे।
बाला साहब के यहाँ श्राद्ध था। बड़ा भारी ब्रह्मभोज दिया गया था। सभी कीर्तनी और दूसरे ब्राह्मण आमंत्रित थे। बचपन में जिस कोठी को दूर से देखा था आज उस कोठी में पहली बार लाया गया था। भीमर ने इसके पूर्व कभी

इतना वैभव नहीं देखा था । बाला साहब के पुस्तकालय में सब लोग बैठे हुए थे । आगंतुकों में बड़े-छोटे सभी थे । सम्भवतः आने वालों में सभी कोठी के अन्दर बहुत कम आते रहे होंगे । दीवारों पर टँगे तैलचित्रों को लोग ध्यान से देख रहे थे । खिड़कियों और दरवाजों के ऊपर हरिण और बारहसिंघों के सिर व सींग लगे हुए थे । कमरे के बीचोबीच एक बड़ी सी अण्डाकार टेबल थी । तालाब की ओर की बड़ी खिड़की की तरफ एक बारजा था जहाँ सुन्दर सी एक चौकी रखी थी, जिस पर गद्दी-तकिये लगे हुए थे तथा बाघम्बर बिछा था । बाँयें हाथ एक बड़ा सा पर्दा पड़ा था । जिसे उठाकर बाला साहब ने प्रवेश किया । सब ने उन्हें प्रणाम किया । प्रतिनमस्कार कर वे उस चौकी पर बैठ गये । थोड़ी देर बाद एक नौकर आया और श्रीधर को अन्दर लिवा ले गया ।

नौकर आगे-आगे चलता रहा । कई कमरे और दालान पार कर जब वे कोठी के उत्तरी अन्तिम सिरे पर पहुँचे तब श्रीधर ने देखा कि सामने वही लड़की खड़ी है जिसने दरवाजा ठीक से न बता सकने पर उन्हें 'बुद्धू' कहा था ।

आज वह लड़की उस दिन की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी लग रही थी । लड़की ने मराठी ढंग से जूड़ा तथा परिधान धारे थे । क्षण भर को श्रीधर आश्चर्य खड़े रहे । वह उसी तरह खिलखिला पड़ी

—बुद्धू !!

और श्रीधर भी इस बार हँस दिए ।

—लेकिन तुम क्या हो ?

श्रीधर के इस प्रश्न पर इन्दु ने बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और लगभग घसीटते हुए बोली

—दीदी !!

और उधर भाद्रपद की धूप कमरे की खिड़कियों से खूब मारी आ रही थी । यह कमरा लगभग एकान्त में ही था । इसकी खिड़कियों से तालाब पूरा दिखता था तथा अमराई का भी बहुत-सा भाग । अहाते की पक्की दीवार एक खिड़की से दिखती थी जिस पर कि एक बड़ा सा वटवृक्ष अपनी विशाल शाखें फैलाये इस समय मौन खड़ा था । कमरे में एक सुन्दर सा पलँग था जिसकी मसहरी ऊपर चढ़ी हुई थी । कोने में तानपूरा रखा था । खिड़कियों के पास एक मरकत मणि टेबल और वहीं ही एक कुर्सी । टेबल पर कुछ किताबें कलमदान तथा रुई वाली कापदान । बीच में बैठक के लिए एक बड़ी सी चौकी जिस पर गाव-

तकिये और कालीन बिछा था। कमरे में सात आसन बिछी थी। दी
पर सिर्फ़ तीन लगे हुए थे तथा कुछ फ़ोटो।

बीच की चौकी पर लगभग ठेलते हुए बिठला कर इन्दु कमरे से च
गयी। श्रीधर की समझ में कुछ नहीं आया। तभी इन्दु लौटी और उस
गोदी में एक खरगोश था। खरगोश को गोदी में बिठलाकर वह हाथ फेरते हु
श्रीधर की ओर फिर सम्मुख हुई

—तुम्हारा नाम श्रीधर है न ?

—जी हाँ।

—जी हाँ नहीं सिर्फ़ हाँ। तुम बिल्कुल बुद्धू ही हो। कोई बड़ी बहन स भी ह
कहता है ?

—नहीं।

—तो फिर ?

—हाँ !!

और बस तो दोनों हँस दिये थे लेकिन इन्दु अधिक जोरों से।

—तुम पढ़ने जाते हो न ?

—हाँ।

—किस क्लास में हो ?

—छठे में।

—सच ?

—नहीं तो क्या झूठ ?

—इत्ता चिड़ी सा लड़का भी भला छठे में हो सकता है ?

—मैं सात बरस का हूँ जानती हो ? डबल परीक्षाएँ दी हैं।

—तभी नहीं तो अभी पहली में ही होना चाहिए था।

और वह फिर हँस पड़ी। श्रीधर इस हँसी का मतलब बिल्कुल ही नहीं समझ पाया था।

उसके बाद एक बड़े से कमरे में ब्रह्मभोज हुआ था। किस प्रकार दोमालियाँ डाल कर पंक्तियाँ बनायी गयी थीं। धुली हुई केलों की पत्तलों पर भोजन परसा गया था। अगरबत्तियाँ मिट्टी के थांभों में प्रत्येक के सामने जलायी गयी थीं। और भोजन आरम्भने के पूर्व बाबा साहब ने किस प्रकार श्रद्धा के साथ प्रत्येक ब्राह्मण और बटुक दोनों को ही सोने की चम्मच से चंप लग गया था और पान तथा दक्षिणा की थाल उठाने वाले की बाँह से पान और दक्षिणा

रखी थी। वैसे महाराष्ट्रीयों में पर्दा नहीं होता लेकिन घूँघट तो होता ही है। इन्दु इस बीच दो एक बार दिखलायी दी लेकिन विनत हो।

सहसा पेमेन बाबू का अट्टहास सुनायी दिया। नारायण बाबू जोर-जोर से कोई बात सुना रहे थे और पेमेन बाबू की हँसी रुक ही नहीं रही थी।

—क्या बात है नारायण बाबू! पेमेन बाबू क्यों हँस रहे हैं इस तरह?

नारायण बाबू इस तरह सीधे बने हुए थे जैसे कुछ जानते ही नहीं।

—अब मुझे क्या मालूम? मैंने तो सिर्फ इन्हें अपना वही किस्सा सुनाया कि किस प्रकार हम लोग यहाँ बचपन में आया करते थे। याद है न श्रीधर! कि यह मंदिर पहले कितना ऊबड़-खाबड़ पड़ा हुआ था। एक दिन पास के गाँव का एक बनिया बहुत सारी मिठाई लेकर यहाँ आया था। हम लोग इस चट्टान की आड़ से देखते रहे थे। लेकिन जब वह बहुत देर तक नहीं गया तो मुझसे रहा नहीं गया और मूर्ति के पीछे जो खोह थी उसमें धीरे से जाकर मैंने इस तरह चीखना शुरू किया था कि वह बनिया मालमत्ता छोड़ कर बेचारा जान लेकर भागा। हम लोगों ने खूब मिठाई खायी थी। असल में उस बनिये बेचारे को दुर्गापाठ करने में देरी हुई थी। आज हम लोगों को भी जब काफी देर हुई तो दुर्गापाठ करते हुए मुझे वही बात याद आ गयी। इन पेमेन बाबू को जब सुनायी तो ये तभी से हँस रहे हैं।

पेमेन अभी तक हँस रहे थे।

सच ही नारायण बाबू काफी शरीर रहे हैं। इस कारण श्रीधर जैसे सीधे लड़के को भी कई बार शैतानी करनी पड़ती थी। श्रीधर बाबू यह घटना बिल्कुल भूल ही गये थे। लेकिन इसके बाद की बात नारायण बाबू भूल रहे थे।

—नारायण बाबू! वो तो आप भूल ही गये जो उसके बाद हुआ।

और इस बार नारायण बाबू बड़े जोरों से हँस पड़े। नारायण बाबू बहुत जोर से हँसने वालों में से थे। आज अमावस्या थी। दूर-दूर तक घना अंधकार ही था। बीच-बीच में कहीं एकाध आग की लपट दिख जाती और बस। बाहर

वाली सड़क पर कोई मोटर आ रही थी जिसकी लाइट कभी छिप जाती और कभी दिखती। आगे की घटना श्रीधर बाबू ने उठते हुए शुरू की।
—काफी दिनों के बाद यही किस्सा बैठे हुए नारायण बाबू अपने भाई साहब को सुना रहे थे। भाई साहब कई लोगों से घिरे हुए बैठे थे। जब ये किस्सा पूरा हो गया तो एक साहब उसमें से एकदम काले-पीले होकर बोले—तो साहब! आप ही थे उस दिन वहाँ?—और एक दम उस आदमी का चेहरा भय से पीला पड़ गया। नारायण बाबू ने पहचाना कि हाँ यह वही व्यक्ति है। और उसके बाद जो ठहाका पड़ा कि बस। वह बेचारा सेठ कहने लगा कि साहब मेरी पाँच सेर मिठाई तो खराब हुई ही लेकिन जान भी जाती।

तीनों हँसते हुए काली मंदिर वाली पहाड़ी अँधेरे में उतर रहे थे। चारों ओर निर्जन था। तीनों दम साधे उतर रहे थे। वैसे रास्ता अब ठीक कर दिया गया था लेकिन पेमन बाबू के लिए फिर भी काफी कठिनाई हो रही थी।

पमेन बाबू ही एक मात्र बंगाली इस कस्बे में थे। वे कब, कहाँ से और कैसे यहाँ आये कोई नहीं जानता। लोग इतना ही जानते हैं कि तारबाबू नौकरी करते हुए यहाँ आ पहुँचे। यह तो ठीक है कि वे नौकरी के सिलसिले में ही यहाँ आये थे और अब तो करीब-करीब दस बरस से यहीं हैं। लेकिन पेमेन बाबू के पिता निवासनाथ मजूमदार यहाँ छावनी में ठेकेदार के रूप में बहुत पहले एक बार रह चुके थे। उन्हें यह जगह बहुत पसन्द थी। अपने ठेके के सिलसिले में ही उन्हें मऊ चला जाना पड़ा और कुछ ऐसा दुर्भाग्य रहा कि वे एक दुर्घटना के शिकार हो गये। पेमेन बाबू तब मुश्किल से दस बरस के रहे होंगे। इस अनजान प्रदेश में वे भला किस तरह रह पाते? लोगों ने सलाह दी कि अपनी एक रिश्तेदार बुआ के पास कलकत्ता चले जाएँ। किसी तरह पेमेन बाबू कलकत्ता पहुँचे भी लेकिन दुर्भाग्य कि बुआ तब तक कालीधाम करने चुकी जा थी। मालव प्रदेश में उत्पन्न पेमेन बाबू को कलकत्ता किसी भी दृष्टि से रुचा नहीं अतः वापस लौट आये। अब क्या करते? थोड़े दिनों तक तो पेमेन बाबू ने मऊ में ही अपने पिता की साख पर कुछ ठेके का काम करना चाहा लेकिन वह सम्भव नहीं था। पेमन बाबू ने एक बार भाग्य आजमाने के ख्याल से नारायण बाबू के बड़े भाई गोवर्धननाथ को पत्र लिख कर अपने पिता तथा

उनकी मैत्री का हवाला देकर कुछ सहायता चाही। निशानाथ बाबू और गोवर्धननाथ में काफी अच्छी मेल-मुलाकात थी। प्रेमेन बाबू किसी प्रकार मैट्रिक तक पढ़ना चाहते थे। कुछ दो बरस की बात थी। इसके बाद तो तार-मास्टरी सीख कर अपने पैरों पर खड़े हो जाएँगे। जहाँ तक पैसों के चुकाने का सम्बन्ध है इसका आश्वासन वे नहीं दे सकते हैं कि वे अपने पिता निशानाथ बाबू के नाम पर कोई कलंक न आने देंगे। गोवर्धननाथ ने यह बात सिर्फ नारायण बाबू के अलावा किसी को नहीं बतायी थी। प्रमेन ने उज्जैन से मैट्रिक पास किया और इन्दौर आकर तार-मास्टरी की ट्रेनिंग पास कर तारबाबू हो गये। लेकिन प्रेमेन बाबू एक एक दिन का भी गोवर्धननाथ जी के इस उपकार को नहीं भूले थे। उन्होंने समय पर सारा पैसा लौटा दिया। इस बात को अब श्रीधर भी जान गये हैं। प्रमेन बाबू भी नारायण बाबू के परिवार को एक तरह से अपना ही कुटुम्ब मानते हैं। प्रेमेन बाबू का कितना बड़ा दुर्भाग्य रहा कि विवाह के दो-तीन बरस बाद ही एक मात्र सन्तान के चल जाने से बेचारे हमेशा के लिए उदास हो गये। तब वे नीमच छावनी में थे। नौकरी की शुरूआत वहीं से की थी। नीमच उन्हें पसन्द भी काफी था लेकिन इस दुर्घटना से ऐसा दिल उचटा कि उन्होंने अपना तबादला मालवा करवा लिया। मालवा में दो बरस तक तो किसी तरह ठीक चलता रहा। लेकिन आये दिन पत्नी को पागलपन का दौरा होने लगा। प्रेमन बाबू वैसे ही जीवन में काफी मार खाये हुए थे। कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था कि क्या किया जाए। नारायण बाबू को अपनी परेशानियाँ लिख भेजीं। उन्होंने कहा कि इधर यहीं तबादला क्यों नहीं करवा लेते? सब ठीक हो जाएगा। और उसके बाद से प्रमन बाबू एक तरह से अपने घर ही जैसे आ गये हैं। जब कभी ज्यादा कुछ होता है तो कभी छावनी से कोई उनके घर चला जाता है या फिर पिछले दिनों से श्रीधर बाबू के परिवार से भी घनिष्ठता हो गयी है। श्रीधर बाबू की माँ कभी आ जाती हैं या प्रमन बाबू की पत्नी ही वहाँ चली जाती हैं। प्रमेन बाबू चाहते नहीं हैं कि अब यहाँ से कहीं जाना न पड़े। वैसे नौकरी है कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रेमेन बाबू काफी हँसमुख मिलनसार और संगीत प्रेमी व्यक्ति हैं। फिर भी कहीं न कहीं कुछ सालता है और जिसे वे दूर नहीं कर पाते।

अब वे आम गाड़ी वाले कच्चे रास्ते पर आ गये थे। बड़ी धूल थी। एक गाड़ी निकल जाती तो सिर से पैर तक धूल ही धूल हो जाती। पहाड़ी की बरेखा यहाँ कुछ सुहाना लग रहा था। ऊपर काफी ठंडक थी। पेमेन बोले

—नारायण बाबू! कल सबेरे पूजन का समारम्भ होगा मूर्ति प्राण की प्रतिष्ठा होगी आइएगा न ?

—भाई तुम हर बरस पूजन करते हो फिर भी तुम्हारा पेट नहीं भरता ?

और वे हँस दिये।

—चाहे मेरा नहीं लेकिन आपके पेट भरने का प्रबन्ध जरूर हो जाएगा।

—धीवर को पकड़ो तब तो बात जमेगी वर्ना हम लोग पूजन करते रहें और ये साहब नींद के मजे लें सो नहीं होने का।

—तो धीवर बाबू को भला कौन छोड़ता है ?

—तो बस ठीक। हजरत! चार बजे सबेरे तैयार मिलना। यह नहीं कि मैं घंटी ही बजाता रहूँ मैं और घोड़ा बाहर ठंड में ठिठुरायें और आप साहब कहला दें कि सो रहे हैं।

और तीनों बड़ी जोरों से हँस दिये।

घर में घुसते ही माँ ने टोका

—अभी कुछ ही दिन हुए हैं तबियत ठीक हुए, फिर देर रात का घूमना शुरू हो गया।

हँसते हुए श्रीधर बाबू माँ के पास जा बैठे।

—क्यों रे इतनी रात तक ठंड में कहाँ घूमा जाता है ?

—तुम भी माँ कमाल करती हो। अभी ठंड कहाँ ?

—लो सुनो इसकी बात। मैं तो झगा पहन कर भी काँप रही हूँ और यह कहता है कि ठंड कहाँ है।

—अब तुम बूढ़ी जो हो चलीं। और माँ ! अभी तो दीवाली दूर है। जाड़ा तो तभी से शुरू होगा।

—अच्छा-अच्छा लेकिन इतनी इतनी रात तक घूमना बरसात में तालाब नहाना इतनी सारी अच्छी आदतें कहाँ से सीखीं ?

माँ भी व्यंग्य कर सकती हैं यह जानकर श्रीधर बाबू को बड़ी प्रसन्नता हुई।

—तुम्हें तो व्यंग्य करना भी आता है।

घर में घुसते ही माँ ने टोका

—अभी कुछ ही दिन हुए हैं तबियत ठीक हुए, फिर भर रात का घूमना शुरू हो गया।

हँसते हुए धीमर बाबू माँ के पास आ बैठे।

—क्या रे इतनी रात तक ठंड में कहाँ घूमा जाता है ?

—तुम भी माँ कमाल करती हो। अभी ठंड कहाँ ?

—ओ सुनो इसकी बात। मैं तो अभी पहन कर भी काँप रही हूँ और यह कहता है कि ठंड कहाँ है।

—अब तुम बूढ़ी जो हो चलीं। और माँ ! अभी तो दीवाली दूर है। जाड़ा तो तभी से शुरू होगा।

—अच्छा-अच्छा लेकिन इतनी इतनी रात तक घूमना बरसात में तालाब नहाना इतनी सारी अच्छी आदतें कहाँ से सीखीं ?

माँ भी व्यंग्य कर सकती हैं यह जानकर धीमर बाबू को बड़ी प्रसन्नता हुई।

—तुम्हें तो व्यंग्य करना भी आता है।

—व्यंग्य क्या ?

—अरे व्यंग्य करती हो और व्यंग्य नहीं समझतीं ?

—मैं कोई तेरी तरह मास्टर हूँ कि शब्दों के अर्थ भी जानूँ ?

आज माँ बहुत खुश थीं। श्रीधर बाबू को जब परिवार में कोई हँसता-बोलता दिखलायी देता है तो उन्हें गंभीर रह कर भी अत्यन्त सुख होता है। उन्होंने हमेशा सब को हँसते देखना चाहा है लेकिन पता नहीं क्यों न वे अपने बड़े भाई—भाभी और न छोटे भाई तथा उसकी बहू किसी को भी सन्तुष्ट न कर सके। अनेक बार वे अत्यन्त सहज होकर अपने भाइयों के पास जाकर बैठे हैं ताकि नसों का तनाव कम हो सके पर बड़े भाई ने तथा भाभी ने सदा वातावरण को अधिक संदिग्ध ही बनाया। बड़े भाई कभी किसी से सहज नहीं हुए। पिता तक से सिवाय लेन-देन के और कोई बात ही नहीं करते। भाभी को तो जैसे हुकम चलाने के इस घर से और कोई सरोकार ही नहीं। लेकिन श्रीधर बाबू सदा तरह दे जाते रहे हैं। वे जानते हैं कि भाई लोग इस विवशता मानते हैं। विवशता सम्भवतः आर्थिक है। चूँकि उन दोनों की आर्थिक स्थिति श्रीधर बाबू से कहीं अच्छी है इसलिए इस बात का प्रभाव इन भाइयों की पत्नियों के व्यवहार में भी दिखलायी देता है। उनकी पत्नी को तो रोज सबेरे से साँझ इस बात का सामना करना ही पड़ता है लेकिन कभी-कभी माँ तक से भाभी अपमानजनक व्यवहार कर बैठती हैं। अजीब परिस्थिति है कि कोई कुछ विशेष नहीं कह पाता है। माँ को श्रीधर बाबू ने अनेक बार समझाया। पर सभी के लिए सन्तान उसकी सबसे बड़ी कमजोरी होती है। माँ अपनी सन्तान को तटस्थ हो कर देख ही नहीं पातीं इसीलिए वह शक्ति भर अपनी प्रजा को समेटे रहना चाहती हैं।

—क्या बात है आज तुम बड़ी खुश हो माँ !

श्रीधर बाबू ने बंबई का गाव तकिया गोद में से मूंदते हुए पूछा।

—तुझे नहीं मालूम ?

—भला कोई बताएगा नहीं तो कैसे मालूम होगा ?

—कान्ता की सगाई पक्की हो गयी।

माँ ने अत्यन्त प्रसन्न होकर समाचार दिया।

कान्ता बड़े भाई श्रीमोहन ठाकुर की बड़ी लड़की थी जो प्रायः अपने ननिहाल ही रहा करती थी। लड़कियों की पढ़ाई का यहाँ विशेष प्रबन्ध न होने के कारण भाभी ने उसे अपने मायके में ही भेज रखा था। ऐसा करते समय श्री मोहन ठाकुर ने पिता और माँ से परामर्श करने की आवश्यकता भी नहीं समझी थी।

कान्ता के मामा जो कि उज्जैन में डाक्टर थे जब कान्ता को लिवाने आये तो माता पिता को सूचित कर दिया गया कि कान्ता को उसके मामा ले जाना चाहते हैं। कुछ दिन रह कर चली आएगी सोचकर पिता ने भी स्वीकृति दे दी थी। सच बात तो यह थी कि पिता स्वीकृति देते न तो क्या करते? महिने दो महिने बाद ऐसे ही चलताऊ ढंग से बता दिया गया कि कान्ता अब वहीं पढ़ेगी। माँ ने इस बात पर आपत्ति करनी चाही कोशिश की भी थी लेकिन भाभी ने ऐसा मुँह बनाया कि माँ की फिर हिम्मत न हुई कि दुबारा कुछ कह सकें।

—लेकिन कब? कहाँ? किसने पक्की की?

श्रीधर बाबू के इतने प्रश्नों का उत्तर तो माँ को भी नहीं मालूम थे। बड़ी बहू ने कान पर बात डाल दी थी कि कान्ता की सगाई उसके बड़े मामा ने अपने छोटे साले के साथ पक्की कर दी है। और यह बात भी बड़ी बहू ने सीधे माँ को थोड़े ही बतायी थी। वह तो उस कमरे में सामान वाले भण्डारे की ताली माँगने गयी थीं। बड़ी बहू नाइन से तेल मलवा रही थीं और हँस-हँसकर सगाई वाली बात बता रही थी। तब माँ ने सुन ही लिया था तो

—माँ! रात व बता रहे थे कि कान्ता के बड़े मामा ने उसकी सगाई की बात पक्की कर दी।

नाइन के सामने बड़ी बहू ने जिस तरह कहा उससे उनकी क्या गरिमा रह गयी? यह नाइन भी क्या सोचेगी कि एक यह माँ हैं जिन्हें अपने बेटे-बेटियों की सगाई तक की बात तभी मालूम होती है जब बाहर वालों को बतायी जाती है। और रात को जब श्रीमोहन ने बहू को बताया तो क्या वह अपने बाबू और माँ को नहीं बता सकता था? लेकिन मूलधन से ब्याज अधिक प्यारा होता है। कान्ता की सगाई हो गयी। इस तथ्य मात्र से दादीमाँ को सन्तोष हो गया। उन्होंने आगे पूछा ही नहीं बल्कि याद ही नहीं रहा था इस डर से कि इस बहू का क्या ठीक कब कौन सी बात कह दे। यह बहू भी कह सकती है कि कान्ता का तो विवाह भी उसके मामाओं ने कर दिया। वे भंडारे की चाबी माँगे बिना ही लौट आयीं। उन्हें श्रीमोहन का ऐसा व्यवहार अखरा लेकिन वे कैसे नाराज हों? क्या कान्ता को वहाँ से भेजने की बात श्रीमोहन और उसकी बहू ने पहले से ही तय नहीं की होगी? क्या दूसरे लोगों से पूछा? जब गलसरी तुड़ाकर लाकेट बनवाया था तो किसी से पूछा? जब बहू के गले में एक दिन लाकेट देखा तो पूछने पर कह दिया कि 'वे उज्जैन गये थे बाबूजी नहीं माने उन्होंने गलसरी

सुनाकर लाकेट बनवा दिया। लाकेट पूछकर बनवाया जाता तो हम नहीं बनवाने देते ? बहू के नाम बीमा करवाया किसी को खबर तक नहीं। वह तो एक दिन डाकिया बहू के नाम चिट्ठी दे गया तो गुणवन्ती ने बताया कि यह तो बीमे की रसीद है चिट्ठी नहीं। श्रीमोहन से पूछा तो उसने टालते हुए कहा पता नहीं माँ! उसके बाबू जी ने करवा दिया होगा। सब जानते हैं बहू के बाबू जी को। वे कितना कुछ करने वाले हैं। दस तोला सोना तक तो दिया नहीं गया और बेटी का बीमा करवा देंगे। अरे, घर वालों से झूठ बोलकर क्या होगा ? क्या घर वाले हिस्सा बँटा लेंगे ?

लेकिन बड़ी बहू ने सासूमाँ को कभी अपने बीमा के बारे में बताने की जरूरत ही नहीं समझी।

—हाँ कान्ता के बड़े मामा ने बात पक्की की है। अब चिट्ठी आये तब पता चले। माँ ने अव्यवस्थित सा टालते हुए कहा। श्रीधर बाबू थोड़ा ऊँचा हँस दिये। माँ किंचित अवाक हुईं लेकिन झेंप भी गयीं। इस मामले में जानेवाली चिट्ठी जा चुकी होती है और न आने वाली की चिट्ठी का क्या हुआ तक नहीं आती।

—तो कान्ता का ब्याह कब हो रहा है ?

माँ चुप ही रहीं।

—माँ! पता नहीं तुम्हें किस तरह समझाया जाए। मैं जानता हूँ कि इस बारे में तुम्हें कुछ नहीं बताया गया है। बल्कि बताने की आवश्यकता ही नहीं है। तब तुम क्यों अपना सिर खपाती हो ? मैं नहीं जानता कि तुम्हें इस सब में कौन सा सुख मिलता है। हर बार तुम्हारा अपमान किया जाता है और हर बार तुम फिर उसी फंदे में पाँव डालती हो।

माँ कुछ क्षण तो आहत रहीं। फिर उठते हुए बोलीं

—अरे अब तुम लोग गलती करो तो हमें उसकी गाँठ बाँध कर बैठना चाहिए ?

—लेकिन सामने वाला इस गल्ती मानता हो तब न तुम क्षमा करोगी ?

—तब तू क्या चाहता है कि मैं कह दूँ श्रीमोहन से और उसकी बहू से कि वे निकल जाएँ इस घर से ?

—पहली बात तो यह कि मैं तुम्हें अपने बेटे से अलग होने के लिए कहने वाला कौन होता हूँ। दूसरी बात यह कि इतने अपमान के बाद भी यदि दादा या भाभी

न सहा दूसरों के साथ कम से कम तुम और बाबू के साथ भला व्यवहार करें, तब भी कोई बात है।

—देख श्रीधर ! हमारे जमाने में तो भाई, यह सब भेदभाव नहीं था। न अपने घर देखा और न मैंने ही किसी के साथ किया। अपने चाचा से जाकर पूछ देख। अगर हम लोग ऐसा करतीं तो दो दिन तेरी चाची इस घर में न ठहर पाती। फिर तेरे ये चाचा कोई सगे भी नहीं थे। अब उनका मर्जी कुछ अलग हो गई। मन तो एक दिन नहीं कहा तेरी चाची से कि बहू यह ठीक नहीं किया ? आज कमाई मुझसे नहीं होगी। और न तुम्हारे बाबू न चाचा ने कभी कहा कि भाई घर में भी कुछ दिया करो। पटवारी से गिरदावर हो गये। इतना पैसा कमाते हो कुछ तो घर में दो। न तेरे चाचा ने एक पैसा दिया और न हमने माँगा। जो ठाकुर जी की कृपा से बन सका उससे मदद ही की। अब किसी का मलाल हो तो क्या किया जाए ? मैंने तो दोनों बहुओं को बराबर ही समझा। अब वे दोनों अपने को जो समझना हो समझें। जहाँ तक होगा पेट के पूत की बात तो सहना ही होगी। तू कहता है वह भी ठीक है। भाभी-जी भी करती है वह भी ठीक। डाक्टर बन गया उसकी मर्जी। अब तुम लोग हम लोगों को जैसे रखोगे वैसे हम रहेंगे ?

और माँ की डबडबायी आँखों से आँसू निकलने लगे। श्रीधर बाबू माँ पर किंचित होम आ ही रहे थे कि तभी खाँसने की आवाज हुई। पिता जी मन्दिर से लौटे थे। ड्योढ़ी के मन्द आलोक में पहले तो उन्हें पता नहीं चला कि चर्चा क्या चल रही है लेकिन जिस ढंग से वे बैठी थीं तथा सिसकी भी उन्हें मालूम हो गया। एक क्षण तो उन्होंने श्रीधर की ओर देखा लेकिन वे बात पूछना टाल गये। वे कपड़े उतारने लगे। श्रीधर चलने को हुआ। तभी उन्होंने पूछा

—क्या बात थी श्रीधर ?

—कोई खास बात तो नहीं। हाँ कान्ता की सगाई पक्की हो गयी।

पिता माता की असहज मनःस्थिति को समझने में अधिक पटु रहे हैं।

—अच्छा ? चलो अच्छा हुआ।

पिता के इस असम्पृक्त सन्तोष का मतलब श्रीधर समझ नहीं सका कि भाभीसाहब के इस व्यवहार से वे भी आहत हुए हैं अथवा वे सच ही सन्तोष अनुभव करते हैं।

—लोग बड़े कुशल और चतुर हैं। पढ़ा लिखा कर ब्याह भी तय कर दिया। तो अब ब्याह का प्रबन्ध कौन तुम कर रही हो ?

बात पत्नी से कही थी जिसमें स्पष्ट आहत होने की ध्वनि थी।

—बहुत दिनों से कहती रहती थी कि किसी के ब्याह में नहीं गये। बाबो कब विस्तर बाँध रही हो?

श्रीधर बाबू को लगा कि जैसे पिता कान्ता की इस सगाई के इस प्रकार तय हो जाने का सारा दम्भ माँ पर ही डाल रहे हैं। बेचारी माँ!

—तुम्हें तो हर बात के लिए एक मैं ही दिखती हूँ। अपने बेटे से तो कहते नहीं बनता।

और माँ ने शेष आँसू जो कि पलकों में रह गये थे आँचल से पोंछते हुए कहा। आखिरी बात में जैसे स्वत्व का चुनौती थी।

—अच्छा है अपना-अपना सम्मान रहे है इसमें प्रसन्न होना चाहिए कि नाराज?

पिता जो प्रायः बातों पर चुप्पी लगा जाया करते हैं आज सहसा इतने मुखर हो जाएँगे यह श्रीधर बाबू को नहीं मालूम था।

—क्या श्रीमोहन अन्दर है?

—क्यों?

—अरे भाई, घर में कौन है कौन नहीं है यह तो हम लोगों को मालूम रहना ही चाहिए।

—घर की इतनी चिन्ता करने वाले कब से हो गये? पहले से की होती तो यह नौबत तो नहीं आती? वह थोड़ी देर पहले खाना खाकर कहीं बाहर गया है।

—क्या सुनार के यहाँ गया है?

—यह तुम्हें क्या हो गया है? सुनार के यहाँ क्यों जाएगा इसी रात में? -

ओह! मैं समझी तुम्हारा मतलब वह कान्ता के लिए गहने

—चलो अच्छा हुआ तुमने समझना शुरू कर दिया।

—क्या वह सचमुच सुनार के यहाँ गया है?

हँसते हुए श्रीनाथ ठाकुर ने जवाब दिया

—मुझे क्या मालूम? मैंने तो पूछा सिर्फ।

तभी श्रीमोहन दरवाजा खोलकर आये। वे रोज तो पिता-माता को बैठा देखकर बिना बोले निकल जाते रहे हैं लेकिन आज श्रीधर को भी बैठा देखा तो उन्हें लगा कि जैसे अभी-अभी बहुत सारी बातें हुई हों और बोलने वाले सभी सहसा चुप हो गये हों। वे समझ गये कि बिना बोले नहीं जाया जा सकता। वे सहज होने के ख्याल से माँ की खरी पर ही आकर बैठते हुए बोले

—अरे श्रीधर! कहाँ रहते हो तुम? दिखते ही नहीं।

बात किसी को भी सहज नहीं लगी सम्भवतः श्रीमोहन को भी नहीं।

—माँ ! तुम्हारा पानदान कहाँ है ? बापू ! वो कंस चबूतरे वाला मामला तो फिर उठेगा । बनियों ने अर्जी दी है कि यह चबूतरा तो उनकी धर्मशाला का ही एक हिस्सा है । सनद की एक नकल भी पेश की है ।

लेकिन इस बात से भी अपेक्षित मौन नहीं टूटा । श्रीधर बाबू मन ही मन हँस रहे थे । सब जान रहे थे कि कौन सी बात टालने के लिए दूसरी-दूसरी बातें की जा रही हैं ।

—क्यों श्रीधर ! फिर कुछ इन्स्पेक्टर के यहाँ से आया ?

—अभी तो नहीं ।

किंचित हँसते हुए श्रीधर बाबू ने जवाब दिया ।

—अरे, उस सब में कुछ दम नहीं था । मैंने तो पहले ही गाडगिल साहब से कहा था कि इसमें कुछ दम नहीं है ।

सहसा श्रीनाथ ठाकुर बोले

—तुमने कहा था ?

श्रीमोहन बाबू समझ नहीं पाये कि पिता क्या कहना और कहलवाना चाहते हैं ।

—अरे उसमें किसी से क्या कहना था बापू ? ये तो सरकारी मामले हैं । इन्हें ज्यादा नहीं खोदना चाहिए ।

—तुम्हारे लिए तो घर के मामले भी सरकारी ही हैं ।

माँ ने बात सीधे-सीधे करने के ख्याल से कही ।

—माँ ! मैंने तुम्हारे लिए उज्जैन से तम्बाकू मँगवायी है ।

श्रीधर बाबू अब अपनी हँसी न रोक सके । श्रीमोहन एक क्षण तो हतप्रभ हुए लेकिन वे समझ गये कि अब बात अपनी तरफ से सीधे-सीधे कर दी जाए तो ठीक होगा ।

—अरे हाँ कल रात देर से आया और सवेरे भी जल्दी जाना पड़ा । मैं तो बताना ही भूल गया माँ ! सरस्वती की सगाई उसके बड़े मामा ने अपने छोटे साले से कर दी है । बापू ! अब आप ही जवाब दे दें ।

तभी माँ तमक कर बोलीं

—ये कोई जवाब नहीं देंगे । जब तेरा सारा काम तेरी ससुराल वाले ही करते हैं तो इसमें अब इनको क्या सालता है ? क्या इनसे पूछ कर लड़की को तूने वहाँ से भेजा था पढ़ने ? लड़की का ब्याह तय करने को उसके मामा ही बचे हैं ?

श्रीमोहन सारी बात समझ गये । वे जानते भी थे कि कभी इस प्रकार से सामना

करना पड़ सकता है। लेकिन उन्हें यह भी विश्वास रहा है कि ऐसे गाढ़े समय उनकी पत्नी दूर कहीं आड़ से अवाज देकर उनकी सहायता करेगी।

—अब माँ ! हमें भी किसी को खबर नहीं थी।

—लेकिन मुझे तो खबर कल ही हो गयी थी। आज जो तू बताने बैठा है तो तेरे बापू से पहले तो मोहन भोजिन पूरा मुहल्ला-टोला जान गया है।

तभी सामने के किवाड़े की आड़ से बड़ी बहू ने जवाब दिया

—पूरा मुहल्ला टोला तो नहीं था सासूमाँ ! मोहन आयी थी। बात मुँह से निकल गयी। मैं तो आपको बताने ही वाली थी। मैं समझी बापू को इन्होंने बता ही दी होगी।

श्रीमोहन बात को अधिक नहीं बढ़ाना चाहते थे। क्योंकि तब बीसियों बातें और भी सामने आतीं और वे श्रीधर या किसी और के सामने हेठे नहीं पड़ना चाहते थे।

—अच्छो ठीक है बापू से मैंने कह दिया है। बाबूजी का कल जवाब दे दिया जाएगा। और श्रीमोहन उठने को हुए।

—वे जवाब नहीं देंगे। तुम जानो और तुम्हारे साले जानें। अपनी लड़की की भलाई-बुराई तुम लोग खूब समझते हो।

—लेकिन बड़े भैया और बाबूजी से बातें तो बापू ही करेंगे।

वहीं से बड़ी बहू ने कहा।

—एक तो तुम्हारे बापू को किसी ने पूछा नहीं। दूसरे कायदा अगर हमारी लड़की है तो हम सगाई बनाएँगे वो कौन होते हैं ?

—हाँऽऽ, वो कौन होते हैं ?

कहकर बड़ी बहू ने रोना शुरू कर दिया।

श्रीमोहन ने एक बार घूर कर श्रीधर की ओर देखा। जैसे सोच रहे हों कि माँ और बापू के इस रूप के लिए कहीं तुम तो उत्तरदायी नहीं हो ? श्रीधर बाबू सिर झुकाये सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। श्रीमोहन बिना श्रीधर की उपस्थिति के पिता माता का सामना बचाने के ख्याल से तभी से चल दिये।

माँ ने घूर कर जाते हुए श्रीमोहन को देखा जैसे कि—बड़ा आया है अब चिरौरी करने पिता-माता की।

पिता श्रीनाथ ठाकुर ने बैठकई पर बैठकर सुला लिया और 'हरि इच्छा' कह कर "विष्णुसहस्रनाम" का पाठ शुरू किया।

बाहर फिटन की घंटी टुनटुना रही थी।

श्रीधर बाबू तेजी से उठे। पति को इतने सबेरे जागते देखकर सरस्वती को आश्चर्य हुआ। बोली,

—क्या बात है ? इतनी जल्दी कैसे जाग पड़े ?

—अरे फिटन की घंटी नहीं सुन रही हो ?

—नारायण बाबू हैं क्या ?

—और क्या ?

—कहाँ जा रहे हैं आप लोग ?

—हाँ मैं बताना भूल ही गया था तुम्हें। पेमन बाबू के घर आज देवी की प्रतिष्ठा है न बुलाया है। चलोगी ?

—पहले तो बताया नहीं। और मैं भला कैसे जा सकती हूँ ?

—क्यों माँ से कह दो। बस !!

—बड़े बस वाले आये। अरे माँ तो जरूर चाहेंगी कि चली जाऊँ, लेकिन काम-काज कौन आपकी मामी जी सम्हालेंगी ?

—अच्छा तो मैं चला।
तेजी से जीना उतरे और दरवाजा खोला ही था कि माँ ने टोंका
—इसी भिनसारे कहाँ चला रे ?
—माँ ! वो पोस्टमैन बाबू के घर प्रतिष्ठा है न ? नारायण बाबू भी आ रहे हैं।
—तो ये घंटी उनकी फिटन की है ?
और वे दरवाजा बन्द करने के लिए बढ़ीं। उन्हें दरवाजे से देखा कि हल्के कुहरे में गरम कपड़े और गुलूबन्द लपेटे नारायण बाबू प्रतीक्षा कर रहे हैं। बोलीं
—अरे नारायण बाबू ! भीतर नहीं आये ?
—कौन माँ ? प्रणाम।
—जुग-जुग जियो बेटा भीतर क्यों नहीं आ गये ?
—दो-दो घोड़ों को भीतर कैसे लाता माँ !
और सब हँस पड़े।
—यह तो हो सकता है कि एक घोड़ा दो घोड़ों को घसीट सके। अरे श्रीधर ! अब खड़े-खड़े क्या मुँह ताक रहे हो ?
और श्रीधर बाबू भी पास आ कर बैठ गये।
माँ ने सहसा टोकते हुए पूछा
—गुलूबन्द नहीं लिया रे ?
—कोई जरूरत नहीं है माँ ! तुम अब जाओ।
—माँ ! अब ये मुझे गुलूबन्द थोड़े ही लगाने देगा। अच्छा भाई, तुम्हीं ले लो।
तीनों हँस दिये। माँ ने सोचा नारायण कितना अच्छा है। ना ना करते श्रीधर बाबू को नारायण बाबू ने अपना मफलर थमा दिया।
माँ ने दरवाजा बन्द कर लिया।

फिटन चल पड़ी।
आश्विन की भिनसार हल्के कुहरे में पेड़ियों सड़कों और मकानों पर फैली हुई थी। कहीं-कहीं मेहतर सड़कें साफ करने में लगे थे। किसी-किसी घर से धुआ

लोगों के या तो खाँसने या भगवत भजन का स्वर सुनायी पड़ जाता। जोगिनें टोकरियों में धूप की चमकती कलसियाँ लिये मुँह पर अँगुलियों से लुगड़ा छुपाये चली जा रही थीं। मिनसार की हवा किटिंग में तम लग रही थी। कठवाब जैसा तो जाड़ा नहीं लग रहा था लेकिन फिर भी ठंड तो थी ही। पुराने जमाने के बादशाही दरवाजों में से गुजरते हुए घोड़े की नालें और पहिया की आवाजें गूँज उठती थीं। बारोंमास गमा नहाने वाली धार्मिक बुढ़ियाएँ तालाब की ओर बगल में धोती दबाये नंगे पैरों चली जा रही थी।

—बहुत देर हो गयी न ? बेचारा पेमेन भी रास्ता देखते-देखते थक गया होगा।

—ऐसी खास देर तो हुई नहीं।

श्रीधर बाबू ने मात्र सान्त्वना के ख्याल से कहा। यद्यपि जानते थे कि देर हो गयी है।

—अरे उस बेचारे धार्मिक से पूछो कि देर-सबेर क्या होती है। हम लोगों की तरह आलसी थोड़े ही है कि धूप में बैठकर माला फेर रहे हैं। सबेरे चार बजे उठता है।

—लेकिन पेमेन बाबू है सस्कारी व्यक्ति।

—अरे, उसके पिता निधानाथ बाबू तो लाखों में एक आदमी थे। भाई साहब से एक बार इतनी भारी भूल हुई थी कि बस। सारी साख चौपट हो जाती। व्यापार डूबता सो अलग। बैसे-बैसे फिरते। लेकिन निधानाथ बाबू ने सगे भाई से भी बढ़कर साथ दिया था। पमेन भी बड़ा सीधा आदमी है। पर बिचारा पत्नी के मामले में अभागा ही रहा।

—आगरा क्यों नहीं भेज देते ? कुछ दवाई-दारू हो जाए तो शायद ठीक हो जाएँ।

—असल में लड़के के मर जाने का सदमा है। लेकिन पेमेन भी खूब सेवा करता है भाई !

और नारायण बाबू ने देखा कि सड़क के किनारे बॉक्स जैसे तारघर के सामने पेमेन खड़ा राह देख रहा था। अभी सूर्योदय में काफी देरी थी लेकिन आकाश कुम्हड़ी जैसा फैल आया था। शहर जाने वाली सड़क धुमिया की बाँहों में सती दूर तक सारी बिछी थी। तार के खम्भे आज्ञाकारी लड़कों की तरह कतार बाँध

कर सड़क के साथ-साथ इसी तरह बाहर तक चले गये हैं। पेमेन अपनी उसी ढीली मोटी सूरत और भाव में खड़ा हँस रहा था।

—वाह जनाब! ये चार बज रहे हैं आपके ?

—भाई मैं तो तीन बजे ही श्रीधर के घर के सामने मय सवारी के मौजूद था। जनाब साहब जाने क्यों बिस्तरे से बाहर ही नहीं आ रहे थे। वो तो बेचारी माँ ने जब डाँटा तो ये हजरत बीबी का मोह छोड़ कर आये।

—क्यों नारायण बाबू! सबेरे-सबेरे झूठ बोल रहे हैं ?

और सब हँस दिये।

—मैं तो भाई, झूठ सबेरे-सबेरे ही बोल लेता हूँ ताकि कोई गम नहीं। क्योंकि झूठ बोलने का भी तो कोटा होता है। उसे कहीं न कहीं पूरा करना ही होता है।

और तीनों हँसते हुए अन्दर चल दिये।

पेमेन बाबू प्रतिवर्ष अपने हाथों दुर्गा की मूर्ति बनाते हैं और सुन्दर भी बना लेते हैं। उसमें अत्यन्त श्रद्धा एवम निष्ठा है। पेमेन बाबू का यह क्वार्टर जिसे बाधा कहते हैं तारघर भी है और घर भी। चार कमरे का यह क्वार्टर शहर के बिल्कुल सिरे पर है। अच्छा होगा यदि यह कहा जाए कि नदी की कगार पर है। इसके ठीक पीछे से नदी बहती है। पत्थरों की कगारें बिल्कुल नंगी हैं। वैसे देखने-सुनने में यह मकान काफी सुन्दर बना है लेकिन किसी पास की छाँह नहीं है। बड़ी मुश्किल से मिट्टी डाल-डाल कर हरियाली यहाँ तक लायी गयी थी। बड़ा पेड़ एक भी नहीं था। प्रयास हर वर्ष किये जाते हैं। पेमेन बाबू ने अमलतास और गुलमुहर लगाये हैं। अभी तो छोटे ही हैं लेकिन कह नहीं सकते कि बड़े हो पाएँगे कि नहीं। आँगन में लाल बजरी डालकर रास्ता साफ कर लिया गया था। धूप भी थमी हुई थी जो कि इस समय हल्की शाम में भीगी पीली लग रही थी। लाल रंग का लकड़ी का फाटक और उस पर बोगनवेलिया की कतार मोर की मयार हवा में हिल रही थी। दाहिने हाथ वाले कमरे में तार घर है। यहाँ से बराबर 'किट किरकिट' की आवाज आती रहती थी। बीच

वाले बड़े कमरे को प्रेमन बाबू ने बैठक बना रखा था। बायें हाथ वाला कमरा प्रायः 'गेस्ट रूम' की तरह काम आता। आये दिन कोई न कोई अफसर आता ही रहता था। पीछे एक कमरा और था जहाँ उनका सारा सामान था तथा पत्नी बन्द रहा करती थी। उस पीछे के कमरे से नदी की चट्टान भरा भाग कगारें दिखता। गर्मियों में जब पानी लगभग सूख जाता तो चट्टानें और भी निकल आतीं और दिन भर धूप में झिलमिलाती रहता। नदी की तलहटी के पत्थरों की बजरी दिन भर गरम होती हुई चमचमाती रहती। जब प्रायः लू के गरम झोंके उधर से आते हैं। बरसात के दिनों में तारघर बहुत सुन्दर हो उठता। पीछे के कमरे की खिड़कियों से पूर नदी बड़ी सुन्दर लगती। मुझे भी बरसाती नभ नुकीली पहाड़ियों तक दौड़ते से झरने बड़े अच्छे लगते। दिन-रात बाढ़ वाली नदी का गुर्राते हुए, पत्थरों पर फन पटकना सुनायी देता। प्रायः नारायण बाबू के साथ भाभर बाबू प्रेमन बाबू को लेकर माघ-पौष को सवेरे-सवेरे नदी नहाने जाते रहे हैं। नदी धारों के बीच में पत्थरों का एक द्वीप सा है। वहाँ तैर कर दोनों पहुँच जाते रहे हैं। उस पर बैठकर नदी के बीच प्रवाह में ऐसा लगता है जैसे स्वयं बहते हुए, नदी के साथ यात्रा कर रहे हैं। वैसे नदी यहाँ उथली नहीं है लेकिन खास गहरी भी नहीं है जैसी कि किले-घाट पर है। गर्मियों तक में यहाँ पानी रहता है। नारायण बाबू का कहना है कि अगर उनके पास कोई राजशक्ति आ जाए तो वे यहाँ पर एक ऐसा बाँध बनवाएँ ताकि नदी कभी सूखे ही नहीं। नदी की कगारें आगे बढ़कर छावनी के पास सिर्फ चट्टानों की ही नहीं रहती हैं। वहाँ तो नदी-तट पर खूब बड़े-बड़े वटवृक्ष इमलियाँ आम महुआ और जाने किन-किन चीज़ के पेड़ खड़े हैं। छावनी वाला पठार ही इधर के भूभाग में सबसे ऊँचा होते हुए भी खूब हरा-भरा था। नदी छावनी और किले का चक्कर उत्तर भाग निकल जाती है जहाँ यह पार्वती में विलीन होती है जो कि चम्बल में मिलकर अगन्या यमुना बन जाती है।

चूँकि बैठक भाभी की नहीं थी इसलिए उनका कुछ सामान जैसे कुर्सियाँ टेबल आदि दालान में रखे थे। बैठक में घुसते ही सामने सुन्दर श्री दुर्गा प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। दीपक जल रहे थे। अगर-धूम से वातावरण सुवासित था। केले के पत्तों से शोभामण्डप बनाये गये थे। कोने में सितार, तानपूरा और तबले रखे

हुए थे। प्रतिमा के सामने पेमेन बाबू की पत्नी नहाये हुए, बाल फैलाये पलथी मारे प्रणामित हाथ गोदी में रखे हल्के-हल्के कुछ गा रही थी। उनकी आँखें बन्द थीं। वे आज बहुत अच्छी लग रही थीं। नारायण बाबू और श्रीधर बाबू ने प्रणाम किया और बैठ गये। कमरे में हल्का अँधेरा था। यद्यपि बाहर आलोक से ज्यादा कहीं दिन फूट आया था। देहरी लाँघ कर दिन जैसे पूछ-पूछ कर अन्दर आने का यत्न कर रहा हो। पेमेन बाबू ने तानपूरा सम्हाला और नारायण बाबू की ओर तबले बढ़ा दिये। नारायण बाबू को तबले की दो-चार तालें मालूम थीं। पेमेन बाबू ने दुर्गा-स्तवन आरम्भ किया। श्रीधर बाबू ने पास ही रखी मंजीरें ले लीं और क्रमशः स्तवन चल निकला।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः

स्तवन-कीर्तन कितनी देर चला पता नहीं। लेकिन धूप काफी आ चुकी थी। यहाँ बस्ती की अपेक्षा दिन पहले ही उगता है। धूप कमरे में पूरी तरह चारों ओर से आ रही थी। भोर का वातावरण हल्के कुहरे में लिपटा था इस समय उजला गया था। सवेरे वाली ट्रेन के जाने का समय था। बार-बार इंजिन की सीटी सुनायी पड़ रही थी। पेमेन बाबू ने जैसे ही कीर्तन समाप्त किया उनकी पत्नी तेजी से उठीं और 'गीत-गोविन्द' के पद जोर-जोर से गाते हुए नृत्य करने लगीं। एक क्षण को सभी आश्चर्य में आ गये। अभी कोई कुछ कहे इसके पहले ही वे पेमेन बाबू को चूमने लगीं। उन्होंने अपने दोनों हाथ ऊँचे कर लिये और चीखने लगीं

—आमी दुर्गा।

—आमी चण्डी।

—आमी लक्ष्मी।

—आमी जगत तारिणी।

और वे घूम घूम कर नाचने लगीं।

पेमेन बाबू ने झपट कर पत्नी का हाथ पकड़ा।

—ए की हाच्चो?

—ए की करच्चो तुमि?

और वे हाथ पकड़ कर पत्नी को घसीटने लगे। जाने किस बल से पेमेन बाबू की पत्नी ने अपना हाथ छुड़ा लिया और उन्होंने नारायण बाबू तथा श्रीधर बाबू को घूरते हुए फिर चिल्लाना शुरू किया

—मामी दुग्गा।

—मामी बच्ची।

प्रेमेन बाबू के लिए पत्नी का यह प्रलाप असह्य हो उठा। उन्होंने बढ़कर फिर हाथ पकड़ लिया। वे जूझती जा रही था और नाच रही थी। प्रमेन बाबू ने तब झल्लाकर पत्नी का हाथ जोर से मोड़ दिया। वे चीख उठी

—माँ गो!

नारायण बाबू और श्रीधर बाबू हतप्रभ से उठकर बाहर चले आये। अन्दर से प्रेमेन बाबू की पत्नी का आर्त स्वर 'माँ गो' आ रहा था। सम्भवत प्रेमेन बाबू ने पत्नी को कमरे में बन्द कर दिया था। वे दरवाजा पीटे जा रही थी और चीखे जा रही थीं। प्रेमेन शायद डाँट रहे थे। दोनों अन्यमनस्क से बाहर दालान में खड़े बात करना चाहने पर भी कोई बात न कर पा रहे थे। दोनों को ही प्रेमेन बाबू पर तरस आ रहा था। संभवत प्रमेन बाबू की पत्नी पर भी कि जब न पागल न हुई होंगी तब निश्चित ही बहुत अच्छे स्वभाव की रही होंगी। तभी प्रेमेन बाबू उदास से लौटे। वे कुछ कहें इसके पूर्व ही नारायण बाबू बोले

—कोई बात नहीं प्रेमेन! सब ठीक हो जाएगा।

प्रेमेन बाबू कुछ भर आये थे। उन्हें अवश्य ही सान्त्वना चाहिए थी।

—तो शाम को आओ न छावनी की तरफ? तुम्हारी मामी कह रही थी कि तुम्हें कई दिनों से देखा नहीं। बहू को ला सको तो लेते आना।

—हाँ जरूर आऊँगा।

और प्रणाम करते प्रेमेन बाबू इतने सुन्दर लग रहे थे मानो स्नानित सवेरा पृथ्वी को प्रणाम कर रहा हो।

दशहरा बीत चुका था। दिवाली की लिपाई-पुताई की तैयारियाँ हो रही थीं। घर भर का सामान झाड़-पोंछकर साफ किया जा रहा था। इस सब में पुरुषों और स्त्रियों का मन बहुत लगता है। नये चूने के पोते जाने की गंध आ रही थी। छतों खिड़कियों दरवाजों खम्भों की लकड़ियों पर तेल-पानी किया जा रहा था। जो लकड़ियाँ भूरी हो गयी थीं वे ठीक नीली कत्थासी हो आयी थीं। श्रीधर बाबू की किताबों की आलमारियाँ भी सफाई के लिए खाली की गयी थीं। सरा और श्रीधर बाबू इतनी रात में भी किताबें झाड़-पोंछ रहे थे। बहुत कुछ किताबें उन्हें बाबा साहब ने दी थीं। वे बहुत पुरानी हो गयी थीं इतनी कि असावधानी से जरा छूते ही टुकड़े-टुकड़े हो जाता। प्राय: उन किताबों पर मोड़ी लिपि में बाबा साहब का नाम था। (मराठी लोगों में पहले कभी मोड़ी लिपि व्यवहार में आती थी।) इन किताबों में इतिहास दर्शन ज्योतिष खगोल आदि की अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें थीं। इन्दु के सम्पर्क से जो अंग्रेजी सीखी थी उसे उन्होंने अपने अध्यवसाय से बढ़ाया था। इन्दु ने ही उन्हें अनेक विदेशी उपन्यास दिये ताकि वे आगे बढ़कर पढ़ें। एक प्रकार से इन्दु ने उन्हें अनेक

बातों से परिचित कराया जिन्हें व बिना इन्दु के कभी जीवन भर न जान पाते।

और उनके हाथों में 'हेमलेट' थी।

उन्हें ठीक से याद है कि कब इसे पहली बार इन्दु ने सुनायी थी।

सम्भवतः इन्दु के विवाह में कुछ महीने ही रह गये थे। पिछले कुछ दिनों से इन्दु में श्रीधर को लेकर उत्साह कम नहीं हुआ था लेकिन जो सहज सुलापन या दूसरी बातों के प्रति वह नहीं रह गया था। इन्दु अब श्रीधर को सच ही अपने से बड़ी प्रतीत बड़ी लगने लगी थी। जैसे इन्दु सामने के क्षितिज पर एक विश्राम सी उग आयी है और श्रीधर से इतनी दूर, इतनी ऊँची है कि कभी वह उसे छू नहीं सकता। जाने कहाँ से इन्दु के शरीर में से ही हाथ-पाँव और सभी कुछ बढ़ आये थे। अब कि श्रीधर अभी वही १०–१२ वर्ष का ही पिद्दी सा 'बुद्धू' ही लगता था। प्रायः सामसमा ही होती जब श्रीधर वहाँ जाता। पहले की तरह पेट में गुदगुदी चलाकर अब हँसने-हँसाने की कोई बात नहीं होती थी। पहले जब कभी वह कहानी कहती होती या सुनती होती तो लगता था कि वह आँखों से मुँह से नाक से लोगों से सबसे सुना रहा है। आँखें फट जातीं। गालों में खून दौड़ जाता। डर-सी अम्मयों के शोर सा हँसा जाता। एक दूसरे के कंधे पकड़ लिये जाते। और पैर झुला-झुलाकर कहानी के दूर द्वीप में कहीं सोचते हुए दोनों होते। तारा पर झगड़ा होता कि बड़े तारे बड़े के हाथ हैं और छोटे तारे छोटे के। इन्दु अपने बड़े तारों के रंग वर्णन करती कि वहाँ मिठाइयाँ पत्तों पर लगती हैं सब के सब चमकदार पत्ते होते हैं, वहाँ यहाँ की तरह गर्मी और पानी नहीं होता बल्कि ढेर सारी बरफ होती है जिस पर धूप में सूत उड़ना पड़ता है और वहाँ सिर्फ बच्चे ही जा सकते हैं। और इसका एक दिन इन्दु श्रीधर को लेकर बिना किसी को बताए जायगी।

—चलोगे श्रीधर ?

—हाँ लेकिन वहाँ तक जायेंगे कैसे ?

—तुम्हें इससे क्या ? मैं ले जाऊँगी । बुद्धू ! इतना भी नहीं समझता ।
—दीदी ! तुम्हें तो अपने तारे के बारे में सब मालूम है पर मुझे अपने तारों के बारे में कुछ भी नहीं मालूम ।
—अरे तारे रोज रात को नींद में आते हैं । तुम्हारे तारे छोटे हैं न ? तुम कस कर आँखें बन्द कर लिया करो वर्ना तारे पकड़ाई में कैसे आएँगे ? तब तुम अपने तारे से पूछ लेना ।

और रोज रात को धीधर सोते समय कस कर आँखें बन्द करते हुए समझता कि आज मैंने अपने तारा को पकड़ लिया है । दूसरे दिन दीदी के पूछने पर बहुत साफ-साफ कर कहने लगता

—दीदी ! रात सिर्फ एक ही तारा आया । वह तितली जैसा हल्का सा था । बस कई तितलियाँ दिखीं अक्सर पर एक ही उड़ती हुई आयी । वह तितली कुछ बोली नहीं । बस फिर उड़ गयी ।

और इन्दु जोरों से हँस देती ।

इन्दु तब चित्रोंवाली पोथी खोलकर पढ़ कर सुनाती । रंगबिरंगे चित्रोंवाली पोथी में बराबर इस बात पर बहस हो जाती कि जब पंखोंवाला घोड़ा एक ही था और उसे जब राजकुमार ने ले लिया तब भला कोई दूसरा जाए तो उसे घोड़ा कैसे मिल सकता है ? इन्दु का तर्क होता कि अरे बुद्धू ! यह तो एक ही समुद्र का घोड़ा राजकुमार को मिला है । जब कि समुद्र तो सात हैं । अभी पंखोंवाले छह घोड़े और हैं तथा छह राजकुमारियाँ भी हैं । धीधर की समझ में विशेष कुछ आ नहीं पाता था । और वह इसी बात से प्रायः सन्तोष कर लिया करता था कि वह कोई राजकुमार तो है नहीं । और बिना राजकुमार हुए किसी को भी न तो पंखों वाला घोड़ा ही मिल सकता है और न राजकुमारी ही ।

धीधर अभी और कुछ समय तक इन पंखोंवाले घोड़ों के चक्कर में रहना चाहता था लेकिन इन्दु ने अब जल्दी-जल्दी कुछ बड़ी पुस्तकें शुरू कर दी थीं । पृथ्वी गोल है । इस पृथ्वी पर तीन चौथाई पानी है और एक चौथाई धरती । और वह घूमती है । यह पृथ्वी भी दूसरे तारों की तरह एक तारा ही है । धीधर की समझ में कुछ खास आ नहीं पाता । तारे तो आकाश में हैं । आकाश ऊपर होता है । फिर भला हम तारे कैसे हुए ? तारे चमकते हैं । पृथ्वी घूमती है । दीदी

कहती है कि हमारा सिर हमेशा आकाश में लटका रहता है। श्रीधर इस लटकने वाली बात पर इतने जोरों से हँस पड़ता था कि पास में सोयी हुई माँ समझती कि भात-सात चौंक गया है या फिर नींद में हँस रहा है।
—श्रीधर! नींद में क्यों हँस रहा है? पानी पीना है? करवट ले ले।
और श्रीधर माँ की मूर्खता पर हँसते हुए कहता
—नहीं माँ! दीदी कहती है कि हम आकाश में लटके हुए हैं और पैर हमारे धरती पर चिपके हुए हैं क्योंकि धरती में आकर्षण शक्ति है।
—यह सब क्या बक रहा है, इसी रात में? चुप मा जा। ऐसी उल्टी-उल्टी बातें सोचता रहता है तभी तो नींद में बड़बड़ाता है—हम आकाश में लटके हुए हैं। बड़ी आयी तेरी इन्दु दीदी।
और झिड़की का श्रीधर सो जाता।
लेकिन दीदी का अविश्वास भी कैसे करे? वो तो पढ़कर समझती हैं। किताबों में तो कभी गलत बात हो नहीं सकती। न जाने ये किताबें कहाँ से आयीं। किताबें सिर्फ बाबा साहब के यहाँ ही हैं इतनी। वे जाने क्या पढ़ते रहते हैं।
और एक दिन दीदी बोली
—श्रीधर! जानते हो नाटक क्या होता है?
—जरूर किसी फल का नाम है।
—तुम मूर्ख हो। नाटक किसी फल का नाम होता है? यह भी नहीं जानते?
—तब मुझे क्या मालूम। क्या कोई पक्षी पाला है तुमने?
और दीदी गुस्से में इन्दु की किताब बिस्तरे पर फेंकते हुए बोली
—तुम्हें इस जनम में कभी कुछ नहीं आएगा। नाटक को जो सब्जी फल और पक्षी का नाम बताता है उसे क्या कहा जाए? कविता कहानी की तरह जो बोल-चाल के ढंग पर लिखा जाता है उसे नाटक कहते हैं तुम्हें यह भी नहीं मालूम? तुम स्कूल जाते हो? खाक पढ़ते हो!
और श्रीधर की आँखें भर आयीं।
—रोने से काम नहीं चलेगा। बताओ नाटक किसे कहते हैं? कोई नाटक पढ़ा है?
श्रीधर ने बिना बोले सिर हिला कर बता दिया कि नहीं पढ़ा। इस बार सचमुच ही श्रीधर रो पड़ा। एक क्षण तो इन्दु की समझ में नहीं आया कि क्या किया जाए। इसे रोते हुए लड़के पर खीझ गयी। एक तो नाटक का मतलब नहीं जानता और पूछने पर लड़कियों की तरह रोने लगा।

इन्दु उठी और रोते हुए श्रीधर को पहले हाथ-मुँह धो आने का आदेश दिया और यह भी कि उसे हर हालत में आज नाटक के बारे में जानना ही होगा। कितनी बुरी बात है कि इतना बड़ा लड़का नाटक के बारे में नहीं जानता।

श्रीधर काफी कुछ डर गया था उस शाम कि जिसके न जानने पर दीदी ने उसे इस बुरी तरह डाँट-फटकारा था कि जैसे उसने जाने क्या कर दिया हो। तब उसी की स्कूल की किताब में से 'वीर अभिमन्यु' का पाठ दीदी ने पढ़कर सुनाया और कहा कि यही नाटक होता है।

—हाँ दीदी! नाटक अभिमन्यु होता है।

—फिर वही? नाटकों में भी कहानियाँ होती हैं लेकिन उसमें बातचीत रहती है। समझे?

और, श्रीधर ने और अधिक डाँट खाने के भय से स्वीकार किया।

और थोड़े दिनों बाद जब कई नाटकों के बाद वे अंग्रेजी का एक नाटक लायीं तो बोलीं

—देखो आज एक राजकुमार का नाटक पढ़ेंगे। इसका नाम है 'डेन्मार्क का हेमलेट'। तुम जानते हो किसने लिखा है? शेक्सपीयर ने।

श्रीधर पिछली डाँट अभी भूला नहीं था। उसने यही उचित समझा कि दीदी को बिना टोके हुए यह नाटक पढ़ने दे। खूब सारे चित्र थे। वे खूब जोर-जोर से पढ़तीं और पढ़ते समय कभी खड़ी हो जातीं कभी टहलने लगतीं कभी हाथ ऊँचे कर कभी बारीक आवाज में कभी मोटी आवाज में कभी क्रोध से कभी गंभीर होकर पढ़तीं। जब कभी वे बीच में अर्थ बताते हुए भूल जातीं तो वे दौड़कर चाचा साहब से पूछ आतीं। दीदी को बराबर देखते रहने से श्रीधर की गर्दन दर्द करने लगती। किंकर्तव्यविमूढ़ सा बैठा श्रीधर समझने की चेष्टा छोड़कर देखने लगता कि दीदी कितनी सुन्दर लगती हैं। जब वे हाथ खोलकर कहतीं

—ओ हेमलेट! हेमलेट!!

उनकी आँखें फटी की फटी रह जातीं। खिड़कियों से दूर सूर्यास्त की अंतिम लाली आकाश में बुझती सी दिखायी देती। नौकर जल्दी लैम्प लाकर रखता। तब कहीं श्रीधर के घर जाने का समय होता। दीदी का नौकर राम श्रीधर को घर छोड़ने जाता है। उस दिन पहली बार श्रीधर को लगा कि दीदी कितना अच्छा पढ़ती हैं जैसे नाटक की घटनाएँ दीदी के सामने हुई हों। वह उस दिन पूछना चाहता ही रहा कि क्या दीदी उस समय वहाँ थीं जब ओफीलिया-हेमलेट मिले थे? वे हेमलेट को कैसे जानती हैं? वह तो विलायत में राजकुमार था न?

और यह भी कि यह नाटक उनके पास किसने भेजा ? अनेक बातें श्रीधर के मन में थीं लेकिन वह पूछ न सका । जिस समय वह चलने को हुआ दीदी ने उसे अपने से सटा लिया । बहुत देर तक उसके गाल को अपने गाल से सटाये रहीं । जब दूसरे कमरे में नौकर की आहट हुई उन्होंने जल्दी से उसे चूम लिया और वे हथेलियों में मुँह छुपा बिस्तरे पर औंधी लेट गयीं ।

श्रीधर की समझ में कुछ नहीं आया । लेकिन दीदी का गाल कितना गरम और गरम था । उसे चूमते समय उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें कैसे मूँद ली थीं । और उसके बाद एक क्षण को कैसी सूखी मुस्कान आ गयी थी । उनका मुँह कैसा तम-तमा आया था जैसे वे बहुत देर से एक ही साँस ले रही हों और फिर भी वह पूरी तरह न ले पा रही हों । लैम्प की हल्की पीली रोशनी उनके दाहिने गाल पर गिर रही थी । कैसे उजले गोरे-लाल गाल हैं दीदी के । दीदी बहुत सुन्दर हैं न ? जब वे बाल खोलकर बोल रही थीं उस समय उनके बाल पीठ से भी नीचे कैसे काले-काले लहरा रहे थे । दीदी की आँखें पहले तो उसे देखती थीं लेकिन अब उसकी ओर देखते हुए भी लगता है कुछ और देख रही हैं । कई बार वे कैसे जल्दी-जल्दी उसे देखती हैं तब आँखें फैल आती हैं, चमक आ जाती है उस समय वे नहीं भी बोलती हैं पर लगता है जैसे वे कहने से अधिक बोल रही हों । इतनी बड़ी आँखें दीदी की हैं कि जैसे मुख पर सिर्फ आँखें ही हैं । कई बार उसने दीदी की आँखें चूम लेना चाहा लेकिन नहीं दीदी नाराज न हो जाएँ इसलिए अपने को देखते रहने दिया है उन आँखों के द्वारा ताकि वे आँखें देर तक उसे देखते हुए उसके समीप रहें । उसके निकट निश्चय ही दीदी का बड़ा भारी मोह है । यदि उसे मालूम हो जाए कि उसके बीमार रहने पर दीदी उसके पास रहेंगी तो जीवन भर बीमार रहने को तैयार था । कभी-कभी वह होंठों से अँगु-लियों से पलकों की बरौनियों से बल्कि सम्पूर्ण शरीर से दीदी को उसी तरह छू लेना चाहता है जैसा कि वह मोटी लगने वाली धूप को छूता है या गर्मियों में जैसे कि ठंडे जल को छूकर तृप्ति होती है । जैसे वह धूप वह जल भाप में आ गया हो । क्या वह दीदी को जैसे किसी स्निग्ध छू सकता है ? दीदी ने जब छुआ तो वह धूप और जल दोनों से कुछ और अधिक अच्छा लगा था । गालों में अभी तक कोई जरा भर गोरा गाल मीठी धूप और ठंडे जल वालों से कहीं अधिक अच्छा लग रहा था । वह स्वाद कम क्या करता है क्योंकि वह उस समय बार बार घूँट उतार रहा था । उसे लग रहा था जैसे उसके गाल में एक गोरा गाल

और निकल आया है। उसके मुँह पर अब तक दीदी की जैसे आँखें ही जड़ी हुई थीं और अब दीदी का एक भाव भी।

लेकिन दीदी हथेलियों में मुँह दाबकर क्यों लेट गयी थीं ! क्या उसे एकदम नहीं चला आना चाहिए था ? दीदी कब कब ऐसे तो कभी नहीं लेटतीं। वह सचमुच यह कहना चाहता था कि दीदी ! तुम जब देखती हो तो जैसे पता नहीं कैसा लगता है लेकिन दीदी ! बहुत अच्छा लगता है बहुत ही अच्छा लगता है। ऐसे ही देखो न एक बार ? ये देखो तुमने यहाँ छुआ था न यहाँ वहाँ कैसा नरम-नरम सा जाने कैसा कम रहा था। दीदी ! मुझे वैसे ही छू दो जैसे कि धूप छूती है जल छूता है। भीतर तक जैसे स्पन्दन भर जाती है उसी तरह।

खाना खाकर वह लेट गया और उसके बाद नींद में वह धूप और जल में दीदी को लेकर नहाता रहा। अनेक रातों वह सपनों में देखता कि दूर-दूर की पहाड़ियों पर रंग बिरंगी धूप छितरी है। वह रंगीन धूप धीरे-धीरे पहाड़ी से उतरती है और झील के जल में थोड़ी देर के लिए गायब हो जाती है। वह झील के जल में अन्दर तैरती हुई धूप को देखता है। कैसी गोरी-गोरी धूप झील में तैरती हुई उसकी तरफ आती है। धूप तब बहुत नजदीक आ जाती है। उसमें अनेक तारों की जैसी आँखें निकल आती हैं, जो हँसती हुई उसे संकेत करती हैं। पास बुलाती हैं। वह जैसे ही हँसती हुई आँखों वाली उस धूप की तरफ बढ़ता है वह और दूर, और दूर सरकती जाती है और धूप फिर वापस झील में डूब पड़ती है। धूप वापस तैरकर झील के उस किनारे निकल कर बड़ी तेजी से पहाड़ियों पर चढ़

जाती है। तारे वापस आकाश में चले जाते हैं। धूप भी धीमे धीमे सब आकाश चढ़ जाती है। वह हर बार धूप को छूते-छूते रह कर जाता है।

कभी धाराधर पानी बरस रहा होता है। सहसा एक कोने में धूप का एक टुकड़ा बादलोंमें एक गोल छेद बनाकर उसकी ओर बढ़ता होता है। चारों ओर पानी बरस रहा है लेकिन वह धूप का टुकड़ा हँसता हुआ उस पर से कभी से निकल जाता है। वह उस धूप के टुकड़े को पकड़ने को बढ़ता है। दूर दूर तक बरसते मेघ में वह धूप का टुकड़ा भागता इस क्षितिज से उस क्षितिज तक दौड़ता है लेकिन वह धूप का टुकड़ा और वहाँ और वहाँ बनकर हाथ नहीं आता है। सहसा वह टुकड़ा ऊपर फिर बादलों में चढ़ने लगता है। बादल का वह छेद फिर मुंद उठता है। बस, केवल बरसते मेघ रह जाते हैं।

पूरे बाढ़ में नदी बह रही होती है। काली-काली चट्टानों पर भागने का शोर मधुमक्खी के छत्ते सा गिरता है। वहाँ पर एक घर में एक दीपक जल रहा होता है। तट पर एक नाव रुकी है। जिसकी तरफ वह बढ़ता है। दूर पर अस्पष्ट सी लोगों की आवाजें सुनायी पड़ती हैं। जैसे ही वह नाव तक पहुँचता है नाव बहने लगती है। वह किनारे-किनारे चलते हुए नाव का पीछा करता है। तभी उसे प्रपात का शोर सुनायी देता है। प्रपात में पहुँचकर नाव टूट जाएगी इस भय से किसी तरह किनारे से कूद पड़ता है और बहती हुई नाव को पकड़ लेता है। नदी के वेग में एक टूटी पतवार लेकर वह तेजी से बहते हुए उस पार पहुँचना चाहता है। उस पार का दीप अब जैसे नदी की तरफ बढ़ता सा लगता है। दीप निकट होने लगता है। लगता है दीप बहुत पास आ गया है। वह चिल्लाकर उसे पकड़ना चाहता है तभी वह और उसकी नाव प्रपात के मुख पर होते हैं और वह अतल में गिरता जा रहा है गिरता जा रहा है।
और वह चीखकर नींद से चौंक उठता है। प्रायः उसने अपने इन सपनों को जाने क्या सोच कर किसी से नहीं कहा। दीदी तक से नहीं। उसे ऐसे सपने बराबर आते रहे हैं।

वैसे तो हर बरस ही गणेशोत्सव मनाया जाता था लेकिन उस साल बाबा साहब ने बहुत अच्छा गणेशोत्सव सम्पन्न करवाया था। किले के बड़े से मैदान में शामियाना तानकर झाँकी सजायी गयी थी। पहली बार महाराष्ट्रीय और अमहाराष्ट्रीय सम्मिलित होकर सम्पन्न रहे थे। वर्ना और बरस तो प्रायः महाराष्ट्रीय किसी को नहीं बुलाते। कई दिन पहले से खेल-कूद का आयोजन संगीत सम्मेलन नाटक-नाच आदि का प्रबन्ध किया गया था। उस समय मैं भी कोई आठ वर्ष का रहा होगा। पूरे कस्बे में जैसे उत्साह छा गया था। कस्बे भर में उत्सव-पूजन के लिए चन्दा आदि किया था लेकिन बाबा साहब का इसमें बड़ा हाथ था। किले का बड़ा दरवाजा बुर्जियाँ और सामने की दीवार आलोकित की गयी थीं। इस उत्सव को देखने आसपास के कई गाँवों के लोग भी आये थे।

किले के उस मैदान में गाँव के लड़के डंडों का खेल खेल रहे थे। इसके लिए विशेष रूप से रंगीन डंडे बनवाये गये थे। जिनमें हल्के घुँघरू लगे हुए थे। इस खेल को खेलते हुए सभी लड़के मराठी की ये पंक्तियाँ गाते जा रहे थे और खेलते जा रहे थे—

एक टिपरी घे
दूसरी मार गे
तिसरी बेउन
चौथी बदल ।

और इसी क्रम पर ढर्रो की आवाज एक लय-ताल में आ रही थी । साथ ही छोटे-छोटे घूँघरू अजीब सकोच-स्वर में जैसे उठ रहे थे । रात को वीरान हो जाने वाले उस किले की पत्थरों की प्राचीन प्राचीरों से ये आवाजें दुहरित होकर आ रही थीं । किले के दक्षिणी सिरे पर सामने ही बड़ी सी लकड़ी की हवेली वाली कचहरी अपने पेशवाई स्थापत्य में रात के उस गहन अंधकार में खड़ी थी । कचहरी के खजाने वाले हिस्से में से रोशनी आ रही थी । बाहर निकली लकड़ी की बुर्ज में पहरे का घंटा टँगा था जिसे पहरेदार बालू की घड़ी देखकर दूर घाट पर बजाता । श्रीधर भी वहाँ छोटे बच्चे डंडे खेल रहे थे खेल रहा था । तभी इन्दु दौड़ती हुई आयी ।

—चलो, तुमसे एक काम है ।

—मैं अभी खेल रहा हूँ ।

—फिर खेलना । जरूरी काम है ।

और अनिच्छा के साथ खेल छोड़कर श्रीधर साथ हो लिया ।

धामियामा भी पीछे छूट गया । उत्सव की आवाजें न दूर, न निकट, अजीब खोखिल प्रतिध्वनि में आ रही थीं । श्रीधर समझ न सका कि दीदी उसे कौन से काम के लिए कहाँ ले जा रही है । रात अभी शुरू ही हुई थी । कचहरी की प्रमुख इमारत से लगी दूसरी छोटी इमारतों में इस समय जो कि खाली थीं प्रतिध्वनियाँ भरी हुई थीं ।

—लेकिन इधर कहाँ चल रही हो दीदी ?

—चलो तो सही ।

और वे किले की दीवार पर चढ़ने वाली सीढ़ियाँ चढ़ने लगे । ऊपर बुर्जों पर जाने के लिए गोल मीनार में सीढ़ियाँ थीं । वहाँ बड़ी अजीब गंध आ रही थी । छोटी आबाबीलें अपने घोंसलों में चीं-चीं कर रही थीं । पैरों की आहट पर पहले तो कबूतर गुटर्गूं करते रहे लेकिन पदाहट को एकदम पास सुनकर एक कबूतर भयभीत होकर पंख फड़फड़ाता मीनार के एक गवाक्ष से होता हुआ उड़ गया । उसके परों की फड़फड़ाहट दीवार के बाहर की तरफ टकरा रही

की ओर लग रहा था नदी का शान्त सोया हुआ जल भी उस फड़फड़ाहट से प्रतिध्वनित हो रहा हो ।

दोनों बुर्जी पर पहुँचे । भाद्रपद किसी कोने में दूर आकाश के एक प्रदेश में मेघ घिरा था । चतुर्थी का चन्द्रमा नदी पार के सघन छतनार पेड़ों के ऊपर टिका था । नदी में कहीं चन्द्रमा का आलोक आभास दे रहा था ।
दीवार के एक कँगूरे पर झुकते हुए इन्दु बोली
—नीचे देखो नदी कितनी नीची है । और बहाव भी एकदम स्थिर है न ?
धीवर पार किसी सघन से आते हुए दीपालोक को देख रहा था । उसे यहाँ ऐसे चला आना सुहाया नहीं ।
—हाँ । नदी यहाँ सबसे गहरी है । कहते हैं हाथी-डूब पानी है यहाँ ।
उत्सव की आवाज यहाँ तक आ रही थी लेकिन अस्पष्ट । पूरबकी तरफ किले की दीवार पर एक विशाल पीपल झुका हुआ बाहर झाँक रहा था । कहीं-कहीं इसकी जड़ें दीवार में भी अजीब लिपटी हुई बाहर पसलियों जैसी दिखती थीं ।
सहसा एक मोर दो-तीन बार बोला जिसका उत्तर सामने के सघन से किसी दूसरे मोर ने दिया और यह मोर अपनी बड़ी सी पूंछ झुकाये एक बड़ी सी फड़फड़ाहट करता हुआ उड़ने लगा । दीपक-आलोक की इस झिलमिलिया में नदी में मोर की मद्धिम प्रतिच्छाया गिर रही थी । सहसा फड़फड़ाहट पर धीवर किंचित डर गया था और तभी इन्दु ने उसे अपने से सटाकर उसे बाँह में लेकर कहा
—डर गये थे न ?
जबकि सच में वह स्वयं ही डर गयी थी । एक क्षण को अनेक बातें उसके दिमाग में घूम गयीं । इस प्रकार की सुनसान जगहों में पुरानी इमारतों में किलों में साँप या ऐसे ही विषैले जीव-जन्तु निकलते सुने गये हैं । मान लो सहसा कोई निकल ही आये तो ?
और तभी उसने धीवर को अपने से खींचकर सटा लिया था ।
—मैं डरता नहीं दीदी ! चौंक गया था ।
—हाँ डरने की क्या बात है इसमें ? जानते हो तुम्हें क्यों लायी थी ?
—यहाँ बैठने को ।
वह धीवर के इस सीधे से उत्तर पर हँस पड़ी ।
—तो अब यहाँ बैठकर क्या करोगे ?
हँसते हुए बोली ।
—जो तुम कहोगी ।

—मैं न कहूँ तो तुम क्या करना चाहोगे यहाँ ?
—कंकड़ियाँ लेकर पानी में फेंकते हुए सोचता रहूँगा कि दीदी अब चलने को कहेंगी तब चल दूँगा ।
—तुम्हारा मन यहाँ नहीं लग रहा है न ? क्या चलें ?
—अभी तुम और बैठना चाह रही हो ।
—सच श्रीधर ! चतुर्थी का चन्द्रास्त देखकर चलेंगे । वो देखो हल्का हल्का उदासी मठ दिख रहा है ।

दूर सोमनाथ घाट वाले मन्दिर का घंटा नीचे कहीं टुनटुना रहा था । मन्द प्रकाश में नदी की काली तलहटी में बालू बिछी हुई धुँधली दिख रही थी । किले के पास से ही नदी काफी घुमाव लेकर पहाड़ के तल में होकर बहती हुई निकल जाती है । इसी घुमाव के एकदम सिरे पर उदासी मठ के परकोटे हैं, जहाँ एक घाट है । उसके महन्त अपनी एक पाठशाला चलाते हैं । वे भी बड़े अजीब आदमी हैं । एक तो वे अपना मठ छोड़कर कहीं नहीं जाते दूसरे वे सिर से पैर तक खादी ही लपेटे रहते हैं और एक चौकी पर दिन-रात बैठे रहते हैं । लोग उनके बारे में क्या सोचते हैं इसकी चिन्ता वे नहीं करते । उनकी एक शिष्या वेश्या है, जिसे वे नियम से संगीत तथा सितार सिखाते हैं । शाम को वे बढ़ई के औजार लेकर जाने क्या-क्या चीजें बनाया करते हैं । उन्होंने एक ऐसा चरखा बनाया था जिसमें कई तार निकलते थे और पैरों से चलता था । लोग बस तो उनकी बुराई किया करते थे लेकिन उनकी पाठशाला फिर भी कितने ही बरसों से चल रही थी । उस निर्लिप्त उदासी के बारे में लोग अधिक नहीं जानते थे लेकिन वह बहुत दबंग व्यक्ति थे । जब श्रीमन्त इस कस्बे में एक बार आये थे और जब वे नहीं आये तो खबर दी गयी कि याद किया गया है । लेकिन उदासी ने साफ कहलवा दिया कि मुझे तो सिर्फ एक ही बुलावा आना है ऊपर से और नहीं आऊँगा । जिसे आना हो वह यहाँ आये ।
—कभी तुम उदासी मठ गये हो ?
—कई बार ।
—उदासी जी से कितनी बार कहलवाया कि वे मुझे सितार सिखा दें लेकिन उनकी वही रट कि वे कहीं नहीं जाते । और बाबा साहब उनके यहाँ भेजने के पक्ष में नहीं । —देखो चन्द्रास्त हो रहा है । यामा की तिरस्करणियाँ कैसी झलमला रही हैं ।
श्रीधर बिना समझे चन्द्रास्त देख रहा था ।

—जानते हो कैसा लगता है ?
—कुछ खास नहीं
—तुम कुछ नहीं समझते । चलो उठो अब ।
किंचित रोष लिये इन्दु उठी । वह किले की दीवार की ओर बढ़ी । जो कि काफी चौड़ी थी जिस पर चार आदमी साथ-साथ चल सकते थे । कँगूरे भी काफी ऊँचे थे । दो कँगूरों के बीच की फाँक से नदी झलक जाती थी । एक कँगूरे से बाहर झाँकते हुए बोली
—अगर मैं कूद पड़ूँ तो क्या हो ?
—तुम क्यों कूदोगी ?
—सवाल क्यों कूदोगी का नहीं बल्कि कूद पड़ूँ तो क्या हो सकता है ?
—मैं कूदने ही नहीं दूँगा ।
—तुम मुझे पकड़ लोगे ?
—नहीं ।
—तब ?
—जोर-जोर से चिल्लाऊँगा ।
—तुम अपनी दीदी को रोकोगे नहीं ?
—क्यों नहीं रोकूँगा ?
—ऐसे ही ?
—नहीं एक बार कहूँगा कि दीदी यहाँ से जम्मू पहलवान ही कूद सकता है जो नदी में मठा जमाता है । तुम यहाँ से कूदोगी तो मर जाओगी ।
—मैं मर जाऊँगी तो तुम्हें क्या ?
—मुझे तुम्हारी याद आएगी ।
—सचमुच याद आएगी ?
—क्यों रोज जब घर जाता हूँ तो मुझे रात भर तुम्हारी याद आती है । सपने देखता हूँ ।
इन्दु हँस पड़ी । उसे सटा लिया ।
—सपने में अपनी दीदी को देखते हो ? लेकिन पहले तो कभी नहीं कहा ?
—कह देने से फिर तुम सपने में आतीं थोड़े ही ।
—अच्छा बताओ क्या देखते हो सपने में ।
—नहीं मैं नहीं बताऊँगा ।
—बताओ ।

और भीवर ने इन्दु को जैसे झकझोरते हुए कहा
—मैंने कह दिया नहीं बताऊँगा जाओ। जो मुझे हमेशा छोड़ जाने की धमकी देता है उसे भला अपने सपने की बातें क्यों बताऊँ? मैं तुम्हें खोजता हुआ पहाड़ों के शिखरों पर, झील के द्वीप में नदी की काली चट्टानों पर भटकता रहता हूँ और एक तुम हो कि
और भीवर हल्के से उच्छ्वसित हो उठा।
—तुम मुझे खोजते हो?
—कभी धूप का टुकड़ा होता है कभी दीप होता है।
—तो वह मैं हूँ?
—मैंने कब कहा?
—पागल!!
और इन्दु ने उसे अपने में कस लिया।
दोनों को ही लगा कि वर्षा-हवा थोड़ी-थोड़ी चल रही थी ठंडी भीगी लग रही थी। अब दोनों को ही हल्की गरमी अच्छी लग रही थी। भीवर, इन्दु के सीने में मुँह छुपाये खरगोश की तरह चुप था। इन्दु, नदी पार चन्द्रास्त हो चुके आकाश को देख रही थी। बार-बार उसके मन में यही घिर रहा था—मैं तो पहाड़ों के शिखरों पर, झील के द्वीप में नदी की काली चट्टानों पर खोजता भटकता हूँ और एक तुम हो कि—

एक आयु के बाद सब किसी न किसी की खोज में निकल पड़ते हैं। उस खोज में मन होता है सुदूर का सम्भ्रम होता है और अयाचित माया होती है। उसे ओफीलिया याद हो आयी। नीचे साथी नदी में जैसे गुनगुनाती कोई लाश जा रही हो ओफीलिया ही जैसे हो। किस के पत्थरों से टकराता वह अन्तिम मृत्यु संगीत जैसे नदी तल के तल से ऊपर उठता हुआ उस तक आ रहा है आ रहा है। नदी बहती जा रही है। संगीत का गायक अज्ञात में चला गया है जिसे जाते हुए भाद्रपद के कुछ तारों ने संभवतः देखा हो।
और पता नहीं वह क्यों फूट पड़ी।
भीवर चौंका
—दीदी! क्या हुआ? रो रही हो? मैंने तो वैसे ही कह दिया था।

—भीमर ! नदी पर अभी कोई गाता हुआ गया तुमने सुना ?
—नहीं तो ।
गहरी निश्वास छोड़ते हुए बोली,
—अच्छा अब चलो ।
—दीदी !
—क्या बात है ?
—तुम मेरी सगी दीदी होती तो कितना अच्छा होता ।
—सगा-सौतेला क्या होता है ?
—नहीं सगी होतीं तो तुम हमारे घर ही रहतीं । फिर हम लोग खिड़कियों के पास अपने बिस्तरों पर लेटे बहुत देर तक बातें करते रहते । कितना अच्छा होता न दीदी ?
इन्दु ने फिर भीमर को समेट लिया ।

जिस दिन नौटंकी हो रही थी उस दिन काफी भीड़ थी। मंच के पास पहली पंक्ति में बैठे हुए इन्दु और श्रीधर भी "राणा अमरसिंह" देख रहे थे। किनारे पर एक नगाड़े वाला 'किड़किड़ धाम' 'किड़किड़ धाम' की आवाज में पीटे जा रहा था। उसका एक साथी एक कान पर हाथ रख कर बड़ी जोर से आवाज ऊँची कर गा रहा था

कलकत्ते की कालिका
और परबत पर हिलकाय।
अब गाते हैं साथियो!
अमरसिंह की राय।
और—
'किड़िकिट, किन्किन किड़ीड़ी कड़ीडी किट, किड़ किड़ धाम किड़ किड़ धाम धाम धाम!!

और नगाड़ा तभी थमता जब पर्दा उठता और राणा अमर सिंह तलवार कसे जामा और पाजामा पहने पाउडर मले कड़कते हुए पैर पटकते पार्श्व से आते।

तभी वे कव्वालों की तर्ज में पढ़ने लगते। इन्दु और श्रीधर कितनी तन्मयता से यह नौटंकी देखते होते। जब तक नौटंकी चलती रही श्रीधर, अमर सिंह में खोया रहा। राणा जिस प्रकार वेश्याओं के नाच के समय हँसता हुआ मूँछें उमेठ रहा था कि तभी नाचती हुई एक वेश्या का मोगा मंच की दरी में पता नहीं कैसे उलझ गया। वह धड़ाम से गिर पड़ी। अमर सिंह झटके से उठा ताकि उस वेश्या को सम्हाले लेकिन झटके के कारण अमरसिंह की मूँछें निकल कर अलग जा गिरीं और वेश्या के सिर के बाल अलग जा गिरे और इन्दु और श्रीधर तब खूब हँसे जब वह वेश्या लड़का निकली। लौटते में रास्ते भर गाड़ी में इन्दु और श्रीधर हँसते रहे।

थोड़े दिनों बाद से ही प्रायः रविवार या छुट्टी के दिन जाने के लिए इन्दु के द्वारा कहा किया जाता था। सम्भवतः उसी दिन इन्दु, बाबा साहब के साथ मौसम नहीं करती अन्यथा रात ही वे साथ जाते थे। एक दिन सीधर जब पहुँचा तो जनवरी की धूप में सामने वाली छत पर एक शीतलपाटी बिछाये इन्दु पीठ किये बाल सुखा रही थी। सामने के तालाब पर धूप जल सीधी छितरी हुई थी। आसपास के गाछ के पत्ते जाड़े में जल गये थे। पतझर शुरू हो रहा था। कहीं-कहीं किसी-किसी पेड़ ने असाधारण जल्दी पत्ते झरा दिये थे। तालाब के इस तट पर ढेर सारे पत्ते गिरे हुए थे। तेज हवा थी। इन दिनों वृष्टि होती है इसलिए दिन प्रायः कम ही सूखे रहते हैं। जिन दिनों पानी गिरता है उन दिनों ठंड बहुत बढ़ जाया करती है। अभी कल तक ऐसा ही मौसम था। ऐसे मौसम में प्रायः घरों में आग मिट्टी की सिगड़ियों या मालसी की अँगीठियाँ जमा कर तापा करते हैं। आज कई दिनों बाद दिन खुला था। तड़पता सब घाम जैसा फैल आया था लेकिन सुहावना लग रहा था। इन्दु के कंधे हल्की बादामी रंग की शाल में ढँके हुए थे। बाल चूँकि धोने सूख

रहे थे उनमें धूप कहीं-कहीं आड़ी तिरछी गिरती हुई इन्द्रधनुष की छोटी-छोटी चमेली के फूल सी चमक रही थी । गाव तकिये पर कुहनी टिकाये वह कोई किताब या अखबार देख रही थी । श्रीधर दबे पाँव बढ़ा । रेलिंगों के पास इन्दु का करमाया फड़क रहा था । वह बहुत हौले से पहुँचा और बालों के दोनों ओर से हाथ बढ़ाकर झट से इन्दु की आँखें मूँद दीं । एक क्षण तो वह चौंकी । धूप के कारण हल्की गरम हुई आँखों पर ठंडे हाथ बड़े अच्छे लगे ।

—कौन है ?

उसने ऐसे कहा जैसे उसने नहीं पहचाना ।

श्रीधर अपनी हँसी ओठों में दाबे चुप झुका था ।

इन्दु ने अपने नहाये गोरे हाथों की लाल हथेलियों से श्रीधर के हाथ ढँक लिये । उसकी आँखों में दबाव के कारण तारे चल रहे थे । वैसे ही बैठी रही और वह खिलखिला पड़ी

—अच्छा अब छोड़ो ।

—पहचानो पहले ।

—अरे मूर्ख जब तुम बोल ही पड़े तब क्या पहचानना ?

और दोनों हँसने लगे ।

—कितनी जोर से आँखें बन्द कीं तुमने ।

सामने बैठते हुए श्रीधर ने पूछा

—यह क्या पढ़ रही हो ?

—यह कालिदास का मेघदूत है । तीन दिन में पढ़कर इस पर एक निबन्ध लिखकर बाबा साहब को दिखाना है ।

—यह संस्कृत है ?

—हाँ ।

—तुम्हें आती है ।

—नहीं ।

—ब्राह्मण होकर संस्कृत नहीं आती ?

—तुम्हें तो आती है ।

—मुझे आने से तुम्हें आ जाएगी ?

—तुम पढ़कर सुना ही दोगे ।

—अच्छा तो मैं तुम्हारी नौकरानी हूँ ।

—नहीं दीदी ।

—तो क्या दीदी हमेशा ही तुम्हारे साथ रहेगी ?
—क्यों कहाँ जाओगी ?
—तुम्हारे जैसे मूर्ख के साथ रहने से ज्यादा अच्छा होगा कि कहीं भाग ही जाऊँ। और देखना एक दिन भाग ही जाऊँगी। मूर्ख के साथ कब तक रहा जा सकता है ?
इन्दु खिलखिला आयी।
श्रीधर गंभीर हो आया। उसने आज दीदी को पहली बार नहाने के बाद इस तरह खुले बालों में देखा था। उसे लगा कि दीदी खुले बालों में ही बहुत अच्छी लगती है। हल्के गरम होते हुए बालों में धूप आँई मन कर सिर में छितरी हुई थी। वह दीदी के बालों को छूना चाहने लगा। दीदी का अंडाकार मुख चन्दन के वर्ण में हल्का आरक्तित हो रहा था। नहायी हुयी गीली पलकें अभी भी एक दूसरे से चिपकी थीं। ठोड़ी कैसी उजला आयी थी। आँखों का काजल धुल गया था इसलिए किंचित निरीह सी लग रही थी जैसे बरज रही हों कि बिना काजल के हमें ऐसे न देखो बहुत बुरी लग रही हैं न ? काजल हमें साधे रहता है।
दीदी ने बिना आँखें उठाये ही पूछा
—क्या देख रहे हो श्रीधर ?
—तुम्हें।
इन्दु को श्रीधर से इतने सीधे उत्तर की आशा नहीं थी। सिर उठा किताब बन्द कर बोली
—तुम क्या देख रहे हो ?—ओह, बाल अभी सूखे नहीं हैं।
और इन्दु बालों में अँगुलियाँ चलाने लगी।
—दीदी ! तुम बाल गीले ही रखा करो।
—क्यों जड़ा नहीं जाऊँगी ? जुकाम जो हो जाएगा।
—समझ क्या लेकिन तुम बहुत सुन्दर लगती हो।
—अरे वाह, अब तो तुम सौन्दर्य भी पहचानने लगे ?
और वह बहुत कुमारनी हँस उठी।
—मुझे पहले नहीं मालूम था कि तुम इतनी सुन्दर हो।
—वर्ना क्या करते ?
हँसते हुए पूछा।
—वर्ना क्लास में ताजमहल पर निबन्ध लिखते हुए लिखता कि मुमताज इतनी

सुन्दर थी जितनी कि मेरी इन्दु दीदी और इसीलिए शाहजहाँ ताजमहल भी बनवा सका।

—अच्छा बहुत बकवास न करो। आज कुछ पढ़ना-वढ़ना नहीं है?

—पढ़ना है, लेकिन एक शर्त।

—अच्छा जी।

—और वह यह कि यहीं बैठकर ऐसे ही उन बादलों में बैठकर पढ़ाओगी तो पढ़ूँगा।

—नहीं तो?

—नहीं तो नहीं तो   हैमलेट की तरह वैसे ही डाँटूँगा जैसे उसने ओफीलिया को डाँटा था।

इन्दु बहुत गंभीर हो आयी। उसने सामान उठाया और बिना बोले चल दी। श्रीधर अवाक देखता ही रह गया। कुछ समझ में नहीं आया कि दीदी सहसा क्यों चली गयीं। क्या नाराज हो गयीं? क्या उसने कोई गलत बात कह दी? दीदी के पीछे-पीछे खरगोश भी फुदकता जा रहा था। उसे एकदम उलझन अनुभव हुई। उसे लगा कि उसने डाँटने वाली बात जो कही वह नहीं कहनी चाहिए थी। आखिर दीदी बड़ी हैं। भला वह उन्हें कैसे डाँट सकता है?

वह स्वयं ही खिसियाया सा रेलिंग थाम तालाब देखने लगा। बीच में बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं। कुछ हंस तैर रहे थे। नहाने वालों की कतार आ-जा रही थी। आकाश गहरा हुआ नीले शिखरों के ऊपर बहुत ऊँचा उठ रहा था। कुछ चीलें मँडराने लगी थीं। वह शायद काफी देर तक ऐसे ही खड़ा-खड़ा देखता रहा। तभी नौकर ने आवाज दी कि खाना लगा दिया गया है। बुला रहे हैं।

खाने वाले कमरे में रोज की तरह वैसे ही पाट लगे थे। अगरबत्ती जल रही थी। रंगोली की सज्जा भी वैसी ही थी। पानी के लोटे गिलास एकदम धुले चमक रहे थे। थालियाँ लगी हुई थीं। दीदी बैठका जमाने के ख्याल से ऐसे व्यस्त हो रही थीं कि जैसे खाना ठंडा हुआ जा रहा है, चलो, चलो जल्दी करो। बातें बाद में हो जाएँगी इस समय तो एक दम खाना शुरू कर ही

किया जाना चाहिए। श्रीधर वस्तुस्थिति की गंभीरता समझ फिर नया बैठने को ही था कि दीदी ने नौकर को आदेश दिया

—हाथ नहीं धुलाये आज दामोदर ?

और श्रीधर को लगा कि दीदी को बिना देखे भी मालूम है कि उसने हाथ नहीं धोये और दामोदर के माध्यम से वास्तव में बात तो श्रीधर से ही कही गयी थी।

दोनों ने चुपचाप खाना खाया और कमरे लौटे।

अब श्रीधर के सामने अधिक दुविधा थी कि वह दीदी से क्या बात ? क्या वह कर क्षमा माँगे ? और किस बात की ? ओफीलिया को हैमलेट ने डाँटा ही तो था तो ?

इन्दु चौकी पर सिर नवाकर कोई पुरानी मराठी की पत्रिका पढ़ने लगी। सामने कुर्सी पर श्रीधर काफी देर तक छत ताकता रहा। कितनी ऊँची छत है यह तो पहले कभी ध्यान गया ही नहीं था। छत में बीचोबीच एक बड़ा सा कमल रंगों में बना था। जिसमें से एक झाड़फानूस झूल रहा था। शीशे के इस फानूस में शीशे के रंग-बिरंगे प्रिज्म लटक रहे थे। जब वह छत पूरी तरह देख चुका बल्कि कमल में इक्कीस पंखुरियाँ हैं और यह भी वह कई बार गिन चुका तथा उसकी गर्दन में दर्द होने लगा तो उसने एक बार दबी दृष्टि से देखा कि दीदी क्या कर रही हैं ? दीदी तो बाद तकिये में कुहनी गड़ाये ठोढ़ी मुट्ठी पर टिकाये आराम से पत्रिका पढ़ रही थीं। उसे लगा कि दीदी को किसी बात की चिन्ता ही नहीं है। लेकिन यह श्रीधर से बोल क्यों नहीं रही हैं ? वह दो एक बार हल्के से खाँसा भी ताकि दीदी उसकी ओर देखें। ऐसे उजबकों की तरह बैठे रहना उसे बड़ा अजीब लग रहा था। उसने दीवार पर लगे बारहसिंघे के सींगों के घुमाव गिनते हुए फिर खाँसा।

—खाँसी आ रही है तो पानी मँगवाकर पीओ।

दीदी ने उसी तरह पत्रिका पढ़ते हुए कहा। उसने देखा कि दीदी के मुँह मुख पर भाव कुछ वैसे ही हल्के उभर आये हैं जैसे कि हँसते समय हो आया करते हैं। उसे कुछ ढाढ़स बँधा कि दीदी का क्रोध कुछ कम हुआ। अब वह और जोर जोर से खाँसने लगा तथा हिरनों के सींगों में कितने घुमाव हैं इसे गिनने लगा।

—एक दो तीन ।

इन्दु ने बैठे हुए दामोदर को आवाज दी कि एक गिलास पानी ले आये।

दामोदर पानी दे गया। श्रीधर ने पानी पी लिया। नौकर चला गया। अब

मीचर अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए कोई दूसरी तरकीब सोचने लगा। और सहसा वह जोर जोर से कहने लगा

—पानीपत की तीसरी लड़ाई इब्राहीम लोदी और बाबर में हुई थी। लोदी मारा गया। बाबर भारतवर्ष का बादशाह बना। उसने भारत में मुगलवंश की नींव डाली। इस मुगलवंश में हुमायूं, अकबर, जहांगीर, औरंगजेब आदि प्रसिद्ध सम्राट हुए। आखिरी बादशाह बहादुर शाह को अंग्रेजों ने रंगून में बन्दी बना कर रखा था। वह कवि भी था।

इन्दु एकदम तेजी से उठी और हाथ की पत्रिका पटकते हुए बोली

—आखिर तुम चुपचाप नहीं बैठ सकते ?

—मुझ से तुम नाराज क्यों हो ?

—मैं किसी से नाराज नहीं हूँ।

—फिर बोलती क्यों नहीं ?

—मुझे फिजूल की बकवास नहीं आती। तुम्हारी तरह इतिहास लेकर ही चिल्लाना मुझे नहीं आता।

—मैं जानता हूँ जिस बात पर तुम मुझसे नाराज हो।

—नहीं मैं किसी बात पर नाराज नहीं हूँ।

—नहीं तुम हो। मुझे वह डाँटने वाली बात नहीं कहनी चाहिए थी। मैं छोटा हूँ। मुझे क्षमा कर दो दीदी! आगे कभी मैं ऐसा नहीं करूँगा।

इन्दु ने एकदम दौड़कर मीचर को अपने से चिपका लिया। उसका सिर अपनी ठोड़ी से दाबते हुए वह स्वयं ही बुदबुदा रही थी।

—नहीं नहीं मीचर! सच ही मैं तुमसे कभी नाराज हो ही नहीं सकती। तुम्हारी वह बात मुझे बहुत अच्छी लगी थी सच मानो बहुत ही अच्छी लगी थी।

और शाम से मान सदा वह फूट पड़ी। जैसे अनेक दिनों उपरान्त उसे मीचर मिला हो वह फिर बुदबुदा रही थी

—मीचर! तुम नहीं समझ पाओगे। कभी नहीं समझ पाओगे। पता नहीं जब तुम इस सबको कुछ समझोगे तब क्या समझोगे। और तब पता नहीं मैं कहाँ हूँगी। आज का यह दिन जब बहुत धुंधला विगत हो जाएगा तब आज का मीचर ऐसे समीप थोड़े ही होगा? जाने कहाँ सब व्यतीत जाएगा? जाने कहाँ??

पता नहीं दीदी क्या क्या बुदबुदा रहीं थीं। उन्होंने अपनी दोनों हथेलियों में मीचर का मुख भर लिया और देखने लगीं।

दीदी की आँखों में छलछलाहट थी। वे आँखों में झाँकते हुए भी सुदूर आसमान सी देख रही थीं। वह तन्मय होकर देख रहा था।

—दीदी !

—हूँ।

वे उसी तरह डूबी हुई थीं।

—बाल खोल दूँ ?

उनकी आँखें अजीब तृष्णा से तृप्त प्रश्नात्मक भरी सीपों सी हो आयी थीं। आँखों से ही बरौनियाँ उठाकर बता दिया कि खोल लो। बाल फिर घिर आये थे। कमरे के आलोक में हल्का उजला ठंडापन था। घिरे बाल दीदी के मुख पर झाईं-से रहे थे। श्रीधर की आँखों में दीदी का मुख ही मुख भर आया था। उसके भीतर में जैसे कोई श्रेष्ठगान बना हुआ था। यदि वे बोल पड़ें तो वह गान आज का सबसे श्रेष्ठगान होगा। कहते हैं श्रेष्ठगान सुनने के लिए आकाश में देवता और किन्नर आते हैं। दीदी के बाल—काले नाग चमक रहे थे। वह दीदी के पास खड़ा है। एक दिन वह दीदी से कहेगा कि दीदी जैसे धूप और जल की छुअन अन्दर तक पैठ जाती है वैसे ही तुम्हें छूना चाहता हूँ। क्योंकि धूप और जल के अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति पवित्र है तो वह तुम हो। दीदी तुम सबसे पवित्र हो। सम्भवतः धूप और जल से भी अधिक।

एक बार होली पर दीदी के भाई वामन राव अजमेर से आ गये थे। वामन राव वैसे तो श्रीधर से दो एक बरस ही बड़े रहे होंगे लेकिन उनमें अपेक्षाकृत बड़प्पन अधिक था। वे सिर्फ बाबा साहब से ही दबते थे। बाकी इन्दु तक से सीधे मुँह बात नहीं करते थे। नौकरों को बात-बात में मार बैठना उनके लिए सहज था। व जब कभी आते तो घर भर में लोगों पर दहशत छा जाती थी। इन्दु भी वामन राव से अधिक बात नहीं करती थी। लेकिन फिर भी बाबा साहब और इन्दु के लिए वामनराव का आना उत्सव का कारण हो जाता था। काफी कुछ नाच-गाना खान-पान होता था। वामन राव सबेरे से ही घोड़े पर घूमने के लिए बैजनाथ निकल जाते। या फिर छावनी के कुछ अफसरों के लड़कों से मैत्री थी उनके साथ कभी शिकार पर निकल गये। बस तालाब में मछलियों का शिकार मना था लेकिन वामन राव जरूर ही मछलियों का शिकार करते थे। उनको इससे वितृष्णा थी कि उनकी बड़ी बहन एक साधारण लड़के को सगे भाई की तरह स्नेह करती है। इसलिए प्राय वे जब कभी आते तो हर बार श्रीधर को पहली बार देखने पर पूछते

—कौन है ये ?
—अरे भूल गये ? श्रीधर है।
—अच्छा अच्छा।
और अत्यन्त उपेक्षा से वे कमरे से निकल जाते।

उस दिन होली थी। एक दिन पहले तक प्रतीक्षा के बाद भी बामन राव नहीं आये तो यह कार्यक्रम बना कि सबेरे रंग खेला जाएगा उसके बाद साँझ को सब लोग पाठ के लिए बैजनाथ जाएँगे। उसमें श्रीधर के परिवार के साथ बाबा साहब के कुछ सम्बन्धी इष्ट-मित्र सभी सम्मिलित किये गये थे। ऐन होली के दिन बामन राव आ गये। सब को बहुत प्रसन्नता हुई। शायद इन्दु ने खूब रंग का प्रबन्ध कर रखा था। नीचे मैदान में बड़े-बड़े हौज रंग के भरवा रखे थे।
कस्बे के लोग आते जा रहे थे और रंग खेलते जा रहे थे। बाबा साहब और इन्दु भी खूब रंग खेल रहे थे। बारंबार बामन राव को रंग खेलने के लिए बुलाया गया लेकिन वे नहीं आये। क्योंकि रंग खेलने को वे हिन्दुस्तानी बर्बरता समझते हैं। बाबा साहब तथा इन्दु को सुनकर बुरा लगा लेकिन वे चुप ही रहे। उसके बाद पाठ के लिए वे लोग चले। इन्दु जानती थी कि यदि पाठ के लिए वह बुलाने जाएगी तो अवश्य ही बामन इन्कार कर देगा। इसलिए बाबा साहब ने ही उसे बुलाया और वह आ गया। एक ही फिटन में बामन राव, इन्दु और श्रीधर। इन्दु को अनुभव हो रहा था कि बामनराव को श्रीधर का ऐसा साथ बैठना सहा नहीं जा रहा है। वह बीच में बैठी थी। बामन कहीं कुछ बकबका न दे इसलिए बामन राव से उसी के बारे में बातें करती जा रही थी
—तो तुम्हें तो यहाँ अच्छा क्या लगता होगा ?
—यहाँ दीदी! क्या रखा है ? सिर्फ मूर्ख बसते हैं। देखती नहीं हो कितने छोटे लोग रहते हैं चारों ओर। मेरा तो दम घुटता है। पता नहीं तुम लोग यहाँ कैसे इन लोगों से घुलमिल सकते हो ? यहाँ तो बस पूछो नहीं। जाने कहाँ-कहाँ

के राजकुमार पढ़ते हैं। प्रिन्सीपल से लेकर प्रोफेसर तक अंग्रेज हैं। दीदी ! कभी तुम एक दिन भी वहाँ पढ़ लेतीं तो एक तो इन हिन्दू देवी-देवताओं के चक्कर से छूट जातीं दूसरे ऊँची सोसाइटी में कैसे उठना-बैठना चाहिए, रहना चाहिए सब आ जाता। मैं तो जब यहाँ आता हूँ सिवाय बाबा साहब और तुम्हारे किसी से बात नहीं कर सकता। मैं तो यहाँ कभी नहीं रह सकता।

और इन्दु देखती ही रही गयी कि यह उसका भाई है जो अभी सिर्फ मेयो कालेज अजमेर तक ही गया है। अगर कहीं यह विलायत चला जाए तो अपने घर क्या इस देश में ही कभी न लौटे। अपने अतिरिक्त दूसरों को 'छोटे लोग' सुनते सुनते उसे वितृष्णा हो गयी। जब यह दूसरों के बारे में बातें करता है तो कैसे मुँह बनाकर बातें करता है जैसे दुर्गन्ध आ रही हो। अपने को किसी अंग्रेज से कम समझता है ?

जब वे लोग बैजनाथ पहुँचे तीसरा प्रहर था। जात्रा (मेला) वाले मैदान में नौकर और रसोइये पहले से ही भोजन-पानी में लगे हुए थे। दो एक छोलदा रियाँ भी लगी हुई थीं। चारों ओर की शान्त अमराई तथा एकान्त वन इतने आदमियों के आ जाने से जैसे आवाजों में जाग उठा हो। इन्दु, श्रीधर और वामन राव के अलावा करीब पाँच-छह लड़के-लड़कियाँ और थे। जिनमें श्रीधर के भाई श्रीमोहन और श्रीवल्लभ भी थे। भोजन में अभी काफी देर थी इस लिए सबको नाश्ता करवा दिया गया। नाश्ते के बाद सारे बच्चे सामने की छोटी-छोटी पहाड़ियों पर दौड़ गये। इन पहाड़ियों पर शरीफों के पेड़ बहुत थे लेकिन फाल्गुन था इसलिए शरीफे नहीं थे। वामनराव श्रीमोहन को साथ लेकर अपनी पिस्तौल और छर्रेवाली बन्दूक से चिड़ियों के शिकार के लिए पहाड़ी के उस पार निकल गये। दूसरे भी अपनी अपनी टोलियाँ बनाकर या तो गुल्ली डंडा या पुनाम-डंडा खेलने के लिए मैदानों में दौड़ रहे थे या किसी डाल पर चढ़कर कूद-फाँद रहे थे।

चारों ओर ऊँट की कूबड़ों की तरह दूर-दूर तक पहाड़ियाँ उठती गिरती

चली गयी थीं जैसे बड़ी-बड़ी हरी लहरें क्षितिज में उतरी हों। बैजनाथ का नाला इन्हीं पहाड़ियों में लुकता-छिपता कहीं दूर चला जाता है। इन्दु और धीवर उसी पहाड़ी नाले के साथ-साथ चले जा रहे थे। चट्टानों की परतें धूप में हल्की चमक रही थीं जैसे उन्हें किसी ने अबरक से अभी छिड़का हो। नाले के उस पार एक पगडंडी भी थी जो उनके साथ-साथ चल रही थी। जिस पर कभी कोई भीलनी जंगली लकड़ियों का भारा बनाये अपना घाघरा झोले कूल्हे हिलाती निकल जाती। नाले का पानी छल-छल करता बह रहा था। उसके स्वर या तेज बहाव में वही उन्माद था जैसे कि कोई बड़ी भारी नदी हो और वह भी किसी भारी समुद्र-संगम की यात्रा पर निकला हो। नाले में एक जगह पार जाने के लिए पत्थर रखे हुए थे। वे पत्थरों पर छलाँगते उस पार पहुँच गये। यह पहाड़ी अपेक्षाकृत ऊँची थी।

—धीवर! चलो इस पर चढ़कर वहाँ किसी चट्टान पर बैठेंगे।

—चलो।

और वे एक पहाड़ी पगबाट पर फिसलते-चढ़ते चढ़ने लगे। इन्दु को पता नहीं था कि पहाड़ जितने ऊँचे लगते हैं उससे अधिक ऊँचे वे अपनी चढ़ाई के कारण और भी हो जाते हैं। इन्दु जल्द ही हाँफ गयी। हालाँकि उसने अपनी साड़ी कस ली थी फिर भी झाड़ों में कभी-कभी उलझ ही जाती थी। धीवर काफी ऊँचे पहुँच गया था। वहाँ से अकेले इन्दु को आवाज दी। वह किसी सघन झुरमुट की छाया में सुस्ता रही थी।

—धीऽवर–ई–ई

धीवर की चिल्लाहट इन्दु ने सुनी।

—धीवर!!

दीदी के पुकारने को धीवर नीचे किसी झुरमुट में व्यवस्थित कर लेना चाहता था।

—कहाँ हो?

—यहाँ नीचे।

—आती क्यों नहीं?

—तुम चलो। थोड़ा सुस्ता लूँ।

धीवर समझ गया कि दीदी थक गयी है। वह जमीन पर बैठे-बैठे कर हाथ टिकाए नीचे उतरा और दीदी के पास पहुँचा। वे अजीब ढंग से मुस्करा रही थी। धीवर को वह मुस्कराहट भा गयी। वह देखता ही रहा। दीदी

चट्टान का तकिया बनाकर पीठ टिकाये आराम से सुस्ता रही थीं। झुरमुट में धूप छन कर आ रही थी। सबेरे के खेले गये रंग की हल्की-हल्की झाईं अभी भी थी। गालों में जैसे हल्की चिकनई आ गयी थी। खूब नहा लिया गया था फिर भी बालों की जड़ें स्वस्थ रंजित थीं। दीदी बराबर मुस्करा रही थीं। पास की चट्टान की ओर संकेत करते हुए बोलीं

—बैठो चलते हैं।

श्रीधर के मन में कहीं यह लोभ भी था कि यदि वह पास में बैठ जाएगा तो वह दीदी को ठीक तरह से देख नहीं पाएगा।

—अरे बैठो न ?

—नहीं तुम आराम कर लो। मैं खड़ा हूँ।

—तो तुम मुझे आराम नहीं करने दोगे ? सच मैं तो थक गयी।

और वे उठने लगीं।

—दीदी ! शपथ तुम्हें। ऐसे ही बैठी रहो।

—क्यों ? चलना नहीं ऊपर ?

—चलना तो है लेकिन थोड़ी देर ऐसे ही बैठी रहो ?

वे बहुत मीठा हँसते हुए बोलीं जैसे उन्हें सब मालूम है कि क्यों कहा जा रहा है।

—लालची कहीं का। धत् !!

और वे उठकर दौड़कर चढ़ने लगीं। श्रीधर ऐसे सहसा भागने पर हतप्रभ हो आया। वह भी पीछे-पीछे चढ़ने लगा। जब वे पहाड़ी के सिरे पर पहुँचे तीसरा प्रहर सम्पूर्ण होने को था। चारों ओर क्रमिक नीचा बहुत नीचा होता हुआ दृश्य दिख रहा था। जो अमराई जहाँ खाना बन रहा था कैसी गहराई में नीचे छोटी सी दिख रही थी जैसे मधुमक्खी का हरा छत्ता हो। उसमें से उठता धुआँ जैसे दूर-दूर तक छितराता हुआ बहुत ऊपर उठने की चेष्टा में पूरब बार ऊँचा मुँह किये जैसे बढ़ रहा था। बैजनाथ का मन्दिर, नाना जैसे खिलौने के मन्दिर और नाके जैसे लग रहे थे।

श्रीधर पहाड़ी के उस दूसरी तरफ एक चट्टान पर खड़ा देख रहा था। वहीं से चिल्लाया—

—दीदी ! देखो वोऽऽही पार्वती नदी।

—कहाँ ?

और अब दोनों चट्टान पर खड़े सामने के क्षितिज में चाँदी की चमकती

पगड़ी सी पार्वती की रेखा देख रहे थे। इधर एक भी पहाड़ी नहीं थी। सब खेत ही खेत थे। जैसे रंग बिरंगे कपड़ों की कथा हो। कभी किसी बकरी की में-में सुनायी पड़ जाती या फिर गोरुओं की घास चरते हुए गलघंटियाँ। हल्के कहीं से किसी चरवाहे की फूहड़ बाँसी-स्वर जैसे पहाड़ों को पुकार रही हो। गलघंटियाँ फूहड़ बाँसी और अपरिचित असीम विस्तार जैसे नोहती हुई बड़ी सी भाँति आमंत्रण नरी।

—कितना अच्छा लगता है न यहाँ श्रीधर ?

—बहुत अच्छा।

इन्दु जैसे इतने उन्मुक्त बहुत अच्छेपन में दुखी हो आयी। किसी याद की टीस में।

—क्या यहाँ ऐसे ही ऐसे ही हमेशा-हमेशा के लिए हम तुम नहीं बैठे रह सकते ?

—क्यों नहीं।

—मूर्ख ! !

और इन्दु ने श्रीधर का एक हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया।

—क्यों ?

श्रीधर ने बिल्कुल सरल भाव से कहा।

—अरे मूर्ख कोई क्यों क्या किसलिए आग लगाकर होता है ?

और इन्दु जैसे सहसा फूट आयी। वह बहुत सुखी लग रही थी।

—मेरा मतलब क्यों से यह नहीं था कि मैं मूर्ख क्यों हूँ बल्कि हम क्यों नहीं यहाँ ऐसे ही बैठे रह सकते हैं ?

—इसलिए कि थोड़ी देर में ही सूर्यास्त हो जाएगा। फिर अँधेरा हो जाएगा। तब जंगली जानवर निकलेंगे और हमें यहाँ ऐसे बैठे देख कर खा नहीं जाएँगे ?

—हाँ यह तो है।

—यह क्या है ?

—कि वे हमें खा जाएँगे।

—और यह भी पंडित श्रीधर ठाकुर ! कि हमें-तुम्हें लोग खोजते हुए लाठियाँ और लालटेन लेकर निकलेंगे और जब मूर्खों की तरह यहाँ बैठे देखेंगे तो कान उमेठे जाएँगे ऐसे

और हँसते हुए इन्दु ने किंचित जोर से श्रीधर के कान उमेठ दिये।

—आह बड़ी जोर से कान उमेठ दिया तुमने दीदी !

—और यह भी कि धूप जब चली जाएगी न तब ये सब इतना सुहावना धन समेट कर सूर्य अपने साथ जाने कहाँ ले जाएगा तब यही अन्धकार पगली सप्पर की तरह अपनी काली भयावनी पूँछ फुँफकारता हुआ बीछगा। उस समय तब इतने निश्चिन्त होकर बैठ सकोगे ?

—क्यों चाँदनी रात में अच्छा नहीं लगता होगा ?

—चाँदनी रात में जरूर अच्छा लगता है लेकिन व्यापक एकान्त सब किसी के बस में थोड़े ही होता है कि उस आनन्द मान सके।

—यह तो बुरी बात है।

दीदी की बात न समझते हुए उसने कहा

—बुरी बात तो है ही कि हम व्यापक सौन्दर्य में अपने को अरक्षित पाते हैं। क्योंकि उस व्यापकता में जब कोई भी अपनी बात नहीं सोचता—न नदी न पहाड़ न खेत न क्षितिज न दिशाएँ न तारे न आकाश—केवल मनुष्य ही अपनी रक्षा भी चाहता है और व्यापकता से एकाकार भी। लेकिन श्रीधर ! मनुष्य को अपनी इस क्षुद्रता का दण्ड भी भुगतना पड़ता है। वह जाने कहाँ-कहाँ भटकता है। जाने किन-किन इच्छाओं के लिए वह लम्बी-लम्बी यात्राएँ करता है। उसे क्या मिलता है ? और एक दिन वह इस व्यापकता में अनाम एस ही चू पड़ता है जैसे कोई फल। आकाश तारे नदी पहाड़ सूर्यास्त चन्द्रोदय किसी को पता नहीं चलता कि हम चू पड़े हैं। एक दिन ऐसे ही हम भी चू पड़ेंगे। उस चू पड़ने के पहले ही श्रीधर ! तुम्हारी यह दीदी चली जाने वाली है।

एकटक्य की भाँति बैठा हुआ श्रीधर अपनी दीदी के मुख को कभी बंद कभी खुली आँखों को देखते हुए केवल सुन रहा था। दीदी गहरी निश्वास लेते हुए बहुत आवेश में वैसे ही बोल रही थी जैसे कि वे हेमलेट पढ़ते हुए बोलती हैं। श्रीधर मंत्रमुग्ध कुछ समझने के प्रयास में मौन था कि—दीदी चली जाने वाली हैं—इस बात से उसे ठेस लगी।

—कहाँ ? दीदी ! कहाँ जाने वाली हो ?

और उसने आवेश में दीदी के हाथ को झकझोरते हुए कहा। दीदी उस समय दूर कहीं देख रही थीं। उसके बाद उन्होंने उसी झुरमुट वाली मुसकान के साथ श्रीधर को देखा। दीदी का मुख पूरा उसी क्षण श्रीधर को आकाश में उभरा टँका लग रहा था। आज उसे दीदी जैसे बहुत बड़ी बहुत बड़ी लग रही थी। संभवतः पूर्ण युवती।

दीदी ने उसे अपने से चिपटाते हुए कहा
—क्यों तेरी दीदी को कहीं किसी के यहाँ जाना नहीं है क्या ?
—कहाँ जाना है ?
—तेरी दीदी का ब्याह कर कोई ले नहीं जाएगा रे ?
—कौन ले जाएगा ?
—जो दीदी को ब्याहेगा ?
श्रीधर कुछ समझ नहीं पा रहा था।
—लेकिन कोई क्यों ब्याहेगा ?
—तू कुछ नहीं समझता श्रीधर !
—मुझे छलो नहीं दीदी !
—सच, मेरा ब्याह होने वाला है।
—किसके साथ।
—किसी जमींदार के साथ।
—कहाँ है वह ?
—बुआ के पास।
—वहीं क्यों नहीं ब्याह कर लेतीं ?
—ब्याह करते नहीं हैं रे पगले वह तो हुआ रहता है जनम-जनम से।
—यह सब छलने की बातें हैं। ब्याह कोई जरूरी नहीं है। मिठाई खाने का शौक हो मिठाई खा लो बाजे बजवा लो लेकिन किसी के साथ कहीं जाने से क्या होगा ?—और, तुम चली भी जाओगी ?
—जाना तो होगा ही है श्रीधर !
—बाबा साहब ने जाने को कह दिया ?
—वे तो भेज ही रहे हैं।
—अच्छा तो यह बात है।
—क्या बात है ?
—बाबा साहब भी तुम्हें प्यार नहीं करते इसलिए ब्याह करवाये दे रहे हैं।
इन्दु खिलखिला कर हँस पड़ा।
—ठीक है तुम भी बड़ी हो गयी तभी न ब्याह कर रही हो। सब बड़े हो जाने पर यही करते हैं। बड़े लोगों की यही मुसीबत है। सुनना, मैं कभी बड़ा ही नहीं होऊँगा और कभी इन पहाड़ियों को मकानों को

मरो तारे आकाश क्षितिज दिशा किसी को भी कभी कभी नहीं छोड़ कर जाऊँगा । मैं तुम्हारे ब्याह में भी नहीं आऊँगा तुम मुझे ऐसे छोड़कर जाओगी तो देखना मैं कभी तुमसे नहीं मिलने आऊँगा । ब्याह कोई ऐसी जरूरी बात है जिसे तुम न करो तो काम नहीं चल सकता ? तुम क्यों ब्याह करना चाहती हो ? तुम्हें खुद ब्याह करना अच्छा लगता है तभी न हँस रही हो ? ठीक है । जाओ । मैं अब कभी नहीं आऊँगा ।

और श्रीधर आवेश में चट्टान से कूद कर तेज चलने को हुआ ।

—सुनो ।

—क्या है ?

—अगर तुम मुझे यहाँ छोड़कर चले जाओगे तो जानते हो मुझे बाघ उठाकर ले जाएगा ।

—ठीक है तुम्हें चाहे बाघ ले जाए चाहे तुम्हारा दूल्हा । मुझे क्या ?

इन्दु हँसती हुई दौड़ी और श्रीधर का हाथ पकड़ लिया ।

—अरे मूर्ख ! दीदी का ब्याह होता है या भाई यह कहता है ?

—अच्छा कहो कि ब्याह नहीं करोगी ।

—पागल हुए हो ?

—हाँ पागल ही सही । लेकिन तुम ब्याह नहीं करोगी । तुम्हें कोई ले जाए यह मैं नहीं देख सकता । तुम्हें मेरे ही साथ रहना है ।

इन्दु सहसा गंभीर हो गयी । उसे लगा कि विवाह की बात से सचमुच ही श्रीधर को बड़ी ठेस पहुँची । वह भर आयी । वह श्रीधर को एकदम अपने से सटा रखना चाहती थी । कैसा है यह ? दस बरस का हो गया और बिल्कुल नहीं समझता । कैसी जिद करता है । कोई सुने तो क्या कहे ? इन्दु की नारी सहसा जाग उठी । संभव होता तो वह उसे बाँहों में समेट अपने सीने से सटा लेती । वह जानती है कि अपने पूरे परिवार में भी यह कितना अकेला पन अनुभव करता है । इस आयु तक जितनी बातें आ जानी चाहिए उनसे सर्वथा अनभिज्ञ है । एकदम दीदी के आँचल से बँधा हुआ भोला खरगोश है । इसी ने शैशव और कैशोर के इन दिनों की रपता की चर्चा क्या था ? माँ बहुत पहले ही चल बसीं । दूसरी माँ भी आयी और गयीं । दूसरी माँ का बालक अपने ननिहाल में बड़ा हुआ और अब अजमेर में पढ़ता है । उससे इन्दु की जरा भी नहीं बनती । काका साहब ने उन्हें स्नेह तथा ज्ञान दोनों ही दिये । लेकिन मन के सूनेपन को एकान्त को तो इस अपरिचित छोटे

भाई ने आकर कैसा दीपित कर दिया। एक-एक कोना इसकी पदाहट से धीमे-धीमे सभी से ध्वनित है। अब और कितने दिन यह सब रहेगा? ब्याह के बाद क्या बहुत कुछ नहीं बदल जाएगा? श्रीधर, यह कस्बा, बाला साहब का घर, ये पहाड़ियाँ, ये सूर्यास्त, ये दूर-दूर के सुपरिचित एकान्त वन कहाँ होंगे? पता नहीं मैं कहाँ हूँगी। श्रीधर याद आएगा। इसे भी निश्चय ही मैं याद आऊँगी।

—श्रीधर!

—क्या?

—तू मुझे याद करेगा रे?

—मैं तुम्हें कभी नहीं याद करूँगा। जहाँ जाना है जाओ।

दोनों की आँखें छलछला आयीं।

—तू कभी समर्थ है हम लोगों की विवशता समझे। नाराज न हो श्रीधर!

तभी कुछ पैरों की आहट सुनायी दी। दोनों सतर्क हो गये। सूर्यास्त होने को ही था। लोगों के पुकारने की आवाजें आ रही थीं। इन्दु ने देखा कि वामन और श्रीमोहन हँसते हुए आ रहे हैं।

—अरे दीदी! तुम यहाँ क्या कर रही हो?

वामन ने यह कह कर घूरते हुए श्रीधर को देखा।

—यह मेरा छोटा भाई है भैया साहब!

श्रीमोहन ने वामन राव से कहा।

—बड़ी लड़कियों जैसी शक्ल है इसकी।

और वामन तथा श्रीमोहन दोनों ही हँस दिये।

श्रीधर अवाक् चुप खड़ा था। इन्दु कुछ समझ नहीं पा रही थी।

—श्रीमोहन! हमारी दीदी ने दो खरगोश पाले हैं। एक फुदकनू और दूसरा बोलतू।

और वामन ने हाथ की गिलोल में एक पत्थर रखकर झरबेरी पर बैठी फुलचुकी पर निशाना लगाया। चिड़िया बाल बचा गयी और घबरा-कर उड़ गयी। श्रीमोहन को वामन की बात पर बहुत मजा आ रहा था। वह स्वयं इस बात पर बहुत जलता था कि यह श्रीधर इन्दु के इतने निकट है। वहीं उसे आत्मसन्ताप भी हो रहा था।

—दीदी! बोलतू खरगोश को अकेले पहाड़ों पर घूमने न लाया करो। किसी दिन कोई बिल्ली देख लेगी तो गला पकड़ कर टें कर देगी।

और वामन ने हाथ से गला ऐंठ देने की क्रिया बतला दी। श्रीमोहन और वामन दोनों हँस रहे थे। श्रीधर मन ही मन घुमड़ रहा था।

—वामन! यह सब क्या बदतमीजी मचा रखी है तुमने?

—किसी दिन देख लेना दीदी! एक दर्जे से खरगोश की आँख न निकाल ली तो मेरा नाम वामन नहीं।

श्रीधर एकदम तेजी से आगे बढ़ा और वामन के हाथ की गिलोल छीन कर दूर फेंक दी। वामन एक क्षण को अवाक् हो गया। उसे श्रीधर से ऐसी आशा नहीं थी क्योंकि गिलोल फेंक देने के बाद वह उसी तरह अबोले गुस्से में भरा वामन की ओर देखता खड़ा रहा।

—गिलोल क्यों फेंकी है?

वामन लड़ने के ख्याल से आगे बढ़ा। इन्दु ने श्रीधर का हाथ पकड़ कर वामन से कहा

—खबरदार वामन! जो लड़ाई-झगड़ा किया तो।

और इन्दु श्रीधर का हाथ पकड़ कर घसीटते हुए चली।

वामन और श्रीमोहन थोड़ी देर वहीं खड़े रहे। पीछे से वामन की आवाज आती रही 'देखना दर्जे से एक दिन बोलतू खरगोश की आँख न निकाली तो मेरा नाम वामन नहीं।

इन्दु तेजी से श्रीधर का हाथ पकड़े अँधेरे पड़ते पहाड़ से उतर रही थी। वामन के प्रति इन्दु का मन एकदम कटु हो गया था।

—वामन अगर हाथ छोड़ बैठता तो तुम क्या करते?

—मैं मार नहीं खाता बस।

—तुम नहीं मारते?

—नहीं।

—क्यों?

—क्योंकि वह दीदी के छोटे भाई हैं।

दोनों घूमने आये थे। कभी-कभी इन्दु फिटन पर बैठकर शहर जानेवाली सड़क पर घूमने आती थी। होली वाली घटना को काफी दिन हो गये थे। बैसाख लगने वाला था। दिन भर काफी तपा था। लेकिन इस समय हल्की ठण्डी हवा चल रही थी। पुलिया पर दोनों बैठे हुए थे। फिटन थोड़ी दूर खड़ी हुई थी।

—आओ दीदी! तुम्हें एक नयी बात बताऊं।

—क्या?

—आओ तो सही।

और वह तार के खम्भे के पास दीदी को ले गया।

—लो जरा खंभे में कान लगा कर तो सुनो।

एक अजीब संगीतात्मक सन्नाहट खंभे में बहती सी लग रही थी। दीदी के पास ही सामने की तरफ श्रीधर भी कान लगाये सुन रहा था।

—देखा दीदी! इन खंभों में मशीन बोलती है।

—धत्! इतनी सी बात नहीं मालूम? तारों पर जो हवा टकराती है न, वही यहाँ सुनायी देती है।

फिर भी दोनों कुछ देर सुनते रहे। तभी इन्दु सचेत हुई,
—चलो ऐसे अच्छा नहीं लगता। कोई देखे तो क्या कहे ?
—इस जंगल में कौन देखेगा ?
—इतनी बड़ी सड़क है। नहीं-नहीं चलो श्रीधर !
और दोनों फिर पुलिया पर आकर बैठ गये।
गर्मियों की सन्ध्या सांगोपांग सम्पन्न होती है। जाड़ों की तरह हड़बड़ा कर नहीं कि अभी अपराह्न मुश्किल से हुआ और सांझ हुई न हुई कि रात हो गयी। जाड़ों में तो बस रात ही अधिक होती है जब कि गर्मियों में दिन भी आधी रात तक मुश्किल से धीमे-धीमे रात बनता है। गर्मियों का दिन बड़ा यशस्वी दिन होता है। खूब सारा निकलता भी है और खूब देर तक रहता भी है। सांझ कब शुरू होती है कब आभास देती है कैसे झुकने लगती है, कब सांझ पड़ने लगती है फिर गोधूली होती है तब कहीं जाकर सूर्य डूबे के आखिरी रंग आकाशों में समाप्त होते हैं।

इस समय भी आकाश और जगह काफी हिल-घुले लग रहे थे। एक अजीब सन्नाटा था। धूल-धक्कड़ भी काफी था। कभी जानवरों की कोई रेवड़ गुजर जाती तो थोड़ी देर का धक्के के धक्के में गाड़ी वाली बाट पर धूल ही धूल छा जाती। सांझ-पाखियों की टवी पूरे आकाश में बिखती।

अगले महीने इन्दु का ब्याह था।

लगता था इन्दु यहाँ से जाने के पूर्व जैसे इस कस्बे को यहाँ की सांसों को यादों का सबको पूरी तरह पी लेना चाहती है। वह प्रायः शहर जाती रही है। शहर भी उसे प्रिय रहे हैं। वह शिमला नैनीताल भी गयी थी। बम्बई भी। लेकिन सदा अपने इस कस्बे में लौटकर उसे यही लगा कि वह पूरे आकाश की यात्रा कर आयी लेकिन घोंसला तो यहीं है, जहाँ थकान मिटती है, भूख-प्यास मिटती है नींद आती है सपने आते हैं जहाँ वह स्वयं होती है। उसे सुहाता सब कुछ है किन्तु मन अपने उसी कमरे में उसी छत पर खड़े होकर आकाश को देखते रहने में तथा श्रीधर के साथ बैठकर किताबें पढ़ते रहने में और बातें करते रहने में ही लगता है।
लेकिन अब सब छूट जाएगा। यहाँ की हर चीज, व्यक्ति कुछ भी तो साथ

नहीं आ पाएगा। जो इतने दिन कैसा आत्मीय सा लगता था अब वह सहमा टूट जाएगा। कोई कहीं है जिसका स्मरण पुस्तकें तो कहती हैं कि मीठा होता है। लेकिन पुस्तकें चाहे वह हमलेट हो शकुन्तला हो मन्कृत हो या कोई उपन्यास हो म सब कुछ और भी कहत हैं और वह और हो तो इन्दु के मन में सबसे अधिक घिरता है। कभी उस माफाल्या सा ने में कहती हुई दिखता है कभी शकुन्तला का विवश मुख घिरता चा लगता है। कभी अग्नि में बैठी हुई आत्मम्य सीता का परिताप दिखता है।

आपा घिरता है। सशय घेरता है कि कहीं उस भी संदेशों की प्रतीक्षा न करनी पड़े। जब कभी उस्ताद उस ठुमरी या पक्के राग क बाद बहलाते और वह गाती होती—मोरे मंदिर अजहूँ नहीं आये—तो उसका मन इतने संगीत लय ताल में भी केले क पत्ते सा कांप जाता। उस पता नहीं अज्ञात आशका घेरे रहती। जब भीतर चला जाता और वह सगीत पाठ क बाद लैम्प जलाकर अपने कमरे में अकेली होती—उस पता नहीं बचपन से ही बातें कैसे-कैसे सपने आते थे। पहले तो एक दूर की बुआ थीं लेकिन जब से वे नहीं रहीं तब स उसे अकेले ही सोना पड़ता। वैस उन दिनों भी वह कहने-सुनने के लिए बड़ी हो गयी थी। लेकिन दस बरस की आयु होती ही क्या है ?

लैम्प की रोशनी में वह किताबों में जाने किन-किन कोठियों क बयान समुद्र तटों क वर्णन पढ़ती। विलायती मादिनाओं के लम्बे-लम्बे गाउनों क बयान पढ़ती और खो जाती। लेकिन जब उनके साथ दुघटनाएँ घटती तो वह चौंक उठती। कई बार तकिये में सिर छुपा रोती रहती। अधिकतर रोते-रोते ही सो जाती थी। जलती लैम्प भी धानादर बुझा जाता और सवेरा उसे बोध भी आता। क्यों सदा दुर्घटनाएँ ही लोगों क साथ घटती हैं ? और जब कोई किसी का प्रेम करता है तब उसक प्रति ऐसा व्यवहार निमम किस प्रकार हुआ जाता है ? यह कभी उसकी समझ में नहीं आता। और इस प्रकार वह अनिर्णीत ही बड़ी होती चली गयी।

अनेक उपन्यासों में नायिका का रहन-सहन उस अपने जैसा ही लगता और जब उन्हीं के साथ आगे चलकर दुघटनाएँ होती तो वह चौंक उठती। इन बातों

ने इन्दु के मन पर एक अमिट छाप छोड़ दी थी कि जब कभी वह एकान्त में होती उसे आफ़ीलिया मरने में बहती हुई दिखती। इसीलिए वह एकान्त से बचती।

विवाह हो रहा है।

स्थिति कुछ साफ़ नहीं थी। विवाह क्यों ज़रूरी है। विवाह किसी अज्ञात से ही क्यों होता है? और फिर इस सबका प्रयोजन क्या होता है? उसने काफ़ी कुछ पढ़ा था। बाबा साहब ने उसे विदुषी बनाने का अपना संकल्प पूरा किया था। इन्दु के लिए उन्होंने सभी तरह के श्रेष्ठ ग्रन्थ उपलब्ध कर दिये थे। उन्होंने स्वयं इन्दु को पढ़ाया था। उसे अंग्रेज़ी मराठी संस्कृत और हिन्दी से पूर्ण भिज्ञ करा दिया था। किन्तु इस ज्ञान ने उसके मन में जो रहस्य भय आशंका संशय उत्पन्न कर दिये थे उसका निवारण नहीं हो सका था। प्रेम में निवेदन करते नायक-नायिका उसने पढ़े थे लेकिन हृदय स्वतः निवेदन कैसे करने लगता है यह पता नहीं था। अपने अन्दर क्रमशः अकुलाहट थी लेकिन वह निवेदन और इस अकुलाहट के अन्तर, सीमा-रेखा को स्पष्ट नहीं समझ पाती थी। वह कौन सा मुहूर्त होता है जब चारों ओर किसी को देखकर दसों दिशाओं में दूरागत घंटियाँ सुनायी पड़ती हैं। बहुत कुछ तो भीतर को अपने से सटाने पर भी होता है। तब वह अन्दर क्या है? और फिर? उसके बाद क्या होता है? उसने समर्पण की बात पढ़ी है। कहीं देह और आत्मा के प्रसंग में इस समर्पण को भी कहा गया है। इसके आगे इन्दु की पहुँच मात्र शास्त्रीय पोथियाँ थीं। पुस्तकों ने जो रहस्य उसमें जाग्रत किया था केवल उतनी भर उत्कंठा थी। उसके आगे तो वह जानती थी कि—सम्भवतः समुद्र का अथाह जल है या फिर मरने का ओफ़ीलिया भी लेकर बहते जाना ही है।

—क्या सोच में पड़ गयी दीदी?

इन्दु चौंकी। मन ही मन वह अन्दर में ही सोच और देख रही थी।

—कुछ नहीं।

उसने सचेत होकर देखा कि गोधूली कभी की हो चुकी थी।

—दीदी! विवाह के बाद क्या कभी यहाँ नहीं आओगी?

—क्यों? आऊँगी क्या नहीं?

—क्या पूना बहुत दूर है?

—हाँ है तो। क्या तुम आओगे?

—नहीं। मैं क्यों आऊँगा भला?—चलो अच्छा है तुम्हारा ब्याह हो जाए तो फिर छुट्टी हो।

यह वाक्य श्रीधर ने कुछ इस लहजे में कहा जिस प्रकार लड़की के ब्याह की अक्सर चिन्ता बड़े लोग किया करते हैं। इन्दु हँस पड़ी।

—क्या तुम मुझसे छुट्टी लेना चाहते हो?

—हाँ और क्या। जब जाने का तुमने तय ही कर लिया तो फिर जल्दी जाओ।

—तुम मुझे चिट्ठी तो लिखा करोगे कि नहीं?

—ऐसा फुर्सत मिली तो लिखूँगा।

इन्दु श्रीधर के इस सहसा बड़प्पन पर रीझ आयी। जैसा इसने मन ही मन समझौता कर लिया है कि दीदी जाएगी ही। मान भी लिया था। लेकिन कितनी देर ऐसा मान चल सकता था भला? और अब सहज गंभीर पुरुष हल्के झलकने लगा है। इन्दु को बड़ा अच्छा लगा। पता नहीं उसके जाने के बाद श्रीधर को कोई ठीक से देखे-भालेगा। ठीक है इनके परिवार के सभी तो हैं। लेकिन इससे क्या? स्वयं श्रीधर मन में क्या उसे सबसे अधिक नहीं मानता है? क्या श्रीधर के लिए वह बहुत कुछ नहीं रही है? क्या एक दिन उस से सारी बातें नहीं स्मरण आएँगी? जब सब बीत जाएगा तो क्या दूरागत होता हुआ विगत हमें उतनी ही तखी से नहीं बाँधेगा? आज का कोई दुर्घटना उसके साथ घट जाए तो क्या श्रीधर को मर्मान्तक पीड़ा नहीं होगी? आज तो पुलिया पर दोनों बैठे हैं लेकिन दस-बीस बरस बाद दोनों की विभिन्न परिस्थितियों में इसे स्मरण करते हुए आज की साँझ की यह ऐकान्तिकता ये भूरे-नीले पठार यह लम्बी सड़क ये तार के खंभे में टंगा होता हुआ तथा आकाश दिशाओं तक लुटा हुआ आलोक यह काली-रूखा माटी—क्या ये कभी बस ही नहीं याद आएँगे जैसे अभी कल ही बीते हों?

•

इन्दु विह्वल हो आयी। इतनी तेजी से पैरों के नीचे से बहा जा रहा हो तो क्या उसे हम एक क्षण को भी अपने लिए नहीं रख सकते ? हम सब बीत जाएँगे। कभी यह भी तो सम्भव है कि यहाँ इनमें से कोई न रहे और केवल इन्दु या श्रीधर ही रह जाएँ। तब उसे कैसा-कैसा-सा लगेगा ? अपने अन्दर तो एक पूरा जीवन घटता होता है जब कि बाहर ऐसा हाहाकारी शून्य बिराजा होता है कि आदमी चीत्कार कर उठे कि नहीं मुझे नहीं रहने दो यहाँ मुझमें अनेक बिराजे हुए हैं। इस काल को मिटा दो। मुझे वर्तमान नहीं स्वीकार्य क्योंकि इसमें हाहाकार है। इन्दु सोचते-सोचते घबरा उठी। उसने घबराकर श्रीधर की ओर देखा। कैसा भरा भरा गोल मुँह है। एकदम तलहटी की भीगी घीयी जैसी निश्छल आँखें। यही तो श्रीधर है। ममता उमड़ आयी। क्या यह इन्हीं बड़े होते हुए आज के नन्हें पैरों से जीवनके मार्ग पर चलेगा ? पता नहीं क्या-क्या देखे ? और उस एकान्त की दुःख वेला में कौन होगा इसके साथ ? कौन इस श्रीधर को सम्हालेगा ? यह स्वयं तो जैसा है यह श्रीधर की माँ से अधिक इन्दु जानती है।

क्या एक माह के बाद ऐसे ही श्रीधर को लेकर फिर कभी ट्रामों में घूम सकेगी ? पहाड़ पर चढ़ सकेगी ? आज की तरह घूमने जा सकेगी ? इनमें से बहुत कुछ हो सकता है लेकिन क्या यह स्वयं नहीं बदली हुई होगी ? आज तो कहीं कोई नहीं है। अन्दर के किसी कोने में सिवाय इस छोटे भाई श्रीधर के। जिसने जाने कैसे आकर अपना तन्तु तान दिया। लेकिन कल से कोई और ही आने वाला है। सारी किताबें कहती हैं शास्त्र कहते हैं कि नारी के लिए वही परमपुरुष होता है। वही स्वप्न है। वही जागरण है। वही प्रणय है। वही निवेदन है। वही स्वामी है। उसी परमपुरुष में ही सारी नारी-सत्ता के समर्पण की अन्तिम गति है।

और वही परमपुरुष ओफीलिया को अपने में बहा लेता है। शकुन्तला की भाँति लांछित करता है और सीता से स्वयं को अग्नि में से प्राप्त करना चाहता है। यही परमपुरुष जिस चेष्टा निष्ठा से कल अन्तर में होगा यही उसके लिए रहस्य था। उसकी उत्कंठा नहीं थी बल्कि आशंका अधिक थी।

इन्दु दीदी का विवाह था ।

एक महीने पहले से ही जाने कहाँ-कहाँ से नाते-रिश्तेदार आ गये । बाबा साहब की कोठी में तिल धरने की जगह न रही । नित्य की तरह श्रीधर रोज कोठी जाता रहा है । दीदी को अब वह अकेले न पा सक रहा है जिस तरह पहले होता था । बार-बार किसी इस या किसी उस से उसका परिचय दीदी करवाती रही हैं । प्रायः लोगों ने उपेक्षा से ही उसके परिचय को लिया है । मुश्किल से दीदी अपने कमरे में बैठी होती कि कभी दर्जी कभी सुनार, कभी कपड़े वाला या इसी तरह की व्यस्तता में उन्हें चला जाना पड़ता ।

—तुम यह पढ़ो मैं अभी आयी ।

और कभी वाल्मीकि रामायण का कोई प्रसंग थमा कर इन्दु तेजी से चली जाती । यह दीदी की बातों की पीठिका में रामायण पढ़ता होता है । दीदी का तर्क था कि पश्चिमी सभ्यता नगर-सभ्यता है और भारतीय सभ्यता आरण्यक-सभ्यता है । पश्चिम के लिए यौवन भोग है लेकिन भारत के लिए त्याग है । तभी तो शासन चाहे किसी राजा या सम्राट ने किया हो लेकिन धर्म और संस्कृति का

नियामक तो मुनि ही रहा है। बड़े से बड़े राजा को चुनौती सदा किसी भिक्षुक ने ही दी है। यह निस्पृहता ही हमारे धर्म समाज संस्कृति तथा साहित्य का मूलाधार रही है। वाल्मीकि ने लंका-दहन तक इस भ्रम में लोगों को रखा कि सीता का शत्रु रावण था लेकिन उसके बाद सीता को जो मर्मान्तक पीड़ा राम ने दी उसकी तुलना में रावण का कार्य नगण्य हो जाता है। कथा के इस मोड़ का प्रयोजन भी यही निस्पृहता है। स्वयं वाल्मीकि को अपने चरित्रों के प्रति कोई मोह नहीं है। इसीलिए प्रत्येक चरित्र अपनी कथात्मकता से ऊपर हो जाते हैं। जहाँ दूसरे देशों की कथाएँ, कथात्मकताओं से युक्त होती हैं वहाँ क्या वेदव्यास क्या वाल्मीकि कोई भी कथात्मकता में रुचि नहीं रखते। और तो और महाभारत युद्ध के प्रणेता विजेता पांडव तक अपनी प्रयोजन सिद्धि के बाद निस्पृह होकर राज्य श्री लक्ष्मी धन सबका परित्याग कर उसी आरण्यकता की ओर लौट जाते हैं जहाँ से भारतीय सभ्यता जन्मती है। राम सीता को प्राप्त करने के लिए अग्नि का माध्यम चुनते हैं और रावण अशोकवन का बन्दी-गृह लेकिन सीता न राम ही प्राप्त कर पाते हैं न रावण ही। सीता के परिताप तथा अग्नि-स्नान में राम की विजय और रावण की पराजय दोनों ही कितनी मिथ्या हो जाती हैं।

और धीवर दीदी के मुँह से यह विवेचन सुनते हुए आश्चर्य से देखता होता कि दीदी को आखिरकार यह सब क्या कैसे मालूम हुआ? जिसके निकट न राम न कृष्ण न पांडव कोई आदर्श नहीं है, बल्कि इसके निस्पृह प्रणेता वाल्मीकि और वेदव्यास ही महान हैं जो कि किसी अरण्य के एकान्त निभृत कोने में बैठे हुए असंग प्रजापति की भाँति अपने चरित्रों की सारी प्रजा को अपने निर्मम निस्पृह सनातन प्रयोजन के सम्मुख या तो अग्निस्नान में स्वाहा कर देते हैं या फिर हिमालय की गर्त में गल जाने देते हैं। कोई मोह इन्हें नहीं होता कि ऐसा कर देने पर लंका का महान युद्ध या महाभारत जैसी महान घटना कितनी हाहाकार-मयी हो जाएगी। क्योंकि उनके लिए मानव भोग जैसा कोई मोह था ही नहीं। वे स्वयं ही मानवेतर अरण्यों में रहते थे और इसीलिए वे अपने चरित्र की नागरिकताओं के मिथ्यात्व को निस्पृह होकर या तो दाह हो जाने देते थे या फिर गल जाने देते थे। संभवतः इसीलिए हमारा आज का नागरिक मन इस प्राचीन आरण्यकता को नहीं समझ पाता। यह मिथ्या धार्मिक आदर्शवाद लगता है।

और इस बीच उसी सुपरिचित मलिन मुस्कान के साथ दीदी कमरे में होतीं। अब दीदी के मुख पर परिवर्तन आ गया था। एक तो यही कि वे अब बहुत बड़ी लगती थीं और फिर आजकल जब कि उन्हें हल्दी लगायी जा रही है। श्रीधर इस परिवर्तन को समझता जरूर है लेकिन बूझ नहीं पाता। परिवर्तन विशेष नहीं था फिर भी श्रीधर के मन में जैसे कौंध जाता था। जो दीदी पहले कभी जेवर नहीं पहनती थीं अब वे लदी रहने लगी थीं। बाबा साहब इस विवाह से बड़े प्रसन्न थे। लेकिन श्रीधर पता नहीं क्यों दीदी की आँखों में बराबर एक अजीब उदासीनता पाता।

—क्या बात है दीदी ?

और पास बैठी हुई इन्दु चौंक उठती।

—कहाँ ? कुछ नहीं थोड़ा थक गयी हूँ न ? इसीलिए।

और दीदी फीकी-फीकी हँसती होती जब ज्येष्ठ सन्ध्या।

एक दिन संभवतः, उसी दिन सवेरे, बारात आ चुकी थी। गायत्री के लग्न में। लग्न वाली वेदी पर अल्पना स्वयं श्रीधर ने बनायी थी। और उसके मन में खूब प्रसन्नता थी कि उसने दीदी के विवाह की वेदी अल्पित की थी। वहीं से वह दीदी के द्वारा बुलवाया गया था। दीदी अपने कमरे में सजी बैठी थीं। उस सज्जा में दीदी कितनी अप्रतिम सुन्दर लग रही थीं कि वह ठगा सा देहरी पर ही खड़ा रह गया।

—क्यों आज क्या भीतर नहीं आओगे ?

दीदी के बोल से उसे लगा कि क्या यह वही दीदी है ? लेकिन यह तो दीदी नहीं—बल्कि जैसे औरतें लगती हैं, वैसी लग रही हैं। तो अब दीदी भी दूसरों की भाँति औरत बनेंगी ?

—क्या सोच रहा है श्रीधर ?

श्रीधर चौंका। उसे जाने कैसा लगा कि वह दीदी से जो कि औरत लग रही हैं बात नहीं कर पाएगा। उसे एकदम अपने से दीदी से सभी से भिन्न हो जाती। एक क्षण को लगा कि ब्याह के बाद ये चली जाएँगी और फिर ? इस घर से उसका क्या नाता रहेगा ? यहाँ वह फिर क्यों आएगा ? दीदी भी यहाँ फिर कभी-कभी ही मेहमान बनकर आया करेंगी। बहुत होगा कभी

बुलवाकर मिल लिया जाएगा। और आज के बाद दीदी भी पत्नी बन जाएँगी। जाने कहाँ चली जाएँगी। बस दो-एक दिन बाद से वह एकदम अकेला पड़ जाएगा। ठीक है जाएँ, उससे क्या मतलब है ?
—क्या हो गया तुझे श्रीधर ? बोल क्यों नहीं रहा है ?
और इन्दु पलंग से उठी तथा श्रीधर की बाँह हिलाते बोली।
श्रीधर का मन तो हुआ कि बाँह झकझोर दे और चीख पड़े कि—जाओ श्रीधर तुम्हारा कौन होता है ? मैं वेदी बना आया हूँ। शौक से वहाँ जाकर बैठो और मन पढ़कर किसी की पत्नी बन जाओ मुझे तंग न करो—लेकिन वह कुछ न बोल सका।
इन्दु ने पहले तो श्रीधर को ध्यान से देखा और फिर अपने में समेटते हुए बोली,
—जानती हूँ श्रीधर ! तू अपनी दीदी के जाने से नाराज है। सच मानना मैं स्वयं जाना नहीं चाहती श्रीधर ! आज नहीं तो कल तू जानेगा कि हमारी यही विवशता होती है। नारी बिना बाँधे रह नहीं सकती। उसे रहने ही नहीं दिया जाएगा श्रीधर ! पता नहीं रे कि अब तेरी दीदी कहाँ-कहाँ जाए। तू अपनी दीदी से नाराज न हो श्रीधर !
और श्रीधर ने देखा कि हल्दवती बनी उसकी दीदी अपने स्वर्णालंकारों में सजी बनी अपराह्न की मीठी धूप सी हो रही थी।
—आज साँझ सब हो जाएगा श्रीधर !
—क्या सब हो जाएगा दीदी ?
—आज मैं पूर्ण नारी बन जाऊँगी। समझा कुछ ?
—नहीं तो। पूर्ण नारी क्या ?
—मैंने भी तो पढ़ा भर है रे जानती थोड़े ही हूँ कि क्या होगा।
और बड़े मीठे से वे हँस दीं।
दूरी पर शहनाई बज रही थी। तभी कोई महिला भागती हुई आयी।
—अरे तुम यहाँ हो। चलो चलो। दूल्हा मण्डप में आ गया और तुम
और महिलाएँ दीदी को लेकर चल दीं। श्रीधर ने देखा कि दीदी के पैरों में महावर रँगी हुई है। पैरों में झाँझनें हौले बाज रही थी। पैरों में सहसा ही मन्थरता थी। लाल-लाल एड़ियाँ फर्श पर उठती हुई दूर होती जा रही थी।

वह मण्डप से बहुत जल्द ही उठ आया था। वह अन्यमनस्कता के साथ बहुत देर तक देखता रहा कि किस प्रकार दीदी का हाथ दीदी के पति ने लिया। बाजे कितने मंत्र पढ़े गये। सम्बन्धियों ने दीदी तथा उसके पति पर चावल और छींटें बिखरीं। वह खिन्न होकर दीदी के कमरे में आकर बैठ गया। उसे दीदी का बराबर झुका मुख याद आ रहा था। धुएँ के कारण उनकी आँखें हल्की लाल हो आयी थीं। कदाचित हल्के से दीदी ने उसकी ओर देखा भी था। गाती हुई औरतों के अजीब लय-ताल युक्त बेसुरेपन पर वह चिढ़ता हुआ बैठा रहा था। दीदी के पति निश्चय ही काफी बड़ी आयु के व्यक्ति लग रहे थे। उसके कान के पास ही कोई आपस में फुसफुसा रहे थे।
—घर तो बहुत बड़ा है।
—दुजबर है, दूसरा ब्याह है।
और श्रीधर ने इन फुसफुसाने वालों को घूर कर देखा। क्या मतलब? क्या दीदी के पति का यह दूसरा ब्याह है? और वह वहाँ खड़ा न रह सका। उसके दिमाग में बिच्छू के डंक की भाँति यह वाक्य 'दूसरा ब्याह है' गूँज रहा था। दीदी का कमरा सुनसान पड़ा था। मंडप और नीचे के हिस्से को छोड़कर बाकी सब खाली पड़ा था। नीचे से लोगों की गड्मड आवाजें आ रही थीं। शहनाई वाला दूर बजा रहा था। औरतों का गाना-बजाना भी आ रहा था। वह किसी से इस 'दूसरे ब्याह' का अर्थ जानना चाहता था। लेकिन किससे? दीदी ने तो नहीं बताया कि उसके होने वाले पति का यह दूसरा विवाह है। वह इसी उधेड़बुन में बैठा हुआ ऊँघ गया। जब उसे किसी ने छुआ तो वह चौंक उठा।
—क्या सो गये थे? सिर में दर्द है क्या?
इन्दु ने उसके माथे को छू रखा था।
—नहीं तो।
और वह दीदी को देखने लगा। सिवाय थकान के उसे उस मुख में कोई विशेष बात नहीं लगी।
—तुम बहुत थक गयी होगी दीदी!
—हाँ कुछ तो थक ही गयी।
—क्या बज रहा है?
—दो बजे होंगे।
—तो?

और यह कहकर श्रीधर चौंक पड़ा ।
—क्यों ? अच्छा सो जाओ । कुछ खाया कि नहीं ?
—कहाँ ? मैं तो तुम्हारी ही राह देखता रहा ।
—अब आज से श्रीधर ! तुम्हें अपना ध्यान खुद रखना पड़ेगा ।
—दीदी का ब्याह जो हो गया इसलिए, है न ?
—अच्छा तुम ठहरो मैं दामोदर के हाथ कुछ मँगवाती हूँ ।
—इतनी रात में मेरे लिए कुछ न मँगवाओ ।
—लेकिन तेरी दीदी भी तो अभी भूखी ही है ।
और वे चली गयीं ।

फाल्गुन की रात थी । तीसरे प्रहर की रात और फाल्गुनी दसमी का चन्द्रमा सूनी आँख सा क्षितिज पर झुका हुआ था । खिड़की से आती हुई चाँदनी आ रही थी । चारों ओर अपेक्षाकृत शान्ति थी । दीदी लौट आयीं । श्रीधर के कारण इन्दु भी श्रीधर के पिता को 'बापू' ही कहती थी ।
—बापू पूछ रहे थे कि श्रीधर क्या कर गया ? मैंने कहा कि नहीं वह ऊपर सो रहा है । उसे यहीं रहने दें ।
सामने की चौकी पर गाव तकिये के सहारे सिर टिका इन्दु सुस्ताने लगी ।
तभी दामोदर कुछ नाश्ता लेकर आया ।
—बुआ जी ने कहा कि आप शीघ्र ही पूजन कर के खाएँगी ।
—अच्छा तू चल मैं अभी आती हूँ ।
और दामोदर चला गया ।
—तुम जल्दी से खा लो तो फिर मैं भी खा आऊँ ।
—तुम जाओ मैं खा लूँगा । मेरी चिन्ता न करो ।
—कोई बात नहीं श्रीधर ! आज भर और चिन्ता कर लेने दो फिर तो चली ही जाऊँगी ।
खाते ही श्रीधर खाता रहा । उसके बाद थाली समेट इन्दु नीचे चली गयी । श्रीधर चुपचाप तकिये के सहारे लेट गया । रात भीग रही थी । हल्की ठंडक थी । वह चादर ओढ़ कब सो गया पता न चला ।

और विवाह के बाद श्रीधर ने कहा कि दीदी बड़ी शान का है। उस दिन पूरा स्टेशन मण्डप की भाँति सजाया गया। श्रीधर अपने को आखिर तक बहुत रोके रहा। पूरा कस्बा उमड़ा पड़ रहा था। प्लेटफार्म पर लोग ही लोग थे। पुलिस का बैण्ड पूरे बार-बार में बज रहा था। डिब्बे के सामने औरतों की भीड़ थी। खिड़की के पास सिमटी सी दीदी बैठी हुई थी। भीड़ में कहीं श्रीधर भी था। वह जानबूझ कर दीदी के पास नहीं आ रहा था। सम्भवतः क्रोध और आँसू में वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था। कई लोग उज्जैन तक जा रहे थे। बाबा साहब ने एक बार श्रीधर को भी कहा था लेकिन वह अनसुना ही बना रहा। इन्दु ने बिल्कुल ही नहीं कहा कि वह क्यों नहीं उज्जैन तक चलता है क्योंकि वह जान रही थी कि श्रीधर के लिए इतना ही अधिक हो रहा है। इन्दु ने भीड़ में खड़े श्रीधर को दूसरा काम देने के लिए किसी से कहा। श्रीधर ने दीदी का संकेत देख लिया और वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

वह बेतहाशा पटरी-पटरी भागते हुए दूर एक पुलिया पर जाकर बैठ गया। धूप तेज मारी फैली हुई थी। ऊँचे ऊँचे पठारों पर पीली-पीली घास कपड़ा सी बिछी हुई थी। दूरी पर बैण्ड की आवाज तथा इंजन की सीटी सुनाई पड़ रही थी। तभी उसे लगा कि ट्रेन चल पड़ी। वह पुलिया के पास ऐसी जगह खड़ा हो गया जहाँ से वह ठीक तरह से अपनी दीदी को देख सकता था। ट्रेन आ रही थी। दीदी वाला डिब्बा फूलमालाओं से लदा था। वह ध्यान से डिब्बे के सामने आने की प्रतीक्षा में सतर्क खड़ा था। तभी उसने देखा कि उसकी दीदी मुँह खोल खिड़की से झाँक रही है। उसने एक हाथ उठाकर चिल्लाया।

—दीदी!!

और उसने पाया कि उन्होंने चौंक कर देखा। हल्की मुस्कान आयी और फिर धाराधार बरस पड़ी। उनका भी एक हाथ उठ गया।

ट्रेन तब तक आगे के पठारों में छिपी पटरियों पर बढ़ गयी। उसके बाद वह शाम तक उन पठारों की पीली घासों में छिपा हुआ रोता रहा।

जिस समय वह घर पहुँचा दिया-बत्ती की बेला हो आयी थी। जब दिन भर भी श्रीधर घर नहीं पहुँचा तो माता-पिता ने मान लिया कि वह भी इन्दु को विदा देने साथ ही उज्जैन चला गया। हालाँकि श्रीमोहन ने कहा कि श्रीधर ट्रेन में नहीं था। बल्कि उसने उसे प्लेटफार्म से भागते हुए देखा था। पिता ने श्रीमोहन की बात को झूठ समझा था क्योंकि वे जानते थे कि श्रीमोहन श्रीधर के बारे में हमेशा उल्टी-सीधी बातें करने का आदी है। लेकिन जब वह शाम को चोरों की तरह चुपचाप चमकर ऊपर वाले अपने कमरे के लिए जैसे ही जीना चढ़ रहा था कि श्रीमोहन ने देख लिया और वह चिल्लाया

—माँ! देख श्रीधर आ गया। मैंने कहा न था कि वह उज्जैन नहीं गया।

और माँ ने सच ही देखा कि श्रीधर जीने पर सिर झुकाये अपराधी की भाँति खड़ा है। तब तक और लोग भी निकल आये।

—क्यों रे कहाँ था दिन भर से?

माँ ने आगे बढ़ते हुए पूछा।

—कहीं नहीं।

उन्होंने उसकी बाँह पकड़ी और अपनी ओर समेटते हुए कहा

—वाह रे तेरा कहीं नहीं? ये आँखें क्यों लाल हैं?

श्रीधर गुस्से में भरा अपनी बाँह छुड़ाकर हाफपैंट से निकली कमीज ठीक करने लगा।

—अरे अपनी दीदी का बचा हुआ सामान ठीक कर रहा होगा—बोलता परमोद।

श्रीधर श्रीमोहन की बात से एकदम फुँक उठा। वह आँखें तरेर कर श्रीमोहन को घूरने लगा।

—बोलता क्यों नहीं रे कहाँ था?

माँ ने उसके हाथ को झटकते हुए पूछा।

वह बिना बोले हुए जीने की तरफ बढ़ा।

—मस्त रोया है माँ! जाने दो बेचारे को।

और श्रीमोहन ठहाका मार कर हँस पड़ा।

—माँ! दादा को समझा लो मुझसे ज्यादा बात न करें।

—नहीं तो क्या मारेगा मुझे?

और श्रीमोहन जीने पर खड़े श्रीधर की ओर बढ़ा।

—तुम्हें क्या करना है श्रीमोहन?

माँ ने श्रीमोहन को फटकारते हुए कहा।

—अच्छा अब चल खाना खा ले। जानता है दिन भर से तेरी राह देखते-देखते अभी तक मैंने नहीं खाया है। बस जल्दी से हाथ मुँह धो ले तो।

—नहीं माँ! मुझे भूख नहीं है।

—उसका तो रोने से पेट भर गया है माँ!

श्रीमोहन ने चिढ़ाते हुए कहा।

लेकिन बिना कुछ जवाब दिये श्रीधर जीना चढ़ गया। सचमुच रोने से उसका पेट भर गया था। वह दिन भर सोचता रहा कि दीदी ने अब उज्जैन से बड़ी ट्रेन पकड़ी होगी। और दूर, बहुत दूर चली गयी होंगी। श्रीधर के सोचने का यह तार कि वह चली गयीं बहुत दूर पर जाकर अटक जाया करता रहा। बस से वह क्या करेगा? दीदी के बिना उसने अपने घर, परिवार कस्बे किसी की कल्पना भी नहीं की थी। आज वह सहसा रिता गया। आज के पहले इस निपट सूनेपन की कल्पना भी उसने नहीं की थी। उसे लगने लगा कि आज ट्रेन जाने के बाद से तो जैसे चारों ओर के सारे दरवाजे खट्-खट् बन्द होते जा रहे हैं। आज तक वह जैसे एक बड़े भारी कमरे में था जिसमें दरवाजे ही दरवाजे थे। जिनसे धूप ही धूप हवा ही हवा गंध ही गंध आवाजें ही आवाजें आती थीं और आज सबेरे से वह जिधर जाता है उधर के दरवाजे पहुँचने के पहले ही बन्द हो जाते हैं। और वह इस समय एक घने अँधेरे बन्द कमरे में घिरा हुआ है। सिर्फ ऊपर कहीं एक गवाक्ष है जिससे ऐसा प्रकाश आ रहा है जिसे आप देख नहीं सकते बल्कि आप अनुभव कर सकते हैं। जिससे सिर्फ स्मृति आती है कि कल तक यहाँ सब कुछ था। कल की धूप हवा गंध आवाजें आज दूर कहीं पर हैं। अब इस कमरे में केवल आपकी आहट तथा दरवाजे पीटने की आवाजों के अतिरिक्त शेष कुछ नहीं। वह दिन भर पठारों पर दौड़ता रहा। पीली घासों के झुरमुटों में दुबकता रहा। बकरियों की नकल में मिमियाता रहा। लेकिन दीदी का उठा हुआ हाथ हल्की मुस्कान और फिर धाराधर बरसती आँखें वह भूल नहीं सका। वह दीदी के बिना जी नहीं सकेगा। वह वहाँ तक दौड़ जाना चाहने लगा जहाँ दीदी गयी हुई हैं। दोनों में यही बात वह पूछता रहा। वह ब्याह का यह अर्थ *कभी नहीं जानता था कि दीदी अब हमेशा के लिए चली जायेंगी।* और वह भी जाकर उस बुड्ढे जैसे आदमी के साथ। लेकिन क्यों गयीं? क्या क्या दीदी मेरे साथ नहीं रह सकती थीं? और, और अगर बिना ब्याह के वे नहीं जाना चाहती थीं तो क्या मुझसे ब्याह नहीं कर सकती थीं? सब करने में क्या रखता है? ब्याह के मन्त्र पढ़ाने के लिए इतनी दूर से आदमी बुलाने की क्या आवश्यकता

थी ? लेकिन इससे कुछ नहीं होता। अबकी बार दीदी आएगी तो वह कह देगा कि वहाँ अब जाने की क्या आवश्यकता है ? हो गया एक बार हो आयीं। और न हो तो उस बुड्ढे खूसट ने जिस तरह दूसरा ब्याह किया तुम भी दूसरा ब्याह कर डालो। और मैं उसके लिए तैयार हूँ। लेकिन इसके बाद भी वह दिन भर मारा मारा फिरता रहा। परेड ग्राउण्ड में घोड़ों की लीद ठोकरों से मारता हुआ यहाँ-वहाँ डोलता रहा। एक क्षण को भी दीदी का वह भूला नहीं पा रहा था। वह घर, अँधेरे में ही पहुँचना चाह रहा था क्योंकि वह किसी से बात नहीं कर पाता। और संभव था कि ज्यादा पूछने पर जोर से रो पड़ता। आज वह सच ही पहली बार अपने को हमेशा के लिए अनाथ अनुभव करने लगा। कल तक वह टलिंग वाले तालाब देखते रहने को या दीदी के साथ हैमलेट पढ़ते रहने को मानता था कि ऐसा तो वह रोज ही करता रहेगा। लेकिन आज उसे लगा कि नहीं अब वह सब फिर कभी नहीं होगा। लैम्प की रोशनी में दीदी का पीला भाल सुडौल नाक उसके बाद अब वह फिर कभी फिर कभी नहीं देख पाएगा। और यही बात उसे विकल किये थी। यह कैसे संभव है कि दीदी के साथ वह फिर बैठ ही नहीं बैठेगा रहेगा पढ़ेगा ? नहीं यह नहीं होगा। दीदी को हर हालत में लौटना होगा। और वह पागलपन में कुछ दूर रेल की पटरियों के सहारे दौड़ा भी था। इन्हीं पटरियों की लीक में वह अपनी दीदी को पा सकता है।

माँ जिस समय खाने के लिए बुलाने आयी श्रीधर अँधेरे कमरे में वैसे ही बैठा था।

—श्रीधर !

और माँ ने देखा कि खिड़की के धुंधले प्रकाश में श्रीधर बिना कपड़े बदले बैठा है।

—चल बेटा ! देख मैं अभी तक भूखी हूँ तेरे लिए। जानता है, कहाँ कहाँ आदमी नहीं दौड़ाया तेरे लिए ? चल तो।

—नहीं माँ ! मुझे भूख नहीं है।

—अरे तो अब न खाने से तेरी दीदी वापस आ जाएगी ? ब्याह के बाद लड़की तो बेटा दूसरे के घर जाती ही है।

—नहीं माँ ! दीदी को तब ब्याह नहीं करना चाहिए था।

और वह लपक कर माँ से चिपट कर रो पड़ा।

उसके बाद तो श्रीधर विक्षिप्त-सा ही होता चला गया। घर में वैसे भी उसका कोई अधिक बात करता ही नहीं था। माँ ने अपने श्रीधर की व्यथा को कुछ-कुछ समझ लिया था और ग्वालियर श्रीमोहन को बदल दिया था कि वह श्रीधर से कुछ न कहेगा। स्कूल वह सबेरे ही पहुँच जाता। स्कूल के बाद वह तालाब चला जाता। घाट पर घण्टों बैठकर बाला साहब की दूर दिखती कोठी के तीनों बाग कमरे की ओर देखता रहता। उसे कभी-कभी भ्रम हो जाता कि रेशमि दाम दीदी और वह खड़ा है। वह उन सभी जगहों पर गया जहाँ वह कभी दीदी के साथ गया था। उस चट्टान पर खड़े होकर उसने सूर्यास्त बेला में पार्वती को देखी थी। घण्टियों की आवाज भी सुनी थी। सूर्यास्त भी था। आकाश का नील अंधेरा भी था साँझ तारा भी अपनी एकाकीपन में उगा हुआ था। झाड़ियों में जुगनी-झिगनी पगडंडियाँ बनी गयी थीं। चरवाह की तिरछी बोली भी थी सब था। दूर दूर तक फैला ही था। केवल एक दीदी भर नहीं थी और जो कि सब कुछ थी। वह असाध्य कैसे प्राप्त हो ?

उस दिन वह एकदम ही टूट गया जब उसे मालूम हुआ कि ब्याह के आठ-दस दिन बाद दीदी जो आने वाली थी अब वे यहाँ न आएँगी क्योंकि जीजा साहब काफ़ी दिनों के लिए स्वयं बम्बई जा रहे हैं और दीदी वहीं जाएँगी। उसने मन ही-मन समझौता कर लिया कि अब पिछला सब बीत चुका है। एक ऐसा सपना था जो भोर का था और अब वह देखा गया है। अब वह लाख आँखें मूँदे पुन: नहीं देख पाएगा। विशद आकाश हो जाता है जिसकी नीलिमा को हम अपने हाथों में देखना चाहते हैं, गहना चाहते हैं लेकिन वह नीलिमा हमारे चारों ओर तक दूर-दूर तक फैली होने पर भी हमें घेरे होने पर भी हमारी नहीं होती। बस धीवर की दीदी वही हो गयी थी। वह कक्षा में पीछे बैठा हुआ जाने कितनी चिट्ठियाँ दीदी को लिखता। लेकिन हर बार यह प्रश्न आ जाता कि क्या लिखे? क्योंकि 'उसे याद आती है'—में वह अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाता था। दूसरे अब वह यह नहीं कहना चाहता कि 'दीदी के बिना वह जी नहीं सकता'। इसलिए कभी वह तालाब का वर्णन करने लगता उस दिन स्टेशन कैसा लग रहा था दीदी के डिब्बे की फूलमालाएँ हवा में कैसी उड़ रही थीं तथा धूप में मालाओं के गेंदे कैसे खिले लग रहे थे। लेकिन वह यह कभी नहीं लिख पाता था कि वह उन सब जगहों पर गया है जहाँ दीदी गयी थी उसके साथ। उसे दीदी से मोह था। नहीं यह भी कि उसे दीदी से प्रेम है लेकिन दीदी को नहीं। तभी तो ऐसी कोई विवशता तो नहीं ही थी कि वे चली जातीं—और हर बार पत्र अधूरा या फ़िज़ूल की बातों के बाद अधूरा रह जाता। झल्लाकर वह पत्र में बीच मोटी-मोटी लकीरों से चूहे, बिल्ली बनाकर फाड़ देता। या हाशिये में किसी किताब से फूल ट्रेस करके बनाया जाता। फिर व्यर्थ का पत्र लिखा जाता उपरान्त उन सब पत्रों की डोंगियाँ बना ली जातीं। स्कूल के बस्ते में ऐसी बीसियों डोंगियाँ होतीं जिन्हें वह शाम को तालाब में घाट पर पैर झुलाते हुए एक-एक कर बहाने लगता। जब एक डोंगी लहरों के हिचकोलों पर उठती-गिरती दूर हो जाती तब फिर दूसरी छोड़ी जाती। डोंगियों की स्याही से पानी पहले हल्का नीला हो जाता और फिर डोंगियाँ दूर होने लगतीं। इस प्रकार तालाब में दीदी के पत्रों की डोंगियाँ ही डोंगियाँ होतीं। और कभी वह सोचता कि ये डोंगियाँ दीप हैं जिन्हें धीवर ने दीदी के लिए तालाब में बहा दिये हैं। कभी कोई दमयन्ती का हंस आएगा और इनमें से किसी एक को ले जाकर दीदी की मुँडेर पर दीदी के उदासमुख के सामने रख देगा कि—लो यह रहा तुम्हारे धीवर का पत्र। लेकिन वह स्वयं ही तब अपनी मूर्खता पर हँस पड़ता कि कहीं ऐसा भी होता है?

रात को वह किताब लेकर बैठता और किताब की पंक्तियों में अक्सर मन वाली जिसमें माधवीछिया के बजाय दीदी दिखतीं। वह सहसा जागता कि क्या वह दीदी के लिए ऐसे अपशकुन की बात सोच रहा है? तब वह ज़ोर ज़ोर से पढ़ने लगता कि—सूर्य-ग्रहण दो प्रकार का होता है। एक पूर्ण और दूसरा आंशिक। पूर्ण ग्रहण को खग्रास भी कहते हैं।—और वह फिर खो जाता। वह समझना चाहता था कि किस प्रकार सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्रमा आ जाता है। उसे चन्द्रमा से चिढ़ हो जाती। उसे अपने और दीदी के बीच भी ग्रहण बल्कि खग्रास-ग्रहण लगता। दीदी का पति ही चन्द्रमा है जिसकी छाया दीदी पर गिर रही है। सूर्य को मुक्ति दिलाने के लिए लोग स्नान करते हैं, दान करते हैं लेकिन दीदी को मुक्त करने के लिए वह क्या करे? और प्रायः ऐसे मौकों पर कोई न कोई आ जाता जो पूछ बैठता कि वह पढ़ रहा है या ऊँघ रहा है? अगर पूछने वाला श्रीमोहन हुआ तो वह ऐसे घूर कर देखता कि कच्चा ही खा जाएगा लेकिन यदि माँ होतीं तो वह ज़ोर-ज़ोर से पढ़ता कि कितने अक्षांश पर सूर्य होता है तब ग्रहण होता है। और परीक्षा पास आती जा रही थी। मामा साहब भी जा चुके थे। आखिर उसने अपने विद्रोह को अपने अन्दर ही फूट जाने दिया। अब वह हर चीज़ न करने वाला होता जा रहा था। न वह बोलता ही नहीं था लेकिन बोलता था तो बस बुदबुदा कर रह जाता। जैसे अनुनय कर रहा हो। वह किसी के साथ अधिकार भाव से बात ही नहीं कर सकता था। वह कभी घर में किसी के साथ नहीं बैठ पाता था। कहीं देर रात तक घर से बाहर रहता था लेकिन अब अपने कमरे के एक कोने में किताब लिये बैठा रहता। वह जैसे स्वयं को स्वयं की उपस्थिति तक का भान नहीं होने देना चाहता था। दिन पर दिन बीत रहे थे। फागुन के दिन अब शुरू हो रहे थे और धूप भी चैत के साथ आती जा रही थी। फागुनी हवा बढ़िया वसन्त के लिए पेड़ों में सरसराने लगी थी और यही पुस्तक-पुस्तक ही तो पुकार-पुकार कर कहने लगता है कि परीक्षाएँ आ रही हैं। इन दिनों दिन बहुत फैल जाता है। कोई काला कलूटा धूप या आसमान में बच नहीं पाता है। आसमान जैसे ढेर सी असमाप्य धूप से भर गया हो। और वह कामना करने लगा कि ऐसे ही किसी दिन कोई डाकिया दीदी का एक पत्र उसके नाम पुकार कर दे जाएगा। जिसे वह ले लेगा लेकिन पढ़ेगा नहीं। दीदी के लिए यही दण्ड होगा कि वह उनका पत्र न पढ़े। बस वह पत्र अपने साथ स्कूल ले जाएगा। कभी किताब में रखेगा। कभी डायरी में। सम्भव है कभी हाफ़पैंट

की जेब में भी रख ले लेकिन पढ़ेगा नहीं—क्योंकि जो बीता गया उसका पत्र पढ़ना स्वयं को फिर मोह में डालना है।

और एक दिन पिता ने पुकार कर उसके नाम आया दीदी का पत्र सचमुच ही दिया जिसे लेकर वह दौड़कर जीना चढ़ते हुए अपने कमरे में पहुँचा और एक ही साँस में पढ़ गया। बराबर पढ़ता ही रहा—

पूना ४ मार्च १९१

श्रीधर! तुम्हारी याद इतनी आती है कि समय होता तो मैं वैसी ही बनी रहती। हम और तुम वैसे ही रेलिंग थाम तालाब देखते रहते। चट्टान पर खड़े पार्वती देखते रहते। साँझ तारे को अस्त-अस्ताचल तक देखते रहते। मैं कभी श्रीधर से विलग न होती। लेकिन भैया रे हम जन्म ही दूसरे देते हैं इसीलिए तो हमारा जीवन भी अपने लिए नहीं होता। उसे कोई दूसरा ले ले इसीलिए तो हम यहाँ हैं। अपना कुछ भी नहीं होता। अभी तुम छोटे हो। कल तुम भी सब समझ जाओगे। तब तुम्हारी दीदी की विवशताएँ समझ सकोगे। सब कुछ है। अच्छा घर है। सुख-साधन भी है। तुम्हारे जीजा जी मैं कहने के लिए दूसरी पत्नी हूँ बाकी वे धीकीम राजा साहब हैं। मुझे इस सब की हल्की झलक थी लेकिन श्रीधर! तू आज हमारी या हम सबकी विवशता थोड़े ही समझ सकेगा। अभी तेरी आँखों के आगे नीलिमा है। सब कितना सुहावना लगता है न? लेकिन दिन चढ़ जाने पर सब तपने लगता है और तो और बिलखती पृथ्वी तक तप उठती है। वे किताबें वह कमरा हम लोगों का पढ़ना बाबा साहब का एक-एक श्लोक का अर्थ करना और तुम्हें समझाना कितना कितना याद है श्रीधर! लेकिन कितने जल्द सब सेपा गया। कभी तुम यहाँ होते तो तुम देखते कि तुम्हारी दीदी सचमुच ही बदल गयी है। मेरा यहाँ क्या प्रयोजन है यही समझ में नहीं आता। जाने दे अभी तू नहीं समझेगा। और अच्छा भी है तू अभी न जाने यह सब। क्योंकि यह सब जान जाने के बाद अजीब वितृष्णा का तुरापन जीभ पर हमेशा-हमेशा के लिए जम जाता है। बाबा साहब के घर से कहीं ज्यादा वैभव है तेरे जीजा के पास श्रीधर! और मैं उसकी मालकिन हूँ। समझा कुछ? मालकिन किसे कहते हैं यह नहीं मालूम? अरे, यही बातें जानने को तो हम रोज बढ़ते हैं। बढ़ते जाते हैं बढ़ते जाते हैं और एक दिन इसे जान लेने के बाद घटने लगते हैं

घटने लगते हैं और फिर तो घटते ही जाते हैं। तो अब तेरी दीदी इसी को जान रही है आज कल। और एक दिन तू सुनेगा कि तेरी दीदी घटने लगी है। बस यही जीवन होता है। चढ़ते जाओ चढ़ते जाओ और शिखर पर पहुँच कर उसके नुकीलेपन को छू कर फिर उतरने लगो। शिखर पर कोई हमेशा के लिए बैठ नहीं पाता है। शिखर एक दंश है श्रीधर! जिसमें पता नहीं लोग कैसे लिप्त रहते हैं? उस दंश को लोग भोग कहते हैं और उसमें डूबे रहते हैं। यह न समझना कि तेरी दीदी इस भोग और दंश से पृथक है। नहीं आकण्ठ डूबी हुई हूँ। तन का तो कोई भाग इस लिप्सा से नहीं बचा होगा। रहा मन तो उसे कौन जान सका है? मन तो एक कल्पना है श्रीधर! जाने दे मैं भी क्या पचड़ा ले बैठी। तू मुझे याद करता है इसमें मुझे कभी संशय न था और न होगा। तू ही मुझे सचमुच याद करता है। और यही तो एक मात्र तेरी दीदी की उपलब्धि है। अच्छा छोड़। खूब पढ़ना। देख आज मैं दूसरे अर्थों में समुद्रों में हूँ। केवल तुझे यहाँ से पुकार कर ही कह सकती हूँ कि साहस कभी न खोना। जो हो चुका है उसके लिए पश्चात्ताप व्यर्थ होता है क्योंकि वह आने के लिए ही बना था। तुझे यहाँ आज को कैसे लिखूँ? मैं भी यहाँ कितनी कुछ हूँ इसे आज कैसे बताऊँ? तू मेरा छोटा भाई है और छोटे को बात संकेतों में समझाओ भला वह कैसे समझ पाएगा है न? तेरे जीजाजी मुझे जानते हैं यह कैसे कहूँ? जब कि मुझे ही वे कितना जानते हैं यह स्वयं मुझे ही नहीं मालूम। अच्छा तो खूब पढ़ना। एक दिन जब तू बड़ा आदमी बन जाएगा परिवार वाला हो जाएगा तब मैं जरूर ही आऊँगी अपने श्रीधर के बच्चों को देखने के लिए—

—तेरी असीम दीदी।

श्रीधर इस पत्र को जाने कितनी बार पढ़ गया। लेकिन उसकी समझ में बहुत कम आया। पर वह यह जरूर समझ सका कि उसकी दीदी सुखी नहीं है। और वह उस रात फिर बहुत देर तक रोता रहा। बारंबार अन्दर से बाहर कुछ आना चाहता रहा। लेकिन क्या? यह वह नहीं समझ सका।

दीदी के बिना भी दिन बीतते चले गये। एक और छोटा सा पत्र बम्बई से आया था। श्रीधर को बुलाया गया था कि क्यों नहीं वह कुछ दिनों के लिए आ जाता? दीदी का मन भी बहल जाएगा। वैसे पत्र में कोई खास बात नहीं थी

बल्कि अधिक तो यही था कि कैसे वह समुद्र तट घूमने जाती है। दूर समुद्र में विदा होता हुआ सूर्यास्त धीधर की याद करा जाता है। लगता है समुद्र में रोज सूर्य दिन भर की गाथाएँ पन्ने रखने शाम को जाता है और जिस दिन सारा समुद्र गाथा के पन्नों से भर जाएगा उस दिन प्रलय होगा। सबका इतिहास समुद्र के तल में रखा जाता है ताकि हम बाद में मुकर न जाएँ कि नहीं हमने ऐसा नहीं किया। ताड़ और नारियल के गाछ समुद्री तेज हवा में खूब सारे हिलते होते हैं। धीधर की दीदी बम्बई के कोलाहल पूर्ण समुद्री तट के बजाय किसी एकान्त तट पर ही अधिक जाती आती है। किन्तु यह कम ही हो पाता है क्योंकि प्रायः बाबा साहब या और कोई साथ में होता है। उसे अब एकान्त मिलता ही कहाँ है धीधर? अब तो उसका सदा ही एक सामाजिक पक्ष है। वह एक बड़े आदमी की पत्नी है जिसके नाते-रिश्तेदार इस बम्बई में काफी हैं। और कभी यहाँ कभी वहाँ तुम्हारी दीदी को जाना पड़ता है। जानते हो धीधर! बम्बई बहुत ही बड़ा नगर है। यहाँ समुद्र है जहाज आते-जाते हैं ऊँचे-ऊँचे मकान हैं बड़ी लम्बी चौड़ी सड़कें हैं बड़े-बड़े पार्क हैं जिनमें ढेर सारे फूल ही फूल हैं। भड़कीली पोशाकों वाले लोग हैं। बड़े-बड़े होटल हैं। होटल किसे कहते हैं जानते हो? नहीं न तो तुम यहाँ कुछ दिनों के लिए क्यों नहीं चले आते? होटलों में लोग खाने-पीने नाचने शराब वगैरा के लिए जाते हैं। बग्घियाँ हैं मोटरें हैं। धीधर! इस बम्बई में क्या नहीं है? हाँ यहाँ तुम तुम्हारी दीदी वह तालाब वे पुस्तकें वे सपने वह बचपन वह पुरानापन नहीं है। और सम्भवतः वह सदा के लिए बीत गया रे! तू अभी कुछ नहीं समझ सकेगा। पिछले दिनों कुछ समय के लिए तेरे जीजा आये थे। उनके साथ तेरी दीदी भी बड़े-बड़े होटलों में गयी थी। वे सब कुछ खाते-पीते हैं। पैसा उनके लिए पानी भी नहीं है। वे अपने वृद्ध शरीर को किसी भी सांसारिक सुख भोग से वंचित नहीं रखते हैं। तेरी दीदी को उन्होंने जेवरों से लाद रखा है। जानते हो जेवर पहन कर जब मैं उनके साथ बग्घी पर सवार होकर सड़क पर निकलती हूँ तब साधारण नर-नारी तेरी दीदी की ओर, गहनों की ओर देखते ही रह जाते हैं। अपना तन जब सोने से मँढ़ा हुआ हो तो लगता है कि पूरी पृथ्वी ही सोने से मँढ़ी हुई है—अरे हाँ अभी किसी से कहना मत लेकिन बाबा साहब हम लोगों के लिए एक नयी माँ लाना चाहते हैं। संभवतः जल्द ही।

और दीदी का उसके बाद कोई पत्र नहीं आया। कुछ महीनों बाद कस्बे में सभी को सूचना आयी कि बाबा साहब ने वहीं बम्बई में तीसरा विवाह कर

लिया। अब श्रीधर के लिए दीदी भी क्रमशः दूरागत ध्वनि होती जा रही थी। दीदी ही उसके लिए घटना थी और अब वह निश्चय ही घटनाहीन था। उसके अपने परिवार में श्रीमोहन के विवाह की चर्चा थी जिसमें उसकी रुचि नहीं थी। वह मिडिल कक्षा में था। इसके बाद वह नार्मल पास करेगा।

परीक्षा के बाद गर्मियों में श्रीमोहन का विवाह हो गया। बरसों से श्रीधर कहीं बाहर नहीं गया था। भाई के विवाह में वह पहली बार बैलगाड़ी में बैठकर यात्रा पर गया था। वह यात्रा उसे आज तक याद है। एक अजीब बुझा हुआ उत्साह था उसमें। बीस कोस की गाड़ी की यात्रा थी। बहुत ही भिनसार वे लोग चल दिये थे। पठारी नदियाँ गर्मियों में सूखी-अधसूखी थीं। कैसे बैलों के खुर और गाड़ियों के पहिये 'किचिर किचिर' करते नदियों के सूखे पथरीले तलों को पार करते। जंगलों में अजीब सुनसानपन मिलता। बरगद, पेड़ भूरे-सूखे पठार सब अजीब नीरवता में डूबे रहते जिसे बैलों की गलघंटियाँ या गाड़ीवानों की 'किचकिच' ही तोड़ते। उसका भाई श्रीमोहन घोड़े पर सवार था। एक गाड़ी में रंडियाँ थीं तबलची थे साजिन्दे थे। एक गाड़ी में बाजे वाले थे तथा आठ गाड़ियों में बाराती। दो दिन की यात्रा के बाद वे सोम बबुआओं के घर पहुँचे थे। जहाँ बारात सात दिन रुकी। जिस प्रकार नाच-गाना खान-पान चलता रहा सब उसे ठीक-ठीक आज तक याद है। रंडियों का नाच देखने किस प्रकार आस-पास के देहाती रात-रात भर बैठे रहते थे। गर्मियों की खुली-खुली रात में वे तीनों वेश्याएँ बड़े

हावभाव से उस बड़े तम्बू में नाचतीं । गैस की रोशनी में बैठे हुए लोग तन्मय हुए रहते । जब कोई स्त्री किसी के पास जाकर बैठकर हावभाव करती दर्शकों में से आवाजें आने लगतीं जिसे देख-सुनकर उसके मन में जाने कैसा होने लगता । जब कोई उसकी ओर देखकर आँख मटका देती तो वह एक दम लाज में लाल हो जाता । तभी पास में बैठे हुए कोई साहब बड़े मगन मन से उसकी पीठ पर धौल जमाकर हो-हो कर हँस पड़ते ।

—जानो बुला रही है तुम्हें ।

और इस बोली पर सभी हँस पड़ते ।

वह घबराया सा वहाँ से उठ खड़ा होता । तम्बू, बाग और अहाते से निकल कर वह गर्मियों के उजले आकाश में खिले तारों के नीचे अपनी अनेक अधूरी साँसें पूरी करता । वह तीन दिन में ही घबरा गया था । जब पिता ने उसे बताया कि बारात अभी चार दिन और रुकेगी तो वह रुँआसा हो आया । वह देखता कि दूसरे सारे बाराती सबेरे-सबेरे खूब नाश्ता कर मालिश करवाते फिर नहाने किसी बावड़ी पर चले जाते । तब खाना खाता । उसके बाद अमराई की गहरी छाया में पड़े अपने-अपने तम्बुओं में चौथे पहर तक सोते रहते । और फिर अंगड़ाई चलती । उपरान्त नहाया जाता । नाश्ता किया जाता । उसे लगा यहाँ से जाने की किसी को चिन्ता नहीं थी । सभी आनन्द मना रहे थे । केवल वही जाने क्यों अजीब अकेलापन अनुभव करता रहा ।

जब वह बारात से लौटा तब उसे मालूम हुआ कि वह मिडिल पास हो गया है बल्कि अच्छे नम्बरों से । वह आगे पढ़ने जाने की तैयारी में लग गया । उसे मार्डल स्कूल के लिए सरकारी वृत्ति मिल सकती है जानकर वह फूला न समाया क्योंकि पिता आगे पढ़ाने को तैयार नहीं थे ।

और यह यात्रा ही वास्तविक पहली यात्रा थी जब कि वह पहली बार कायदे से रेल पर चढ़ा था और फिर कैसे डरते-डरते वह ग्वालियर के माडल स्कूल पहुँचा था । घर से पहली बार नितान्त स्वतंत्र होकर रहना अपने में बहुत बड़ा अनुभव

था जो उसके व्यक्तित्व के तह तक में रस-बस गया। जैसे यह अनुभव खास था और इसी के लिए तो वह प्रतीक्षित था। सबेरे से शाम तक अध्ययन प्रशिक्षण आदि में लगे रह कर वह अन्य किताबें भी खूब पढ़ने लगा। स्वत्वपूर्ण एकान्त में उसे दीदी के साथ का सहजीवन स्पष्ट होने लगा। यहीं पर उसे मालूम हुआ कि दीदी विधवा हो गयी। अब वह विवाह वैधव्य आदि को उनके समस्त अर्थों में समझने लगा था। उसने दीदी को एक पत्र भी लिखा ठीक उसी तरह जैसे कोई बड़ा अपने छोटे को लिखता है। उसे दीदी के वैधव्य से अत्यन्त खेद हुआ था। यह भान रहा था कि दीदी जैसे व्यक्ति के लिए उनके पति जैसा न वह व्यक्ति न उसका वैभव और न उसका वातावरण कुछ भी तो समीचीन न था। जो व्यक्ति उससे आयु में इतना बड़ा था भला दीदी का पति कैसे बन सकता था?

लेकिन इसके बाद भी अनेक बातों की अभिव्यंजना अभी उसे नहीं आती थी। और ऐसे ही समय पिता ने एक पत्र लिखकर सूचना दी कि इसी पौष में उसका विवाह तय कर दिया गया है छुट्टियाँ लेकर चला आए। वह अस्वीकार करना चाहता था कि नार्मल पास कर के तब विवाह करेगा लेकिन वह ऐसा सब कुछ लिख न सका और एक दिन अनायास ही घर भी पहुँच गया और सौरों तक यात्रा कर विवाहित भी हो गया।

इस महत्त्वपूर्ण घटना के बाद उसे जो याद पड़ता है वह यही कि वह नार्मल पास कर अपने इसी स्कूल में मास्टर हो गया और आज तक वह यहीं है। इस बीच गुणवंती सुशीला और देवव्रत का जन्म हुआ। वे इस सब में निर्लिप्त थे यह कहना मिथ्या होगा लेकिन आसक्त भी नहीं कहे जा सकते। इस बीच श्रीमोहन का परिवार बढ़ा। छोटे भाई श्री वल्लभ का भी विवाह हुआ। घर की समस्याएँ सब बाहरी आपत्तियों से आकर खड़ी हों। माँ कैसे उदासीन होती चली गयीं और भाभी ने किस प्रकार दादा के कान भरने शुरू किये। सगे कैसे घटती चली गयी। इस बीच उदासीन पिता और अधिक ठाकुर जी की सेवा में रहने

उन्हें तथा स्वयं श्रीधर बाबू निष्काम भाव से गम्भीर ही होते चले गये। वे अपने चारों ओर उसी तरह देख पाते थे जैसे कोई नदी के तल में से अपने चारों ओर को देखता है—कुछ भी साफ नहीं दिखता। जो दिखता है वह बड़ा ही स्थूल जैसा फैला-फैला सा आकार हीन विस्तार। बस यही श्रीधर बाबू का देखना था अपने परिवार वालों के बारे में। आज भी उनकी संवेदनाएँ किसी विगत में थीं वहाँ सोचते हुए होने पर उन्हें अजीब तृप्ति होती थी। बाकी जो सामने यथार्थ था वह अजीब ओछा वितृष्णा करने वाला लगता। इस बीच मामा साहब की आत्महत्या के समय श्रीधर बाबू सोरा गये हुए थे। और उस अवसर पर दीदी अवश्य आयी थीं लेकिन तब श्रीधर बाबू न थे और इस प्रकार विवाह के बाद से ही दोनों को कभी देखने का अवसर ही नहीं मिला। केवल यही मालूम हो सका कि अब वे असांसारिक होकर काशीवास कर रही हैं। इससे अधिक का व्यवहार उनके बीच रह ही नहीं गया था।

समय बीतता चला गया। श्रीधर बाबू अधिकाधिक उदासीन होते चले गये। बल्कि नीरस से भी लगने लगे थे। केवल पेमेन मजूमदार और नारायण बाबू को छोड़ उनका कोई वैयक्तिक मित्र था ही नहीं। इस बीच उन्होंने इतिहास लिखा। और वे अपने विभाग की प्रतिक्रिया के लिए चिन्तित थे। यद्यपि लोगों का ख्याल था कि बात आयी-गयी हो गयी है। लेकिन श्रीधर बाबू का ख्याल था कि बात ऐसी ही आयी-गयी नहीं होगी।

आजकल दिवाली की आठ दिन की छुट्टियाँ थीं। श्रीधर बाबू ने इस बीच अपने सारे कागज-पत्तर साफ कर रखे। पुस्तकों की धूल झाड़ी। नये-नये बस्ते बनाकर पुरानी किताबों को सहेजा। पुरानी बातों का मोह किया और उन्हें ठीक से लेबिल लगा कर रखा गया। दीदी की तथा मामा साहब की दी हुई प्रत्येक पुस्तक को पढ़ा गया और उनके साथ की स्मृति में डूबा गया। मन में जैसे कोई अजीब प्रतीक्षा थी और जिसे वे अज्ञात भय से जिये चले जा रहे थे।

और अचानक शिक्षा विभाग की ओर से दिवाली की छुट्टियों के ठीक बाद सूचना आयी कि यदि श्रीधर ठाकुर इतिहास में परिवर्तन नहीं करते तो उन्हें नौकरी से त्यागपत्र देने को कह दिया जाए। गांगुली साहब ने विभाग का पत्र दिखाया और फिर समझाया कि अभी भी मौका है। लेकिन अत्यन्त निस्पृह भाव से श्रीधर बाबू ने पत्र पढ़ कर पूछा

—तो त्यागपत्र कब दे दूँ ? आज ही ?

और स्कूल में बात फैल गयी कि श्रीधर बाबू त्यागपत्र दे रहे हैं। बात की बात में हेड मास्टर साहब के कमरे के सामने विद्यार्थियों की भीड़ जमा हो गयी। लड़के चारों ओर से ताकझांक कर रहे थे। बरामदे में अजीब घुटा-घुटा सा धुआँ सा छाया हुआ था। गांगुली साहब अपने कमरे से बाहर आये और उन्हें देखकर लड़के गिरते-पड़ते भागने लगे। इतने में दूसरे अध्यापक भी आ गये। कमरे में एक अजीब सन्नाटा छा था। विभाग का पत्र टेबल पर पड़ा हुआ था जिसे बारी-बारी से सब लोग पढ़कर रख देते थे और सिर नीचा कर लेते। शायद कोई भी पूरी सांस नहीं ले पा रहा था।

—श्रीधर बाबू ! आप जानते ही हैं कि आपको मैं पुत्र की तरह स्नेह करता हूँ ? मैं आपको परामर्श दूँगा कि ऐसी जिद नहीं करनी चाहिए । बात छोटी सी है, झुक जाना चाहिए ।

नाडगिल साहब की बात पर फर्स्ट मास्टर मुंशी राम इकबाल सहाय बोले जो कि करीब सत्तर वर्ष के होंगे । जिन्होंने उर्दू में स्वर्गीय श्रीमंत महाराज की शान में कभी गज़ल लिखी थी ।

—जी हाँ साहब! ज़माना देख के काम करना चाहिए । अब श्रीधर बाबू तो खुद काफ़ी पढ़ने वाले और समझदार शख्स हैं । इसमें क्या रखा है बड़े-बड़े शायरों को अपने कलामों और दीवानों में से अशआर तक काटने और बदलने पड़े हैं । ज़माने की चाल ही दूसरी होती है जनाब !

और दूसरे सभी अध्यापकों ने 'जी हाँ इसमें क्या शक है' की टीप लगायी ।

—तो आप अब कहें मैं अपना त्यागपत्र दे दूँ ।

और श्रीधर बाबू को उठता देखकर सब सकपका गये ।

तो क्या सच ही श्रीधर बाबू त्यागपत्र दे ही देंगे ?

—जैसी आपकी मर्ज़ी । जिस दिन देना चाहें दे दीजिए ।

और सब खिन्न मन से उठ गये ।

किसी का साहस श्रीधर बाबू से बातें करने को न हुआ । सही तो यह था कि वे स्वयं ही से न बात कर रहे थे न सोच रहे थे । केवल यही लग रहा था कि कल जब वे त्यागपत्र दे देंगे उसके बाद क्या होगा ? कौन जाने ? वे स्वयं अनिर्णीत थे मन के किसी अतल में । और वे उस भरसक उभरने न देना चाहते थे । आज वे घर तब पहुँचना चाहते थे जब सभी सो जाएँ ताकि किसी से सामना न हो । अच्छा हो कि सरो भी सो गयी हो । मान लो वह जाग भी रही हो तो कम से कम माँ और पिताजी अवश्य ही सोते मिलें । और वे स्कूल से सीधे पेमेन बाबू के यहाँ पहुँचे ।

पेमेन बाबू नित्य की भाँति अपने उसी लान में कुर्सियाँ बिछाये बैठे थे । नवम्बर की सन्ध्या थी । न अधिक गरम न अधिक ठंडी । श्रीधर बाबू को देखकर वे खिल उठे

—आइए श्रीधर बाबू ! बड़े दिनों में दिखायी दिये । दिवाली भर नहीं दिखे, कहाँ थे ?
—असल में घर पर ही साल भर की सफाई-धराई रहती है न ?
—नारायण बाबू लौट आये ?
—क्यों कहीं गये थे क्या ?
—आपको नहीं मालूम ? आप भी अजीब हैं ।
—असल में पैमेन बाबू बात यह है कि मैं सूकरवृत्ति का आदमी हूँ न ।
और वे हँस दिये ।
—क्या मतलब आपका ?
—सूकरवृत्ति नहीं जानते आप ? अरे नाक की सीध में काम करने का आदी हूँ बस जहाँ लग गया फिर दूसरा कुछ याद ही नहीं रहता ।
—ओह यह बात है ?
और दोनों हँस पड़े ।
—यह तो ज्ञानियों का लक्षण है श्रीधर बाबू !
—लेकिन ज्ञानी नहीं हूँ यह निश्चय समझें । तो नारायण बाबू
—गुरु वे मदन के लिए उत्सीम जाने वाले थे तमहरे घर ही ।
—क्यों उनके मदन को क्या हुआ ?
—हुआ कुछ नहीं वह आगे पढ़ने के लिए विलायत जाने के लिए कहता है ।
—यह तो बहुत अच्छा है । तो नारायण बाबू को क्या आपत्ति है ?
—लेकिन बड़े भाई मालूम कहते हैं कि समुद्र पार जाने से धर्मभ्रष्ट हो जाएगा ।
तभी दूरी पर नारायण बाबू की फिटन दिखलायी दी ।
—लो वह भी आ गये ।
श्रीधर बाब की बात सुनकर पैमेन ने देखा कि नारायण बाबू आ रहे हैं ।
—अरे वो इतिहास वाला झमेला तो दूर हो गया न !
पैमेन बाबू बात कहते हुए फिटन की ओर देख रहे थे ।
—कहाँ बात फिर पच आया है ?
—क्या ?
और तभी फिटन आकर रुकी । आते ही बोले
—अरे तुम यहाँ हो ? मैं तो तुम्हारे यहाँ गया था ।
—क्यों ?
—यह इसमें पूछो कि मैं क्यों गया था इनके यहाँ ।

और कुर्सी पर बैठते हुए बोले।

—मुझे तो लगता है कि एक न एक चिन्ता बनी ही रहेगी। मन का कुछ तय करके आज ही उज्जैन से आया कि मालूम हुआ कि ये हरगज त्यागपत्र दे रहे हैं।

—क्यों श्रीधर बाबू! आप नौकरी छोड़ रहे हैं?

पमेन ने साश्चर्य पूछा।

—और क्या करूँ?

श्रीधर ने बिल्कुल निरीह भाव से कहा।

—देखो श्रीधर! मैंने उस समय तुम पर जोर देना ठीक नहीं समझा लेकिन अब सोचता हूँ कि नौकरी छोड़ दोगे तो पुरनैना मन्दिरों की पूजा से मैं नहीं समझता कि तुम्हारा पेट भर सकेगा। व्यापार तुम करने से रहे। दूसरी सरकारी नौकरी मिलने से रही। तब क्या करोगे?

नारायण बाबू बहुत गंभीर होकर बोल रहे थे।

—मैं स्वयं भी नहीं जानता कि क्या होगा।

—अपने भाइयों को देख ही रहे हो। श्रीवल्लभ अलग हो गया। श्रीमाकृन तो अब अलग मकान भी लेने की सोच रहे हैं। फिर तुम्हारा क्या होगा?

—मैं कहाँ कहता हूँ कि मेरा कुछ होगा ही।

—यह सब बकवास है तुम्हारी। न जाने तुम कौन-कौन सी किताबें पढ़ते रहते हो दिन रात कि तुम्हारा दिमाग पता नहीं क्यों व्यावहारिक बातें नहीं सोच पाता? बेचारी बहू और बच्चा का क्या होगा?

नारायण बाबू किंचित आवेग में आ गये।

—सच श्रीधर बाबू! बात तो बहुत गंभीर है।

पमेन उठकर अन्दर जाते हुए बोले। जब वे अन्दर चले गये तो नारायण बाबू बोले

—श्रीधर! कोई चिन्ता नहीं अगर तुम सच ही छोड़ना चाहते हो लेकिन यह मान लो कि तुम सरकार की आँखों में हमेशा के लिए चुभ जाओगे। कोई साथ नहीं देगा। अपने घर की स्थिति देखो। मैं पूछता हूँ कब तुम्हें समझदारी आएगी? यह आदर्शवाद तुम्हें कब से लग गया श्रीधर? क्या तुम्हारी माँ ने जब तुम्हें इतना कुछ सिखाया-पढ़ाया था तो कुछ दुनियादारी भी सिखा गयी होंगी। हाँ ...। वो भला क्या सिखाती? बड़े आदमी की लड़की थी। उसका भी आदर्शवाद उस जाने क्या-क्या सिखा रहा है।

तब तक पेमेन लौट आये ।

और सहसा श्रीधर उठे । नारायण बाबू भी पेमेन के साथ कुछ चकित अवश्य हुए लेकिन वे आश्वस्त ही रहे । पेमेन बोले

—अरे कहाँ चल दिये ?

—घर जाना चाहता हूँ ।

—लेकिन चाय आ रही है ।

—नहीं खाऊँगा । चाय के लिए क्षमा करें ।

—क्यों मेरी बात का बुरा मान गये श्रीधर ?

नारायण बाबू ने कुछ खिन्न होकर पूछा ।

—नहीं नारायण बाबू ! आपकी बात का बुरा इस जन्म में तो नहीं मान सकता ।

—तो फिर श्रीधर को जाने दो पेमेन ! मैं चाहता हूँ कि श्रीधर सोचे और तब कोई व्यावहारिक कदम उठावे । क्या गाड़ी भेजूँ ?

—नहीं ।

और श्रीधर दूर तक दिखती सड़क पर साँझ के धुँधले में दूर-दूर तक दिखता रहा ।

—क्या बात थी नारायण बाबू ?

नौकर तब तक चाय ले आया ।

—पेमेन ! लाला साहब की लड़की इन्दु को जानते हो न ?

—हाँ हाँ श्रीधर बाबू तो उन्हें दीदी मानते रहे हैं ।

—हाँ उसी की बात आ गयी । उसी ने इस व्यक्ति को स्वप्नशील बना दिया । ये सारे आदर्श सिद्धान्त भला जब इन्दु की सहायता नहीं कर पाये तब भला इस बेचारे श्रीधर की क्या हालत करेंगे इसे यह नहीं समझता है । रामतीर्थ विवेकानन्द से नीचे बात ही नहीं करता है मेरा शेर । शेक्सपीयर के नाटकों के वाक्य बोलता है और पूछिए, तो हजरत मास्टरी करते फिरते हैं । मैं आलोचना नहीं कर रहा हूँ पेमेन ! लेकिन मुझे यह अपना छोटा भाई सा लगता है । इसके लिए मुझे दर्द है पेमेन ! लेकिन अभी यह नहीं समझता कि कल क्या करेगा । तीन बच्चों का बाप बन गया लेकिन अभी पूरे एकदम बच्चों की तरह व्यवहार करता है । पुरखौती मंदिरों की पूजा की जो माफी की जमीन है उसे सिरस्तेदार साहब श्रीमोहन बाबू ने हड़प रखी है । मकान की हालत जैसी है उसे हम-आप देख ही रहे हैं उसमें [illegible] हिस्से होंगे और दोनों भाई अपना-अपना हिस्सा लेकर अलग नहीं

इन साहबजादे से पूछो कि कल से तुम्हारी बीवी और तीनों बच्चे क्या खाएँगे ? माल को माता-पिता अभी तो बेचारे कुछ कमाते-धमाते हैं, कल से उनका क्या होगा ? दोनों भाई कटे पर पेशाब कर दें तो मेरा नाम पलट देना । और ये चले हैं नौकरी छोड़ने ।

—नारायण बाबू सच ही बहुत तैश में थे ।

नारायण बाबू सभा भवन से अलग होकर श्रीधर बाबू तालाब की ओर निकल आये । साँझ कभी की ढल चुकी थी । स्वयं उनके मन में हल्के-हल्के अनेक शंका-कुशंकाएँ घिरने लगी थीं । अब तक घर-भर के लोग जान गये होंगे कि मैं त्यागपत्र दे रहा हूँ । माँ ने क्या सोचा होगा ? सरो ने इस समाचार को सुना होगा कि नहीं ? अवश्य ही भाभी ने आँगन में खड़े होकर खूब रस ले-लेकर बातें सुनायी होंगी । पिता जी तो अभी मंदिर में ही होंगे । वहाँ किसी ने अवश्य ही यह खबर सुना दी होगी । दादा ने माँ को यह समाचार अवश्य ही यह कहकर सुनाया होगा कि मैं तो पहले ही जानता था इसीलिए इन झगड़े में कभी पड़ा ही नहीं । वे इसी उधेड़बुन में घाट पर बैठे रहे । तालाब के बीच में सँवलाया आकाश प्रतिच्छायित था । सामने के शिखर पर सन्ध्यातारा उग आया था । दूर मंदिरों के घंटा-घड़ियाल बोल रहे थे । दूर-दूर तक घाट सुनसान थे । वातावरण में हल्की खुनकी थी । तालाब के चारों ओर के गाछों से अँधेरा धीरे धीरे घिर रहा था । अबाबीलें पानी पर उड़ रही थीं । लौटे हुए पक्षी घोंसलों में पंख फड़फड़ाते बैठ रहे थे । चिमगादड़ें तेजी से मँडराने लगी थीं । हवा एकदम शान्त थी । बीच वाली छतरी मद्धिम पड़ती जा रही थी । पानी में कहीं कहीं कम्पन भर थी बाकी सब थिर था । एक अजीब सन्नाटे में श्रीधर बाबू बैठे थे । बाहर का यह निर्जन जैसे अपने अन्दर भी धँसता जा रहा था । जिस सोचने के लिए वे यहाँ आये थे वह सोचना ही जैसे खो गया था । वह स्वयं जैसे इस निर्जन एकाकीपन के एक सूने क्षण भर हों । इस समस्त वीरानेपन को जो भी कहीं कोई सोच रहा हो सोचे कम से कम

श्रीधर बाबू नहीं सोच रहे थे। बल्कि वे इतने विराट निर्जन में कभी नहीं सोच सकते थे। वे एक खाली बर्तन की तरह सम रह थे जिसे कोई दिशाओं के पार मन ही बजा रहा हो वे चाहे बज रहे हों लेकिन उन तक न अम्बर, न बाहर कोई स्वर नहीं आ रहा था।

जब सब छोड़ जाते हैं तब भी यहाँ बहुत कुछ पीछे छूट जाता है। इतना सारा पूरा का पूरा दृश्य यथावत रहता है। इन्हें कभी नहीं लगता होगा है। कैसा सम्बन्धहीन सम्बन्ध इस पूरे व्यापार में है। एक हम हैं कि प्रत्येक पल में एक-एक बूँद रिसते हैं। हम स्मृतियों का फर्श अपने आगे बिछाये चलते हैं और उस पर रख चलते हैं। नया नया और नया—हमारे पैरों के नीचे जाने कहाँ से खिंचता हुआ चला आता है और बिछता जाता है। हम अनेक बार ऐसे अपरिचित या अबूझ नूतन के साथ नहीं चलना चाहते हैं लेकिन यह सम्भव नहीं होता। यहाँ दुहराता कुछ नहीं है हमें सदा आभास होता है। हमसे प्रत्येक क्षण हमारा स्वत्व ही जाने कहाँ किसलिए, किसके लिए टूट रहा होता है। कौन जाने कल क्या हो। कल त्यागपत्र देने के बाद कौन जानता है क्या होगा? सम्भव है यहाँ रहना न हो। तब क्या होगा? क्या कहीं बाहर जाना जाएगा? क्या पता? सरो गुनवती सुशीला चन्द्रप्रभु का क्या होगा? नहीं यह नहीं हो सकता कि ये लोग अनाथ हो जाएँ। लेकिन माँ हैं ही। पिता चाहे अनासक्त हों लेकिन माँ उन्हें अभी भी संघर्षों से घेरे हुए हैं। इस विषमता से कैसे निकला जाएगा? या तो यहीं टूट कर रह जाना होगा या फिर 'विनुकारण पृथ्वी' को एक बार देखा तो जाए। क्या होगा? मैं स्वयं के लिए कभी चिन्तित नहीं हो सकता। रही सरो और बच्चों की बात—तो क्या ये लोग कुछ दिन भी मेरे बिना नहीं रह सकते? क्या कोई, कुछ लोगों के लिए इतना आवश्यक होता है? —नहीं तो बिना सिद्धार्थ के पद राजवंश राज्य यशोधरा राहुल परिवार सभी रह सके या श्रीधर तो कोई ऐसी सत्ता नहीं है। और फिर कुछ दिनों में जब सब ठीक हो जाएगा तब ये लोग भी आ सकेंगे। लेकिन आरंभ में ही सब कुछ बता देने पर कब किसने किसको जाने दिया है? मोह के बन्धन तो स्मृतियों में बाँधते हैं तब भला सुखी आँखों कोई किसी को जाने दे सकता है? —तो फिर किसी को नहीं बताया जाए? क्या??—कि मैं यहाँ से अपने दुस्साहस और भाग्य दोनों की परीक्षा के लिए जा रहा हूँ। कहाँ? भला अभी से इसका निर्णय कैसे किया जा सकता है?—या तो सरो या माँ—किसी को भी नहीं कहा जाएगा?

और तभी उन्होंने देखा कि आकाश में एकदम ठण्डे तारे ही तारे भर गये हैं सर्दियाँ शुरू हो गयी थीं। दूर दूर तक न शब्द न स्वर, न गंध न रूप कुछ नहीं था। जैसे सब ठंडे अँधेरे में जम गये हों। जेब से घड़ी निकाल कर देखने की कोशिश की लेकिन वे कुछ पता न लगा सके। अनुमानतः दस बजे रहे होंगे। वे सहसा यह भूले हुए थे कि कुछ देर पहले उन्होंने जीवन का महत्वपूर्ण निर्णय लिया था। जो सच ही यदि पूरा हो जाता है तो स्वयं वे ही नहीं जानते कि कल क्या होगा। और यह भी कि कल उनका उनके परिवार का भी क्या होगा। बस लौटते में उन्हें यही लग रहा था कि अंधेरा उन्हें चारों ओर से अकेला घर की ओर ले जा रहा था। वहीं वे भी उस सब में हैं यह विशेष न जानते हुए भी वे चल रहे थे।

ठण्डा कबीर मास्मी बायरा चल रहा था। जाड़ों की भिनसार। आकाश में तारे ठण्डे लग रहे हैं। अँधेरा छँटने में काफी देर थी। रेल की पटरियों से लगी सड़क भी इस बेला सुनसान थी। श्रीधर बाबू इस सुनसान बेला अकेले चले जा रहे थे। कल रात तालाब पर निर्णय लिया था कि वे बिना और कुछ बात का विचार किये यह नौकरी छोड़ देंगे। घरों को कैसे और कितना कुछ बताया जाएगा इस बारे में तब वे स्पष्ट नहीं थे। लेकिन तालाब के पार जब वे घर पहुँचे लगभग सभी सो चुके थे। दरवाजे की कल की थोड़ी आवाज होते ही माँ ने पूछा

—कौन ? सिरीधर ?

—हाँ, तुम सोयी नहीं अभी ?

—अब सोना किसके भाग में रहा रे।

और श्रीधर बाबू माँ की इस वीतरागिता का कारण फौरन ही समझ गये। व इस वक्त को इस विषय को टाल जाना चाहते थे क्योंकि लगता था माँ जैसे भरी बैठी थीं। वे जान गये कि यदि बातचीत शुरू कर दी तो फिर उसके

वेग में उनके निर्णय बह जाएँगे। माँ के इस वक्तव्य के पीछे जो दर्द या आरम्भ छिपा हुआ था उसका सामना श्रीधर बाबू किसी भी कीमत पर नहीं करना चाहते थे। उधर माँ ने भी प्रतीक्षा की कि रोज की भाँति लड़का पास आकर बैठेगा। वे धीरे-धीरे पूछेंगी कि क्यों रे, स्तीफा तो दे देगा लेकिन बाद में ही क्या होगा? हमारी चिन्ता जाने भी दे लेकिन तेरे ही बाल-बच्चों का क्या होगा? तू कहीं यह सोचता हो कि पूजा की माफ़ी वाली ज़मीन में से कुछ मिल सकेगा तो बन्धु बहुत भूल में हो। जब श्रीमोहन अपनी सगी माँ को उस ज़मीन की पैदावार की एक सेर जुआर लाकर नहीं देता है वह भला उसमें से भाइयों को हिस्सा देगा? अरे तुम लोगों की कौन कहे उसने दूसरे भाईबन्दों की भी ज़मीन हड़प रखी है। सिरस्तेदार क्या हुआ उसे नादिरशाह हो गया। श्रीवल्लभ को थोड़ा मिला रखा है बस बाकी तुझे या दूसरों को वह क्या समझता है। देख बेटा जल्दबाज़ी में कोई नादानी न कर बैठना।—और समीक्षांश से माँ श्रीधर की प्रतीक्षा करती रहीं कि वह आये तो पूछें कि क्या सच ही वह त्यागपत्र दे रहा है? क्योंकि कहीं उन्हें विश्वास था कि श्रीधर ऐसा सब कुछ करने के पूर्व कम से कम अपनी माँ से ज़रूर पूछेगा।

साँझ से रात पड़ी। रात से देर रात भी हुई लेकिन श्रीधर न आया। रोज की भाँति घर के सारे लोग लौट-लौट कर आ गये। खाना खा लिया गया। रोज की कहा-सुनी भी नहीं हो गयी। पति उसी निर्विकल्प भाव से बैंचाई पर बैठ कर पाठ करते रहे। अंतराल यही था कि रोज की भाँति घर के दूसरे लोग खासकर श्रीमोहन और उसकी बहू दोनों आज अपने कमरे में ही रहे। श्रीमोहन का खाना भी आज उसकी बहू कमरे में ही ले गयी। कोई किसी से नहीं बोला और खासकर श्रीधर की बहू से तो श्रीमोहन के बच्चे तक दूर से ताक-झाँक करते रहे लेकिन बोले नहीं। आज बच्चों ने काकीमाँ से खाना नहीं माँगा बल्कि उनकी माँ ने ही आकर बिना सरो से कुछ कहे बच्चों की थालियाँ लगा दीं और अपने सामने ही उन्हें खिला दिया गया। चूल्हे के पास सरो अपनी धोती में सारे अंगों को छुपाये सिर झुकाये बैठी रही। वह यह भी नहीं सोच पा रही थी कि आज यह अनहोनी कैसे और क्यों हो रही है? माँ के साथ ही आज बड़ी बहू ने खाना खा लिया लेकिन न सास न बहू दोनों आपस में कोई किसी से नहीं बोला। केवल बर्तनों के ढँकने तथा खोलने का धीमी स्वर या कड़छम-चम्मच का मरा-मरा स्वर ही होता रहा। सास और जेठानी के जाने के बाद चौकापूजी कर सरो

बर्तन माँज कर अपने कमरे लौट आयी। वह जान चुकी थी कि पति ने त्यागपत्र दे दिया होगा। उसे बताने की कोई आवश्यकता भी उन्हें नहीं होगी। वह अस्वस्थ हो रामायण खोल पति की प्रतीक्षा करती रही।

माँ ने देखा कि श्रीधर, आज रोज की भाँति बैठना नहीं चाह रहा है। वे इसी असमंजस में रहीं कि श्रीधर से कहें कि बैठ जा कुछ बातें करें। लेकिन वे यही सोचती रहीं कि आज नहीं कल सवेरे बातें कर लेंगी। संभव है आज थक गया होगा परेशान भी होगा। बहू ने भी अभी नहीं खाया है।

—जा खाना खा ले। इसी देर-देर में तुम लोग आते हो। कभी यह नहीं सोचते कि तुम्हारे कारण किसी दूसरे को भी भूखों रहना पड़ता है।

—मैंने तो हजार बार कह दिया कि मेरे लिए कोई भूखा न बैठे।

—अरे तो तुम लोगों ने कह दिया और हम लोगों ने मान लिया है न? बड़ा आया है। यही तो है। तुम लोग कभी हम लोगों को नहीं समझ सकते।

और श्रीधर बाबू अपने कमरे पहुँचे।

देखा पत्नी रामायण पढ़ते हुए रोती जा रही थी। श्रीधर बाबू चौंके।

—क्या हुआ सरो?

सहसा पति को देहली पर खड़ा देख सरो ने आँसू पोंछ डाले और खड़ी हो गयी।

—कुछ नहीं।

और बढ़कर उनका कोट लेकर खूँटी पर टाँगने लगी। श्रीधर बाबू जाकर मोरी पर हाथ-मुँह धोने लगे। उन्होंने इस बीच वह स्थल देख लिया जिसे पढ़कर सरो रो रही थी। सीता के आभूषणों को दिखा-दिखा कर राम लक्ष्मण से पूछ रहे थे कि क्या ये सीता के ही हैं? और लक्ष्मण केवल पदाभूषणों को ही पहचान पाते हैं क्योंकि रोज प्रणाम करने के लिए वे उनके पैरों का ही देखते थे। इस स्थल का लेकर सरो जाने कितनी बार शायद प्रत्येक बार रोयी है। श्रीधर बाबू सरो की इस भावुकता को कभी नहीं समझ पाये हैं। वे उससे इस बारे में कभी बहस नहीं कर पाते हैं। वह राम या सीता के किसी प्रसंग पर कोई अन्य मत मानने को तैयार ही नहीं थी। रामायण का वह आद्यन्त न जाने कितनी बार पढ़ चुकी थी। लेकिन वह हर बार पढ़ने पर प्रत्येक स्थल के नये-नये सन्दर्भ अर्थ लगाया करती थी। अनेक बार उसका मत या तर्क इतना हास्यास्पद हुआ करता था कि बस। जैसे यही कि प्रत्येक धर्मज्ञ के जीवन में वनवास यातना प्रिय-विरह आदि होते ही हैं। इस प्रकार प्रत्येक के जीवन में

रामायण अपने तरीके से नित्य सम्पन्न होती है। अन्य दिन तो श्रीधर बाबू हँस दिया करते थे लेकिन आज वे हँस न सके। आज प्रिया की बातें जैसे दूर से आती हुई पुनः सुनायी पड़ रही थीं। और यह भी कि क्या मैं सच नहीं कहती थी कि प्रत्येक सज्जन के जीवन में रामायण का वनवास प्रिया-विरह होता ही है? वाल्मीकि और तुलसी जैसे सन्त क्या झूठ लिख गये हैं? इन्हीं दिनों के लिए तो ये ग्रन्थ लिखे गये हैं।—श्रीधर बाबू चौंक उठे। सरो कभी की नीचे रसोईघर जा चुकी थी। सम्भवतः थाली लगाकर प्रतीक्षा भी कर रही होगी।

खाते समय भी सरो यह सोचती रही कि उसने जो सुना है क्या वह उतना ही गंभीर है? क्या ये उसके बारे में उसे कुछ बताना उचित नहीं समझते?—जबकि श्रीधर बाबू सोचते रहे कि क्या पता अब इस घर में इस प्रकार कब ऐसे ही बैठकर भोजन हो। सरो हो सकती है, वे हो सकते हैं, भोजन भी हो सकता है लेकिन क्या यह घर भी हो सकता है? आज जिन संदर्भों में वे इसी रात में खाना खा रहे हैं सम्भवतः यह सब कुछ दुहराया नहीं जा सकता। कल क्या हो यह स्वयं श्रीधर बाबू ही कितना जानते हैं??

पति के खाने के बाद सरो ने बस मुँह जूठा करने के लिए ही दो-एक कौर पानी के साथ किसी तरह उतारे और उठ गयी। आज अंग-अंग दुख रहा था। सबेरे से घर का सारा काम-काज तो था ही उसके बाद बातें सोची गयी थीं। पूरा दिन अकेले यह सब करते-करते वह इस समय चूर हो गयी थी। साथ ही मन में जाने कैसी बेचैनी थी। रह-रहकर वह चौंक उठती थी। जैसे सुदूर में किसी के पैरों के भारी चलने की आहट हो और कोई डींग-डींग रो रहा हो। बचपन में वह अपने पिता के साथ मीरों में एक बार आगरा-फतहपुर-सीकरी आदि देखने गयी थी। उन ऊँचे गुम्बदों में लेटी हुई

मजारें जिनके सिरहाने जलती हुई मोमबत्तियाँ उसे बड़ी अजीब लगी थीं। जाने कितनी बार दोपहरी में वह काम करते-करते चौंक-चौंक जाती और वे मजार वाली मोमबत्तियाँ जैसे उन मजारों की आँखें बन जातीं। वे जलती आँखें ऊपर के गुम्बद, चारों ओर की दीवार, सबको जैसे काँप-काँप कर देखती होतीं। एक अजीब सन्नाटे में अबोलती हुई आँखें सरो को जैसे जलते हुए प्रायः घेर लेतीं। आज भी वे ही आँखें उस मजार से निकल कर उन ऊँचे गुम्बजों में जाने कहाँ भारी कदमों को रखती हुई, अँधेरी-अँधेरी चल रही थीं। सरो ने रसोईघर की अँधेरी बन्द की। कमरे आयी तो देखा कि पति बच्चों के बीच में लेटे हुए उन पर हाथ फेरते हुए मौन छत ताक रहे हैं। उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। आज पति निश्चय ही अजीब से लगे। भला वह पतिमुख को विकृत कैसे कहे? कठोर ही सोच सकती थी। बल्कि ऐसा कठोर जिससे भय लगता है। जब असम्पृक्त का भाव किसी दृढ़ संकल्प के साथ किसी मुख पर आ जाए, तो मुख हमारे मानों को विकृत ही लगता है।

—क्या बात है? बहुत थक गये? लाइए पैर दाब दूँ।

और अपशकुनी मौन तोड़ते हुए वह पति के पैरों के पास बैठ गयी। पल्लू से ठंडे हाथ पोंछ कर उसने पैर दाबने के लिए हाथ बढ़ाया।

—सरो तुम जानती हो मुझे यह पैर दबवाना सुहाता नहीं है। तुम स्वयं बहुत थकी हो। मैं जानता हूँ तुम कितनी अच्छी हो। नारी पृथ्वी होती है क्योंकि वह प्रजनन की पीड़ा को अन्दर से लेकर वहन के भार को बाहर तक आजन्म सहती है। सरो तुम पृथ्वी हो।

और सरो ने देखा कि पति जो प्रायः कम ही बातें करते रहे हैं, आज बोलने को हो आये हैं। कम बोलते हैं लेकिन कैसा मीठा कैसा समझा हुआ बोलते हैं जैसे सुनने वाले का ही सोचना बोल रहे हों। आज सहसा उसे पति की देह से मोह हो आया। इस मुख को देह को कितने पास से तथा अपने अन्दर भी अनुभव किया है।

दीप का ठण्डा आलोक दीवारों पर सोनाला लिपा हुआ था। बीच-बीच में बच्चे निद्राओं में कुनमुना उठते थे। उसे पति के तन में उनकी आँखें सदा सुहायी हैं। वे सदा ऐसे देखती हैं जैसे कुछ नहीं देखतीं। उनके लिए कहीं कुछ नहीं है। सब पारदर्शी है।

—सरो! सीता को सबसे ज्यादा पीड़ा रावण ने दी या राम ने?

—देखिए आप जानते हैं कि मैं रामायण के प्रति तर्क नहीं करती। वह मेरी श्रद्धा है।

—मैं समझता हूँ सरो! कि राम ने सीता को जो पीड़ा दी या अपमान किया उसके कारण ही वे पृथ्वी में समा गयीं।

—यदि अग्नि परीक्षा की बात कर रहे हैं तो यह उनकी आपसी बात थी। पत्नी पर पति का अधिकार होता ही है। और फिर यह परीक्षा तो प्रत्येक पत्नी को अपने-अपने तरीके से देनी ही होती है।

—तो तुम मानती हो कि पति अपनी पत्नी को अग्नि परीक्षित करता ही है?

—पत्नी अपने पति और बच्चों के लिए क्या नहीं कर सकती? बाबा मैं आपसे बहस नहीं करती और वह भी इसी रात में।

—सच ही बहुत रात हो गयी। अच्छा अब सो जाओ। मैं—त्यागपत्र दे रहा हूँ।

—मुझे मालूम है।

—तुम्हें कुछ नहीं कहना?

—मैं क्या आपसे अलग हूँ?

—इतना किसी पर भी निर्भर नहीं होना चाहिए सरो! सबकी अपनी सत्ता होती है। इसलिए नियति भी अलग-अलग होती है। एक सीमा के बाद सब नितान्त एकाकी होते हैं सरो!

—आप अपने को एकाकी मानते हैं, मानें। मैं भला अपने चारों ओर को कैसे ये बड़ी बड़ी बातें कह कर अस्वीकार सकती हूँ? मेरे लिए तो ये सब भी उतने ही मेरे हैं जितनी कि मैं अपनी। मैं आपकी बातें कभी नहीं समझ पाती। मेरे कारण यदि आपको चिन्ता या दुविधा हो कि त्यागपत्र दूँ या न दूँ तो आप कुछ न सोचें। जैसा आपको सुहाये वैसा ही कीजिए। नौकरी ही तो है भाग्य तो नहीं है न?

—हाँ सुनो! बहुत सबेरे ही मैं वैद्यनाथ चला जाऊँगा नारायण बाबू भी जा रहे हैं।

और वे उठकर अपनी बैठक में निकल आये। दो एक चिट्ठियाँ लिखीं। और फिर दबे पैरों उठकर अपने थैले में दो एक जरूरी चीजें रख लीं। उपरान्त आकर सो गये।

संभवत रात के दो बजे होंगे कि वे उठ गये । कोने के आले में चिमनी बहुत ही मद्धी जल रही थी । वे हौले से उठे । तीनों बच्चों के साथ सरो गहरी नींद में सो रही थी । सिर के नीचे हाथ दबा हुआ था । गालों की हड्डियाँ असमय ही दिखने लगी थीं । विवाह की पहली रात यही मुख कितना कोमल चिकना तथा निरीह था । वर्ण भी तपे हुए सोने का था । प्यार में शुरू-शुरू के दिनों वे उसे 'कंचन' भी कहा करते थे । बायें गाल पर गुदने की एक हरी बिन्दी थी जो उस सोते मुख पर उस समय रोती लग रही थी । मन में विकल्प घिरता जा रहा था । भोर होते-होते तक वे इस पत्नीमुख तथा बच्चों के सोये हुए मुखों से जाने कितनी दूर और कब तक के लिए चले जाएँगे—कौन जानता है । भिनसार में सोये हुए ये निरीह मुख सवेरे हाहाकार से भर जाएँगे । सरो का क्या होगा ? क्या ये हहराते जल में टूटी कगार से अनाथ न हो जाएँगे ? सवेरे तड़के ही इस घर का वातावरण बिल्कुल बदल जाएगा । जितने मुँह उतनी ही बातें । और यह सब सरो को सुना-सुना कर कहा जाएगा । उनके पैर थम गये । वे सरो से लिपट कर रो देने को हुए । जैसे रोम-रोम कसमसाने लगा । नहीं वे सरो को अपने से पृथक नहीं कर सकते । वे उसे अपने साथ ही ले जाएँगे लेकिन कहाँ ?? और वे टूट उठने वाली भावावेग झुकने को हो आये । सम्भवत वे झुक ही जाते लेकिन तभी सरो ने करवट ली । वे सहम गये और झोला उठा कर वे धीरे से जीना उतरने लगे । बाहर धुला भिनसार का आलोक आँगन में बिछा था । वे यदि जल्दी नहीं करते हैं तो किसी भी क्षण पिता या माता जग सकते हैं । बँसखटई पर पिता लेटे हुए थे । उनकी नाक बज रही थी । माँ जमीन पर ही बिस्तरा किये रोज जैसे ही लेटी हुई थीं । वे दबे पैरों बढ़े और पिता-माता के चरण छूकर दरवाजा खोल बाहर निकल आये ।

सेरी में घर की अपेक्षा अधिक खुला आलोक था । फिर भी अँधेरा घरों के द्वारों बन्द दरवाजों पर पोस्टरों सा चिपका था । खपरैलों पर अँधेरा-आलोक फैला था । पतली-सँकरी जाती गलियों में अँधार-आलोक का मटमैला जल भरा हुआ था । गोबर लिपे चबूतरे ठण्डाये हुए ऊँघ रहे थे । इतनी सवेरे अपना ही मुहल्ला अजान लग रहा था । सड़कें कोट की खाली बाँहों सी फैली हुई थीं । जैसे सड़कें लम्बी गालियाँ हों और वे एक भूले-भटके स्वर हों । वे किस राग के अंतिम स्र

प्रथम स्वर हैं यह न तो स्वयं को और न इन नलियों का ही किसी को पता नहीं और वे बिल्कुल अप्रत्याशित से बजते भर चले गये यहाँ से वहाँ तक। बिना किसी राग की पूर्ति किये। संभव है अनजाने में उनके द्वारा आज के दिन का राग आरंभ हुआ हो। किन्तु प्रथम स्वर तथा आरम्भिक स्वरों में इतना व्यवधान था कि किसी को पता नहीं चला। और तो और सड़कों वाली नलियों को भी नहीं। श्रीधर बाबू की इस एकान्त यात्रा का स्वागत करने कुत्ते तक न तो आगे ही और न पीछे ही। क्योंकि वे भी जानते हैं कि इस वेला का एकान्त यात्री और कुछ हो सकता है चोर तो नहीं ही। श्रीधर बाबू को उनके अपने कस्बे ने आँखें बन्द किये ही विदा दी। कितनी सभ्य विदा थी। अभी थोड़ी देर में ये भट्ठियाँ सुलग उठेंगी। दूकानें हनुमान की तरह छाती फाड़ कर सीता जैसी सीता-राम का प्रदर्शन दिन भर करेंगी। रोज इन्हीं गिट्टियों वाली सड़कों से चल कर सुख-दुख प्रत्येक घर में अतिथि बनते हैं। प्रत्येक आबादी एक देह होती है। हम उसकी शिरा-उपशिरा होते हैं। जब हम उस देह के योग्य नहीं रहते तब अनजान नियति हमें वहाँ से हटा देती है। कुछ देर बाद हमारा स्थान घाव की भाँति भर जाता है। चाहे विदा काल न उस कस्बे का और न हमें ही कभी यह अनुभव ही होता है कि हम उसके आवश्यक अंग थे। सचमुच ही हम उस देह में गाँठ ही थे जिसे काट कर अलग कर फेंक दिया गया।

ठण्डा-समीर माँसलसा चादर-सा बह रहा था। वे पक्की सड़क छोड़कर पगडण्डी के रास्ते हो लिये। सड़क से चलना खतरे से खाली न था। वे जानते थे कि उज्जैन तक का चालीस मील का रास्ता पैदल ही चलना होगा। क्योंकि रेल या और कुछ वाहन पकड़ना ठीक नहीं होगा। निश्चय ही लोग उन्हें पहचान जाएँगे। और वे ऐसा नहीं चाहते थे। उज्जैन जैसे शहर में उन्हें काम पाना आसान न होगा। दिन चढ़ते-चढ़ते तक वे आठ मील से भी ज्यादा निकल आये। घड़ी निकाल कर उन्होंने अंदाज लगाया कि दस मील पहुँचते-पहुँचते रेल का क्रॉसिंग होगा। और हुआ भी यही कि साढ़े दस बजे दूर इंजन की सीटी सुनायी दी। पठारों में लरजती-छितरी रेल आ रही थी। श्रीधर बाबू समझ गये कि इस हिसाब से तो वे शाम तक अवश्य ही उज्जैन पहुँच जाएँगे। भूख लग आयी थी। रास्ते के एक गाँव से चने खरीदे और एक बावड़ी पर बैठ कर खा-पीकर सुस्ताने लगे।

जाड़े के दिन भी छोटे होते हैं। जरा से चले नहीं कि झुकने-झुकने को हो जाते हैं। यों चलते-चलते अभी आधा ही रास्ता तय हो सका। उन्हें चिन्ता हुई कि यदि वे साँझ पड़ते तक नहीं पहुँचते हैं तो उस अजनबी शहर में क्या करेंगे ? कहाँ जाएँगे ?

जिस समय उन्हें उज्जैन की बत्तियाँ दिखलायी दीं रात के नौ बज रहे थे। और वे थक कर चूर हो गये थे। अँधेरे में मिलों की बत्तियाँ जुगनुओं सी लग रही थीं। साँझ पड़ने पर वे पक्की सड़क वाले रास्ते पर आ चुके थे। एक-एक पैर बढ़ना भारी लग रहा था। *अगली पुलिया पर बैठा जाएगा—यही प्रलोभन देते* हुए वे बढ़ते रहे। मिलों का सिलसिला शुरू हो गया था। सड़क के दोनों ओर मिलों का गंदा पानी भरा हुआ था जिसमें से अजीब कड़वी तथा सड़ी गंध आ रही थी। उन्होंने सुन रखा था कि स्टेशन के पास ही कोई सरकारी धर्मशाला है और जब तक कोई आदमी न मिला तब तक उनके पैर सड़क से ही उस धर्मशाला का पता तथा दिशा पूछते हुए दोनों ओर की मिलों के सुनसान अहाते पार करते आगे बढ़ते रहे।

उत्तर पथ

अभी वे अपने कमरे में सो ही रहे थे कि धर्मशाला के चपरासी ने आकर ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाना शुरू किया। चौंक कर उठे। एक क्षण तो समझ नहीं पाये कि कहाँ हैं? चेत आते ही उठे और दरवाज़ा खोला। हल्की झल्लाहट भी हुई कि कौन सवेरे-सवेरे दरवाज़ा खटखटा रहा है।

—क्या बात है?

—मनीजर साहब बुला रहे हैं।

—क्यों?

—मालूम नहीं।

और चपरासी चला गया। सवेरे-सवेरे इस प्रकार का व्यवहार खला फिर भी वे मैनेजर के पास गये।

—कहिए, क्या बात है?

—क्या आप परिवार के साथ हैं?

—नहीं।

—तो आपको कमरा नहीं मिल सकता। [illegible] दी जाएगी। रामेश्वर!

अल्मारी नम्बर बीस दे दो ।—हाँ साहब ! आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ?
—लेकिन जाड़ों की रात में कहाँ सोया जाएगा ?
—दालान में लोग सोते ही हैं ।
—लेकिन मैं तो दालान में नहीं सो सकता ।
—हमारे यहाँ कमरे सिर्फ फेमिली वालों को ही दिये जाते हैं । और आप यहाँ क्या करने आये हैं ? तीर्थयात्रा ?
—नहीं ।
—तब तो आप इस धर्मशाला में ठहर ही नहीं सकते । रामेसर !
—लेकिन आप मुझे
—चलिए साहब सवेरे-सवेरे भीड़ न लगाइए । मैं कह चुका हूँ आप यहाँ नहीं ठहर सकते ।

धर्मशाला के बड़े फाटक से अनेक तांगे आ-जा रहे थे जिनमें तीर्थयात्री भरे हुए थे । लोग मैनेजर को घेरे खड़े थे । श्रीधर बाबू बहस करने की स्थिति में नहीं थे । वे चुपचाप सिर झुकाये कमरे की तरफ बढ़े । अब वे धर्मशाला के फाटक के बाहर थे । सामान था ही कितना ? धर्मशाला के सामने ही सड़क पर रेल की अनेक पटरियाँ बिछी हुई थीं । कोई इंजिन माल के डिब्बों को शंटिंग करता रहा था । सबसे पहला प्रश्न उनके सामने था कि अब क्या किया जाए ? कहाँ जाया जाए ? वे इस शहर से अधिक परिचित तो नहीं थे लेकिन यहाँ अनेक रिश्तेदार थे जिनसे वे बचना चाहते थे ।

श्रीधर बाबू महाकाल मन्दिर की तरफ निकल आये ।

जिस समय वे वहाँ पहुँचे लोगों की भीड़ नहीं थी । वे बहुत छुटपन में एक बार यहाँ आये थे । मन्दिर के जलाशय में पवित्र होकर वे दर्शनों के लिए भीतर गये । दर्शन के बाद वे प्राचीन महाकाल मन्दिर के पीछे की तरफ निकल आये । यहाँ कभी विशाल तालाब था लेकिन अब सूख चुका था । सूखे तालाब के उस पार हरसिद्धि का मन्दिर था । जिसके श्वेत दीपाधार इस समय स्पष्ट दिख रहे थे ।

बेल के पेड़ के नीचे बैठकर श्रीधर बाबू सुस्ताने लगे । पहली बात जो उन्हें इस समय सताने लगी कि अब क्या होगा ? आज का दिन भी अभी उन्हें पार करना था । महात्मा जोगा जाना और उसके बाद इस शहर में क्या किया जाए ? वहाँ घर पर पीछे से क्या हुआ होगा ? वे लोग किसी को यहाँ अवश्य ही ढूँढने भेज सकते हैं । और यदि वे देख लिये गये तो फिर घर गये बिना गति नहीं है । और

घर जाने का भय यहाँ तक का निष्क्रमण व्यय। नहीं यह नहीं हो सकता। वे एक बार निर्मम हो चुके। वे अब बिना किसी निष्कृति के घर लौट ही नहीं सकते। शायद है, सरो की माँ को पिता को लौट आने से क्षणिक शान्ति सन्तोष हो जाए लेकिन मैंने पुरुषार्थ में एक निर्णय लिया है बिल्कुल स्वतः होकर। इनका शुभ-अशुभ बातों का ही नामीदार मात्र मैं हूँ। यह उन लोगों का सहज मोह होगा कि मुझे साथ कर लौटा ले जाएँ। ज्यादा अच्छा होगा कि मैं ही मोह की डोरों की परिसीमाओं को लाँघ जाऊँ। यहाँ से भी आगे कहीं दूर जाना होगा। मंजिल कहाँ?

तभी वे सचेत हुए। देखा कि वे पेड़ की तिरस्करणी छाया के नीचे एक पत्थर पर बैठे हुए हैं। जाड़े की धूप दूर-दूर तक खिली हुई थी। हरसिद्धी के पार क्षिप्रा थी। वे उधर ही बढ़े।

घाट इस समय सुनसान थे। दो चार नहाने वाले यहाँ-वहाँ फैले हुए थे। बाकी सारा वातावरण शान्त था। पेड़ों की सम्भ्रम छायाएँ घाटों पर बिछी हुई थीं। क्षिप्रा का मन्द जल भी शमित प्रवाहित था। उस पार के पेड़ों पर धूप खिली हुई थी। सामने के दत्त अखाड़े पर लम्बी बड़ी सी ध्वजा हवा में फहरा रही थी। कुछ साधु कगार के रास्ते पर आ-जा रहे थे। दूर दाहिने हाथ क्षिप्रा पर बने सड़क के पुल से पानी बह रहा था। कभी कोई लारी या मोटर गुजरती तो पानी उछलने लगता। क्षिप्रा में दूध-फूल बहाने के लिए कुछ माली फूल आदि लिये बैठे थे। पण्डों की छतरियाँ इस समय खाली थीं। घाटों पर आवारा गायें तथा भैंसे घूम रहे थे। दो एक देहाती नाइयों से बाल घुटवा रहे थे। बाकी घाटों पर धूप एक दम कोरी फैली हुई थी। स्त्रियों का एक झुण्ड गाता हुआ आ रहा था। रंगीन साड़ियों में वे मारवाड़िनें लग रही थीं। श्रीधर बाबू जिस घाट पर बैठे हुए थे वह एकान्त में था। क्षिप्रा यहाँ पर हल्के घुमाव के साथ बह रही थी। घर से मात्र चालीस मील दूर पर ही कितना वैसा परदेस सा लग रहा था। तभी एक जटाजूट साधु ने पीछे से बड़ी जोर से "बम शंकर" कहकर उनका ध्यान तोड़ा।

बूटियों वाली खड़ाऊँ पटकाते हुए वह साधू श्रीधर बाबू के पास आकर घूरते हुए देखने लगा ।
—बच्चा ! साधू की सेवा करेगा ?
श्रीधर बाबू भकोले ही देखते रहे ।
—परदेसी मालूम होता है ?
—हाँ महाराज !
—किधर अस्थान है बच्चा का ?
—यहाँ से उत्तर में ।
—गुरो ब्रम्हा गुरो बिस्नू गुरो देव महेसुरा
गुरो साक्षात परो ब्रम्ह तस्मै सिरी गुरै नमो नमा ।
ओम बम शंकर !!
सेवा करेगा बच्चा ?
और उन्होंने कमंडल से अपनी दूसरी लँगोटी निकाल कर घाट पर रखी। इसके बाद कमंडल माँजते हुए फिर बोले
—लड़के! साधू का अपमान करता है ? गुरु की सेवा से मेवा मिलता है। समझे ?
श्रीधर बाबू को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि कोई उन्हें लड़का समझ रहा है। नहीं इस बात से वे किंचित अपमानित भी अनुभव कर रहे थे। साधू बोलता ही जा रहा था
—घर से भागकर आया है, क्यों ?
—नहीं महाराज ।
—गुरु से झूठ बोलता है ? घरवाली पसन्द नहीं है, क्यों ?—बम शंकर !!
और झपट्टा शिप्रा में कमर तक पैठ कर हाथों से पानी फैलाते हुए डुबकियाँ मारने लगा। इसके बाद वह कमर की लँगोटी खोल कर मल-मल कर धोने लगा। शिप्रा के काँपते हुए जल में से झलकते साधु की दोनों टाँगें और कमर का सारा भाग दिख रहा था। गीली लँगोटी कंधे पर डाल कर अब हाथों से रगड़-रगड़ कर पाँवें कमर आदि धोने लगा। तब तक कुछ औरतें नहाने के लिए आ पहुँची थीं। 'माइयों' को देखकर साधू का ध्यान अब उनकी ओर हो गया था। वह खूब मल-मल कर नहाते हुए "बम-शंकर" चिल्लाता जा रहा था। वह वहीं से बोला
—कमण्डल देना बच्चा !
लेकिन 'बच्चा' नहीं उठा। श्रीधर बाबू विक्षुब्ध हो उठे।
—नास्तिक लगता है। लड़का ! तेरी कौन जात है ?

श्रीधर बाबू उठने को हुए। साधु ने एक 'माई' को सम्बोधित करते हुए कहा
—देखा माई! कलयुग में सब भ्रष्ट हो जाएगा। तुलसी बाबा ने कहा नहीं है? लड़के की हिम्मत देख रही हो? जरा कमण्डल थमाना माई!
और माई ने क्षिप्रा के जल में कमर तक प्रविष्ट होकर कमण्डल साधु को थमाया। कनफटा लँगोटी बाँधने के पूर्व एक बार फिर सफाई करते हुए बोला
—सौदा घर से फरार लगता है। चाहूँ तो अभी पुलिस को खबर कर बच्चू की सारी हेकड़ी निकाल दूँ। साधु का अपमान करता है। माई! तुम साधु की सेवा करोगी?
—भला साधु महाराज की सेवा नहीं करेंगे तो किसकी करेंगे?
—बम शंकर!! दिला दे सेर भर पूड़ी और आधा सेर रबड़ी साधु को।
और साधु ने सामने से लटकायी हुई लंगोटी लाकर घाट पर बड़े सार्वजनिक रूप से 'माइयों' से धर्म चर्चा करते हुए बदली। श्रीधर बाबू दूसरे घाट की तलाश में सीढ़ियाँ चढ़ गये। अंग-अंग में काफी थकान लग रही थी। नहा-धोकर जीवन में पहली बार हलवाई के यहाँ से पूड़ियाँ लेकर जिस समय खायीं नींद सताने लगी। वे घाट की ओर फिर निकल आये। एक छत्री में धूप भरी हुई थी। थैले से धोती निकाल कर बिछायी और लेट गये। गरम-छनी धूप में तुरन्त ही नींद आ गयी।

तीसरे पहर और शाम को चक्कर काटते-काटते वे पूरी तरह थक गये। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए या क्या किया जा सकता है? इस समय रात के दस बज रहे थे और वे रेलवे स्टेशन के पास के म्युनीसीपल पार्क में बैठे हुए सोच रहे थे कि क्या करें और कहाँ जाएँ? ठण्ड बढ़ गयी थी। पार्क की दूब खूब गहरी ठंडी हो चली थी। अभी दो घण्टे पूर्व तक पार्क में थोड़ी चहल-पहल थी लेकिन इस समय नितान्त निर्जन। पश्चिम के कोने में था लता-मण्डप था उसकी मेहराब पर धानमुहीं की लता इस समय की मन्द हवा में हल्की हिल रही थी। पार्क के बीच में बनी किसी देवता की मूर्ति वैसे तो अंधकार-आलोक में आभासित थी लेकिन जब कभी मोटर या लारी गुजरती वह मूर्ति दिपा जाती। रेलिंगों की मायवी छायाएँ दूबों पर लिप जातीं। क्यारियों में जाड़े के फूल नाच उठते। यह सब एक क्षण भर में ही हो जाता और फिर

सब उजाड़ अँधेरे में डूब जाते तांगों-घोड़ों की आवाजें मर जातीं। सड़क पार देवास गेट की हलवाइयों दूधवालों की देर रात तक खुली रहने वाली दूकानों से जोर-जोर की गड़मड़ आवाजें आ रही थीं। उनके कस्बे तक जाने वाली छोटी रेलवे लाइन की पटरियाँ सड़क को काटती बिछी थीं। तभी पुलिस वाले ने उन्हें सहमा देखा और वह उनकी ओर बढ़ा।

—क्यों क्या बात है? यहाँ क्यों बैठे हो?

—कुछ नहीं ऐसे ही।

—दस बजे के बाद पार्क में नहीं बैठ सकते। जाओ घर जाओ।

—मैं परदेसी हूँ।

—तो फिर जाओ किसी धर्मशाला में।

—यहाँ के बारे में कुछ नहीं जानता।

—भागो यहाँ से। खोजो कोई सराय-वराय।

और पुलिस वाला यह कहता हुआ क्षता-भवन की तरफ बढ़ गया। उसका इस तरह बोलना बड़ा अजीब लगा लेकिन वे क्या कर सकते थे? और वे रेलवे स्टेशन की तरफ बढ़े। दिन भर काफी भटके थे इसलिए इस समय एक पैर चलना भी भारी हो रहा था। सड़कें एकदम ही सूनी सपाट हो गयी थीं। घरों की खिड़कियाँ तक बन्द थीं। स्टेशन के अहाते में कहीं-कहीं अलाव जलाये दो-दो चार-चार कुली मुँह बनाये आग ताप रहे थे। थर्ड क्लास वेटिंग-हाल में तिल धरने की जगह नहीं थी। यात्रियों के कारण इधर से उधर निकल पाना कठिन था। कपड़ों और देहों की इतनी अधिक दुर्गन्ध उठ रही थी कि नाक फटी जा रही थी। लोग ठुसरे पड़े थे। इस घुटे वातावरण से ज्यादा अच्छा था कि खुले प्लेटफार्म पर किसी बैंच पर जाकर ही कम्बल बिछाया जाए और सम्भव हो तो सोने की चेष्टा की जाए। कोई गाड़ी नहीं आने वाली थी इसलिए न पूड़ीवाले न मिठाई वाले न पान-बीड़ी वाले कोई नहीं थे। आउटर-सिग्नल पार टिन की छत वाले शहर में उघड़ा प्लेटफार्म तेज ठंडी हवाओं में काफी सिहरा गया था। गिनती की तीन बैंचें थीं। एकाध पर कम्बल से ढँका कोई लेटा हुआ था और लगता था काफी गहरी नींद में था जिसके तेज खुर्राटे भरने की आवाज आ रही थी। ठंडी बैंच पर वे एक दोहर ओढ़ कर पीठ टिका कर सुस्ताने लगे लेकिन ठण्ड इतनी थी कि वे ठिठुरे जा रहे थे। खाली प्लेटफार्म वीरान आउटर-सिग्नल और दूर के आकाशों में टँगी सिगनल की लाल-हरी बत्तियाँ तक ठंडी हवा में तथा हल्के कुहरे में अजीब रहस्यमय लग रही थीं। सी-सूँ करता हुआ एकाध इंजिन डिब्बों को इधर-उधर करने में लगा हुआ था।

मित्रों का आपस में कभी-कभी समाज के साथ टकराना अजीब तरह से साफ वातावरण कैसा बनाता था। वे यह भी भूल गये कि कब तक इस तरह के अपरिचित निर्जन वातावरण एकदम व्यापार के वे अंग नहीं थे। कभी इतने छोटे नगण्य व्यक्ति भी नहीं थे। इस इतने बड़े शहर से उनका कभी कोई सम्बन्ध नहीं था। ठंडी हवा में वैसे सोचना भी पथरा गया था। ऐसे में हमारा सोचना स्थिति सब छायाहीन हो जाते हैं। पूर्वापर सम्बन्ध सन्दर्भ सब मिट जाते हैं। न हम देखते हैं न सोचते हैं, बस केवल देखते हैं, सोचते हैं। यह भी अपना नहीं जैसे किसी दूसरे का हो। जिसमें हम कहीं नहीं हैं। एक इन्द्रियगत स्वीकृति होती है जिसे हमसे पूछे बिना ही स्वीकार लिया गया है। हमें इसकी कुछ भी चेतना नहीं है। ऐसी अवस्थित स्वप्नाविष्टता व्यक्ति को मामूली बना देती है। हल्की भूख पेट में कहीं कुरेदी पड़ रही थी और आँखों में कँकरी चलने लगी थी। देह ने कपड़ों को गरमा लिया था लेकिन बढ़ाये अंगों को कपड़े नहीं गरमा पा रहे थे। करवट से उकड़ूँ हो कर दोहर का सिर पर भी ओढ़ लिया और घुटनों में मुँह छुपा लिया ताकि कुछ झपक हो सके।

पता नहीं इस तरह अर्धनिद्रित से वे कब तक सोते रहे लेकिन पिछली रात में किसी सवारी-गाड़ी के कारण से हड़बड़ा कर उठ गये। नींद नहीं आ पायी थी इसलिए मन में दिमाग में अजीब बोझ सा था। देखते-देखते सारी गाड़ी खाली हो गयी। तभी यह ख्याल आया कि कस्बा छोड़ने के बाद से वे इसी प्रकार से घूम रहे हैं। और नहीं जानते कि कब तक घूमना होगा। इस विचार ने ही उन्हें चौंका दिया।

वे क्यों घर छोड़कर आ गये? घर पे क्या हुआ होगा? माता-पिता ने क्या सोचा होगा? जरूर ही किसी को भेजा होगा और वह भेजा जाने वाला व्यक्ति और कोई नहीं हो सकता—केवल नारायण बाबू। और नारायण बाबू का नाम आते ही उन्होंने चौंक कर अपने चारों ओर देखा कि निश्चय ही वे आज उज्जैन में हैं और उन्हें खोजने में व्यस्त हैं। सम्भव है उन्होंने थर्ड क्लास वेटिंग हाल में पार्क में घाटों पर सभी जगह खोजा होगा। अवश्य ही नारायण बाबू कल सूर्यास्त के पहले-पहल उन्हें खोज निकालेंगे। और फिर उसके बाद

कोई गति नहीं। नारायण बाबू के सामने वे क्या मुँह लेकर खड़े हो सकते हैं। और वे बिना छिपाये जा नहीं सकते।

श्रीधर बाबू को लगा कि यदि वे भिनसार के पहले ही उज्जैन नहीं छोड़ देते तो वे किसी भी तरह नारायण बाबू की पकड़ से बच नहीं सकेंगे।

वे उठे और ट्रेन के एक डिब्बे में घुसने लगे। एक रेल कर्मचारी जो धोने पोंछने के लिए आया हुआ था बोला

—अरे बाबू, अभी तो गाड़ी जाने में दो घंटे की देरी है। डिब्बा झाड़-पोंछ लेने दो तब बैठना।

वे भला उसे क्या बताते कि अगर वे डिब्बे में जाकर नहीं छुप जाते तो जो उन्हें खोज रहा है वह अवश्य ही खोज लेगा।

और उन्होंने ऊपर की सीट पर चोहर ओढ़ कर नींद लेते हुए इन्दौर की यात्रा की। जब टिकिट चेकर ने जगाया तब वे जागे। एक बार सशंक होकर डिब्बे में चारों ओर झाँका। कोई परिचित नहीं था। डिब्बे में खूब सारा दिन भर आया था। जुर्माना देकर टिकट बनवाया और एक खिड़की के पास बैठ कर उन्होंने बाहर झाँका। जाड़ों की खूब उजली-उजली सी धूप बिखरी पड़ी थी। उनके जड़ाये अंगों को बड़ा सुख मिल रहा था। तभी एक छोटा स्टेशन आया। उन्होंने चाय वाले को बुलाकर चाय पी। जीवन में पहली बार इस प्रकार बिल्कुल ही अनऔपचारिक ढंग से चाय पीना इतना अच्छा लगा कि वे स्वयं के लिए ही एकदम अपरिचित हो उठे।

जिस समय वे इन्दौर पहुँचे सवेरे के दस बज रहे थे। और वे अपने घर से करीब अस्सी मील दूर थे। जब वे 'नंदिया' सराय पहुँचे रात की भूख पेट में ऐंठ रही थी। उन्होंने बिल्कुल उसी ढंग से पूड़ियाँ लेकर खायी जिस प्रकार चाय पी थी। खाकर वे 'नंदिया' वाले कमरे में जाकर लेट गये। खिड़की की राह तीसरे पहर की धूप ओढ़े हुए श्रीधर बाबू पर पत्नी की भाँति झुकी हुई गरमाती रही। बार बार वे उठने की चेष्टा करते लेकिन अजीब तृष्णा थी कि नींद टूट ही नहीं पा

रही थी। तभी अजीब गान-चिल्लाने की आवाज से उनकी नींद टूटी। वे आँख मलकर उठ बैठे और द्वार की टोह लेने लगे। कदाचित सड़क पर कुछ लोग गाते जा रहे थे और बीच-बीच में कोई जयकार गूँज उठता था। खिड़की से झाँक कर उन्होंने देखा कि एक छोटा सा जुलूस कुछ गाता आ रहा है। वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि यह कैसा जुलूस है। आज तक उन्होंने एकाध बार किसी धार्मिक जुलूस का ही देखा था लेकिन यह तो वैसा नहीं था। तब ?? और जिज्ञासा में खिंचे हुए वे नीचे सराय के मुख्य दरवाजे के पास आये जहाँ दर्शकों की खासी भीड़ लगी हुई थी। जुलूस वाले भी वहीं रुक कर गा रहे थे। वे क्या गा रहे थे श्रीधर बाबू न इसे समझ सके और न जयकार ही। तभी भीड़ में किसी ने किसी को बताया

—सुराजी हैं ये लोग।

—सुराजी क्या ?

—ये लोग अंग्रेजों से सुराज माँगते हैं। पिछले एक महीने से ये लोग 'विक्टोरिया पार्क' में जमा करते हैं, गाने गाते हैं भाषण होते हैं।

—लेकिन अपने यहाँ तो अंग्रेज का राज नहीं है।

—अरे तो पूरे देश पर तो है न ? और ये राजा-महाराजा तो इन्हीं अंग्रेजों के ही तो कहने पर चलते हैं।

यह वाक्य कहने वाला अपेक्षाकृत कोई नवयुवक था। जिसे घूर कर सराय के दरबान और मैनेजर ने ऐसे देखा कि अगर यह सराय में ठहरा होता तो अभी सामान फिकवा दिया जाता।

श्रीधर बाबू अनायास ही जुलूस के साथ हो लिये। जिस राष्ट्रीयता स्वराज्य क्रान्ति के बारे में उन्होंने अपने कस्बे के पुस्तकालय की एकाध पुस्तकों में पढ़ा था उससे इस जुलूस का सम्बन्ध जोड़ते उन्हें देर न लगी। जुलूस जिस तरफ से जा रहा था उधर के सारे के सारे लोग कामकाज छोड़ देखने के लिए खड़े हो जाते। रेलवे स्टेशन के सामने से होता हुआ जुलूस 'रीगल' थियेटर के चौराहे पर ठहर गया। गाये जाने वाले गीत की पंक्तियाँ अब वे ठीक से समझ पा रहे थे।

—विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
 झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

और उसके बाद 'वन्दे, मातरम' की जयकार।

रास्ते का सारा ट्रैफिक थियेटर के बाहर खड़े लोग जुलूस के चारों ओर जमा थे।

कोई गति नहीं। नारायण बाबू के सामने वे क्या मुँह लेकर खड़े हो सकते हैं। और वे बिना दिखाये जा नहीं सकते।

श्रीधर बाबू को लगा कि यदि वे भिनसार के पहले ही उज्जैन नहीं छोड़ देते तो वे किसी भी तरह नारायण बाबू की खोज से बच नहीं सकेंगे।

वे उठे और ट्रेन के एक डिब्बे में घुसने लगे। एक रेल कर्मचारी जो कोने पोंछने के लिए आया हुआ था बोला

—अरे बाबू अभी तो गाड़ी जाने में दो घंटे की देरी है। डिब्बा धो-पोंछ लेने दो तब बैठना।

वे भला उसे क्या बताते कि अगर वे डिब्बे में जाकर नहीं छुप जाते तो जो उन्हें खोज रहा है वह अवश्य ही खोज लेगा।

और उन्होंने ऊपर की सीट पर दोहर ओढ़ कर नींद लेते हुए इन्दौर की यात्रा की। जब टिकिट चेकर ने जगाया तब वे जागे। एक बार सशंक होकर डिब्बे में यहाँ से झाँका। कोई परिचित नहीं था। डिब्बे में धूप सारा दिन भर आया था। जुर्माना देकर टिकट बनवाया और एक खिड़की के पास बैठ कर उन्होंने बाहर झाँका। जाड़ों की खूब ऊनी-ऊनी सी धूप बिखरी पड़ी थी। उनके थकाये अंगों को बड़ा सुख मिल रहा था। तभी एक छोटा स्टेशन आया। उन्होंने चाय वाले को बुलाकर चाय पी। जीवन में पहली बार इस प्रकार बिल्कुल ही अनभ्यस्त ढंग से चाय पीना इतना अच्छा लगा कि वे स्वयं के लिए ही एकदम अपरिचित हो उठे।

जिस समय वे इन्दौर पहुँचे सवेरे के दस बज रहे थे। और वे अपने घर से करीब अस्सी मील दूर थे। जब वे 'नसिया' सराय पहुँचे रात की भूख पेट में ऐंठ रही थी। उन्होंने बिल्कुल उसी ढंग से पूड़ियाँ लेकर खायीं जिस प्रकार चाय पी थी। खाकर वे 'नसिया' वाले कमरे में जाकर लेट गये। खिड़की की राह तीसरे पहर की धूप सोते हुए श्रीधर बाबू पर पत्नी की भाँति झुकी हुई मुस्काती रही। बार बार वे उठने की चेष्टा करते लेकिन अजीब तृष्णा थी कि नींद टूट ही नहीं पा

रही थी। तभी अजीब गान-चिल्लाने की आवाज से उनकी नींद टूटी। वे आँख मलकर उठ बैठे और बाहर की टोह लेने लगे। कदाचित सड़क पर कुछ लोग गाते जा रहे थे और बीच-बीच में कोई जयकार गूँज उठता था। खिड़की से झाँक कर उन्होंने देखा कि एक छोटा सा जुलूस कुछ गाता जा रहा है। वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि यह कैसा जुलूस है। आज तक उन्होंने एकाध बार किसी धार्मिक जुलूस को ही देखा था लेकिन यह तो वैसा नहीं था। तब ?? और जिज्ञासा में लिपटे हुए वे नीचे सराय के मुख्य दरवाजे के पास आये जहाँ दर्शकों की खासी भीड़ लगी हुई थी। जुलूस वाले भी वहाँ रुक कर गा रहे थे। वे क्या गा रहे थे श्रीधर बाबू न इसे समझ सके और न जयकार ही। तभी भीड़ में किसी ने किसी को बताया

—सुराजी हैं ये लोग।

—सुराजी क्या ?

—ये लोग अंग्रेजों से सुराज माँगते हैं। पिछले एक महीने से ये लोग 'मिन्टो पार्क' में सभा करते हैं, गाने गाते हैं भाषण होते हैं।

—लेकिन अपने यहाँ तो अंग्रेज का राज नहीं है।

—अरे तो पूरे देश पर तो है न ? और ये राजा-महाराजा तो इन्हीं अंग्रेजों के ही तो कहने पर चलते हैं।

यह वाक्य कहने वाला अपेक्षाकृत कोई नवयुवक था। जिसे घूर कर सराय के दरबान और मैनेजर ने ऐसे देखा कि अगर यह सराय में ठहरा होता तो अभी सामान फिंकवा दिया जाता।

श्रीधर बाबू अनायास ही जुलूस के साथ हो लिये। जिस राष्ट्रीयता स्वराज्य आदि के बारे में उन्होंने अपने कस्बे के पुस्तकालय की एकाध पुस्तकों में पढ़ा था उससे इस जुलूस का सम्बन्ध जोड़ते उन्हें देर न लगी। जुलूस जिस तरफ से जा रहा था उधर के सारे के सारे लोग काम-धंधा छोड़ देखने के लिए खड़े हो जाते। रेलवे स्टेशन के सामने से होता हुआ जुलूस 'रीगल थियेटर के चौराहे पर ठहर गया। गाये जाने वाले गीत की पंक्तियाँ अब वे ठीक से समझ पा रहे थे।

—विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

और उसके बाद 'वन्दे मातरम्' की जयकार।

रास्ते का सारा ट्रैफिक थियेटर के बाहर खड़े लोग जुलूस के चारों ओर जमा थे।

तभी किसी ने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आप लोगों को 'बिस्को-पार्क' की सभा में चल कर आजादी की बात को सुनना और समझना चाहिए। जुलूस गाता हुआ बिस्कोपार्क की तरफ बढ़ गया।

जाड़े की शाम होती ही कितनी है। 'बिस्को-पार्क' के बड़े से उद्यान में फूलों की सुषमा बिखरी पड़ी थी। इक्के-दुक्के प्रेमी युगल पार्क की बेंचों पर बैठे हुए बड़े अच्छे लग रहे थे। पार्क के पश्चिमी भाग में एक बड़ा सा फौवारा चल रहा था। उसी के पास यूकेलिप्टिस के पेड़ों की कतार जहाँ जाकर जुलूस सभा में परिवर्तित हो गया। संख्या अधिक नहीं थी। पेड़ों की कतार के पास एक बेंच पर चमके वाला एक युवक खड़ा हो गया और वह बोलने लगा। श्रीधर बाबू के लिए यह सब बिल्कुल ही नया अनुभव था। परसों तक वे जो कुछ थे जहाँ थे वहाँ से आज का यह सब कितना भिन्न था। जनता स्वराज्य के बारे में बता रहा था। किसी लोकमान्य तिलक का एक वाक्य उसने पुकारा और उपस्थित जनता ने उसे दुहराया

—स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है!!

अनायास ही श्रीधर बाबू के भी मुँह से वाक्य दुहरा उठा। वे सचेत हुए। वक्ता कह रहा था कि आज देश को ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो अपना तन-मन-धन तीनों देश के लिए होम कर सकें।

"भारत माता की जय!!" के तीन जयकारों के साथ सभा विसर्जित हुई।

अँधेरा घिर ही आया था। हवा ठंडी और तेज होने लगी थी। पार्क की पीली पीली बत्तियाँ हिलते गाछों में लुकती-छुपती चल रहीं थीं। अधिकांश जा चुके थे। वे फिर एकान्त हो उठे। ऐसे कैसे चलेगा? और कितने दिनों तक चलेगा? फिर किस प्रयोजन के लिए? नौकरी की जाए। लेकिन सिवाय अध्यापकी के उन्हें तो कुछ भी दूसरा काम आता नहीं है। घर छोड़कर क्या उन्होंने अच्छा नहीं किया?—और वे विह्वल हो उठे—घर, नाम के साथ ही एक पूरा इतिहास वैसे ही बज उठा जैसे किसी शिवालय मन्दिर के अनेक घण्टे क्रमशः बजने

लग जाएँ। इन्दु, सरो गुणवन्ती सुशीला दयाव्रत पिता माता स्कूल मानपत्र त्यागपत्र दुर्गापूजा में बाल खाते पेमन बाबू की पत्नी नारायण बाबू इन्दु दीदी की ट्रेन वाली पुष्पमाला सम्पादित किया कहूरती घाम में ठहरा नदी तालाब की छतरी—सब और भी जाने क्या-क्या उन्हें अनेक फेर तक घेरे रहे। चेत आने पर देखा कि पार्क की दूब तक भीगी एकान्त लग रही थी। जब वे पार्क से बाहर आये 'रीगल' थिएटर के पिछले हिस्से में एक बल्ब की रोशनी में बरामदे में पुराने बड़े-बड़े पोस्टर, मैले-फटे पड़े थे। थिएटर की बिल्डिंग से चीखने-चिल्लाने की आवाज आ रही थी। हाल के सामने एक-दो कारें भी खड़ी चमक रही थीं। चौराहे की चारों सड़कें एकदम चुप-मौन दूर-दूर तक आलोकित बिछी थीं। बल्ब की रोशनी में कभी आगे कभी पीछे अपनी छाया लिए वे संगम की तरफ बढ़े।

दूसरे दिन सवेरे नहा-धोकर पूछताछ करने पर मालूम किया कि इन सुराजियों का नेता कौन है। श्री पुस्तके साहब एक वकील हैं और वे ही नेता हैं। पूछते पाछते श्रीधर बाबू पुस्तके साहब के घर जूती-तत्वीर पहुँचे। एक ऊँचे टीले पर ऊँची कुर्सी पर पुराने ढंग का पेशवाई दुमंजिला मकान था। लकड़ी का एक बड़ा सा ओसारा था जिस पर लकड़ी की ही रेलिंगें भी थीं। मकान की बाहरी दालान में एक बड़ी सी लाल जाजम बिछी थी जिस पर एक गद्दा और गाव तकिया पड़ा था। एक कोने में कुर्सी-मेज थी। एक साधारण गद्दी-तकिया भी लगा था। एक पेशकार तथा कुछ मुवक्किल बैठे बातें कर रहे थे। लकड़ी की रेलिंगों वाला बारामदा था। श्रीधर बाबू ने उस पेशकार से पूछा

—क्या पुस्तके साहब घर पर हैं ?

—हैं तो लेकिन इस वक्त कोर्ट जाने वाले हैं। वहीं मिलेंगे।

और वह पेशकार फिर मुवक्किलों से बातें करने लग गया।

—थोड़ा सा उनसे काम था।

पूरा साहस बटोर कर श्रीधर बाबू अन्दर जाकर पेशकार से बोले।

—कौन सा मुकदमा है आपका ?
—मेरा कोई मुकदमा नहीं है।
—तब आप क्या चाहते हैं ?
—जो जो सुराजियों का काम करते हैं न ? उसी बारे में कुछ काम था।
और पेशकार ने चश्मे के पीछे से एक बार ऊपर से नीचे और दुबारा नीचे से ऊपर घूरा और कुछ कहने ही जा रहा था कि चिक पड़े भिरे वाले दरवाजे से एक मँझोले कद का गेहुँए वर्ण का व्यक्ति प्रविष्ट हुआ। धोती लम्बा कोट [illegible] और पूनाशाही पगड़ी तथा गले में आँट देकर लम्बा गिरा दुपट्टा—यह वेशभूषा थी पुस्तके साहब की।
—हे कोण आहे माधवराव ?
पेशकार ने खड़े होकर मराठी में बताया कि ये आपसे मिलने आये हैं। पुस्तके साहब ने विनम्र ढंग से पूछा
—कहिए, क्या काम है ?
—जो   देश की आजादी के लिए आप लोग जो काम कर रहे हैं न उसमें मैं भी हिस्सा लेना चाहता हूँ।
—ठीक है बड़ी अच्छी बात है।—क्या आप इन्दौर ही के रहने वाले हैं ?
—जी नहीं, उज्जैन के पास का।
—ठीक है आप प्रजामंडल के दफ्तर चले जाइए और विमल बाबू से मिल लीजिए।
—माधवराव ! कळाले का ?
—हो साहेब !
और पुस्तके साहब के पीछे-पीछे पेशकार और मुवक्किल जुलूस बनाकर जीना उतरने लगे। नीचे उनकी बग्घी खड़ी थी। श्रीधर बाबू की समझ में नहीं आया कि अब क्या किया जाए।

जिस समय वे प्रजामण्डल के कार्यालय पहुँचे ताला लटका हुआ था। किसी ने बताया कि विमल बाबू कॉफी-हाउस चाय पीने गए हैं। श्रीधर बाबू यह नहीं समझ पा रहे थे कि यहीं बैठ कर विमल बाबू की प्रतीक्षा की जाए अथवा फिर आया जाए। तभी सामने से विमल बाबू तथा तीन-चार और आदमी आते दिखायी दिये। किसी ने उन्हें बताया कि यही चश्मे वाले विमल बाबू हैं। कार्यालय का ताला खोलकर विमल बाबू के साथ आगन्तुक भी भीतर चले गये। एक कमरे का वह कार्यालय बैठक कहा जा सकता था। दीवार पर तीन-चार

सुभाषित हाथ के लिखे टँगे थे जैसे—'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि'
"सघे शक्ति कलौयुगे" 'वन्देमातरम्' —आदि।
एक कोने में टेबल थी तथा एक कुर्सी। जिस पर कुछ रसीद बुकें थीं। कमरे के बीचोबीच एक बड़ा तथा पास तकिया पड़ा था। यहाँ इस समय किशन बाबू तथा आगन्तुक बैठे हुए थे। कमरे में श्रीधर बाबू को देखते ही किशन बाबू ने पूछा

—कहिए, किससे मिलना है?

—मैं पुस्तके साहब से मिलने गया था उन्होंने आपसे मिलने के लिए कहा।

—हाँ हाँ तो बात क्या है?

—मैं भी आप के आन्दोलन में भाग लेना चाहता हूँ।

—बहुत अच्छी बात है। आपका शुभनाम?

—श्रीधर ठाकुर।

—श्रीधर बाबू! आप क्या काम करते हैं? आप खड़े क्यों हैं? बैठिए न?

—धन्यवाद। किशन बाबू! बात यह है कि मैं अध्यापक था।

—था??—तो आजकल आप क्या करते हैं?

—आजकल तो यही किया है पिछले तीन दिनों से चलते चलते आप के पास तक आया हूँ। आगे की नहीं जानता।

—कहाँ से आते हैं आप?

—मैं उज्जैन के पास एक कस्बा है वहाँ से आता हूँ।

—लेकिन आप कस्बे के जैसे तो नहीं लगते। खैर, तो आप क्या कस्बे में स्वराज्य आन्दोलन का काम करते थे?

—जी नहीं इस बारे में थोड़ा पढ़ा है। बस आपका जुलूस और भाषण दोनों ही देखा सुना। उसी प्रेरणा से इस आन्दोलन में आना चाहता हूँ।

—यहाँ आप कब आये?

—दो घण्टे ही।

—कहाँ रुके हैं?

—'नथिया' सराय में।

—क्या आप पहली बार यहाँ आ रहे हैं?

—इन्दौर न? जी हाँ पहली बार ही।

—आपने नौकरी क्या छोड़ दी?

—ज्यादा अच्छा यह नहीं होगा कि इस बारे में विस्तार से फिर कभी बताऊँ?

—आपने ठीक कहा। श्रीधर बाबू! आप आराम से बैठें। मैं ज़रा इन लोगों का एक झगड़ा निपटा दूँ तब आप से बातें करूँगा।

और किशन बाबू कांजी-हाउस जिस काम के लिए गये थे वह इन आगन्तुकों की थी और किशन बाबू उस बात में इतने बस गये कि श्रीधर बाबू उनकी प्रतीक्षा में बैठे हैं यह भी भूल गये।

काफ़ी दोपहर हो गयी थी। श्रीधर बाबू को लेकर किशन बाबू अपने डेरे पहुँचे। किशन बाबू खास फक्कड़ किस्म के आदमी थे। हाथ-पैर धोकर जिस समय वे खाने के लिए तैयार हुए, बोले

—तो क्या आप नहीं खाइएगा?

—नहीं आप खाएँ।

—तो क्या मैं आपको अपनी मर्ज़ी में लाया हूँ?

और हो-हो करके वे बड़े ज़ोरों से हँस दिये। वे फिर बोले

—चलिए चलिए साहब! आप जैसे शरीफ़ों को पता नहीं क्यों घर वाले अकेले नहीं भेज देते हैं।

और श्रीधर को लगा कि यह व्यक्ति निश्छल है। मित्र बन सकता है। व्यक्ति है। किशन बाबू ने कुछ इस लहजे में ऊपर की बात कही थी कि उस मारवाड़ी डेरे में रहते हुए, प्रतीक्षित सभी ने एक बार उन्हें देखा जिन्हें घर वालों ने गलती से अकेला भेज दिया था। श्रीधर बाबू ने वैसे तो डेरे में पहुँचने पर ही समझ लिया था कि इस व्यक्ति को सब आदर ही मानते तथा देखते हैं। खाना खाकर दोनों डेरे से बाहर आये। बड़े ही सन्तुष्ट भाव से किशन बाबू ने कहा

—आत्मा के लिए जिस प्रकार मुक्ति परम उद्देश्य है वैसे ही शरीर के लिए भोजन।

और फिर वही ठहाका! जाड़े की धूपहरी गलियों में पुलकित थी। फिर भी गलियों का ठण्डापन स्पष्ट था।

—आप तो मस्त आदमी होंगे।

विशन बाबू का प्रश्न सहसा ही था और श्रीधर बाबू उसे समझ न पाये।
—जी ?
किंचित हँसते हुए विशन बाबू बोले
—मेरा मतलब है आप गृहस्थ होंगे।
—जी हाँ। गृहस्थ को आप भला आदमी मानते हैं ?
—न मानें तो जल में रहकर मगर से बैर कैसे पाला जा सकता है ?
और तब तक पानवाले की दूकान आ गयी। फिर बोले
—लगता है आप आदर्श पति रहे हैं।
—क्या मतलब ?
—पान भी नहीं खाते होंगे। मैं पान ही तो खाता हूँ भोजन तो कर लेता हूँ। गिरधारी! पान देना भाई!
और उन्होंने जब से पान की डिबिया आगे बढ़ायी। डिबिया की ओर संकेत करते हुए कहा
—श्रीधर बाबू! सम्पत्ति के नाम पर यही अपनी पूँजी है। इसमें कभी गिरधारी ने इतनी जगह ही नहीं छोड़ी कि पान और रुपये दोनों एक साथ रखे जा सकें।
और फिर चार से ठूँस लिये। तब तक तीन चार लोगों से विशन बाबू बात करने लग गये। विशन बाबू के प्रति उनके मन में एक अजीब प्रतिक्रिया थी। तभी पान मुँह में दबाने के पूर्व वे बोले
—श्रीधर बाबू! आप शायद आदर्श रूप से आदर्शवादी बनने की चेष्टा में हैं लेकिन आपको जानकर दुख होगा कि मैं पूर्ण आदर्श रूपसे अनादर्शवादी हूँ। जरा मैनपुरी बढ़ाना गिरधारी!
और वे श्रीधर बाबू को लेकर तोपखाना रोड पर बढ़े। एक चौराहे पर किंचित आश्वस्त होकर वे बोले
—अब बताइए क्या इरादा है ?
—कैसा इरादा ?
—यही कि नमिया में कितने दिन ठहरने का इरादा है ?
—जी शायद आप इतनी देर में ही ऐसा खो गया कि यह याद ही नहीं रहा कि आज सबेरे ही आपसे भेंट हुई है और मैंने आपसे आन्दोलन में शामिल होने की बात कही थी।
—कही थी ? तो क्या आप सचमुच उस बात के प्रति गंभीर नहीं हैं ?

नाक पर सरक आये चश्मे को पीछे की तरफ सकेलते हुए बोले।

—यह आप कैसे कहते हैं कि मैं उसके प्रति गंभीर नहीं हूँ ?

—मैं भी तो आपका सिवाय गंभीर के अतिरिक्त और कुछ मान ही नहीं सकता।

—नहीं मेरा मतलब था कि आन्दोलन संबंधी कोई काम-काज मिल जाता तो व्यवस्थित होने में आसानी होती।

हल्के हँसते हुए विसन बाबू बोले

—लेकिन श्रीधर बाबू! आन्दोलन तो व्यवस्था के विरुद्ध किया जा रहा है।

—यह व्यवस्था तो शासन की व्यवस्था है न व्यक्ति की तो नहीं है।

—तो क्या आप समझते हैं कि व्यवस्थित व्यक्ति शासन की व्यवस्था को बदलना चाहेंगे ?

—क्यों ? इन दोनों में तो कोई मेल नहीं है। परदेसी की शासन-व्यवस्था से तात्पर्य है न कि सभी प्रकार की शासन-व्यवस्था से।

—मुझे लगता है श्रीधर बाबू! की व्यवस्था सीमा है। सारी अवनति दुर्गुण का कारण यह सीमा ही है।

—संभव है आप सही हों। तो क्या इसीलिए अव्यवस्थी बने घूमते हैं आप ?

विसन बाबू ने सहसा बात बदलते हुए कहा

—श्रीधर बाबू! चलिए आपका व्यवस्था में विश्वास है इसलिए कुछ तो करना ही होगा। आपका सामान अन्दर छावनी चलने हैं जहाँ मैं रहता हूँ। असुविधा आपको हो सकती है लेकिन फिलहाल के लिए बुरा नहीं होगा। उसके बाद देखा जाएगा। आप तो भगवान मानते ही होंगे इसलिए आपको विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी मुश्किल तो हम नास्तिकों की है समझ लीजिए चिड़िया की हाथी से लड़ाई है।

और हँसते हुए एक तांगेवाले को पुकारा।

तांग से सामान उतारते हुए विसन बाबू बोले

—श्रीधर बाबू! मकान मालकिन एक पागली महिला है। आपने अक्सर गिरगिटे-

बाबा काटेजों के सामने साइकिल खड़ी कर पानी बनाना पड़ रहा था। तभी
बिमन बाबू ने पीछे से आकर कंधे पर हाथ धर कर कहा
—जगह पसन्द आयी ?
—यह तो पूरा एक स्वप्न है।
—आप बहुत भावुक व्यक्ति हैं।—अच्छा, यह बताइए चाय वगैरह पिएँगे ?
—जी मैं चाय नहीं पीता।
श्रीधर बाबू की इस बात पर बिमन बाबू बड़ी जोर से हँस दिये। श्रीधर बाबू
अन्यमनस्क हो आये बोले
—क्या मैंने कोई अनुचित बात कह दी ?
—और नहीं तो क्या ?
और वे फिर शरारत भरी हँसी हँस उठे।
—क्या ?
—यही कि आप चाय नहीं पीते। —सच श्रीधर बाबू ! आपसे ईर्ष्या करने
का मन करता है।
यह बात कुछ ऐसी आत्मीयता से बिमन बाबू ने कही कि श्रीधर बाबू को वे
बहुत अच्छे लगे। उन्होंने पहली बार उस व्यक्ति के मुख तथा आँखों को निहारा।
हल्के घुँघराले बाल जो पीछे की तरफ किये हुए थे। मुँदा हुआ मुँह। तेज नाक-
नक्शा। आँखों के पास नीचे की तरफ काली झाईं। भूरी पुतलियाँ। सटे पतले
ओठ। दो दिनों की बढ़ी दाढ़ी। खद्दर का कुरता-पाजामा। कुरते में सामने
सीने पर चमकदार दो जेबें। बम्बई स्टाइल का जेब वाला गुजराती पाजामा।
हड्डियों भरा पैर, चप्पलों में। इकहरे बदन के इस बिमन बाबू में आज बाहरी
प्रसन्नता हो पर वह श्रीधर बाबू को औपचारिक ही लगा। कहीं इस मुखौटे के
पीछे दूसरा ही बिमन है जो न तो राजनीतिज्ञ है न गुजराती है, न फ़ाक़ा है
बल्कि वह है जिसे बिमन बाबू ने किसी को न तो सौंपा ही और न देखने ही
दिया होगा। एक अजीब असफली तुष्ट मुस्कान के साथ बिमन बाबू ने पूछा
—श्रीधर बाबू ! इतने तन्मय होकर किसी महिला ने देखा होता तो
और फिर चुप कर हँस दिये
—तो क्या ?
और इस बार, पहली बार प्रसन्न मन होकर श्रीधर बाबू बोले।
—तो जो अपना यह कृपा उस पुरस्कार में दे देना। बात यह है कि और
तो कुछ अपनी पूँजी है नहीं और न ही आप जैसा भावुक गंभीर आदमी हूँ

कि जो कहता उस महिला से कि लो तुम्हें सारे तारे पुरस्कार में देता हूँ।

—लेकिन विधान बाबू! कभी ऐसा अवसर आने पर कम से कम धुला हुआ कुरता उस बेचारी को पुरस्कार में दीजिएगा।

—क्यों बेकार में धुलाई पर पैसा खर्च किया जाए? कुरता तो उसे पहनना है नहीं तब जैसा धुला वैसा गंदा।

और दोनों इस बार साथ-साथ खुलकर हँस रहे थे।

—मैं तो आपको बहुत गंभीर मानता था कि आप कभी हँस ही नहीं सकते।

—राजनीतिज्ञों को इतने अन्य लोगों के बारे में अन्तिम राय नहीं बनानी चाहिए।

—कहिए, आप पहले व्यक्ति हैं जिसने मुझे भी राजनीतिज्ञ समझा।

—आप राजनीतिज्ञ नहीं ?

—जीवन में किसी प्रकार का भी जब राज हो तभी न आदमी नीतिज्ञ होगा? जेल में कम्बली टाँग कर खाने में पेट भर कर अधिक से अधिक देशभक्त बनने की कामना ही कोई कर सकता है। राजनीतिज्ञ के लिए शुरू से ही आपके पास इतना बड़ा पद तथा मर्यादा होनी चाहिए कि राज या स्वराज्य आ जाने पर आप उसके उपयुक्त बनें।

श्रीधर बाबू को लगा निश्चय ही यह व्यक्ति गहरे अन्तस्तल में झकझोरित है बोले

—विधान बाबू ! आज मीटिंग नहीं है ?

—मीटिंग ??

और मीटिंग शब्द इतने चौंकते हुए कहा जैसे अभी कुछ देर के लिए कहीं चले गये थे।

—श्रीधर बाबू ! आप घर से क्यों चले आये ?

श्रीधर बाबू सहसा फिर गंभीर हो गये। नदी पर शाम काफी झुक आयी थी। आम-जामुनों के झुण्ड पर चिड़ियाँ शोर करने लगी थीं।

—नौकरी छूट गयी, या यों कहिए छोड़नी पड़ी। तब भला वहाँ क्या करता?

—घर-परिवार तो है न ?

—परिवार ही क्या पूरा कुटुम्ब तक है।

—तो फिर ?

—क्या यही बात मैं आपसे नहीं पूछ सकता कि आपने यह जोगिया क्यों पहन रखा है ?

—तो इसका मतलब यह हुआ कि हम दोनों को ही एक दूसरे के बारे में बहुत कुछ पूछना है।

और दोनों ही प्रतिदेखते हुए मुस्करा रह थे। विषन बाबू बोले

—क्या हाथ मुँह नहीं धोइएगा ?

—मामूली सा।

—तो फिर मामूली-सा एक डुबकी लेकर जल्द चलिए।—अगर आप बिना मीटिंग के शाम काटने के आदी नहीं होंगे तो उसका भी प्रबन्ध हो ही जाएगा।

और हँसते हुए दोनों ही अन्दर चल गये।

विशन बाबू के बारे में अधिकांश लोग कुछ नहीं जानते। और जो लोग जानने का दावा करते हैं वे इतनी विरोधी बातें कहते-सुनते हैं जैसे कि विशन बाबू न हुए, किसी उपन्यास के नायक हुए। कोई उन्हें किसी रियासत का विद्रोही छोटा मोटा राजा बताता है जिसने अंग्रेज सरकार से विद्रोह कर रखा है इसलिए उसकी सारी जायदाद 'कोर्ट आफ वार्ड्स' में चली गयी है और ये हजरत अब देशभक्ति करते फिर रहे हैं। कोई इन्हें राजस्थान के किसी राजा का बागी पुत्र कहता है। कोई इन्हें साधु बताता है जिसने कि साधुता के ढोंग को उतार फेंका है और आजादी की लड़ाई में कूद पड़ा है मतलब कि जितने मुँह उतने विशन बाबू।

एक रविवार को सवेरे-सवेरे विशनबाबू ने पूछा

—श्रीधर बाबू! कभी आप किसी गिरजाघर में गये हैं?

—नहीं तो क्यों?

—मैं वहाँ प्रायः जाता हूँ।

—तो क्या आप ईसाई हैं?

—मान लो हूँ तो ? क्या धर्मभ्रष्ट हो गया ब्राह्मण का ?

—ब्राह्मण तो अपने संसर्ग में आने वाले को पवित्र बनाता है या अपना धर्म का बना लेता है जैसे अग्नि।

—तब तो आप असली ब्राह्मण नहीं मालूम देते। ब्राह्मण वह, जिसका धर्म या पवित्रता हर बात पर भ्रष्ट हो जाए।

और वे अपनी परिचित हँसी में हँसे। बोले

—मुझे गिरजाघर जाना इसलिए अच्छा लगता है कि लोग धुले-धुले से वहाँ आते हैं। चर्च के प्रार्थना-हाल में बड़े ही व्यवस्थित रूप से संगीत होता है—बस। उसके बाद का पादरियों का बकवास मुझे कभी अच्छी नहीं लगती। पता नहीं लोगों ने मानव को उन्नत बनाने में कला और संगीत का प्रश्रय क्यों नहीं लिया ? कभी आप चलना चाहेंगे ?

—कोई आपत्ति तो नहीं है मुझे।

धीमर बाबू ने देखा कि आम और जामुनों की गझिनता के पीछे लाल पत्थर का एक गिरजाघर भी है जो इस समय चर्च घंटियों के कारण वातावरण में सहज खोयेपन से उभर आया था। नदी के बाद पर ईसाई परिवार रंगीन फ्राकें तथा पतलूनें पहने जा रहे थे। स्त्रियों ने सिर पर रुमाल बांध रखे थे। गिरजाघर के प्रशस्त लान में काफी लोग थे। धीमर बाबू का बड़ा अजीब सा लग रहा था। वे आज के पहले कभी किसी गिरजाघर नहीं गये थे। हालाँकि उनके छावनी वाले स्कूल के पास ही एक ऐसा ही लाल गिरजाघर था जो अँग्रेज-छावनी के दिनों में कभी खुलता रहा होगा लेकिन उन्होंने उसे कभी खुला नहीं देखा। उनके मन में सदा जिज्ञासा रही कि आखिरकार इन उपासना घरों में क्या होता है ? कहीं उनके मन में एक धारणा यह भी थी कि ये गिरजाघर सिर्फ अंग्रेजों के होते हैं लेकिन आज इतने सारे ईसाई देखे फिर भी दो-चार नाम मात्र को ही उनमें अंग्रेज थे बाकी तो अधिकांश हिन्दुस्तानी थे और वह भी एक दम काले बदसूरत।

गिरजाघर के प्रमुख द्वार पर हिन्दी में लिखा था

—'यह प्रभु का घर है, जो चाहे सो आवे।

सबसे पीछे की बैंच पर वह और किसन बाबू बैठ गये। उन्होंने प्रवचन पाठ

तथा संगीत सभी कुछ ध्यान से सुना। मन पर सिवाय संगीत के और किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ जो उन्हें अत्यन्त अभिभूत कर सके वह थे प्रार्थना-हाल का स्निग्ध वातावरण तथा उपस्थितों की शान्ति। श्रीधर बाबू को प्रचार नाम की चीज से आरम्भ से ही चिढ़ थी। इसीलिए अपने घर में भी या कस्बे में भी होने वाली धार्मिक कथाओं या 'सप्ताह जी' में वे कभी रुचि न रख सके। क्योंकि वे धर्म को व्यक्ति की निष्ठा मानते रहे हैं। चौराहों पर इस निष्ठा का प्रदर्शन या भीड़ में बैठकर धर्म के तत्त्व पर प्रवचन सुनना उन्हें बहुत ही भोंड़ा लगता रहा है। गिरजाघर में उपस्थितों की शांति तो उन्हें प्रिय लगी लेकिन वे विश्वस्त थे कि कोई भी धर्म के मर्म पर न सोच कर घर धंधे की ही सोच रहा है। धर्म के प्रदर्शन के इस मिथ्यात्व पर तथा बीच-बीच में जिस नाटकीयता का सहारा लिया जा रहा था बड़ी ही वितृष्णा हुई। धर्म नियम है व्यक्ति का सामाजिक प्रवचन नहीं।

लौटते में बिपन बाबू ने पूछा

—कहिए कैसा लगा ?

—लोग नहाये लग रहे थे पादरी नहाये हुए थे और क्या ??

—जनाब ! उपासना हाल तक पूरा झाड़-पुँछा था मालूम है कुछ ?

और वे ठहाके के साथ हँस पड़े। उपस्थित इसाई जनता ने फौरन ही पहचान लिया कि ये दोनों गैर इसाई हैं और वे विदा के चुम्बन लेते-देते समय काफी घूर-घूर कर दोनों को देख रहे थे।

—आइए, पार्क में एक छोटी सी झील है जहाँ मैं कभी-कभी आकर दोपहरी में सोया करता हूँ। चलिएगा ?

—आपके साथ गिरजाघर जा सकता हूँ झील पर जा सकता हूँ कहिए तो मस्जिद भी जा सकता हूँ।

—मस्जिद मेरी सौन्दर्य प्रियता को कभी नहीं जमती। मैं तो कलात्मक धर्म का कायल हूँ।

—जनाब ! मैं तो आपका कायल हूँ। न धर्म न कला किसी से मेरा कोई मतलब नहीं।

श्रीधर बाबू के इस सहज बोलने पर दोनों ही हँस पड़े।

जाड़ों की सुबह का हल्का कुहरा और धूप पार्क की दूब तथा चारों ओर के सघन ऊँचे-मेड़ों पर मोहक रूप से फैले हुए थे। झील में दो चार छोटी-छोटी नौकाएँ थीं जो चर्च की ही थीं। चर्च के सदस्य प्रायः सुहाने दिनों में या छुट्टियाँ मनाने के लिए नौका-विहार करने आ जाते हैं। झील का पानी एक दम निर्मल प्रसन्न था। हल्की हवा में छोटी-छोटी लहरें चैतन्य-सी उठती गिरती आ-जा रही थीं। सरपत और झाऊ की झाड़ियाँ जल में खड़ी भीग रही थीं। कहीं-कहीं दो चार बलाकाएँ जलमुर्गाबियाँ पानी में खड़ी या तैरती हुई उन्मुक्तता अनुभव कर रही थीं। थोड़ी देर में ही झील के किनारों पर शिकार के शौकीन बंसियाँ लिये हुए आ जाएँगे और फिर उसके बाद उसी पानी में डाल के चित लेट लेटे मुँह पर गर्म धूप लादे शिकार और धूप-स्नान का आनन्द लेते हुए पूरा रविवार अपनी तरफ से उत्सव बना देंगे।

पत्थरों के ढूह पर वे लोग बैठ गये। झील का नीला जल काले पत्थरों को बारंबार भिगो जाता और धूप भी उतनी ही तेजी के साथ पत्थरों का सुखाने में लग जाती। पत्थरों में कहीं-कहीं पीले बनफूल छोटे छोटे पत्र वाले हवा में सिहर रहे थे। मछलियाँ गहरे जल से ऊपर आकर फिर नीचे तैर जातीं। वातावरण में बाहर और मन के भीतर बड़ी ईर्ष्या योग्य शान्ति लग रही थी। दूर पूर्वी सिरे पर मेडिकल स्कूल का हास्टल दिख रहा था।

एक छोटी सी कंकरी पानी में किसी मछली का निशाना बना कर फेंकते हुए बिशन बाबू बोले

—कभी आपको ऐसा लगता है कि अगर मैं यह न होकर वह होता या वह न होकर कुछ और होता तो क्या कुछ न बन सकता था?

—मैं समझता हूँ कि व्यक्ति ऐसा तभी सोचता है जब कि उसे तुलना करना आता हो या वह दूसरा कुछ बनने का महत्वाकांक्षी हो। चूँकि मैं आज तक अपने को इस तरह से रखकर देख ही नहीं सका कि मैं अपने अलावा यदि दूसरा कुछ होता तो कैसा होता या क्या हो सकता था। क्योंकि कहीं न कहीं मैं यही मानता हूँ कि भला मैं दूसरा कुछ कैसे हो सकता था? तब फिर मेरा मैं कौन होता? चूँकि अपना मैं स्वयं ही हो सकता हूँ इसलिए दूसरे की अपेक्षा तुलना करना या तो आया ही नहीं या फिर आया भी तो दुःख नहीं हुआ परिताप नहीं हुआ।

—आप तो सच ही बड़े गंभीर व्यक्ति निकले।

श्रीधर बाबू ने आशा भी की कि बिशन बाबू इस प्रकार की बातों के बाद या

अट्टहास किया करते हैं वही होगा लेकिन वे गंभीर ही बने रहे। दूब के एक पत्थर को एड़ी से पीटते हुए बोले

—बात यह है धीमर बाबू ! कि जब आपके स्वत्व को बारम्बार ठेस लगे तो निश्चय ही मनुष्य ऐसा सोचता है। और मुश्किल यह हो गयी कि आपने इस सहज मानवीय आचरण को जिस नैतिक धरातल पर खड़ा कर लिया वहाँ से देखने पर तो यही लगता है कि मनुष्य का यह कितना छोटापन है जो वह दूसरों के साथ अपनी तुलना करते हुए स्वयं को श्रेष्ठ मान रहा है।

—लेकिन मैंने तो यह नहीं कहा कि ऐसा सोचना छोटापन है।

—कहा नहीं जरूर, लेकिन ध्वनि यही है। अच्छा अगर मैं पूछूँ कि आप आज जहाँ खड़े हैं वहाँ क्या आपको होना चाहिए ?

—क्या मतलब ?

धीमर बाबू ने काफी चौंकते हुए पूछा।

—मतलब यह कि आज जीवन संघर्ष के जिस दौर से आप गुजर रहे हैं और ऐसे अनेक सम्पन्न लोग हैं जो हर बात में आपसे गये बीते होंगे वे क्यों नहीं ऐसे संघर्ष से गुजरते ? क्या इसलिए कि वे साधन सम्पन्न हैं ? सिर्फ इसीलिए ?

धीमर बाबू ने सम्भवतः आज के पूर्व लोगों को उनकी सम्पन्नताओं तथा विपन्नताओं के प्रतिफल के रूप में देखा ही नहीं था। आज तक वे जिस नैतिक स्तर पर रहे थे या धार्मिक वातावरण में पले-बढ़े थे वहाँ व्यक्ति संघर्ष सम्पन्नता आदि के संयोग योगफल आदि की पद्धति से देखने का कोई रिवाज ही नहीं था। एक कस्बे के ब्राह्मण कुल का निष्ठावान युवक सफल अध्यापक बनकर भी रहा था। ज्ञान के अमूर्त रूप ने कुछ आदर्शवादी बना दिया था। भला व्यक्ति व्यक्ति के सम्बन्धों से भी जीवन नियामित प्रभावित या दूषित हो सकता है यह उन्हें पता ही नहीं था। बड़े मोटे रूप में मानवीय संबंधों का आदर्शीकरण किया जा सकता था। राम का विरह सर्वव्यापी था। महाभारत का युद्ध धर्म संस्थापनार्थाय हुआ था। शकुन्तला वनदेवी थी जिस पर दुष्यन्त की कालिमा पड़ी लेकिन सत्य अँगूठी की भाँति मछली के पेट से भी प्रकट होकर रहा। भीष्म आत्मोत्सर्ग के मूर्तरूप थे। यह सब था। जीवन के उदात्त होने की प्रेरणा जरूर मिली थी लेकिन विपिन बाबू जिस बात को कह रहे हैं वह उनके गले नहीं उतर रही थी हालांकि वे उसे थू करके फेंक भी नहीं दे रहे थे। तर्क से बात युक्ति संगत अवश्य थी। सोचा संभव है अनुभवजन्य सत्य भी हो।

—आप चुप क्यों हो गये ?

बिशनबाबू ने एक वृक्ष को सिरहाना बना कर आकाश ताकना शुरू कर दिया था ।

—चुप हूँ इसलिए कि अभी इतने गहरे पैठा नहीं हूँ ।

श्रीधर बाबू ने मिथ्या विनम्रता के कारण ऐसा नहीं कहा था लेकिन बिशन बाबू को लगा कि श्रीधर बाबू का दर्प और दर्द दोनों ही काफ़ी गहरे हैं और फिर उन्होंने विनम्र होकर अस्वीकार न भी सही पर टाला ज़रूर ।

—आप जानते हैं श्रीधर बाबू कि मैं कौन हूँ ?

—तो क्या आप बिशन बाबू नहीं हैं ?

श्रीधर बाबू का यह प्रश्न इतनी हास्यास्पद सादगी से भरा था कि बिशन बाबू काफ़ी ज़ोर से हँस पड़े और बैठ गये । एक बड़ा सा ढेला झील के पानी को फेंक मारते हुए बोले

—श्रीधर बाबू ! मैं अभी भी आपको सलाह दूँगा कि आप अपने घर लौट जायें । इतनी नैतिकता इतनी निष्ठा में आप कितनी दूर चल पाएँगे ? और क्या लोग आपको चलने देंगे ? लोग परोपकार से अधिक परनिन्दा में इतने रत रहते हैं कि आप अगर पूरे शीशे के बने होते ताकि आपने क्या खाया है और अब वह किस स्थिति तथा स्थान पर है इतना जान लेने के बाद भी सन्तुष्ट न होते। जब कि हर व्यक्ति स्वयं लोहे की भाँति अभेद्य होना चाहता है और सामने वाले का वह पारदर्शी शीशे से कम बिल्कुल नहीं चाहता ।

—लगता है आप गहरे जल में न केवल तैरे तक हैं बल्कि उसके भीतर की चट्टानों में कहाँ काई कहाँ पौधे कहाँ शंख-सीपियाँ हैं यह भी सब देखे जाने बैठे हैं ।

—यही तो मुश्किल है श्रीधर बाबू ! चारों ओर का दबाव या गतिमयता किसी का एक स्थान पर टिकने कहाँ देती है ? हम जब भी पैर टिका कर खड़े होने की चेष्टा करते हैं तो भूमि नहीं मिलती केवल जल होता है और हम धँसते जाते हैं । जीवन परिवार, गृहस्थी कुटुम्ब के ऐसे बने-बनाये साँचे होते हैं श्रीधर बाबू ! कि उनमें बँधे रहकर मूर्खों की पीढ़ियाँ दर पीढ़ियाँ जीवित रहती आती हैं और सामाजिकता भी बनाये रखती हैं । लेकिन आप एक बार भी उन साँचों से बाहर पैर निकालें तो बस फिर पैरों के [illegible] नीचे चारों ओर जल ही जल होता है । कोई आपको नहीं स्वीकारेगा । जहाँ आपको लगता है कि आपके पैर टिके संभवतः भूमि आपको मिल [illegible]

वह या तो किसी जलजन्तु की बड़ी पीठ होती है या मोटी सवार का पाल।
और ये दोनों ही भ्रम होते हैं—श्रीधर बाबू ! कभी आपने प्रेम किया है ?
श्रीधर बाबू सहसा प्रश्न की संगति न बैठाल सके।
—जी नहीं मैं इस बारे में नहीं जानता।
—लेकिन मैं जानता हूँ कि इस सब में क्या होता है फिर भी प्रेम करना चाहता हूँ।
—तो क्या प्रेम भी सोच कर किया जाता है ?
—आवश्यकता पड़ने पर। मैं इस बार किसी ईसाई लड़की से प्रेम करना चाहता हूँ।
—इस बार ?
—हाँऽ—लेकिन मुश्किल यह है कि ये ईसाई दिखते बड़े खुशनुमा हैं परन्तु बड़े दकियानूस होते हैं। क्या आपने देखा था कि अभी चर्च में हम लोग जिस बेंच पर बैठे थे उसके सामने ही एक लड़की पीला रूमाल बाँधे बैठी थी ?
—मैंने ख्याल नहीं किया।
—उसे रोजी सिम्पसन कहते हैं। मैं उसकी ओर आकृष्ट हुआ था। उसीके कारण मैं चर्च आता था। एक दिन वह किसी से कह रही थी कि मैं नहीं समझ पाती कि कोई बाइबिल ईसा के अलावा कैसे किसी दूसरे को प्रेम कर सकता है ? मुझे घृणा हो गयी।—मैं आज काफी दिनों बाद यहाँ आया।
जाड़ों की धूप निश्चिन्त चर्च के क्रास के पीछे आकाश में प्रकंपित चलती हुई थी। दो एक साहब और साहबनुमा लोग बग्घियाँ लिये-लिये पहुँच रहे थे। तभी आदमी-औरतों का एक छोटा झुण्ड रंग-बिरंगे उनके कपड़ों में हँसता हुआ आता दिखायी दिया। उस झुण्ड के आगे-आगे एक नवविवाहित ईसाई दम्पति चल रहा था। वधू अपनी उसी ईसाई वधूवेश में थी। साथ चलने वालों में एक लड़का माउथ-आरगन बजाता आ रहा था। एक चश्मे वाले अधेड़ के पास बक्से में बन्द वायलिन भी था। तभी सहसा विपिन बाबू उचक कर बैठ गये और फुसफुसा कर बोले
—श्रीधर बाबू ! वह पीछे रूमाल वाली लड़की देखते हैं ?
और श्रीधरबाबू को समझते देर न लगी कि यही रोजी सिम्पसन है जिससे विपिन बाबू को घृणा हो गयी थी।
—यही रोजी है क्या ?
—हाँऽ।

विशन बाबू उन आगन्तुकों की भीड़ को देखने में लगे थे। वह छोटा सा झुण्ड व्यर्थ में हँसता जा रहा था जैसे सब ही बहुत प्रसन्न हों।

—ये लोग कौन हैं विशन बाबू ?

—ईसाई हैं। ये जो सफेद झक लम्बी सी भूषा पहने लड़की है न यह वधू है। लगता है अभी विवाह करके चर्च से आ रहे हैं।

श्रीधर बाबू को समझते देर न लगी कि यह ईसाई विवाह का जुलूस है। इस बीच वर-वधू को झुण्ड ने एक नौका पर चढ़ा लिया था। बजाने वाले अधेड़ ने अपने वायलिन पर गत बजानी शुरू कर दी थी। माउथ-आरगन वाला लड़का भी अब वायलिन का साथ दे रहा था। नौका तट छोड़कर बीच झील में बढ़ती जा रही थी। लोगों की हँसियाँ, हिलते हाथ तथा संगीत भी क्रमशः ऊँचे होते जा रहे थे। डाँड़ चलाते अपने वर के सामने बैठी वधू उल्लासित या बड़े प्रसन्न विश्वास के साथ हाथ हिलाती विदा ले रही थी। सारा वातावरण रंगीन तथा संगीतमय हो उठा था। तभी विशन बाबू सहसा उठे और बिना कुछ बोले-कहे सुमे उस झुंड की ओर लपके। श्रीधर बाबू हठात् समझ न पाये। उन्होंने देखा कि विशन बाबू को आते देख पीले रूमाल वाली रोजी सेल्समन लौटते हुए झुण्ड के पीछे रह गयी। सम्भवतः वह रोजी की बूढ़ी माता रही होगी जिसने रोजी को उसके ठहर जाने पर कुछ कहा रोजी ने भी कुछ कहा और वे लपकते आते विशन को घूरते हुए धीमे-धीमे चलने लगीं।

रोजी सफेद-सुनहरी सुन्दर सी साड़ी पहने थी। बालों की एक लट उसके कपोलों पर हल्की झूल आयी थी। गेहुँए वर्ण की रोजी धुली चमक रही थी। रूमान की हरी पृष्ठभूमि में रोजी की उड़ती हुई साड़ी टाँगों के पास फलिस लग रही थी। विशन तथा रोजी दोनों ही हँस-हँस कर बातें कर रहे थे— श्रीधर बाबू को ऐसा तो नहीं ही लगा कि विशन को सचमुच ही रोजी न भूला हो गयी है। नौका पर बैठा नवविवाहित युगल डाँड़ चलाता हुआ झील में दूर निकल गया था। केवल पानी में कम्पन तिर रहा था तथा अनेक चीजों की पृष्ठभूमि में वधू की उजली वेश-भूषा तथा सेता हुआ वर आभासित थे।

सहसा धीवरबाबू को यह सारा व्यापार बड़ा अजीब लगने लगा। यह सब बड़ा पुस्तकीय सा लग रहा था। एकदम ही गलत था फिर भी अविश्वसनीय नहीं। कहीं किसी अन्तर में परिणाम देने वाला भी। मन में कैसे समाज में फूट उठा कि वे भी ऐसे ही किसी रानी से आलाप करें। ऐसे ही आलापते भावों की ऊनी-ऊनी धूप उन्हें भी घेर कर घिर उठे। वे भी एक माउथ-आरगन बजा कर बच्चों की तरह इस पूरे मान पर हरी घास पर बस राग बजाते-बजाते सो जाएँ। कोई स्मृति न हो कोई न हो। बल्कि ऐसा हो कि स्वयं भी न हों। तभी विपिन आते दिखे। रोजी जा रही थी। जाने के पूर्व उसने धीवर को भी एकबार देखा था। पहली बार धीवरबाबू ने देखा कि वस्त्रों के माध्यम से भी नारी-देह आभास देती है। और इस बात से उनके कान तक झनझना उठे। लौटते विपिन बाबू प्रसन्न लग रहे थे। विपिनबाबू ने आशा की कि धीवर बाबू कुछ कहेंगे पूछेंगे लेकिन वे चुप ही बने रहे। उन्हें चुप देख कर विपिन बाबू उसी सुपरिचित ठहाके के बाद बोले

—तो अब चला जाए ?

—जरूर।

—लेकिन कहाँ ?

—जहाँ कहिए।

—मन पर अपनी मति का भार छोड़िएगा तो धोखा खा जाइएगा।

और विपिन बाबू मुस्करा रहे थे।

—धोखा देनेवाला कछुआ नहीं है।

—सच ??

और दोनों ही प्रसन्न ढाबे की ओर बढ़े।

रास्ते भर मौन रहा। विपिन बाबू मन में रोजी से हुए अपने वार्तालाप की जुगाली कर रहे थे और धीवर बाबू चार दिन पहले के सूत्र को आज से गाँठ बाँध कर जोड़ने में लगे थे।

रविवार भी अजीब निष्क्रिय भागी-भागी सा दिन होता है कि पूरा होने पर ही नहीं आता। रविवार का दिन जैसे एक सब बड़ा शून्य हो। सब होता है, फिर भी जैसे कुछ नहीं होता है। और जाड़ों का रवि-वासर तो पिकनिक के रिक्शा कैरियर सा बन जाता है। हरी दूबों वाले लानों पर आप कुनमुनाते रहिए, धूप पीली-पीली पीली तितलियों की भाँति आपके चारों ओर दिन भर रविवार मनाती उड़ती रहेगी। सड़कें सनसनाती होंगी। सूनी माँग सी सड़कों पर आप भारी भारी पैर रखते हुए चलते चले जाइए, मगर मन तो छूट जाए। बंगले और मकान असम्पृक्त से आपको देखते भर रहेंगे। कोई अपना दरवाजा आपके लिए नहीं खोलेगा। कुछ कुलबुलिया गौरैया या पीली पाँखों वाली कुछ चिड़ियाँ तथा छितराता हुआ कहरिल फौवारे का जल ही आपका साथ दे सकेंगे। रविवार के दिन भी काम होते हैं लेकिन वैसे ही जैसे लान्ड्री की आलमारी में रखी तह की हुई सफ़ेद कमीज़ें—मौन धुली कमीज़ें।

चाय के बाद पान खाकर किशन बाबू को सहसा याद आया कि आज प्रजा मंडल की कार्यकारिणी की बैठक शुक्ला साहब के घर पर है और वे शाम को

घास पर सिमटे रह कर बस गये। धूप अपराह्न तथा पूरी सन्ध्या श्रीधर बाबू के सामने निष्क्रिय विस्तार सी फैल आयी। तोपखाना रोड का शिव-मन्दिर पलकें मींच गुम सा मौन था। हाईकोर्ट के गुम्बद में कबूतर ऊँचे ऊँचे चढ़ रहे थे। अस्पताल के बरामदों में कभी कोई नर्स गुजर जाती। रामचन्द्र फोटोग्राफर की प्रसिद्ध दुकान अलमारियों में वैसी बन्द लग रही थी जैसे कैसी अँगुलियों में किसी ने मुँह छुपा रखा हो। अलमारियों के अन्दर के बड़े-बड़े चित्र-फोटो चित से रहे थे। दुकान के सामने एक बग्घी खड़ी थी। शायद छावनी के किसी अंग्रेज की होगी जो कि फोटोग्राफर को लेने आयी होगी। सोडावाटर वाले की दुकान में कुछ लोग भाग भरा सोडा पी रहे थे। दूसरों को भाग भरा सोडा पीते देख कई बार आपकी अपनी नाक सनसना जाती है। सोडावाटर वाले के बगल में नाले के पास जो तिकोनी खाली जगह है उसमें धोबियों ने कपड़े उजली बतखों से रस्सियों में टाँग रखे थे। श्रीधर बाबू टाउनहाल के पार्क में निकल आये।

निर्जनता भी अनेक बार खल जाती है। हम चाहते हैं कि कोई हो और हमें वैसे ही बचा जाये जैसे बाघ के पर्दे लेकिन कोई नहीं होता है कहीं। और हम पिपासा उठते हैं। व्यर्थ में दूबा पर एड़ी दाब कर चलने लगते हैं जैसे हम सारी की सारी दूब का कुचल ही तो देंगे। तब एड़ियाँ भी दर्द कर उठती हैं। दूब दूब ही रहती है—विनम्र लेकिन अपराजित। श्रीधर बाबू एकान्त अथवा निष्क्रियता सबसे एकदम ही थक गये थे। अगर वे इस टाउनहाल से नहीं चल देते तो वे इतनी निर्मूल की बात तक पर चिढ़ने-चिढ़ने को हो आये थे कि लोगों को इतनी भी तमीज नहीं कि लान पर इस तरह और इतना तो न चलें कि जगह-जगह पगडंडियाँ आड़ी-तिरछी बन जाएँ और लान असुन्दर लगने लगे।

जब वे अपने कस्बे में थे तब इतने रिताये हुए थोड़े ही थे? चार दिन पूर्व तक वे एक गंभीर अध्यापक थे। उनका परिवार था, स्कूल था, रोज का काम नियम था, विद्यार्थी थे और सबसे बड़ी बात तो यह कि वे स्वयं थे। यह खाली पन, निष्क्रियता, रविवारीयता तो उन्हें एकदम ही खोखला बना देगी। कुछ दिन यदि वे ऐसे ही रहे तो स्वयं को नहीं पहचान पायेंगे। उन्हें कुछ करना ही होगा और यह भी कि घर से मात्र अस्सी मील दूर कोई कितने दिन अज्ञात रह सकता है?

घर याद हो आया साथ ही घबराहट भी होने लगी ।
रविवार के दिन प्रायः सरो इस बेला तालाब पर घर भर के कपड़े लेकर धोने आया करती है । 'दूर आकाश के नीचे जल में सरो कपड़ों को धोती दिखायी दी । वे साँस रोक कर सरो का कपड़ा धोना देखते रहे । सरो ने कपड़े पानी में डुबाये, फींचे और जल में कम्पनें फैलने लगीं । जाने क्यों उन्हें लगा कि सरो गीले कपड़े तेज हवा में सुखा रही है और दोनों हाथों में पकड़े-पकड़े सूखने न सूखते छोड़ दिया जाता है । दूर आकाशों में सरो द्वारा छोड़ दिये गये कपड़े भर उठे हैं और अपना हरा गुदना छिपे सरोमुख खिलखिलाकर आँचल की ओट हँस रहा है, हँस रहा है और तभी सरोमुख की सिसकियाँ हौले से सुनायी पड़ती हैं । श्रीधर बाबू झटके से आकाश ताकना छोड़ खड़े हो गये और जाने कहाँ वे कपड़े वह सरोमुख तिरोहित हो गया ।
वे वैसे ही हड़बड़ाहट में तेज कदम रखते रेलवे क्रासिंग पार कर 'रीगल' सिनेमा की बगल वाली सड़क पर निकल आये जहाँ उस दिन पहली बार 'चिल्ड्रनपार्क' की मीटिंग में गये थे । बड़ी साफ सुथरी पतली सड़क थी । एक ओर यूकलिप्टिस कनेर अपराह्न की धूप में अपनी पत्तियाँ चमकाते हिल रहे थे । जाने की उत्तर मुख जाने वाली सूर्यमुख पेड़ों की छायाओं को लम्बा बनाती खिंचा थी । जगह-जगह क्यारियों में कलियों के अनेक वर्णी बड़े-बड़े फूल हवा में हिलते झूमते लग रहे थे । लानों को पानी दिया जा रहा था । फव्वारे के इर्द-गिर्द जल से खेलते अंग्रेज बच्चे बड़े प्यारे लग रहे थे । बच्चों की माताएँ चहलकदमी कर रही थीं । आयाएँ आम और छोटे बच्चों की देखभाल कर रही थीं । नीले आकाश की पृष्ठ-भूमि में सारा वातावरण तैलचित्र लग रहा था । कोई ट्रेन आ रही थी ।
तेज सीटी तथा पहियों की खड़खड़ाहट से वातावरण गूँज उठा । दूर मिलों की चिमनियों से अजगर जैसा धुआँ सदियों के सुन्दर आकाश में रेंग रहा था ।

सारे वातावरण में समन्वय तथा शांति थी—लेकिन श्रीधर बाबू जिस निश्चिन्तता के लिए टाउनहाल या 'चिल्ड्रनपार्क' में भटकते रहे वह उन्हें नहीं मिल रही थी क्योंकि अन्दर में सिसकता सरोमुख, परिवार की स्मृति, बिना की गोद में माथे हुए बच्चों की निद्रित पलकें जैसी आँखें, मिनमार बाबा अपना ही अपरिचित लगता—सब हाहाकारते दिखते थे । वे जिधर मुँह करते हरे लान पर अस्पष्ट मन का वह स्याम रूप सामने आ जाता । पमेन बाबू का वह पोमल्य जैसा चेहरा आ जाता । भाभी का रूपमुख, माँ का आँचल फैला हुआ मन कठ रेखना सिसा का जीवन—सब उस लान पर ऐसे बिखरने लगा कि श्रीधर बाबू को लगा कि

बिपन बाबू के बिना ये स्मृतियाँ उन्हें वैसे ही घेरती रहेंगी जैसे बचपन में 'कंस विध्वंस' के राक्षस और पूतना उन्हें नींद में सताया करते थे।

बिपन बाबू से कह कर कोई काम ले—एक दिन में ही खोज लेना चाहिए नहीं तो इस प्रकार निष्क्रिय अधिक दिन क्या कल तक भी नहीं रहा जा सकता। और, और यह भी क्या जरूरी है कि यहीं काम खोजा जाए? क्यों नहीं कहीं दूसरी जगह चला जाया जाए? ज्यादा अच्छा तो यही होगा कि यहाँ से भी दूर चला जाया जाए—लेकिन कहाँ? कहीं भी!! जब उस दिन "विपुलारच पृथ्वी" देखने का निर्णय किया था तब किसी स्थान विशेष के लिए थोड़े ही सोचा था? वहाँ भी लोग समायें जाना ही होगा—क्या पुस्तकें साहब प्रकाशकों का ही कोई काम नहीं दिला सकते?

इस बात से श्रीधर बाबू को लगा कि निर्णय से मन हल्का होता है क्योंकि अनिर्णीत मनःस्थिति में विषाभास लगता है। मन का काठिन्य जैसे छँट गया हो। घड़ी निकाल कर देखा पाँच बज रहे थे। बिपन बाबू सात बजे तक तो अवश्य ही बासे पर आ जाएँगे। वे उठे। वातावरण बासी धूप के साथ तेजी से उठाने लगा था। रीगल थियेटर के पिछले दालान में पेंटर पोस्टर बनाने में लगा था। अभी पोस्टर में सिर्फ नायिका की नाक तथा एक आँख के कोलतल का ही रेखाभास किया जा सका था। वह आँखहीन आँख बड़ी अजीब लग रही थी। किसी सीमा तक बदसूरत भी। सम्भवतः प्रत्येक रचना प्रक्रिया ऐसी असुन्दर होती है—अपेक्षा और दर्शक दोनों के लिए। लेकिन इससे क्या? देह और मन की सृष्टि और सृजन से कोई अन्य मार्ग कैसे हो सकता है? देह देह चाहती है और मन मन। हम न भी चाहें तब भी प्रत्येक क्षण हममें से हमारी अँगुलियों के माध्यम से समस्त इन्द्रियों के द्वारा कुछ पनपता है, उगता है प्रस्फुटित होता है। प्रत्येक क्षण सब में से इस सारे वृहद् व्यापार में से अनन्त देहें मन रंग रहे होते हैं—सजीव या अफलक पर। प्रत्येक ऐसी सृष्टि हमारे ही सुन्दर, असुन्दर का प्रतिफल है। हमारे अस्वीकारने से क्या होता है?

वे एक मैदान के पास से गुजरे। फुटबाल का मैच हो रहा था शायद। तेज सीटी तथा 'किक' खाकर ऊँची उठी फुटबाल उनका ध्यान आकर्षित कर लेती। आज के पहले कभी उन्हें इतने लोग और वह भी इतने विभिन्न मन्दमों स्थानों तथा

परिस्थितियों में नहीं मिले थे। कहीं यह भी लगा कि वे अपने कस्बे में स्वयं को जितना बन्धु में बड़ा समझते थे उतना वे हैं नहीं। उन्हें आज पहली बार लगा कि बरसों बाद उन्होंने अपना वह लम्बा कोट नहीं पहना है। वह कोट जैसे कम्बा था जिसे वे धारे हुए थे। एक गहरी साँस लेकर अपने चारों ओर देखा तो सामने सड़क पेड़ों के नीचे-नीचे दूर वहाँ तक चली गयी थी जहाँ आकाश का कोना पड़ता हुआ नीलापन शुरू होता है। हल्की ठंड तथा गीली सन्ध्या में आज पहली बार उन्हें बन्धु ही सहज लग रहा था—मानो बिना मन हीन वर्तमान में नितान्त व्यक्ति जिसके पास वस्त्रहीन देह है और जिसे ठंडी हवा छू रही है। अजीब उन्मुक्तता लगी—जैसे वस्त्रहीन अपने को देख लिया जाए सा लगे कि—अरे, हमारे भी तो देह है कभी चिकनी-चिकनी त्वचा मंडित देह। जिसे हम आज तक न केवल दूसरों से बल्कि स्वयं से ही छुपाये हुए थे। लेकिन क्या?—और तब सहसा मन यह करने लगे कि हमारी यह देह ही देह खूब दूर-दूर तक हो और खूब नम भरी हवा ऊनी-ऊनी धूप हमें नाप-जोख कर दें। लेकिन ऐसे ही 'किंकर्तव्यविमूढ़' के क्षण में किसी अन्य के आकस्मिक आगमन पर घबराकर अपने वस्त्र के स्थान पर उपवस्त्र ही पहनने लग जाएँ। मात्र इस सन्तोष के लिए ही कि हमने वस्त्र पहनना शुरू तो कर दिया है।

श्रीधर बाबू का चौंकना वस्त्र पहनने के समान ही था।

जिस समय वे वापस पहुँचे भूख और थकान दोनों से भरे थे। उन्होंने यह नहीं देखा कि मिसेस एलची ने इस 'मापस' का एक बार घूर कर देखा और भीतर जाकर तेजी से अपने बड़े पति को कुछ कहा।

बिपिन बाबू जिस समय कमरे में आये श्रीधर बाबू सो रहे थे। बिपिन बाबू ने जगाया और जब मालूम हुआ कि श्रीधर बाबू प्रतीक्षा करते बिना चाय-पीए ही

सो गए थे तो विमल बाबू को बड़ी उलझन हुई ।

—लीजिए जनाब ! इस तरह यदि प्रतीक्षा करेंगे की आएगी तो हम सब तो भूखे पेट बिना मौत मर जाएँगे । और साहब ! मैं खाली पेट नहीं मरना चाहता । जब मरूँ तो पेट सब पकवानों से भरा हो ।—अरे तो आप जाकर खाना क्यों नहीं खा आये ?

—मैं तो सीधे किंग्सवे कैंप से यहाँ आ गया ।

—जानते हैं क्या बज रहा है ?

—क्या बहुत रात हो गयी ?

—और नहीं तो क्या ? दस बज गया ?

—तो आप भी खाकर आये न ?

—खाया तो मैंने भी नहीं है ।—अच्छा तो चलिए उठिए । वहीं किसी हलवाई की दुकान पर ही कुछ जुगाड़ लगायी जाए ।

और दोनों हलवाई की दुकान की तरफ चले । छावनी एकदम सुनसान थी । हलवाइयों और पानवालों की दुकानों तथा आते-जाते लोगों के सिवाय और कहीं कोई हलचल न थी ।

रास्ते में विमल बाबू ने बताया कि गांधीबाबा कोई सत्याग्रह छेड़ना चाहते हैं । उसी के बारे में आज पुस्तक साहब बता रहे थे ।

—मैं कहता हूँ श्रीधर बाबू ! मुझे गांधीबाबा का रास्ता कुछ पसन्द नहीं । एक नया प्रयोग किया जाने वाला है—सत्याग्रह !!

—सत्याग्रह क्या ?

—आप तो समझदार व्यक्ति हैं सत्याग्रह का अर्थ नहीं जानते ?

—विमल बाबू ! आपको मेरे बारे में काफी भ्रम है ।

—कैसा भ्रम ?

—यही कि मैं गंभीर हूँ समझदार हूँ आदर्शवादी हूँ

—तो यह सब आप नहीं हैं ?—चलिए छुट्टी हुई ।

और विमल बाबू की बात के लहजे ने श्रीधर बाबू को मोह लिया । हलवाई की दुकान आ गयी थी । दूध पीकर वे लौटे । रात काफी हो गयी थी । कुहरा होने लगा था । माघ की दशमी का चन्द्रमा स्पष्ट ऊपर आया था । आकाश बड़ा ठण्डा लग रहा था । घर पहुँचने के पूर्व श्रीधर बाबू बोले

—क्या बहुत डर गये हैं विमलबाबू ?

—सोचा कि थोड़ी देर चलकर पुल के बाँध पर ही बैठा जाए।

—वाह, इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है? मुझे तो कोई ऐसा व्यक्ति आज तक नहीं मिला जो रात भर मेरे साथ रतजगा करके घूमे। श्रीधर बाबू! रात में प्रकृति सजीव होती है। न जाने कितनी अँधेरी रातें तथा चाँदनियाँ इस नदी के किनारे किनारे घूमते हुए बितायी हैं। आगे चलकर इस नदी पर बाँधा का एक छोटा सा उपवन किसी ने कौन मंदिर में कभी लगवाया था। आप सोच नहीं सकते श्रीधर बाबू! कि चाँदनी रात में कितना अच्छा लगता है।

वे बाँध पर पहुँच चुके थे। नदी का जल छोटी छोटी ऊर्मियों में टूट-टूट कर बह रहा था। बाँध के दूसरी तरफ पानी था। इसी तरफ पेड़ों का झुरमुट काफी गझिन था। यहाँ जल में बहाव नहीं बल्कि ठहराव था। पेड़ों की झिरमिरियों में चाँदनी जाल सी बिछी थी। हल्का कुहरा नदी पर रेंग रहा था। बाँध की तरफ दोनों ओर पारसिया की छोटी-छोटी झाड़ें बनी हुई थीं। जो कि इस समय बन्द आँखों की तरह चुप चाँदनी में खड़ी थीं। बाँध के दूसरी तरफ चाँदनी सलवटहीन चादर की भाँति फैली हुई थी। बाँध पर जो एकमात्र घाट बना था वह अपनी बुर्जियों तथा सीढ़ियों में चित्र सा लग रहा था।

—विपिन बाबू! आपको गाना आता है?

विपिनबाबू ने बड़ी जोर का ठहाका लगाया। चारों ओर का फैला हुआ निस्तब्ध मौन चौंक कर इस ठहाके से मुखरित हो गया। पेड़ों पर के सोते हुए कौवे और दूसरे पक्षी चौंक उठे। पंखों की फड़फड़ाहट भी हुई।

—क्यों? आप इतने जोरों से क्यों हँसे?

—इसलिए कि बड़ी शर्म हुआ।

—विपिन बाबू! आप बड़े रहस्यात्मक व्यक्ति हैं।

—मेरा ख्याल है कि हम लोग अपने बीच से यह आप आप का संबोधन हटा लें। बड़ी कठिनाई होती है।

—मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

—सब ठीक है।

और विपिनबाबू नदी के जल पर कभी-कभी उछलकर उठने वाली छोटी मछली को ताकने लगे।

—मेरा मन रहा है

—कौन से? नहीं गाता। असल में शायद! प्रत्येक बार उस व्यक्ति का परिचित होना पड़े तो क्या करे?

—प्रयास करें।

—लेकिन कब तक ?

—जब तक विजयी न हो जाए।

—विजयी होना क्या उपलब्धि है ?

—यदि विजयी होना उपलब्धि नहीं है तो पराजित होने पर परिताप क्यों ?

—तुम्हारा तर्क ठीक है लेकिन श्रीधर ! बताओ मैं क्या करूँ ?

—किस बारे में ?

—यह पुस्तके ढोंगी व्यक्ति है। हरिजन-फण्ड खादी फण्ड गंगा-फण्ड महिला फण्ड—जाने किन-किन फण्डों का चन्दा खाये बैठा है और जब काम पड़ता है तो चन्दे का सारा हिसाब-किताब गलत बताया जाता है। हर बार मुझे अपना मुँह बन्द रखने को बाध्य होना पड़ता है।

—लेकिन क्यों ?

—क्यों क्या ? पुस्तके साहब नामांकित वकील हैं। एक बड़ी पुश्तैनी सामाजिकता है। राजनीति के कर्णधारों में गिनती होती है इसलिए उन्हें पूर्ण अधिकार है कि वे छोटे राजनीतिज्ञों का शोषण करें। कभी तुम सोच सकते हो कि मैं अवैतनिक काम करता हूँ ? अपनी जीविका चलाने के लिए मुझे "वीर अर्जुन" में या 'व्यंकटेश्वर समाचार" में लेख वगैरा लिखकर दस-पाँच रुपये कमाने पड़ते हैं ? और उस पर तुर्रा यह कि मैं शाम को "लहर अखबार' में बैठकर क्यों नहीं खादी बेचता ?

—तो तुम और काम क्यों नहीं करते ?

जिवन बाबू फिर हँसे लेकिन पीड़ित।

—इसलिए कि मुझमें कहीं भाव है कि देश को आज़ाद करवाया जाए। मैं भी एक आदर्श के कारण राजनीति में आया। दुःख या परिताप इस बात का है श्रीधर ! कि अंग्रेज के शोषण को [तो शोषण कह कर सब उसके विरुद्ध सत्याग्रह करेंगे लेकिन इन पुस्तके साहब जैसे लोगों के शोषण को आप त्याग तपस्या देशसेवा आदि कहने के लिए बाध्य हैं। आज पाँच बरस से घुट रहा हूँ कोई उत्तर नहीं मिलता। मैंने अपने जर्मन पादरी से भी पूछा इस बारे में वह भी हँस देता है।

—कौन जर्मन पादरी ?

—अरे हाँ मैंने तुम्हें बताया नहीं। मैं सोम और बृहस्पत को एक जर्मन-पादरी को हिन्दी पढ़ाने जाता हूँ शाम को एक घंटे के लिए। फादर फ्रेडरिक नाम

है उनका। कभी तुम मेरे साथ चलना बहुत पसन्द करोगे।

—लेकिन तुम इतनी विपत्तियों में भी कैसे इतने सुखी दिखते हो?

—तो क्या करूँ? व्यक्ति कितने दिन रोये? और फिर हर किसी के सामने क्यों रोये? क्या लाभ?—उन लोगों को अपनी वास्तविकता दिखाऊँ जो मेरे बारे में झूठी-झूठी अफवाहें फैलाते हैं? मैं कहीं का दार्शनिक राजकुमार हूँ या वह साधु हूँ जो भाग कर देश-सेवक का बाना ओढ़े है। श्रीधर! यह दुनिया है जिस पर मैं रोज रात पान की पीक थूका करता हूँ। मुझे घृणा है इन सबसे। तुम स्वयं एक दिन देखोगे कि ये सब चरखा कातते हुए मगरमच्छ हैं जिन्होंने अपने खूनी नाखून गोमुखी में छुपा रखे हैं।

श्रीधर बाबू ने देखा कि विपन बाबू के मुख पर खिंचाव ही खिंचाव तन उठे हैं। सिकोड़ी हुई भवों से वे दूर, अन्धकार, चाँदनी आकाश मकानों की दोनों ओर की लेन नदी को चीर कर घूर रहे हैं।

—अच्छा श्रीधर! चलो अब। न तो आज रात स्वराज्य ही आने वाला है और न पुस्तके साहब जैसे लोग ही समाप्त होने वाले हैं। बेचारी नींद को क्यों खराब किया जाए? हाँ सुनो, कौनसा काम करना पसन्द करोगे? क्योंकि स्वराज्य की लड़ाई स्वयं अपने में कोई काम नहीं है। कांग्रेसियों के लिए, वह तो शौक है। जितने बड़े आदमी बनकर इसमें आओगे—उतने बड़े देशसेवक कहलाओगे।

—हाँ विपन! मैं भी सोच रहा था कि कुछ काम धाम किया जाए। लेकिन कुछ समझ में नहीं आता कि क्या किया जाए यहाँ?

—मैं भी फिलहाल कुछ नहीं सोच पा रहा हूँ। अच्छा खैर देखा जाएगा। अगर राजनीति ही चुनना चाहोगे तब उसका भी रास्ता है।

—कौन सा?

—आज नहीं।—क्योंकि वह रास्ता नहीं है श्रीधर! उत्सर्ग है। उस पर चलकर फिर और कुछ नहीं रह जाता। और मैं उस मार्ग या उत्सर्ग का परामर्श नहीं दूँगा।

बिस्तरे पर लेटते ही विपनबाबू तो सो गये लेकिन श्रीधर कभी सोते हुए विपन के निश्चिन्त मुँह को देखते और कभी खिड़की के शीशों के पल्लों से दिखती बाहर की चाँदनी हल्का धुँधला दृश्य देखते। न नींद आँखों के बाहर ही थी और न पलकों के भीतर ही नींद तो विपन बाबू के पास थी।

पिछले एक महीने से श्रीधर बाबू का यह नियम रहा है कि वे सवेरे चार बजे उठकर घूमने जाते। दिन में कोई कामकाज ढूंढ़ा जाता। महाराजबाड़ा की तरफ निकल जाते और वहां के पुस्तकालय में बैठकर पढ़ा जाता। इस बीच काम चलाने के लिए हरिजनों के लिए खोली गयी रात्रि पाठशाला के लिए वे मालवा मिल वाली मजदूर बस्ती चले जाते। वहां से लौटते दस बज जाते और खाना खाकर जब डेरे पर पहुंचते तब प्रायः छावनी की पुलिस लाइन के घंटे के ग्यारह या तो रास्ते में बजते या फिर डेरे की सीढ़ियों पर। कभी विधान बाबू सोते मिलते या फिर जागते हुए श्रीधर बाबू की प्रतीक्षा करते होते।

पिछले तीन दिनों से विधान बाबू नागपुर गये हुए हैं। न तो उन्होंने ही बताया और न इन्होंने पूछा ही कि क्यों जा रहे हो? आज जब वे रात्रि पाठशाला पहुंचे तो उसे बन्द पाया। रोज तो उस कोठरियों वाली पाठशाला के बरामदे में उनके

पहुँचने के पूर्व ही आठ दस लड़कों की वह कक्षा बीच में लालटेन जलाये चारों ओर से पाठ पढ़ती मिलती। उनके पहुँचने के बाद कुछ मजदूर भी आते। लेकिन आज न तो कोई लड़का ही वहाँ था और न ही वह पाठशाला लगी हुई थी। लगता था जैसे आज कोई आया ही नहीं। कुछ देर तक वे सामने के पीपल के पास खड़े होकर सोचते हुए टोह लेने लगे कि कोई उधर से आये तो पूछें कि क्या बात है आज कोई क्यों नहीं आया? लेकिन देर होती जा रही थी फिर भी, कोई, न तो आया ही और न दिखायी ही दिया। मजदूर बस्ती असल में सामने के मैदान तथा पोखर के पार थी। न इधर बिजली थी और न पक्की सड़क। वे बस्ती जाने वाले कच्चे रास्ते पर निकल आये। मैदान में खूब ठण्ड थी। तारों का काला आकाश आज निरभ्र था इसलिए बहुत ऊँचा लग रहा था। मजदूर बस्ती की झोपड़ियों से कभी-कभी किसी चूल्हे की आग की लपक दिख जाती। इस पोखर में मिल का गन्दा पानी सड़ाँध मार रहा था। सिवाय शंटिंग करते इंजिन की आवाज तथा मजदूर बस्ती में कभी किसी के जोर से पुकारने के और कोई शब्द नहीं था। मिल के पानी की सड़ाँध रात में इस समय खूब जोरों पर आ रही थी। वे बस्ती में घुस ही रहे थे कि तभी सिरे वाली झोपड़ी से एक औरत चीखती हुई बाहर निकली और उसके पीछे-पीछे उतनी ही तेजी से गालियाँ बकता एक आदमी निकला। उसने झपट कर औरत को वहीं गिरा लिया और उसे मारना शुरू किया। आस पास की झोपड़ियों ने जैसे अपने मुँह खोल दिये हों और आदमी-औरतें जमा होने लगे। दो एक लालटेनें भी थीं। लोग पिटती पत्नी और पीटते पति को मात्र दर्शक भाव से देख रहे थे। आदमी औरत की छाती पर बैठा उसका गला दाब रहा था और गालियाँ बक रहा था। दो एक मजदूरों ने श्रीधर बाबू को पहचाना और फुसफुसाया। श्रीधर बाबू को यहाँ सभी 'गुरु जी' कहकर पुकारते थे। मजदूरों ने घेरा ढीला कर दिया और 'गुरु जी' को दृश्य देखने दिया।—अरे, यह तो रघुनाथ है।

—क्यों रघुनाथ! क्या बात है रे?

रघुनाथ ने जो इस समय ताड़ी के नशे में चूर लग रहा था टोकने वाले की ओर एक बार लाल-लाल आँखें उठायीं और हल्के से घूरा और बिसूरती हुई औरत का टेंटुआ पूरे जोर से दाबा तो वह चीख उठी। रघुनाथ ने श्रीधर बाबू की ओर उसी तरह देखा और हँसते हुए बोला

—गुरु जी! यह मेरी औरत है इसलिए मार रहा हूँ।

—शराब पीकर घरवाली पर हाथ उठाते शरम नहीं आती?

—इसे छिनाला करते शरम नहीं आती तो मुझे इसे मारने में क्यों शरम आएगी ?
—छोड़ो उसे ।
—आज मैं इसको नहीं छोड़ सकता गुरु जी ! आज मैंने इसको इसके यार के साथ देख लिया है । आज मैं मजदूर हो गया हूँ तो क्या हुआ अपने गाँव का मैं पहलवान हूँ समझे ? य साली पहलवान की बीवी होकर उस बाइंग सेक्शन के बाबू से फँसेगी ? खून पी जाऊँगा इसका । यह समझती क्या है ?
और रघुनाथ ने उसी झोंक में अपनी घरवाली को एक चाँटा जड़ दिया । उसकी घरवाली ने अब सिसकना भी छोड़ दिया था । वह इस समय एकदम काठ हो गयी थी । गुरु जी की उपस्थिति का फायदा उठाकर दो-एक दूसरे मजदूर आगे बढ़कर रघुनाथ को पकड़ कर घरवाली की छाती पर से उठाने में लगे थे और रघुनाथ जोरों से उन मजदूरों को ही गालियाँ देता जा रहा था । श्रीधर बाबू को लगा कि इस घटना को कोई भी गंभीरता से नहीं ले रहा था जब कि उन्हें अजीब ग्लानि वितृष्णा हो रही थी । विपिन बाबू की बातें याद आ रही थीं कि—श्रीधर ! जीवन के प्रत्येक स्तर पर केवल दुख ही दुख है । सारे दुख एक से होते हैं । उनकी किस्में अलग-अलग हो सकती हैं लेकिन दुख तो एक जैसे ही होते हैं क्योंकि उसकी पहचान ही एक है और वह यह कि वह आपको दुख देता है चाहे आप मठ हों मरघट हों स्वस्थ हों रोगी हों नर हों नारी हों—और तो और श्रीधर ! आप मरा भी हो जाए तो भी इस दुख से मुक्त नहीं हो सकते । सबसे बड़ा सुख भी दुख हो सकता है लेकिन छोटे से छोटा दुख भी सुख नहीं बन सकता । श्रीधर ! बुद्ध ने जिन आठ दुखों को गिनाया था न उनकी अब अनेक सन्तानें हो गयी हैं । हालाँकि विपिन बाबू इस बात के बाद भी हँस दिये थे । लेकिन सच तो यह है कि कभी यह पता ही नहीं चलता कि कब कौन सी बात विपिन ने एक दम ही गंभीर हो कर कही है और कब यों ही । वह हमेशा अपनी गहरी सी गहरी गहराई को भी इतने सादे से प्रस्तुत करते कि लगता कि अरे, बस घुटनों-घुटनों ही जल है ?

रात्रि पाठशाला का सारा भार विपिन ने रामसिंह को दिया था । रामसिंह स्पिनिंग सेक्शन में काम करता था । वह अपेक्षाकृत थोड़ा पढ़ा था । रामसिंह को तब तक एक मजदूर आकर बुला लाया कि गुरु जी आये हैं । आते ही रामसिंह ने बताया कि आज मिल की छुट्टी होने पर जब मजदूर बस्ती लौट रहे थे तो रेल की पटरियाँ पार करते हुए मातादीन शंटिंग करते हुए इंजिन की चपेट में आ गया और कट गया । आज बस्ती में इसीलिए उदासी है । मातादीन की-

औरत तो जैसे पागल हो उठी है। आपको खबर देने एक लड़के को भेजा तो था कि आज पढ़ाई नहीं होगी लेकिन आप से पुस्तकालय में भी मुलाकात नहीं हो पायी।

जिस समय रामसिंह के साथ श्रीधर बाबू मातादीन के घर पहुँचे उसकी विधवा अपने एक मात्र गोद वाले बच्चे को गोद में लिए पथरायी आँखों से अँधेरा घूरती सूने घर में पागलों सी बैठी थी। उसके कपड़े अस्तव्यस्त थे। तीन चार लालटेनों तथा इतने आदमियों की भीड़ देखकर आसपास की झोपड़ियों से लोग निकल आये। वे समझे जाँच-पड़ताल के लिए पुलिस आयी है। एक औरत ने लपक कर मातादीन की विधवा के कपड़े ठीक किये लेकिन वह जैसे कुछ नहीं देख रही थी। देवीसिंह ने हाथ की लालटेन विधवा रामकली के सामने रखी और घुटनों पर बैठते हुए उससे बोला

—रामकली! देख गुरु जी आये हैं। अब उठ इस तरह से कितने दिन चलेगा?

रामकली थोड़ी देर तक तो निर्विकार बनी रही और फिर उसने घूर कर पहले देवीसिंह को देखा और फिर गुरु जी को देखने के लिए उसने गर्दन तथा आँखें ऊँचे उठायीं।

श्रीधर बाबू ने बड़ी हिम्मत कर उससे कहा

—रामकली दुख-सुख तो आते ही हैं लेकिन उनको सहना ही होता है।

इसके आगे वे क्या बोलें? कुछ समझ नहीं पा रहे थे। साथ ही उन्हें लगा कि रामकली जैसे उन्हें देख ही नहीं रही बल्कि जैसे वह मजबूत मुट्ठियों में दाढ़ चाकू पकड़े उन्हें ऊपर से नीचे उधेड़ रही है। वे सहम गये। एक मात्र कोट से जितनी ठंड वे नहीं बचा पा रहे थे वह माघ की सारी ठंड उनकी नसों में गर्दन के पास मांस में पीठ के पास रीढ़ में जैसे काटे जा रही है। वे और भी कुछ कहने ही वाले थे कि रामकली सहसा चीत्कारी और धाड़ें मार कर रो पड़ी। तभी वह बिजली की तेजी से उठी बच्चा सीने से लगाये भीड़ को अदम्य शक्ति के साथ ठेलती हुई झोपड़ियों के सामने फैली हुई रेल की पटरियों की तरफ भागी। उपस्थित एक क्षण तो कुछ भी नहीं समझ पाये लेकिन तभी कुछ लोग रामकली को पकड़ने के लिए दौड़े। अजमेर से आने वाली गाड़ी एकदम धड़धड़ाती आ रही थी। इंजिन बड़ी तेज लाइट के साथ-साथ तेज सीटी भी दे रहा था। लोगों ने उस तेज रोशनी में देखा कि रामकली के बाल खुल आये हैं जैसे वह ऊपर आँखें बन्द किये ताक रही है। सीने से बच्चे को दोनों हाथों से सटाये इंजिन के द्वारा रौंद जाने की अन्तिम प्रतीक्षा में खड़ी है। लोग लपके भी लेकिन तभी इंजिन रामकली और उसके बच्चे के ऊपर से होकर धीमे होने की धुन्ध में गुजर गया।

रात काफी देर से वापस घर लौटे। खाने को मन ही नहीं किया इसलिए वे ढाबे की ओर गये ही नहीं। आज पूरे रास्ते भर और अब बिस्तरे पर लेटे थे तब भी सरो की याद आती रही। बार-बार वे करवटें बदलते लेकिन इंजिन के प्रकाश में फैली हुई रेल-पटरियाँ चमचमाती दिखतीं और उन्हें लगता कि ठीक ऐसे ही रामकली के स्थान पर सरो देवव्रत को सीने से सटाये धड़धड़ाते आते इंजिन के सामने खड़ी है। जाने कितनी बार वे करवट बदलते और उतनी ही बार इंजिन सरो और देवव्रत को वैसे ही कुचल जाता। हर बार वे दिमाग में सोचे उस वाक्य में नाम भी और जोड़ देते जिसमें किये अपनी इस धारणा का निराधार होने का कारण प्रस्तुत करते। अगर केवल भैया भाभी ही होते तो सरो ऐसा कर सकती थी और भला वे ही तब सरो और बच्चों को ऐसे कैसे छोड़ जा सकते थे?—माँ और बापू कभी भी सरो को ऐसा नहीं करने देंगे।—लेकिन क्या रामसिंह ने दूसरों ने तथा स्वयं उन्होंने यह चेष्टा नहीं की थी कि रामकली ऐसा न करे? लेकिन उसने सब की उपस्थिति में भी कर ही तो लिया। निराशा में कोई भी कुछ कर सकता है।—और यही सब सोचते हुए घबराते

रात बिताने का प्रयास कर रहे थे। क्योंकि अपना ही वाक्य कि—मान लो सरो ने ऐसा कर लिया हो तो?   तो?   तब क्या होगा? वे कैसे जान पाएँगे?

इस बीच कब आँख झपक गयी पता ही नहीं चला। लेकिन जब नींद टूटी तो खिड़की के शीशों से जाड़ों की सवेरे की गुनगुनी धूप उनके कम्बल पर गिर रही थी। रात भर के अकड़ाये अंगों को धूप बड़ी मीठी लग रही थी। नीचे श्रीमती एलची का नल बड़े जोरों पर खुला हुआ था। उनकी महरी रगड़-रगड़ कर बर्तन बजाती माँज रही थी। वातावरण में आमलेट की गंध भरी थी। पहली बार इस बड़ा मितलाने वाली अजीब गंध के बारे में जब जिनन बाबू से पूछा था तो बिल्कुल शैतान बच्चे की तरह मुर्गे की बाँगी बोलकर हाथ से अंडा बनाकर बताया था। खिड़की की राह नदी, बाँध और काटेज इस समय बड़े सुहाने लग रहे थे। जीवन में सम्भवतः पहली बार श्रीधर बाबू सूर्योदय के बाद जागे थे। और किसी दिन यदि ऐसा हो गया होता तो मन आत्मग्लानि से भर उठता था, प्रायश्चित्त में कम से कम गायत्री-मन्त्र की पाँच मालाएँ और फेरी जातीं तथा दिन भर निर्जल ही रहा जाता। उन्होंने अपने को इतने वर्षों में 'नियमों के लिए' बना लिया था। लेकिन आज धूप भरी खिड़की की चौखट पर तकिया रख कर कुहनी टिका अशोक की सिंदूरी पत्तियों से भीगा प्रसन्न आकाश देखना बड़ा सुहा रहा था। पीतल वर्णी धूप, फिरोजी आकाश, धवलवर्णी मेघ तथा नाना रंगी काँपती नदी-लहरों को ये जैसे स्वयं को सम्पूर्ण मन से समर्पित कर रहे थे। लगा कि यहाँ इस समय सरो होती तो इस छत पर एक तार बंधा होता जिस पर सबेरे धोयी गयी सरो की साड़ी सूखती होती। वे सहसा कल्पना करने लगे कि हँसी से भरा स्वस्थ बारबार बोलता हुआ सरोमुख इस छत की धूप में कैसा लगता? इस समय सुख बड़ी और सुशीला अपने स्कूल जाने की तैयारी का शोर करती होंगी। मान लो इस खिड़की में ठीक सामने मेरी ही तरह सरो भी कुहनी पर मुँह टिकाये आकाश ताकती तो हम लोग कहाँ तक आकाश में देख पाते?—और वे मंत्रमुग्ध दूर दूर का आकाश ताक रहे थे। सामने छत की मुँडेर पर बिल्ली धूप में फूली हुई पड़ी सिकोड़ रसमसा रही थी। मनीप्लांट की डालियों में गिलहरियाँ चीं-चीं बोलते हुए शैतानी कर रही थीं। कभी कभी बिल्ली मिमाकर गिलहरियों की शैतानी को अर्धनिमीलित दृष्टि से देख लेती और अगले पंजों पर सिर रख धूप-स्नान में आँखें बन्द कर लेती।

न कहीं अवचेतन में रामरतनी वाली दुर्घटना बराबर दुहरा रहे थे लेकिन

वे वेतनस्तर पर उस बारे में तब तक नहीं सोचना चाह रहे थे जब तक कि विशन बाबू न आ जाएँ। भूख पेट में हल्की सुरसुरी पड़ रही थी। वे सबेरे घूमने न जा सके तो इसका मतलब यह तो नहीं कि आगे के सारे काम यथावत न किये जाएँ। लेकिन आज वह अपने ही विरुद्ध काम करने को मन कर रहा था। उन्हें पुस्तके साहब ने बुलवाया है शाम को लेकिन वे किसी भी पुस्तके साहब या दाणाव साहब कोई हों किसी के भी यहाँ नहीं जाएँगे। आज वे बस इस धूप भरे आकाश अवकाश में इतना चल कहा न जाने वाली दर्पणी नदी चमचमाती हुई जिसकी फुदकती गिलहरियाँ का कम से कम दस बजे तक देखेंगे—लेकिन भूख भी तो लग रही है।

वे चाहते जरूर थे कि ऐसा करें कि भरी धूप में बैठे हुए आज के दिन को रविवार मना डालें लेकिन तीसरे पहर तक किताबें पढ़ते रहने के बाद उठे और बिल्कुल ही इच्छा न होते हुए भी पुस्तके साहब के घर की ओर चले पड़े। वे दिन भर जिस तरह से आचरण करते रहे उससे स्वयं को ही आश्चर्य होने लगता। इसीलिए वे कभी-कभी स्वयं को छू देखते कि कहीं अपने को छोड़ तो नहीं आये हैं या स्वयं तो कहीं नहीं छूट गये हैं ?

एक जगह गन्ना पेरा जा रहा था। वे गन्ने का रस पी रहे थे। सामने नदी के उस पार 'जूनी-इन्दौर' के पुराने ढंग के लकड़ी के नक्काशीदार मकान दुमंजिले तिमंजिले खड़े हुए थे। पहाड़ी पर बसा यह पुराना इन्दौर अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी के युग की याद दिलाता है जब कि इतिहास आक्रमणकारियों और लुटेरों की तलवारों की नोकें लिखती थीं। नदी के पुल के ठीक सामने उस पार हरसिद्धि का मन्दिर लकड़ी की मेहराबों में धूप खा रहा था। इमलियों के गझिन कद्दावर पेड़ असंपृक्त से शारदीय नीलाकाश में अपना मटमैला हरापन बिखराये ऊँघ रहे थे। गरीब मराठी तथा दक्खिनी महिलाएँ नदी के घाट पर कपड़े धो रही थीं या किसी 'कुँडी' (कुँआ) की जगत पर खड़ी घड़े के गले में रस्सी बाँध रेंहट से पानी खींचने में लगी थीं। दाहिने हाथ दूरी पर कृष्णपुरे का पुल तना हुआ था जिस पर कभी-कभार कोई मोटर भी गुजर जाती लेकिन अधिकतर या तो

घोड़े तांगे या फिर बग्घियाँ ही ज़्यादा निकलती होतीं। वैसे अब बीसवीं सदी के दूसरे दशक में पालकियों की प्रथा दैनिक व्यवहार में काफी कम हो चली थी। पहले तो पुरुष भी पालकियों पर चढ़कर ही सारा काम-काज किया करते थे। श्रीमन्त वर्ग शिविकाओं पर चढ़ता था। लेकिन अब या तो बड़े-बड़े पंडितों पुजारियों कथावाचकों या पूजा-अपर्णों के पुरुषों में और कोई पालकी या शिविका नहीं चढ़ता है। श्रीमन्त वर्ग घोड़ों बग्घियों और मोटर-तांगों की ओर मुड़ता जा रहा है। हाँ बड़े घरानों की नारियाँ अभी भी पालकी या शिविका ही चढ़ती हैं। चाहे किसी के यहाँ से आ रही हों या पूजन-व्रत समापन करने जा रही हों नारियों का एकमात्र वाहन यही है। छोटे घरों की स्त्रियाँ 'छेड़ा' (घूँघट) निकाले पैदल ही कहीं भी आती-जाती हैं। मारवाड़ियों में पालकी या शिविका का प्रचलन नहीं है। बहुत हुआ तो 'सेठानी जी' बग्घी में पँचरंगी चूनर का 'छेड़ा' एक आँख के पास दो अंगुलियों से थाम आगे पीछे खड़े नौकरों से घिरी निकल जाती रही हैं। इस समय भी पुल पर तीन चार पालकियाँ कहार दुलकी में लिये चले जा रहे थे। जूनी-इन्दौर से नया-इन्दौर के इस पुराने पुल पर अधिकांश दक्षिणी लोगों का पूनेशाही पगड़ियाँ चमकाते तांता बँधा हुआ था।

उस बार श्रीधर बाबू पुस्तके साहब के घर गये थे लेकिन कुछ भी याद नहीं था कि किस रास्ते से गये थे लेकिन आज वे इस शारदीय अपराह्न में सारा दृश्य अपनी आँखों में भरे चले जा रहे थे। आज वे मन से भी आश्वस्त थे इसीलिए निश्चिन्त थे। पुस्तके साहब की दालान में वैसी ही जाजम बिछी थी और उस दिन की भाँति आज भी माधवराव मुवक्किलों से घिरा हुआ था। जीना चढ़कर जैसे ही श्रीधर बाबू बरामदे में पहुँचे माधवराव ने एक बार सिर ऊँचा कर चश्मे के पीछे अपनी काली टोपी ऊँची करते हुए देखा और अत्यन्त अविचल ढंग से कोने में रखी कुर्सी पर बैठने को कहा नहीं बल्कि इशारा किया। जिसका स्पष्ट मन्तव्य था कि फुरसत मिलने पर 'साहब' को सूचना कर दी जाएगी कि — आये हैं और तब जैसा होगा वैसा किया जाएगा। अन्दर जाने वाले दरवाज़े पर एक चिक पड़ी हुई थी। जिसके पीछे से औरतों-बच्चों का कोलाहल धीमा मराठी में आ रहा था। रह-रहकर कभी किसी तोते की चिल्लाहट भी सुनायी पड़ जाती। वातावरण में खाने की भी गंध थी। लग रहा था इस घर में बड़े सांगोपांग तरीक

से सम्भ्रान्त हो रही थी। मकान जहाँ तथा जिस ढंग से था उससे लग रहा था कि पुस्तक साहब पुश्तैनी श्रीमन्त हैं। मकान के चारों ओर काफी खुली जगह थी जिसमें छोटा-मोटा बगीचा लगा हुआ था। एक दम पीछे सिरे पर, जो संभवतः पिछवाड़ा होगा केले का एक झुण्ड खड़ा हुआ था। शायद उसी तरफ सईसखाना भी होगा क्योंकि हवा में लीद की हल्की बू भी आ रही थी। श्रीधर बाबू ने अपनी कुर्सी के हत्थे पर और भी झुक कर देखा रस्सियों के सहारे नीचे—अरे, गायें भी हैं? तभी माधवराव को बुलाने कोई मराठी नौकरानी आयी। एकदम उछलते हुए ढंग पर माधवराव चिक उठाये खड़ी मराठिन की ओर बढ़े तथा चिक की आर वह नौकरानी के साथ गायब हो गये।

दियाबत्ती की बेला हो चली थी। नीचे बगीचे के मैदान में वही मराठी नौकरानी हण्डेवाली लालटेनों से लेकर छोटी-छोटी चिमनियों तक का बड़े ही विषद रूप से फैलाये कालिख पोंछ रही थी तेल भर रही थी। दो एक बच्चे केले के झुण्ड के पास खड़े फूल तोड़ने में लगे थे। उन्होंने देखा कि बरामदे में सिर पर हाथ धरे कुछ मुवक्किल थके-मारे बैठे थे। कुछ धीरे-धीरे बतिया रहे थे। तभी चिक के अन्दर से कोई महिला 'माधवराव' 'माधवराव' कह कहकर माधवराव को डाँट रही थी। श्रीधर बाबू को सारा वातावरण तो अच्छा लग रहा था कि कितना शान्त है, साफ-सुथरा भी है लेकिन जाने क्यों इसके ठीक विपरीत यहाँ के लोग लग रहे थे। तभी माधवराव चिक उठाकर बाहर आये। एक मुवक्किल से बोले

—रामनाथ! फीस के बाकी के रुपये अभी ही देने होंगे।

—लेकिन बड़े बाबू! इस बार जुआर की फसल आने दो पाई-पाई दे दूँगा।

—वो तो ठीक है, लेकिन वकील साहेब तो पूरी फीस मिल जाने पर ही अब पैरवी करेंगे।—हाँ साहेब आपको भीतर बुलाया है।

वाक्य का अन्तिम अंश बड़े ही चलताऊ ढंग से श्रीधर बाबू से कहा गया था जैसे मुंडेर पर रखे किसी गमले से कुछ कहा गया हो। अभी वे इस पसोपेश में थे कि किस प्रकार अन्दर जाएँ तभी वही मराठी नौकरानी चिक उठाकर बोली

—तुमाला साहेब बोलावते।

और श्रीधर बाबू चल पड़े। घर काफी प्रशस्त तथा वैभवपूर्ण था। दालानों वाले तीन बड़े कमरे पार कर वह मराठिन उन्हें एक गलियारे से होकर ले चली। गलियारे में अंडाकार खिड़कियों में दो एक बच्चे खिड़की को बीच वाली रेलिंग के डण्डे पर ठोढ़ी टिकाये नवागन्तुक को ~   ~ थे।

लड़की ने लड़के से पूछा
—हू कोण आहे बाळ ?
और लड़का मुँह में भरी मिश्री के डले का जीभ की नोंक पर रखे जीभ निकाले देख रहा था। लड़का अपेक्षाकृत छोटा था। पता नहीं उस 'बाळ' ने पूछने वाली लड़की को क्या कहा। बरारिन एक खंभे के पास खड़ी थी। उसने आँखों से ऊपर की ओर संकेत करते हुए कहा
—वरती आहे।
और काला मंगलसूत्र पहने वह बरारिन बिना उत्तर या जिज्ञासा की प्रतीक्षा के चली गयी। गलियारा इस कोने के पास आकर लम्बी छत बन गया था। जहाँ कोने में एक अनार का बड़ा सा गाछ खड़ा था। अनार लगे हुए थे जिन्हें टिन के डिब्बों से रक्षित किया गया था। बायें हाथ एक बड़ा सा पक्का तुलसी-चबूतरा बना हुआ था। तुलसी की गंध भी आ रही थी। एक लता बाँये हाथ सामने के कमरे पर ऊपर चली गयी थी। श्रीधर बाबू जीना चढ़ने लगे। एक क्षण को इस अच्छे लगने वाले सम्पन्न घर से जाने क्यों उनके पैरों लौट जाने का मन हो आया।

एक बड़ी सी चौकी पर सफेद चाँदनी बिछी हुई थी और कई गाव तकिये रखे हुए थे। वे जिस समय कमरे में पहुँचे एक बड़ी सी हण्डे वाली लालटेन धीमी-धीमी जल रही थी। उन्हें आशा थी कि पुण्डलीक साहब कमरे में होंगे लेकिन कमरे में वे उस समय नहीं थे। कमरे की बाहर की दीवार में चार खिड़कियाँ उसी तरह की थीं जिस प्रकार की अभी गलियारे में लगी थीं। इसके बाद उन्हें लगा कि कमरे में इतना सारा सामान है कि वे कभी याद नहीं रख सकते। चारों खिड़कियों के ऊपर तीन बड़े तैलचित्र लगे हुए थे। बीच में होलकर महाराज का था तथा उसके दायें बायें पंचम जार्ज और रानी विक्टोरिया के तैलचित्र थे। बायें हाथ वाली दीवार में लोकमान्य तिलक का चित्र था तथा दाहिने हाथ वाली दीवार पर रानी अहिल्याबाई का। कुछ छोटे चित्र धार्मिक लीलाओं तथा गाथाओं के भी थे तथा रवि वर्मा के भी कुछ प्रसिद्ध चित्र थे। छत में सफेद चाँदनी तनी हुई थी तथा उसमें गुलाबी कागज के फूल तथा पीले के झब्बे और एक छोटा सा फानूस बीच में लटका हुआ था। घुसने वाले दरवाजे के ऊपर एक दीवाल घड़ी टिक्-टिक् कर रही थी। आलमारियों में किताबें थीं। चौकी पर एक तरफ लकड़ी का एक बक्सा था जिस पर पीतल का काम किया हुआ था। उसके पास ही कुछ कानूनी किताबें डायरी चश्मा तथा कलमदान और बापू की एक मूर्ति

काली पीतल की डिब्बी। एक पानदान भी स्टूल पर रखा हुआ था। फर्श पर बाहर दालान जैसी लाल जाजम यहाँ भी बिछी हुई थी। कमरे में अगरबत्ती की सुगन्ध आ रही थी। सम्भवतः पुस्तक साहब का यह अध्ययनकक्ष था। कमरे में दो एक कुरसियाँ भी थीं। वे दरवाजे के पास पड़ने वाली कुर्सी पर बैठने की अभी सोच ही रहे थे कि दीवार के पार बगल में खड़ाऊँ सुनायी दी। उधर की दिशा में ही उन्होंने देखा कि एक पर्दा गिरा हुआ है जो कि निश्चय ही उधर के कमरे में जाने के लिए होगा। तभी किसी भारी कण्ठ का मराठी में कुछ आदेश सुनायी दिया और उत्तर में पुस्तक साहब का नाम 'बड़र' सुनायी दिया और पुस्तके साहब कमरे में आये। श्रीधर बाबू उन्हें देख खड़े हो गये और उन्होंने अत्यन्त उपेक्षात्मक सौजन्यभाव से कहा
—बैठिए, बैठिए।
और आकर वे चौकी पर गाव तकिये के सहारे आसीन हुए। वे इस समय धोती कमीज पहने थे तथा कमीज पर काश्मीरी शाल ओढ़े हुए थे। इकहरे बदन का व्यक्ति व्यक्तित्वपूर्ण था। माथे पर त्रिपुण्ड था तथा चोटी के यहाँ बालों का घेरा छोड़कर शेष सिर मुण्डित ही था। आते ही उन्होंने एक डकार ली फिर पान बनाया गया तथा तम्बाकू फाँकी गयी। पहली पीक उगालदान में जब वे फेंक चुके तब चश्मा लगाकर कानून की एक किताब में से कुछ खोजते हुए पढ़ा गया। इस बीच श्रीधर बाबू को बड़ी ही उलझन होने लगी थी कि वे क्या इसी तरह बैठने के लिए बुलवाये गये हैं? क्योंकि प्रवेश करने के बाद डकारने से लेकर पढ़ने तक कहीं यह नहीं लग रहा था कि इस कमरे में कोई और भी बैठा हुआ वह व्यक्ति है जिसे मिलने के लिए बुलवाया गया है। अगत्या किताब बन्द कर चश्मा रखते हुए वे बोले
—तो आजकल आप क्या कर रहे हैं?
—कुछ खास तो नहीं।
उत्तर सुनकर पुस्तक साहब ने एक क्षण को उन्हें घूरा जिसका स्पष्ट अर्थ था कि क्या मुझे इस तरह का उत्तर दिया जाना चाहिए?
—हूँ।।
और इस लम्बे 'हूँ' के बाद वे गाव तकिये पर नीचे खिसक आये और दोनों हथेलियों को सिर के ऊपर ले जाकर मूँदते हुए बोले
—आपको कहीं काम-काज मिल गया?
—जी अभी नहीं।
इस उत्तर पर वे काफी देर तक चुप बने मुँह का पान घुमाते रहे।

—मुझ से कहा था ... शायद बिशन बाबू ने ही कि आपको कोई काम-काज चाहिए।

—जी।

—अब भाई आप तो जानते ही हैं कि हम-सबका तो पूरा जन-सेवा काम है।

—जी हाँ यह तो है।

—आपने किसी स्कूल में काम खोजा?

—जी। कहीं जगह नहीं है।

—यही तो है। तुम्हारे हिन्दी स्कूलों में यही गड़बड़ी है। अभी तुम लोगों में शिक्षा का प्रसार नहीं है। अब अगर आप महाराष्ट्रीय होते तो किसी शाला में जरूर हो जाता। हाँ किसी में यहाँ न हो पेट-वा-भरने के लिए अर्जीनवीसी ही कर लो। 'खादी भण्डार' में जरूरत तो थी एक आदमी की। पता नहीं क्या हुआ उसका। एक आदमी आया तो था। पता लगाना। असल में मैं तो इन मुकदमों और रियासती परिषद के काम-काज से ही फुरसत नहीं पाता हूँ।

—जी हाँ।

—कहाँ रह रहे हैं?

—बिशन बाबू के यहाँ।

—हाँ ये बिशन बाबू तो कहीं गये हुए हैं न?

—जी हाँ।

—ये बिशन बाबू भी खूब हैं। कभी यहाँ कभी वहाँ। कोई भी काम जम कर नहीं करते। अच्छा कोई काम हो तो बताऊँगा। अभी तो मुझे लालबाग श्रीमन्त सरकार से मिलने जाना है।

—अच्छा।

और श्रीधर बाबू बिना कुछ खास समझे उठ खड़े हुए। उन्होंने देखा कि बड़े ही निर्विकार हो पुस्तके साहब तत्काल फिर कानूनी किताब देखने में लग गये। चलते हुए श्रीधर बाबू ने नमस्कार किया तो उन्हें किताब पढ़ते पुस्तके साहब का स्वर पीठ पर सुनायी दिया

—कभी-कभी मिलते रहिए।

पूरे इन्दौर के अँधेरे रास्तों पर म्यूनिसिपाल्टी की टिमटिमाती लालटेनें और भी अँधेरा कर रही थीं। जब वे उसी पुल पर पहुँचे तब वहाँ लोगों की आवाजें सुनायी दीं। वहाँ तो इस चन्द्रभागा मुहल्ले में जैसे आपाधापी हो गयी थी।

जिस समय श्रीधर बाबू खाने पर लौटे तो बड़ा आश्चर्य हुआ। विमलबाबू लौट आये थे। वे कम्बल ताने सो रहे थे। उन्हें जगाना ठीक नहीं समझा। बहुत सावधानी से कपड़े बदल हाथ-मुँह धोकर श्रीधर बाबू बिस्तरे पर स्वस्थ हो किताब पढ़ने लगे। पड़ोस के इसाई घरों से पियानो और जोर जोर से गाने की आवाजें आ रही थीं। तभी सहसा हँसते हुए कम्बल से मुँह निकालते विमल बाबू बोले

—वाह हजरत बिना मुझे जगाये आप चुपचाप सो जाने वाले थे ?

—और नहीं तो क्या सोते को जगाता ?

—लेकिन भले आदमी यहाँ सो कौन रहा था ?

—कम्बल ओढ़े आप जागते हैं यह मुझे कैसे मालूम ?

—बड़े बेमुरौवत आदमी हो यार ! खैर।

—तो आप बराबर जाग ही रहे थे ?

—नहीं तो बराबर नहीं जाग रहा था अलबत्ता जाग रहा था।

और दोनों अट्टहास कर उठे।

—तो कब आये विपिन ?

—यही शाम वाली गाड़ी से ।

—नागपुर से ?

—नहीं तो, बम्बई गया था ।

—लेकिन तुम तो नागपुर कह रहे थे ।

—हाँ..., मैंने यही कहा था और यही कहता हूँ हमें और तुम्हें दोनों को ।

—क्या मतलब ?

—किस बात का मतलब ? नागपुर का या इस झूठ का ?

—इस झूठ का ।

—यही कि सच बताना अभी खतरे से खाली नहीं है । और भाई इस समय तो फिलहाल खाना मिल नहीं सकता कहीं। साथ में कुछ है वही खाना चाहूँगा बशर्ते कि भी श्रीधर ठाकुर उठकर ला दें वरना। नाहक तो मुझे उठना होगा।

विपिन बाबू ने कुछ इस नाटकीयता के साथ यह सब कहा कि श्रीधर बाबू उठे और चीजें ले आये। लाख मना करने पर भी श्रीधर बाबू को कुछ खाना पड़ा

—श्रीधर ! यार, इस समय चलकर रेलवे स्टेशन पर चाय पीनी चाहिए ।

—काफी रात हो गयी है ।

—रही-सही बाकी का रात भी क्यों न हो जाए, हम तो साहब इस समय चाय जरूर ही पियेंगे ।

श्रीधर काफी कुछ थके थे लेकिन अस्वीकार न कर सके यद्यपि इतनी रात में उन्हें चाय नहीं पीनी थी और यह बात विपिन बाबू भी जानते थे ।
छावनी के सभी तांगेवाले विपिन बाबू को बहुत अच्छी तरह से जानते थे । चौराहे से एक तांगा लिया और स्टेशन पहुँचे । अमृतसर जाने वाली गाड़ी तैयार खड़ी थी। प्लेटफार्म पर खासी रौनक थी। आधी रात शुरू हो चुकी थी बल्कि हो ही रही थी। घड़ी में ११–२० हो रहा था। कुहरे में प्लेटफार्म की बत्तियाँ मन्द लग रही थीं। हवा रोज की अपेक्षा किंचित तेज थी। चाय पीते हुए श्रीधर बाबू बोले

—आप भी कमाल के आदमी हैं साहब !

—*एक तो आपको जबरन चाय पिला रहा हूँ उस पर आप मुझे गालियाँ दें ।* अपना अपना भाग्य ।

—अभी बम्बई से चलकर आ रहे हैं और जरा भी आराम किये बिना स्टेशन तक चाय पीने इतनी रात में आना

—श्रीधर बाबू ! अपने जीवन में और तो कुछ साथ करने को रहता नहीं । कुछ

हम जैसी ही दो चार बातें होंगी जो जेल की अँधेरी कोठरियों में बैठकर सोचते हुए चैन से कट जाएगी वर्ना साहब मुश्किल है ।

विपिन बाबू सहसा गंभीर हो गये । कुहरे और तेज हवा में दूर-दूर का दृश्य डूबा हुआ उड़ रहा था । सवारियाँ सब बैठ चुकी थीं । गार्ड बारबार सीटी दे रहा था तथा हरी बत्ती झुला रहा था । पता नहीं इंजिन ड्राइवर लोग हमेशा क्यों ऐसा ही करते हैं । अब शायद ड्राइवर ने भी देखा और इंजिन बड़े जोर से चीखा । पोर्टर और कुली दूर खड़े थे । इतनी रात में खिड़कियों के पास विदा देने वाले गिनती के ही थे । सामने नीले कुहरे में छप अँधेरे में ट्रेन पीछे की लाल बत्ती चमकाती काँपती चली गयी । सिगनल उठे और फिर गिरे । लाइनें खट्-खटाक उठीं और फिर मिलीं । लोगों के हाथ विदा में हिलते-हिलते झूल आये और ट्रेन की दिशा में बढ़ते पैर निकास-द्वार की ओर बढ़े । यह तमाशा बड़ी जल्दी समाप्त हो गया । स्टेशन मास्टर ने घंटी खटका कर आगे-पीछे के स्टेशनों पर सूचना कर कल सवेरे तक की छुट्टी की गहरी साँस ली । यह आज की अंतिम गाड़ी थी । दूर पर माल के डिब्बे खटाँग्-खटाँग् करते इस पटरी से उस पटरी पर आ-जा रहे थे । ट्रेन जाने के बाद प्लेटफार्म जैसे और सूना हो आया था । ठिठुरता हुआ कोई कुत्ता बेंचों और दीवारों के पास जगह खोजता घूम रहा था । चायवाला हम लोगों को घूरने लगा था क्योंकि वह भी अब घर जाने के लिए उत्सुक था ।

—क्यों भाई कप चाहिए न ?

—हाँ साब !

और शेष सारी चाय का एक घूँट बनाते हुए कप खतम किया और वे उठ खड़े हुए ।

—क्या बहुत थके हो मीतर ?

—नहीं तो ।

—सुनसान रातों में ठंड खाते घूमते रहना और घूम-घूमकर शहर भर की चाय की दुकानों पर चाय पीते रहना मुझे संसार की सबसे बड़ी नियामत लगती रही है ।

—तो क्या अब फिर चाय पीने का इरादा है ?

—क्यों घबरा गये ?

और स्टेशन के सामने वाले मैदान में विपिन बाबू का अट्टहास कुहरे पर उड़ता लगा ।

—चाय नहीं पिएँगे मीतर ! बस इस तेज ठंडी हवा में नाक ठंडाते घूमेंगे चलो ।

मठ की बन्द गुमटियों को अब वे लोग पीछे छोड़ आये थे। पता नहीं कौन सी तिथि थी लेकिन चन्द्रमा उगने की तैयारी आकाश में लग रही थी। असल सवेरे चल पड़ने वाले ट्रक माल से भरे जा चुके थे। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे। अब वे बम्बई-आगरा सड़क पर निकल आये। माल लादे बैलगाड़ियाँ जा रही थीं। गाड़ीवान ओढ़े-दुबके पड़े थे और बैल गलघंटियाँ बजाते रास्ते-रास्ते चले जा रहे थे। पथ बहुत सुनसान थी। इधर बँगले भी बड़े अन्दर की तरफ बने हुए थे।

—क्यों श्रीधर! कभी जाड़ों का कुहरा लिपटा चन्द्रोदय देखा है?

—नहीं।

—पता नहीं किस देहात से आ रहे हो तुम।

—क्यों?

को लगा यह व्यक्ति अन्दर से किसी बात की प्रतीक्षा उत्कंठा में है। यह भी कितना निर्मल है निरभ्र है जैसे इस समय का दक्षिण का यह मैला नीला आकाश का कोना जहाँ केवल दो तारे अपने एकान्त प्रकाश में कहीं किसी अन्तरिक्ष के अक्षांश पर सूर्य को देख रहे होंगे। बोले

—विराग बाबू! आपकी बात सुनकर मुझे इन्दु दीदी की याद आ गयी।

—श्रीधर! जानते हो मैं बम्बई क्यों गया था?

—नहीं।

—असल में पुस्तके साहब की सबसे छोटी लड़की कमल बम्बई में है। वहाँ उसके मामा रहते हैं। वह वहीं पढ़ती है और जे॰ जे॰ स्कूल में चित्रकारी भी सीखती है।

—तो इस सबसे आपको क्या मतलब? क्या पुस्तके साहब ने भेजा था?

—नहीं तो।

—तभी तो। मैं तो आज ही मिला था। उन्हें तो तुम्हारे जाने के बारे में भी ठीक से नहीं मालूम था।

—आज तुम गये थे?

—हाँ मुझे बुलवाया था।

और श्रीधर ने पुस्तके साहब से हुई सारी बात बता दी तथा यह भी कि मजदूर बस्ती में क्या हुआ। विराग बाबू गंभीर होकर सुन रहे थे। नींद के मारे दोनों की आँखें झपकी पड़ रही थीं। इतनी देर बैठे रहने से बैठने की जगह गरम लग रही थी। पैर चलने का नाम ही नहीं ले रहे थे। पर जैसे बहुत दूर लग रहा था यद्यपि मुश्किल से आधा मील होगा।

—श्रीधर! चलोगे नहीं अब?

—जैसी इच्छा।

—तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है क्या?

—नहीं मैंने सोचा कि जब चलना होगा तब तुम स्वतः ही कहोगे कि अब चला जाए।

—चलो अब। किसी दूसरे दिन तुम्हारी दीदी की गाथा सुननी ही होगी।

—सुननी ही होगी भला ऐसा क्यों?

—*दीदियाँ हमेशा अपने भाइयों को ऐसा ही बना जाती हैं।*

—कैसा बना जाती हैं?

—अपने जैसा   निरीह। जैसा कि श्रीधर है।

और वे अपनी हँसी में हँस उठे। रास्ते में लगभग वे लोग चुप ही रहे। दरवाजे पर पहुँचे ही होंगे कि विद्यन बोले

—वो तुम्हारी दीदी

बात काटते हुए श्रीधर बाबू इस डर से बोले कि कहीं विद्यन बाबू कुछ ऐसा-वैसा इन्दु दीदी के बारे में न कह जाएँ,

—विद्यन ! असल में वे मेरी सगी दीदी नहीं थी बल्कि

—सगी तो श्रीधर ! ऐसी दीदियाँ ही जीवन भर सालती हैं।

—क्या मतलब ?

—यही कि ऐसी दीदियाँ हमारे अनजाने में ही एक ऐसे अभाव की पूर्ति कर जाती हैं कि फिर वैसा कुछ जब नहीं होता नहीं मिलता तो वे दीदियाँ घिरती हैं हमारी स्मृतियों के आकाश में।

जिस समय वे साथ सोये देह और मन दोनों एकदम ही थके थे।

आज पन्द्रह दिनों से राजनीतिक जीवन में काफी हलचल आ गयी है। विधान बाबू सवेरे छह बजे निकल जाते हैं और आगामी सत्याग्रह की तैयारी के लिए स्वयंसेवक चन्दा प्रभात फेरियों-सभाओं आदि के प्रबन्ध में लगे रहते हैं। धीवर बाबू भी आज कल प्रचारमंडल के कार्यालय की देखभाल करने लगे हैं।

लोग चन्दा देने को तैयार हो जाते हैं सभाओं में आने को तैयार रहते हैं लेकिन स्वयंसेवक बनने को न तो व्यापारी वर्ग ही और न नौकर वर्ग ही कोई तैयार नहीं होता। लेकिन इसके विपरीत विद्यार्थियों तथा महिलाओं में इस बारे में काफी उत्साह है। दिन-दिन भर स्कूलों घरों की महिलाओं को अधिक उकसाया जाता है। कई बार तो सिवाय रात को घर पर मिलने के दोनों की एक दूसरे से भेंट ही नहीं हो पाती। दोनों इतने थके होते कि आपस में यह पूछने की भी ताब न रहती कि किसी ने खाया कि नहीं। जब कि प्रायः दोनों ने ही खाया नहीं होता। दोनों एक दूसरे के उतरे मुँह से समझ जाते कि इसने भी नहीं खाया है। थोड़ी देर तक दोनों ही अबोले चुप पड़े रहकर सोने का बहाना किये पड़े रहते लेकिन फिर विधान बाबू ही मौन तोड़ते

—आखिर इस तरह भूखों मरने से क्या फायदा ? हम से कोई गांधी बाबा या पुन्तांबे साहब तो पूछने आने से रहे कि आप लोगों ने खाया कि नहीं ? नहीं खाया तो चलकर कम से कम हलवाई के यहाँ दूध ही पी लो। और जनाब ! श्रीधर बाबू तो मर जाएँ तब भी मुँह से कहने से रहे कि हम भूखे हैं। अच्छा अब उठो।

और दोनों हँसते हुए दूध पीने निकल पड़ते।

अगले दिन से प्रभात फेरियाँ लगाएँ, सात दिन तक निकलेंगी ताकि पूरे शहर में जागृति आये। लोगों को स्वराज्य स्वाधीनता स्वतन्त्रता आदि का अर्थ तथा महत्व समझाया जाएगा। दूध पीकर लौटते वक्त विजन बाबू ने बताया कि कल कमल आने वाली है।

दूसरे दिन अलस्सुबह सवेरे दोनों प्रजामण्डल के कार्यालय पहुँचे। माघ की सिम सार शिशिर सुहावनी थी। अभी आठ-दस लोग ही जमा हुए थे। धीरे-धीरे लोग आ रहे थे। अभी फेरी निकलने में आध घंटे की देरी थी। रात को ही तीस चालीस बाँसों में झण्डे लगा दिये गये थे। सबको आशा थी कि करीब दो सौ तो फेरी में हो ही जाएँगे। लेकिन ९–१० बजने तक मुश्किल से पचहत्तर-अस्सी लोग ही जमा हुए।

फेरी का जुलूस 'वन्दे मातरम्' "भारत माता की जय" 'गांधी बाबा की जय" के नारों के साथ आरम्भ हुआ। सबसे आगे पुन्तांबे साहब की पत्नी श्रीमती मालती पुन्तांबे बड़ा सा झण्डा लिये चल रही थीं। स्त्रियों के पीछे विद्यार्थियों का झुण्ड था जिसका नेतृत्व कमल पुन्तांबे कर रही थी। उनके बाद मजदूरों का जत्था जिसमें धर्मसिंह सबसे आगे चल रहा था और सबके पीछे प्रजामण्डल के कार्यकर्ता वकील आदि थे और इसी में पुन्तांबे साहब विजन बाबू श्रीधर बाबू आदि चले आ रहे थे।

निर्जन सोयी हुई सड़कों पर प्रभातफेरी का यह जुलूस चला आ रहा था। दूकानें मुँह पर ताले लटकाये कुछ भी नहीं बोल सकती थीं—और तो और प्रति

ध्वनि तक नहीं। अभी जुलूस थोड़ी ही दूर गया होगा कि मुस्लिम बाग छापखाना रोड पर प्रतीक्षा करते मिले। घुड़सवार और पैदल दोनों ही तरह के सिपाही थे। धीरे-धीरे आकाश में आभा आ चली थी। छोटे-छोटे चायखानों में भट्टियाँ सुलग उठी थीं और चाय की तैयारियाँ हो रही थीं। हलवाइयों की दूकानों पर जलेबी के खमीर तथा ताजी बनी कचौरियों की गंध आ रही थी। दूधवाले साइकिलों पर आस-पास से घंटियाँ बजाते तेजी से निकल जाते। धार्मिक स्त्री-पुरुषों की भीड़ फुटपाथ पर रुक कर इस जुलूस को देखने लग जाती। होटलों-हलवाइयों के लड़के कड़ाहियाँ माँजते या कप धोते आश्चर्य से जुलूस देखते होते। कृष्णपुरे का पुल पार कर बोम्बाफिट-मारकेट के सामने जुलूस रुक गया। यहाँ अनेक लोग फेरी में सम्मिलित हुए। जिस समय जुलूस महाराजवाड़ा पहुँचा दर्शकों की भीड़ साइकिलें लिये तरकारियों के झोले लिये दूध के लोटे लिये प्रतीक्षित थी। महाराजवाड़े की अट्टालिका इतने सवेरे-सवेरे बड़ी गर्वीली लग रही थी। राजवाड़े के बड़े से फाटक के सामने सेना की गारद तैनात थी। राजवाड़े के शीर्ष पर होल्करशाही का ध्वज फहरा रहा था। प्रभातफेरी का जुलूस पंक्तिबद्ध होकर गा रहा था। सबके आगे पुस्तके साहब एक झण्डा थामे अपनी पत्नी मालती पुस्तके के साथ खड़े थे। उनके पीछे बिशन बाबू, कमल पुस्तके, श्रीधर बाबू आदि खड़े थे। श्रीधर बाबू ने पहली दृष्टि से देखा कि कमल कोई बीस वर्ष की युवती है जिसे आकर्षक ही नहीं सुन्दर भी कहा जाना चाहिए। उसकी साँचे में ढली देहयष्टि महाराष्ट्रीय साड़ी के परिधान में खिल आयी थी। श्रीधर बाबू ने देखा कि प्रभातफेरी अब सभा में परिणत हो गयी है। पुस्तके साहब एक स्टूल जो कि किसी दूकान से कोई ले आया था पर खड़े होकर उपस्थितों को स्वराज्य स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता का अर्थ समझा रहे थे तथा यह भी कि लोगों को सत्याग्रह में ज्यादा से ज्यादा भाग लेना चाहिए तथा स्वयंसेवक बनना चाहिए। राजवाड़े पर माघ की भोर-धूप आ चुकी थी। जिस समय वे लोग राजवाड़े से लौटे बाजार में काफी चहल-पहल हो चुकी थी। एक टोपीवाले की दूकान के पास के चौराहे पर आगे जाते हुए बिशन बाबू तथा कमल रुक कर बातें कर रहे थे। श्रीधर बाबू को बुला कर बिशन बाबू ने कमल से परिचय कराया। उसके बाद कमल अपने माता-पिता के साथ चली गयी।

श्रीधर बाबू और बिशन बाबू एक चायखाने में गये। चाय पीने आये हुए लोग बिशन को देखते ही नमस्कार करते और बिशन बाबू उसी बेलौस ढंग से लोगों से बातें करते हा-हा हँस पड़ते। चाय-नाश्ता समाप्त कर वे दोनों प्रभा

अफसर के दफ्तर पहुँचे। चाय घर की व्यवस्था के बाद विनय बाबू ने श्रीधर से कहा कि वे छत पर चलें। कुछ नाश्ते-पानी का भी प्रबन्ध कर लें, कमल आने वाली है।

छत पर ढेर सारी धूप पाम ऊन के गोले की तरह फैली हुई थी। और ये तीनों हँसते हुए कन्नी के लाल बड़े फूल लग रहे थे। परिचय में श्रीधर बाबू ने कमल को मधुर ही पाया। विनय बाबू हँसते हुए अभी-अभी अपनी और कमल की पहली भेंट का वर्णन सुनाने लगे थे। कमल को भी आज बड़ा आश्चर्य हुआ कि उस दिन जिस विनय से 'पाताल-पानी' में भेंट हुई वह उस दिन वहाँ आत्महत्या करने गया हुआ था।

—आज से कोई चार बरस हुए न कमल?

—मुझे तो सिर्फ यही मालूम है कि दिसम्बर के बड़े दिनों की छुट्टियाँ थीं।

—हाँ श्रीधर! मैं उन दिनों अपने सागर से भाग कर इन्दौर आया हुआ था।

श्रीधर बाबू ने टोका

—तो आप सागर के रहने वाले हैं?

—यही समझ लो तो भी काम चल जाएगा। देखो श्रीधर! इस बात में कोई दम नहीं कि कौन कहाँ का रहने वाला है, किस कुल में हुआ है। ये कुल और स्थान पर जन्म लेने का गर्व कमजोर लोग ही किया करते हैं। —हाँ तो मैं कह रहा था कि सागर से भागकर यहाँ चला आया था। राजनीति में था ही। यहाँ राजनीतिक चेतना नरक के बराबर थी। रोजी-रोटी का भी कुछ सिलसिला न था। अजीब मुसीबत थी। बेकारी और परेशानी से तंग आकर मैंने कविताएँ लिखनी शुरू कीं।

—अरे वाह आप तो छुपे रुस्तम निकले।

—क्या श्रीधर! अब बनाओ नहीं। कमल! अब तक तो इन मास्टर महाशय की दाढ़ी नहीं निकली थी—कपड़े पहनने की तमीज नहीं थी और आज मुझे ही बनाने चले हैं।

—क्यों ? तेज आदमी बुजुर्गों से आगे निकल ही जाता है ।
कमल की बात पर तीनों हँसते हुए जाड़े की धूप की तरह सुन्दर, प्रसन्न लग रहे थे ।
—यहीं इसी 'बिस्कोपार्क' में 'पीपल्या टैंक' पर दिन-दिन भर बैठकर कविताएँ लिखी हैं। सच मानो मगर उस दिन एक वेश्या ने न बचाया होता तो बाबू विधान नारायण भूखे कुत्ते की तरह किसी पुलिया के नीचे मरे पाये जाते ।
—लेकिन विधान बाबू ! आपने तो मुझे यह सब कभी नहीं बताया ।
कमल ने रुचि लेते हुए कहा ।
—तभी तो आज बता रहा हूँ कि पहले ही सब बता देना चाहिए ।

—हाँ तो श्रीधर ! घबराओ नहीं वह वेश्या युवती नहीं थी—बल्कि एक अधेड़ थी । मैं एक दिन 'पीपल्या टैंक' के एक झुरमुट में बैठा मूँग और नमकीन चने खा रहा था । साथ ही अपनी नोटबुक में गुनगुनाते हुए कविता लिख रहा था । जाती हुई धूप में अजीब सन्नाटा होता है श्रीधर ! जैसे एक भीड़ हो और उस के साथ पेड़-पौधों की छायाएँ खिंचती जा रही हों । सूर्यास्त की वह भीड़ जाने कहाँ जाकर समाप्त होती है । छायाएँ, रंगीन से नीली और फिर काली होकर टूट जाती हैं मर जाती हैं । मैंने देखा कि एक पालकी दूर आकर रुकी और उसमें से एक औरत निकली । शायद उस औरत ने पालकी के कहारों को कुछ दिया वे चले गये । उस औरत ने बड़े स्वस्थ भाव से अपनी कामदार शाल गाल से कन्धे ढँके सिर भी । टैंक की सीढ़ियाँ चढ़ने के पूर्व किंचित गरदन घुमा दोनों ओर देखा । थोड़ी साड़ी उठा शाल को बगल के पास थामे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी । उसके चलने का ढंग नयनों का रंग तथा आधुनिक पहनावा यद्यपि कीमती और गरिमामय था फिर भी यह महिला नहीं सिद्ध कर रहा था । जैसे कुछ प्रयोग कहीं हो । मैं झुरमुट में और छुप गया । पश्चिम में सूर्य नहीं रह गया था । सूर्यातप भी नहीं कह सकते थे हाँ रंग अवश्य थे जो पोंछे हुए लग रहे थे । यहाँ तक कि टैंक

का जल तो रँगा हुआ था ही बल्कि वृक्षों के रंग भी रँगा उठे थे। स्वयं मेरा कुरता-पाजामा उस आरक्त में रंगा गया था। तेजी से अँधेरा घिरने लगा था। आगन्तुका स्त्री स्वयं प्रसाधन एवम् वस्त्रों में रँगी हुई थी उसे ये रंग क्या रँगते ? उसने उसी शान्ति के साथ बहुत दबे ढंग से अपने चारों ओर देखा। बायें हाथ टैंक के बीच की बुर्जी थी जो कि एकदम निर्जन थी। उसने भी वही गलती की जो मैंने की थी। वह भी बुर्जी की ओर बढ़ी लेकिन वहाँ तो लोहे का फाटक था और वह बन्द था। महिला फिर लौट आयी। अब अँधेरा घिरने लगा था। वह फिर चौंक कर चारों ओर देख लेती कभी टहलती कभी बैठ जाती। रात आपको समेट कर भय की गठरी की तरह एक स्थान पर केन्द्रित कर देती है जब कि दिन बीजों की तरह चारों ओर दूर-दूर तक सब में बिखेर जाता है। मैंने उसके कपड़ों के रंग अँधेरे में मरते देखे कि कैसे वे लाल से गहरे हुए, फिर अस्पष्ट और फिर सहसा कत्थई से काले पड़ गये। बड़ा आश्चर्य लग रहा था कि वह किसकी प्रतीक्षा कर रही है ? कौन आने वाला है ? वह स्वयं कौन है ? सन्नाटे में आती हुई किसी गाड़ी की भी आहट नहीं मिल पा रही थी। यह नारी इतने वस्त्रों प्रसाधन आभूषणों में यहाँ इस निर्जन में किस प्रयोजन के लिए आयी है ? कभी बैठती है कभी टहलने लगती है। मुझे लगा कि कहीं अस्वाभाविक है और कुछ अप्रत्याशित घट सकता है। मैं साँस रोक भावी औपन्यासिकता की प्रतीक्षा करता रहा। वह फिर उठी और बढ़ते हुए मेरे झुरमुट के पास आ गयी। मैं डरा कि क्या इसने मुझे देख लिया है ? और देख लिया हो तो ? मेरे रोंगटे सिहर उठे। यह सब देखने में यह तक भूला हुआ था कि मेरी मसहरी नहीं पड़ी है मुझे बहुत पहले पहन लेनी चाहिए थी। लेकिन इस समय तो मैं जरा भी हिलडुल नहीं सकता था क्योंकि वह झुरमुट के इतने पास खड़ी थी कि हल्की हवा में उड़ती उसकी साड़ी के हिलने की सरसराहट तक सुन रहा था। एक पग की दूरी पर झाड़ी में छिपती टाँगें हिलती साड़ी में उभर आती थीं। मैं सर्दी में ठिठुर रहा था। लेकिन जैसे-जैसे अँधेरा बढ़ता जा रहा था मेरा भय भी बढ़ता जा रहा था कौतूहल भी। वह मूर्ति-सी खड़ी थी। चारों ओर एकदम निःशब्द था। लगा कि यदि यह महिला इस समय न आयी होती तो मैं कभी का दूर शहर में होता। रात भीग रही थी। जाड़ा बढ़ता ही जा रहा था। पत्ते या कागज मुड़ीतुड़ी मौन पड़ा था। वह स्त्री वहीं दूब पर बैठी हुई थी। जैसे बहुत कुछ सोच रही हो और

किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। उसने अपनी शाल कंधों से गिरा दी तथा कान और गले के आभूषण भी निकाल कर वहीं दूब पर रख दिये और सहसा असंयत उठी तथा एक बार फिर शून्य में लिख उठी। अपने दोनों हाथों की अँगुलियों को गूँथकर अपने ओठों पर कस कर सटा लीं और फूट उठी। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। जैसे उसके अन्तर से कुछ फूट निकलना चाह रहा था। पसलियों में जैसे हिरणी के बाघ थम गया हो। उमड़ पर पाश बँध गये थे फिर भी आगे किस साहस के लिए अपने से जूझ रही थी। सहसा वह टैंक के अथाह जल की ओर झपटी। जाड़े से ठिठुरा मेरा मन तथा दिमाग हठात् ता। कुछ नहीं समझ सका कि यह क्या हो रहा है लेकिन तब तक वह टैंक की तरफ बेतहाशा दौड़ती जा रही थी—तथा पानी में धँसती जा रही थी। और और मैं बिना कुछ सोचे समझे उसी तरफ दौड़ा। पानी एकदम ठण्डा-गम्भीर था। अपने पीछे किसी को आते देख वह पानी में धँस गयी।

श्रीधर बाबू और कमला ने देखा कि विधान बाबू जाने कहाँ किस अतीत में आँखें बन्द किये बोलते जा रहे हैं। छत की धूप अब अशोक से छन कर आने लगी थी। दोनों को लगा कि विधान बाबू जैसे आज बहुत कुछ सब कुछ कह देने पर कटिबद्ध हैं। प्रत्येक कह देने के ऐसे क्षण में आता है। दोनों ने देखा कि विधान बाबू बोलते हुए सहसा चुप हो गये हैं और अपनी मुट्ठियाँ बन्द किये हुए केवल अँगूठों से आँखें दाबे चुप हैं।

कमल ! उसके बाद   उसके बाद कुछ नहीं। जब मैं उसे लेकर किनारे पर आया वह बेहोश थी। काफी ठण्डा पानी भीतर तक पहुँचा था। स्पष्ट ही था कि <u>आत्महत्या</u> करने आयी थी। भला ऐसी महिला को गीले कपड़े में इतने निर्जन में छोड़कर कहाँ जाता ? उसके कपड़े किसी तरह निचोड़ दिये और शाल ओढ़ा कर वहीं लिटा दिया। अब समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए ? किसी तरह होश में आये इसके कपड़े सूखें और फिर शहर पहुँचा जाए। यदि पुलिसवालों को खबर हो जाए, तो वे जरूर ही मुझे फाँसेंगे। यही सब सोचते हुए मैं बम्बई-आगरा रोड वाली सड़क की ओर बढ़ रहा था जो कि करीब आधा मील पर थी। सोचा कि

गाड़ी बाक निकलते हैं माचिस लाकर अलाव जला जाए ताकि गर्मी पाकर वह होश में भी आए और कपड़े भी सूखें । अपने भीगे कपड़ों की ओर मेरा अब तक ध्यान ही नहीं गया था ।

माचिस लेकर जब लौटा वह तब भी बेहोश थी । घास और लकड़ी इकट्ठा कर अलाव जलाया गया । थोड़ी देर में ही कुनमुनाने लगी । उसे कुनमुनाते देख मेरी चिन्ता थोड़ी दूर हुई । और थोड़ी देर में उसने बुदबुदाना शुरू किया ।

—नहीं नहीं मुझे मर जाना चाहिए । मैं मर गयी हूँ

उसने धीरे से पलकें खोलीं । मैं आँच में कुरता फैलाये सुखा रहा था । उसने पहले तो मुझे देखा और फिर चीख उठी । सम्भवतः वह फिर बेहोश हो गयी । लेकिन इस बार जल्द ही चेतना में लौट आयी । चेतना में इस बार वह मात्र प्राणी की भाँति ही नहीं लौटी बल्कि एक नारी की भाँति लौटी । वह उठने की चेष्टा करने लगी

—आपके सारे कपड़े भीग गये हैं सुखा लीजिए, काफी ठंड लग चुकी है ।

क्या वह अत्यन्त आत्मग्लानि से भर उठी है । कहीं यह भी अन्तर में आया ही होगा कि यह पराया व्यक्ति उसकी नारी देह को उठाकर लाया ही होगा और वह सिमट कर उठने लगी ।

—ठीक है आप चाहें तो मैं गाड़ी में फिर चला जाता हूँ जहाँ से मैंने आपको जाते हुए भी देखा था तथा ट्रेक की मार खाते हुए भी ।

वह निर्वाक ही बनी रही । लेकिन जिस कृतज्ञता की सहजता ऐसे मौकों पर सूझी जाती है वह मैंने उसमें नहीं देखी ।

—जी नहीं जाने की कोई आवश्यकता नहीं । लेकिन लेकिन आपने मुझे क्यों बचाया यह नहीं पूछूँगी क्योंकि मनुष्य होने के नाते आप और क्या करते पर क्या यह अच्छा नहीं होता कि आप यहाँ न होते ?

और उसने बैठकर अपने बालों से पानी सूता । बाल फैल गए । भीगा वस्त्र आँच के सामने फैलाये वह उत्तर की प्रतीक्षा में थी भी और नहीं भी । वह फिर बोल रही थी

—बताइए, मैं आपको धन्यवाद दूँ आभार प्रदर्शित करूँ कि आपने मुझे नारकीय जीवन से मुक्त होने में बाधा दी ?

अपने पाजामे की मोरी से उठती भाप को देखते हुए मैं मौन पाजामा घाम सुखा रहा था । एक क्षण को मैं उसके प्रश्न की सम्मति तथा व्यंग्य दोनों ही नहीं समझ पा रहा था ।

—आप भले व्यक्ति हैं, लेकिन कैसे कहूँ कि मैं भली हूँ ?
 और वह चीख दी ।
—आप जानते नहीं कि व्यक्ति किस सीमा पर खड़ा होता है तभी आत्महत्या करता है ।—पालकीवाले तो नहीं आये न अभी ?
—जी नहीं । पालकी वाले तो तभी लौट गये थे ।
—तो आप तभी से देख रहे थे क्या ?
 और उसने उस झाड़ी की तरफ देखा जहाँ मैं बैठा था । मुझे लगा कि यह नारी अत्यन्त चतुर है ।
—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आपने ऐसा क्यों किया ?
—कैसा ?
—यही कि
 और मैं इससे अधिक अभिधा में पूछ नहीं पा रहा था । वह मेरे न पूछ पाने की विवशता पर किंचित मुसकुरायी । अपने कान के तथा गले के आभूषण बाँधते हुए बोली
—तो आपने मुझे फिर अपनी ही नियति की ओर लौटा दिया ।
—कौन सी नियति ?
—वही जो प्रत्येक पथभ्रष्टा की होती है ।
—तो क्या आप ?
—हाँऽऽ मैं तो पथभ्रष्टा हूँ । चाहा था कि एक बार प्राण देकर पुनः पथ प्राप्त कर सकूँ लेकिन आप फिर मेरी मुक्ति में आड़े आ गये ।—आप जानते हैं, मैं वेश्या हूँ मालिनी ।
—मुझे विपिन कहते हैं ।
 मरे पड़ते अलाव में और सूखी लकड़ियाँ डालते हुए मैंने कहा ।
—विपिन बाबू ! मुझे आपसे इस संसार के वेश्यालय में इन हूर्रों पर लाकर रख देने में आपके इन हाथों को क्या मिला ? मानती हूँ कि आपसे यह पाप कर्म अनजाने में ही हुआ लेकिन मैं तो सारा हिसाब-किताब पूरा करके चली थी । क्या अब फिर उसी नरक में
—मालिनी जी ! मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि मैं आपको कैसे सान्त्वना दूँ ।
—किस बात की सान्त्वना ?
 और वह खुल कर हँस दी । कपड़े सूखने आये थे ।

—बिपिन बाबू ! कभी वेश्या का भाई बनने की कामना हो तो यह मालिनी दीदी बनने को उत्सुक रहेगी।

तब तक मैंने देखा कि दो एक लालटेनें लिये कुछ लोग इधर ही आ रहे थे। पास आने पर पहचाना कि कुछ उनमें से वे ही कहार लग रहे थे दूसरे दो नौकर जैसे।

मालिनी ने उन्हें देखते ही एक से कहा

—लछमन ! तुम लोग बहुत परेशान हो रहे होगे है न ?

—हाँ मालकिन !

और वह लछमन मेरी ओर देखने लगा।

—अच्छा बिपिन बाबू ! कभी आइएगा।

और वह रहस्यमयी वेश्या मालिनी दीदी बनने का आश्वासन देकर चली गयी।

बिपिन बाबू एक क्षण को जैसे फिर खो गये। सम्भवतः वे जाती हुई मालिनी को उस जाड़े की रात को हवा में उड़ते कुहरे को पीपल्या टैंक के ठंडे जल को अलाव की बुझती लौ को चने के उस मुड़ीमुड़ी कागज को—सबको अपनी स्मृति में जैसे सहेज कर वैसे ही व्यवस्थित कर रहे थे जैसे कि हम अपनी किताबों की शेल्फों की धूल झाड़ते हैं। एक-एक किताब को झाड़ा-पोंछा जाता है क्योंकि उनके बिना जैसे हम नहीं हो पाते हैं। किताबों पर अधिक दिन धूल रहने का मतलब हमारे मन और व्यक्तित्व पर धूल का रहना है। और धूल क्या होती है। अनुभव प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति को धूल के घेरे, घेरे हुए है। जरा असावधानी हुई नहीं कि धूल के रेशों सी नरम बारीक-छन धूल बिल्कुल खरगोशों सी मौन चुप आकर बिछ जाती है। यदि समय से धूल का यह रेशमी-जाल हम नहीं काट फेंकते तो वह एक दिन हमारे समूचे अस्तित्व के जोड़-जोड़ पोर-पोर में रक्त-मांस को चाटकर मिट्टी कर देता है। इसीलिए हम बारंबार स्मृतियों को दुहराकर अपने अन्तस की धूल झाड़ते हैं। फिर भी दो चार घटनाओं के अतिरिक्त बहुत कुछ उस धूल के कारण मिट्टी हो गया रहता है। जब हम सोचते हैं कि इसके बाद क्या हुआ था ?—तो हमें लगता है कि हम घटना के द्वीप के चारों ओर धरती कहीं नहीं है बल्कि एक अनन्त जल ही जल है। और कैसे गहरी सांस

लेकर हम उस एकमात्र या उस जैसे दो चार घटना-द्वीपों को लेकर सन्तुष्ट होने के लिए बाध्य होते हैं।

ठीक ऐसे ही श्रीधर बाबू इस धूप में बैठे हुए कमला और श्रीधर बाबू को देखते हुए, सम्बोधन करते हुए भी न तो देख ही रहे थे न सम्बोधन ही कर रहे थे। वे तो देख रहे थे अतीत को और सम्बोधन उस बीती गयी सन्ध्या को कर रहे थे। पता नहीं उस विस्मृता सन्ध्या ने कभी सुना कि नहीं। हाँ जो दृश्य गत श्रोता थे वे अवश्य इस कथावाचक श्रीधर बाबू की यात्रा को श्रद्धा के साथ सुन रहे थे। वे पुनः बोलने को हो आये

—मैं एक दिन सराफे में से आ रहा था। सट्टा बाजार खूब गरम था। लोग चीख-चिल्ला रहे थे। भाव बोले जा रहे थे—'लिया' 'दिया' हो रहा था। बनिये हलवाइयों की दुकान पर रबड़ी मलाई खा रहे थे। उनके गलों में पड़ी सोने की चेन बता रही थी कि जीवन कितना सुखी होता है। मैं महारानीबाड़े के गोपाल मन्दिर के सामने पहुँचा ही था कि देखा कि रात के अँधेर में एक व्यक्ति दौड़ता आ रहा था। मन्दिर में कीर्तन हो रहा था। उत्सवों के अवसर पर जगमग करने वाले झाड़फानूस इस समय लाल कपड़े की खोलों में छत में लटके हुए बड़े अजीब लग रहे थे। मन्दिर के बाहर के दरवाजे पर दो चोबदार पगड़ियाँ बाँधे तथा अँगरखे और पीले दुपट्टे कमर में कसे तैनात थे।

—बाबूजी ! बाबू जी !

मैंने देखा कि वह व्यक्ति मुझे ही पुकार रहा है क्योंकि उस समय सड़क पर और कोई नहीं था। निर्जन था। और मैं हठात रुक गया। वह हाँफ रहा था। व्यक्ति पहचाना सा लग रहा था।

—बाबू जी ! आपको मौसी बुला रही हैं।

मुझे आश्चर्य हुआ कि कौन मौसी मुझे बुला रही है ? व्यक्ति कहीं भूल तो नहीं कर रहा है ?

—किसे चाहते हो भाई ?

—श्रीधर बाबू हैं न आप ?

—हाँ हूँ तो।

—तभी तो मौसी बुला रही हैं। मैं लछमन हूँ। पहचाना नहीं आपने ?

ओह, भला लछमन को नहीं पहचानता ? अरे! यदि वे कहार भी होते तो

पहचाना जाता। उस दिन की किसी वस्तु को जब नहीं भूल सकता था फिर यह तो व्यक्ति था।

—क्या मालिनी जी ने ?

—हाँ सरकार! मैंने आपको सराफे में देखा था अभी। मौसी को खबर दी। आपको उस दिन के बाद कहाँ-कहाँ नहीं खोजा मालिक! लेकिन पता ही नहीं चला कहीं। क्या आप यहाँ के रहने वाले नहीं ?

—नहीं।

—तभी तो मालिक! नहीं तो लछमन इस इन्दौर के बच्चे-बच्चे से वाकिफ है।

म्यूनिसिपल्टी की मरी लालटेनों के प्रकाश में वह छोटी सड़क अजीब लग रही थी जैसे भूखे आदमी का मुख हो। सड़क आगे चलकर पश्चिम में मुड़कर गली बन गयी थी। एक बड़ा सा पीपल हवा में हरहरा रहा था। रात में बोलता पीपल देह के रोओं तक को कँपा जाता है। अब काफी अँधेरा आ गया था। सामने एक पुरानी पेशवाई ढंग की दुमंजिला इमारत थी। उसकी के बड़े फाटक के पास एक ओर खम्भे में बड़ी सी लालटेन जल रही थी। लछमन ने आगे बढ़कर उस बड़े फाटक की खिड़की खोली। झुक कर हम अन्दर प्रविष्ट हुए। लगा कि कभी यह कोठी वैभव में रही होगी लेकिन अब तो एकदम ही उजाड़ लग रही थी। फाटक के दोनों ओर पहरेदार महल थे जहाँ एक बूढ़ा सिपाही अलाव ताप रहा था। अभी थोड़ी देर पूर्व छिड़काव की गयी थी। जिसकी ताजी गंध बता रही थी जो कि हवा में थी। रेतीला मैदान पार कर अन्दर के मकान की तरफ बढ़े। एक बरागी स्त्री से लछमन ने कुछ कहा और बरागिन जिधर से आयी थी उधर ही उल्टे पैरों लौट गयी। लछमन के साथ सकड़ा का जीना चढ़कर एक कमरे में पहुँचा। साफ-सुथरा था। मसनद का प्रबन्ध था। दीवारों पर चित्र लगे हुए थे। कृष्ण-लीला के अनेक प्रसंग थे। कुछ विलायती दृश्य और जानवरों के भी चित्र फ्रेमित थे। दाहिने हाथ के दरवाजे पर पर्दे वाली चिक थी। बाँये हण्डेवाली बड़ी सी लैम्प जल रही थी। एक किनारे पर बड़ा सा पानदान। दो-एक ग्लासदान पिकदानियाँ भी चौकी के पास रखी थीं। लकड़ी की काली एक तेल वाली चमक रही थी। यह मकान

देर न लगी कि यह खास बैठक नहीं हो सकती बल्कि प्रतीक्षागृह ही होगा। तभी चिक उठाकर दोनों हाथ जोड़ मालिनी दिखलायी दी।

—आइए, भीतर चलिए।

दो कमरे पार कर बाँयें हाथ वाले कमरे में पहुँचे। अपेक्षाकृत यह कमरा बड़ा तथा खुला था। अष्टकोणाकार लकड़ी की जाली खिड़कियाँ थीं। खिड़कियों के पीछे अँधेरे में गाछ हिल रहे थे। लगा कि इधर ही बगीचा होगा क्योंकि अनेक गंध मिश्रित हुआ आ रही थी। नाथद्वारे के श्रीनाथ जी का एक मात्र चित्र एक सिंहासन पर रखा था जिसके सामने समइयाँ जल रही थीं। नीची चौकी पर गादी-तकिये की बैठक थी। एक शेल्फ थी जिसमें सुनहरी जिल्दों वाली किताबें थीं। फर्श पर लाल जाजम तथा सामने एक छोटी चौकी और थी जिस पर मृगचर्म बिछा था। मुझे बैठने को कह वह स्वयं मृगचर्म वाली चौकी पर बैठ गयी।

—कहिए, कितने दिनों से खाना नहीं खाया?

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इसे कैसे मालूम हुआ? मेरी सोयी हुई भूख एक दम सुलग उठी। लेकिन मैं लापरवाह हँसी में हँस उठा।

—देखो तुम मुझसे छोटे हो आग्रह की आशा मत करना।—मैं आयी।
और वह उठी।

—सुनिए इसकी तो कोई जरूरत नहीं

—वेश्या के यहाँ का नहीं खिलवाऊँगी। दीदी होकर छोटे भाई का ब्राह्मणत्व नहीं लूँगी।

—लेकिन तुम्हें कैसे मालूम कि मैं ब्राह्मण हूँ?

—नारी से पुरुष की जाति धरम पाप पुण्य कुछ छिप सकता है?

और वह तीर सी निकल गयी। जब चली गयी तब याद आया कि वह सिर से पैर तक श्वेतवर्णी धारे हुए है। उस दिन तो इतने सारे आभूषण थे लेकिन आज कान आँख नाक गला हाथ सब जैसे विधवा के अंग हों। साँचे ढली देह थी रंग भी साफ था लेकिन चेहरे पर हल्के दाने थे। वह प्रवेशते ही बोली

—पता नहीं आज सवेरे किसका मुँह देखा था।

—सम्भवतः अपना ही देखा हो।

—बचपन में दिन रात अपना ही मुँह देखती थी तभी तो यह दुर्दशा हुई।

और मुझे लगा कि हास्य किसी मर्मस्थल को छू गया है। मैं अबोला ही रहा।

—इतने दिन हो गये कभी तुम क्यों नहीं आये ?

—मुझे पता नहीं मालूम था ।

—इतनी नामी चोरी का भी पता तुम्हें नहीं मालूम हो सका ?

और वह खूब जोर से हँस दी । तभी लछमन दरवाजे पर दिखायी दिया ।

—भाभी ! मन्दिर के लिए पालकी तैयार है ।

—लछमन ! तुम्हीं चले जाओ और पुजारी जी से हाथ जोड़ क्षमा माँग लेना और कह देना कि आज न आ सकूँगी ।

लछमन चला गया ।

—तो आप दर्शन कर आइए न ?

—दर्शन करने तो सवेरे जाता हूँ । इस समय तो कीर्तन करने जाना पड़ता है, सरकारी नौकरी है । हाँ अब जाना कई दिनों से नहीं हुआ तो तुम लोग तो नहाने की भी जरूरत नहीं समझते होगे है न ?

तभी बसरिन दरवाजे पर दिखी । उससे मराठी में मालती ने पूछा

—पानी हो गया गरम ?

—होऊन आहे—

—अच्छा विसन ! अब जाकर नहा लो तो ।

अजीब आज्ञा थी कि न चाहते हुए भी यंत्रचालित सा उठा और बसरिन के साथ जाकर नहा भी आया । तब तक एक सुन्दर सी चौकी पर भोजन का थाल रखा था तथा एक आसन भी । कमरे में अगरबत्तियों की गंध ही गंध भरी हुई थी । लाख कहने पर भी मालती ने नहीं खाया क्योंकि वह गत दस बरस से एकासना (एक समय भोजन) ही करती है ।

—वहाँ रहने और नौकरी का कुछ प्रबन्ध किया कि नहीं ?

पता नहीं उसने कैसे यह सब अनुमान किया कि मैं कहीं नौकरी नहीं करता और न ही व्यवस्थित हूँ ।

—नहीं किया अभी ।

—यह तो मुझे भी मालूम है । न सही नौकरी कम से कम घर तो किराये पर ले ही लो । क्या शाम को उन धर्मशालावालों को हर पन्द्रह दिन बाद तीन दिनों के लिए यात्री बनकर परेशान करते हो ।

तो इसका मतलब हुआ कि हर बार धर्मशाला में लछमन को भेजकर यह तलाश करवाती रही । फिर भाभी

—अच्छा बोलो कब तक घर ले लोगे ?

—पर क्या कोई लड़की है जो इतनी आसानी से मिल जाएगा ?

—तो लड़कियाँ आसानी से मिल जाती हैं ? कितनी हैं ? लाओ मुझे भी एकाध दे दो। बड़ी ज़रूरत है मुझे।

—किसलिए चाहिए तुम्हें ?

—विश्वास रखो विपिन ! पथभ्रष्टा बनाने के लिए नहीं बल्कि अपने को अमर बना सकूँ इसलिए। सुनो इस तरह तो तुम मारे-मारे ही फिरते रहोगे। साथ दिन में ही नहीं से भी मकान साफ व्यवस्थित होना पड़ेगा। कभी किसी के घर सिवाय मुबारे के गयी ही नहीं ! तुम्हारा घर होगा तो एकाध बार न भी बुलाना चाहोगे तब भी तो ही आऊँगी। कभी क्षण भर को ऐसा नहीं लगता कि मैं मालकिन नहीं हूँ। दिन रात वर्षों तक स्वप्न में स्वत्व बना रहना कितना उबा देने वाला होता है और फिर मैं तो अपनी ही दृष्टि में

तभी दूसरे कमरे में घड़ी ने टनटन दस बजाये।

—तो मैं चलूँ ?

—वैसे आजकल कहाँ लगे हुए हो ?

—ऐसा तो कहीं खास नहीं है।

—फिर भी ? न बताना चाहो तो मत बताओ लेकिन 'रानीसराय' का नाम मत लेना वहाँ तो तुम पिछले हफ्ते थे।

लेकिन कैसे बताता कि आजकल मैं रेलवे प्लेटफार्म या मुसाफिरखाने में ही पड़ा रहता हूँ। मैं उठा। वह मुझे मैदान तक छोड़ने आयी। तारों की छाया में चारों ओर शान्ति थी। एक क्षण को लगा कि यदि यह नारी वेश्या न होती तो न क्या एकबार स्पष्ट रूप से 'दीदी' नहीं कहता ? बार बार चाहने पर भी 'दीदी' गले में आकर फँस जाता रहा। पता नहीं कौन सा संस्कार था कि वह मेरे मुख से 'दीदी' सुनने को उत्सुक थी पर मैं उस दिन 'दीदी' स्पष्ट रूप से नहीं कह सका।

—सुनो कहीं मैं अनजाने में अपने को तुम पर लाद तो नहीं रही हूँ ?

भला मैं क्या उत्तर देता ? यद्यपि वह उत्तर की प्रतीक्षा में न भी रही हो लेकिन मुझे लगा कि वह उत्तर चाहती है।

—अब किस दिन आऊँ ?

—यह मुझ पर नहीं तुम पर निर्भर करता है।

और हम दोनों दो दिशाओं में बढ़ गये।

—क्रमशः । मैं अपनी उस वेश्या-दीदी के यहाँ प्रायः जाता था लेकिन प्रत्येक बार संस्कारों से लड़ता था। उसे किसी मराठा सरदार ने रख लिया था। उसी सरदार ने उसे यह मकान आदि दे रखा था और साथ ही उन महाशय ने अन्य वेश्याओं से प्राप्त भयकर गुप्तरोग भी दे रखे थे। वह अत्यन्त दारुण स्थिति में थी जब मेरी भेंट हुई। मराठा सरदार मर चुके थे। उनके पुत्रों ने उसे मकान से निकाल देना चाहा तथा यह भी कि वे अपने मकान में वेश्या को नहीं रख सकते। जिस दिन मालिनी आत्महत्या करने पीपल्या टैंक पहुँची थी उस दिन मराठा सरदार के बड़े लड़के ने बड़े ही सार्वजनिक रूप से अपमानित लांछित किया था तथा मुकदमा भी दायर कर दिया।

दिनों दिन दीदी का स्वास्थ्य चौपट होता ही जा रहा था। मुँह के दाने फूट आने लग थे। प्रायः आँखें जल भरी रहतीं। शायद फाल्गुन लग चुका था। मैं कुछ दिनों के लिए आगरा गया। मेरा पहला-पहला कांग्रेस कारिया से परिचय हुआ था। आगरे से जब लौटा तो यह तय किये हुए था कि सामान लेकर दीदी से मिलकर आगरे लौट जाऊँगा और पार्टी का काम करूँगा। उन दिनों जूनी-इन्दौर में रहता था। करीब एक माह से इन्दौर के बाहर था जब कि दीदी से चार-पाँच दिन का कहकर गया था। जिस समय पहुँचा लछमन अन्दर बरामदे में मिला।

—बाबूजी! आप लौट आये?

—हाँ लछमन! दीदी के क्या हाल हैं?

यह उदास मनुहार बना खड़ा रहा। सम्भवतः उसकी आँखें छलछला आयीं। सबेरा हल्का पीला फूलों की तरह होने लगा था फिर भी मैंने वे आँखें छलछलाते देखीं। उस तरह छलछलायी आँखें मैंने भीतर! आज तक किसी की नहीं देखीं। पता नहीं उस छलछलाने में कितनी अभिव्यक्ति थी कि क्या बताऊँ।

—क्या बात है लछमन?

—कौन सी बात नहीं है किसन बाबू?

मुझे वह उस क्षण उस उदार दूकानदार की तरह लगा जो एक चीज माँगने पर अनेक चीजें दिखाने पर आ जाए। ऐसी उदारता से भी भय ही लगता है। हम फलराना चाहते हैं क्योंकि हम उतने उदार तो नहीं होते हैं न? यह मुझे घर के पिछवाड़े की तरफ ले गया जो कि बगीचा था। वैसे वह

बगीचा था ही-लताएँ थीं फूल थे हौज थे फौवारा था संगमरमरी बेंचें भी थीं—लेकिन सब उदास उजाड़। जल न होने के कारण हौज का चूना जगह-जगह उखड़ गया था। हरसिंगार या चमेली को छोड़कर पीछे पतोखाना या बगीचा था। इस समय भाभिनी के कमरे की वे अर्धाकार खिड़कियाँ खिल रही थीं। दाहिने हाथ कोने में भूल पड़ी पालकी रखी थी। शेष सब सवेरे का धुला हुआ निर्जन था।

—विशन बाबू! आप ही मालकिन को समझा सकते हैं।

—अच्छा! साफ-साफ कहा।

—अब बाबू जी! दुनिया माँजी को या भी समझे मुझे कुछ नहीं कहना लेकिन मैं माँजी को उस दिन से जानता हूँ जब दिवे साहब के यहाँ हमको लाया गया था। न तो मैंने दिवे सरकार की तरह कोई दूसरा रईस देखा न माँजी की तरह दूसरी पतिव्रता स्त्री। लेकिन सरकार! ऐसी साध्वी को भी दुनिया तो वेश्या ही समझती है न? कौन सा जप-तप धरम-नियम पूजापाठ है जो माँजी ने नहीं किया? जैन मुनियों से लेकर गोसाईं जी तक की सेवा की। पजूसन (पर्यूषण एक जैन-पर्व) नवरात्रि के व्रत आबू के जैनतीर्थ काशी-गया और मायद्वारा तक जहाँ-कहाँ न जाकर अपने माथे के इस कलंक को नहीं धोने की चेष्टा की। विशन बाबू! मैं गवाह हूँ माँजी गंगा हैं। अगर माँजी वेश्या हैं तो गंगा भी वेश्या है। लेकिन हाय रे दुर्भाग्य जाने किसका पाप रोग-शोक दिवे साहब माँजी को ऐसा दे गये कि वह देह के अंग-अंग से फूटा पड़ रहा है। दुनिया समझती है कि वेश्या का अन्त और क्या होना था? विशन बाबू! माँजी कोई दवाई-दारू नहीं करवाती हैं। निर्जल रहती हैं उपवास करती हैं। जैसे पापों का प्रायश्चित कर रही हों। लेकिन कौन सा पाप? किसी ने उन्हें बचपन में पुरुषों को बेच दिया था पर अपने जाने तो वे सदा एकनिष्ठा रहीं। दिवे साहब से मिलने के पूर्व वे नायिका थीं यह जो भी रहा हो नाबालिग! लेकिन वह आचरण का पेशा तो नहीं था न? क्या दिवे साहब को माँजी ने जीवन भर पति के रूप में नहीं माना? किसी दूसरे को पास फटकने दिया? क्या अन्य श्रीमन्तों के बुलावे नहीं आये? लेकिन वे डिगीं तो नहीं न? फिर?? हम तो नौकर ठहरे। कुछ भी बोलने से रहे। आप क्यों नहीं समझाते? आप पर तो राय है उनका। समझाइए विशन बाबू! दुनिया ने आज तक किसी को क्षमा किया जो माँजी को ही क्षमा करेगी? और हम दुनिया से क्यों क्षमा माँगें? जब

प्रभु की दृष्टि में हमारा मन आत्मा पवित्र है तो फिर प्रायश्चित परिताप क्यों ? मैं पच्चीस बरसों से घुट रहा था आज मौका मिला तो जाने क्या-क्या कह गया। मेरे छोटे मुँह बड़ी बात निकल गयी हो तो क्षमा कर दीजिएगा।

और लछमन बड़ी तेजी से दाहिने हाथ जहाँ पालकी रखी थी उधर के मोड़ से होकर दीवार के पीछे गायब हो गया। कुछ देर तक मैं आसन्न रहा। मालिनी मेरे सामने उस दिन सचमुच शापभ्रष्टा देवता लग रही थी।

जब मैं दीदी के कमरे में पहुँचा वे चौकी पर तकिये के सहारे लेटी हुई थीं जिस पर मैं सुबह दिन बैठा था। बरारिन नौकरानी सिरहाने बैठी थी। फाल्गुनी सवेरा कमरे में बड़ा धूप घुला लग रहा था। कमरे का रूप लग रहा था कि यहाँ दिन बड़े सबेरे से शुरू हो चुका है। मुझे देख बरारिन उठ खड़ी हुई। दीदी उस समय आँखें बन्द किये पीठ फिरा लेटी हुई थीं।

—भौजी ! बिसन बाबू आये।

और बरारिन के सूचना देने पर वे अनजान से अन्दर ही करवट बदल कर सम्मुखी हुईं।

—कब आये आगरे से ?

—रात मामा। सहसा चला आया था।

—मैं तो जानती हूँ तभी तो कह कर न जा सके न ?

—यह क्या हाल बना रखा है अपना तुमने ?

—कब किस ने अपना हाल ऐसा बनाना चाहा है ? और माना को मनाया हो तो क्या अपनी दीदी से कहोगे ?

—ऐसा पड़े तो ब्राह्मण आपद्धर्म भी अपनाता है।

—मूर्ख !! आपद्धर्म अबलाओं की रक्षा करता है या उनसे लड़ता है ? यही सीखा है आज तक ? हाँ शारदा ! कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध नहीं करना है क्या ?

और वह शारदा बरारिन किंचित मुस्की-मुख किये चली गयी। उसका स्वच्छ हँसता मुख जाते वक्त मुझे लगा जैसे वीरान मेहराबदार दालानों में कोई गीतक अँधेरे से भूल रहा हो।

बरारिन के चले जाने से हमारा-कुछ देर को रुद्ध शान्त हो गया जैसे इसके पूर्व यहाँ हर बार हार हो गया हो। लेकिन ऐसा तो नहीं था। मार चाहे न गया हो पर शान्ति असन्न वैसी ही लग रही थी। मैं चौकी के

उठकर दीदी के पलंग के पास जाने के लिए उद्यत हुआ तभी बरजते हुए बोलीं

—बीमार के सिरहाने बैठना तो नारी को शोभता है तुम लोगों को थोड़े ही।

—कोई बात नहीं।

और मैं बिना सुने मना करने पर भी बढ़ा उन्होंने इस बार बरजा नहीं बल्कि निषेध किया।

—जब तुम्हें स्वतः समझ में न आये तो जितना कहा जाए उतना ही किया करो। और, और अभी शारदा आएगी उसे मेरे सिर में तैल डालना है। भला वह कहाँ बैठेगी?

और इस बार वे खिड़की की राह फाल्गुनी आकाश का वर्ण देख रही थीं।

—कितने दिनों से तबियत खराब है?

—तुम आगरा काफी रह गये।

—हाँ लेकिन मैंने क्या पूछा तुमसे।

—मैं समझती हूँ कि अब लछमन को छुट्टी दे देनी चाहिए। वह बुद्धू होने के साथ-साथ समझदार भी होता जा रहा है।

—दीदी!

और लगभग मैं चीखते हुए ही बोला था। दीदी ने आहत होकर मेरी ओर देखा। पलंग की ईस मेरे घुटनों से लग रही थी। सिरहाने नाम मात्र को एकाध दवाई थी। लेमन-सन्तरा रखे थे तथा थर्मामीटर भी। इतने निकट से खिड़की से आते उजाले में दीदी को मैं अनेक दिनों बाद देख रहा था। मुँह अपेक्षाकृत लाल फुंसियों से भरा था। पल्ला यथावत था। बाकी पूरी देह कम्बल से ढँकी थी। केवल हाथ जो कभी गोरे रहे होंगे लेकिन इस समय पीले निस्तेज निष्प्रभ अतिसाधारण चूड़ियों में चुप थे। हल्की साँस के चलने के साथ पूरी कम्बल हिल रही थी। जब मैंने 'दीदी' कहा वे आँखें सहसा थम गईं। आज पहली बार मेरे मुँह से 'दीदी' सुन पड़ने तो वे आँखें चमकीं उपरान्त होने से कचनार के फूलों सी फैल आयीं। तब क्रमशः भीतरी कोरों से जल छलछलाने लगा जिसे स्वस्थ काँपते ओठ को मानो ही पलकों से दाब कर रोकने की चेष्टा की जा रही थी लेकिन नाक दोनों ओर से फैल आने लगी। वे आँखें फैली बाँहें थीं जिनमें आवाहन निषेध स्पष्ट था। वह आँखों से सब अनुस्यूत रही थीं। अपने में समा लेने का भी अजीब सम्मोहन उन जल भरी आँखों में वैसे ही तिरता लग रहा था जैसे झील में पुष्पक

का पता फिर आया हो। जब कोई मोह सामने होता है तब हमारे रोम-रोम से स्वतःस्फूर्त फूट निकल कर मोह में तिरोहित होने के लिए आकुल-व्याकुल रहता है। उस सामने विराट मोह में यदि समग्र हो पाये तो हम सस्नेह समर्पित होना चाहते हैं। कुछ-कुछ ऐसा ही तथा बहुत कुछ और भी दीदी की आँखों में तिर आया था।

—लेकिन इस प्रकार अपने को दुःख कष्ट देकर समझती हो कि दुनिया तुम्हें 'दुःख-पारंगत' समझने लगेगी?

पता नहीं इस बात को सुनकर वह अनायास ही क्यों फूट पड़ी। उसने अलबम में मुँह छुपा लिया लेकिन अलबम पेट के पास छिपा रखी थी जैसे वह अपने को बीच पलंग में राखे हुए हो। मैं हतप्रभ नहीं भी था लेकिन अजीब विषम था कि क्या करूँ? तभी शारदा आयी। अलबम के अन्दर से ही शारदा को आदेश मिला

—यहाँ नहीं। भीतर शारदा!

और वह मुझे भीतर ले गयी। मैंने भी उचित समझा कि विचार का निकल जाना ही ठीक होता है।

जिस कमरे में मैं बैठा नाश्ता कर रहा था यह बाहरी छज्जे की तरफ था। एक पीठदार मसनद छज्जे में थी तथा हत्थोंवाली लम्बी आरामकुर्सियाँ लगी हुई थीं। इसी कमरे में अनेक चित्र फ्रेमित थे। बीच में राजसी-पोशाक में एक सरदार का तैलचित्र था जिस पर ताजी फूलमाला थी तथा एक दीपक जल रहा था। मुझे समझने देर न लगी कि यही सरदार पिता साहब हैं। ठीक इसके सामने नाक में नथ पहने "लान-पातल" (मराठी ल्गाउन-साड़ी) में एक अन्य तैलचित्र था। बिल्कुल पहचान नहीं पा रहा था। मुझे चित्र घूरते देख शारदा मुस्कराती बोली

—पहचानिए।

—नहीं पहचान रहा हूँ।

—मराठी भूषा में अपनी दादी को नहीं पहचान पा रहे हैं?

सचमुच नहीं पहचान पा रहा था। दीदी महाराष्ट्रीय नहीं हैं यह तो मुझे ज्ञात था। लेकिन आज उन्हें देखकर कोई नहीं कह सकता कि वे इतनी अद्भिन्न सुन्दर रह चुकी हैं। मैं शारदा से और कुछ पूछने ही वाला था कि दरवाजे के बीच अलबम ओढ़े दीदी को खड़े देखा।

—अरे तुम क्यों उठ कर आयीं?

और शारदा का सहारा लेकर वे पीठवाली मसनद पर टूटी सी आकर अर्ध लेटी हो पीठ टिका आँखें बन्द कर बैठ गयीं। अभी भी आँखें वैसी ही थीं बल्कि अन्दर घुसकर वे और घुड़हली हो गयी थीं। ओंठ काफी देर तक थरथराने के कारण न थरथराने पर भी थरथराने का भ्रम दे रहे थे। शारदा जा चुकी थी। कमरे में कहीं से कोई शब्द नहीं आ रहा था। छज्जे से ओस भीगा रेतीला मकान फाल्गुनी धूप में गरमाता दिख रहा था। मौलश्री का गाछ सामने की खपरैल की पृष्ठभूमि से होता हुआ आकाश में छितरा हुआ था। नाश्ता मैं समाप्त कर चुका था। शारदा आयी और बर्तन समेट लौटने को हुई कि दीदी बोलीं

—वैद्य जी आयें तो बुलवा लेना।

शारदा चली गयी। वे फिर बोलीं

—लछमन का बस चले तो इन्दौर के सारे डाक्टरों की तैनाती यहाँ कर दे। अब तुम्हीं देख लो कि दवाई करवा रही हूँ कि नहीं?

मैं अबोला ही रहा। इतने उजले-उजले कमरे में जहाँ छत की सफेद चाँदनी से लेकर चादरें-गिलाफ तक एकदम बगुले के पाँख की तरह सफेद-झक हों तो लगता है जैसे हम वातावरण में उभर आये हों। हमारा साँसना ही नहीं सोचना तक इस उजलेपन को संभव है मलिन कर दे। और हम अपने को और भी सिकोड़ लें कि यह उज्ज्वलता हमारी गंदी अँगुलियाँ या उनके मैले नाखून जिनमें हल्का पीलापन कहीं में हो उसे न देख लें नहीं तो हम इस उज्ज्वलता को अपमानित कर देंगे और अपमान के बाद क्या शेष रह जाता है?

—लगता है लछमन ने तुम्हें अपने मिथ्या प्रभाव से भरा है। है न?

—मान लो है तो?

—यही कि उसे न बिसराना। उसे कितना कहा कितना। कि वह चला क्यों नहीं जाता अपने नीमाड़ (नर्मदा के दोनों ओर का प्रदेश) में जमीन है, घर है परिवार है। पता नहीं किस आशा में यहाँ पड़ा है।

—पैसे की तो आशा नहीं ही होगी उसे।

बात मैंने काफी कड़वी कह दी। आँखें अब स्पष्ट छलछला आयीं। इतनी बड़ी आँखें होने पर भी छोटा सा जल नहीं सहेज पायीं। नाक तक भीग उठी। मुझे ग्लानि हुई कि ऐसा कड़वा क्यों बोल गया?

—भगवान न करें किसी को ऐसे पैसे का मोह हो। अब यह मेरी ही देह में रिस

रिस कर फूट पड़ रहा है तब भला चाहूँगी कि कोई परिवार वाला इस भंगी कार करे ? मैं तो स्वयं इसका भाग जाना चाहती हूँ विधान ! भागी भी लेकिन पता नहीं तुम उस दिन आने कहाँ से आके आ गये ।

—दीदी !

—विधान रे लगता है मैं जन्म-जन्मान्तर से वेश्या ही थी । क्या आगे भी वेश्या बनकर ही नारीत्व को अपमानित लांछित करती रहूँगी ? विधान ! अब नहीं सहा जाता नहीं

और वह मधमुख ही वैसे हो फूट पड़ी जैसे नदी के उद्गम स्थान का पर्वत । चट्टान का कण-कण रिसने लगता है और रिसने की एक धारा बनती है जो नदी है । दीदी के रोम-रोम से आँसू फूट रहे थे । लेकिन इसके बाद नदी बनी कि नहीं नहीं जानता ।

—दीदी ! बचपन को साथ लेकर पुरी हो आओ । स्थान बदलने से मन बदल जाता है ।

—लगता है बड़ा अनुभव है तुम्हारा ।

और थोड़ी देर पहले के आँसू भीगे मुख पर उसकी हल्की मुस्कान वैसे ही निपा उठी जैसे बरसियों के सम्ध्याकाश में फीका किन्तु ज्योतित सन्ध्यातारा । जिसे हम देखते हैं फिर भी नहीं देखते । मुझे बड़ा अच्छा लगा । दीदी रोयीं भी अत्यन्त मन से थी और इस समय मुस्करायीं भी मन से । मन से रोना तथा हँसने पर वैसा ही व्यक्ति हो सुन्दर ही लगता है ।

—और नहीं तो क्या ? तुम समझती हो कि तुम्हारा अनुभव ही बड़ा है ? और किसी का नहीं ?

—बाबा रे सिवाय पाप के मामले को छोड़ और किसी बात में आज दिन तक अपने को बड़ा नहीं माना ।

—झूठ कहती हो तुम ।

—कैसे ?

दीदी प्रश्न भरी आँखें लिये किंचित शैतानी का उत्तर भरसा कर रही थी ।

—तुम गुण से अपने को बड़ा नहीं मानतीं ?

और वातावरण फाल्गुन मास की भाँति हल्का हो आया ।

—अपना इलाज ठीक से क्यों नहीं करवातीं ?

—अपने पाप के रोगों के बारे में डाक्टर से चर्चा करना क्या मुझे लाज न आएगी रे ? माना कि मैंने धर्म देह देवी-देवता सबको अपमानित किया

लेकिन और तो निर्लज्ज न बना कि देह के पापों की चर्चा तेरे आगे भी करने लगूँ। तू नहीं जानता कि एक बार लाज न रहने पर निर्लज्जता की कोई सीमा नहीं होती। और तू बार-बार पूछकर क्या अपनी दीदी को यह नहीं बता रहा है कि मैं नाम देह थी और उस देह की यह दुर्दशा है। इस बारे में चर्चा मत कर विसन! तू नहीं जानता कि मैं अपनी इस नारी-देह से घृणा करती हूँ घिनौनी है मुझे। साहस होता तो इसे चीर फेंकती। सड़े गले चूहे की भाँति इसे बीच सड़क में फेंक देती कि लो यह चूहा है जिसे तुम चाहते रहे। लेकिन जाने कितने जन्म के पाप आड़े आते हैं कि—कोढ़ी हो जाएँ, अंग-अंग गल रहे हों मांस फूल-फूल उठने पर भी हम जीना चाहते हैं। कैसी प्यास है यह जीवन की विसन! घिसटते कुत्ते और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता। हम निरे ढोंगी हैं। सच हम दुःखी भी वास्तव में नहीं होते। दुःख का ढोंग करते हैं ताकि सामने वाला व्यक्ति हमें अपनी दया के आँचल में ढँक ले। हम जीवन भर अपने को सामने वाले को छलते हैं और सम्भवतः इसीलिए यह व्यक्ति बच पाता है। यदि तुम्हें ऐसा नहीं लगता है तो तुम झूठे होगे कि मैं अपने को बार-बार वेश्या कहकर या पतित बताकर सहानुभूति चाहती हूँ। बिल्कुल सही है विसन! मुझे कितना अच्छा लगता है कि तुम लछमन शारदा—कम से कम तीन व्यक्ति तो हैं जो चाहते हैं कि मैं अच्छी हो जाऊँ, जिऊँ। और शायद व्यक्ति परिवार, कुटुम्ब इसीलिए तो होता है कि आप जब मरने लगें तो परिवार के लोग चिन्ता प्रकट करें, रोकर कहें कि नहीं आपको इस समय नहीं मरना चाहिए। कितनी विडम्बना है! लेकिन उससे भी बड़ी विडम्बना यह कि मैं परिवार के संबंधों की पवित्रता पर व्यंग्य कर रही हूँ क्योंकि देह के ये दुष्ट रोग मन को खा रहे हैं। वेश्या का मन कीड़े खाये हुए कपड़े की तरह होता है विसन!

मैं अवाक् बैठा सुन रहा था। वह बात वाली बहुरूपा सी प्रवेगित थी। स्वयं तर्क करती फिर अपना विरोध भी आप ही कर लेती। जैसे वह शस्त्र भर हो जो हत्या तथा आत्महत्या दोनों का निमित्त बने क्योंकि हत्या या आत्महत्या तो शस्त्र के कारण हमें बस दिखलायी पड़ जाती है बाकी वह हत्या या आत्महत्या शस्त्र के उपयोग के बहुत पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी होती है। वे फिर बोलीं —विसन! मेरी बात का बुरा न मानना तू छोटा है न इसीलिए तुझे देख ऐसा ही लगता है कि जैसे अबोध शिशु के सामने माता तक दिगम्बर होने में

बुराई नहीं समझती। मैं भी तो तेरे सामने दिगम्बर ही तो हूँ। फीके साया मन तक दिखा रही हूँ। मुझे नहीं लगता कि उस 'दिन पीपल्या टैंक' पर बचा कर तूने पुण्य नहीं किया बरन पाप ही किया? अर्धमृत को मर जाने देना पुण्य है विमन! बजाय इसके कि उसे शिक्षा देने की चेष्टा की जाए और वह दिन रात हमारे सामने रिसता रिरियाता जिये और जब कभी वह हमारे सामने पड़ जाए तो हम नाक-कान-आँखें बन्द कर मन से एक पैसा निकाल कर चाहें कि यह जल्द आँखों से ओझल हो जाए।

—दीदी! इतना सारा कोसना भी यह सिद्ध नहीं करता कि तुम स्वयं को जितनी पतित परिभ्रहीन कह रही हो वह सही है।

—अरे मैं जानती थी कि सौन्दर्य का जादू तो अब रहा नहीं लेकिन वितृष्णा का स्वांग भरना भी व्यर्थ गया? हाय रे भाग्य!!

और वह अजीब नाटकीय ढंग से अप्रत्याशित हँस पड़ी कि मैं एकदम बौना हो उठा।

—लेकिन ऐसा उसने क्यों किया? श्रीधर! उसके बाद मैं कई दिनों तक नहीं गया।

विमन बाबू की छत पर धूप खूब छितर आयी थी। कमल और श्रीधर तन्मय होकर सुन रहे थे। विमन बाबू बोले

—मैं समझता हूँ कमल! आज बहुत देर हो गयी तुम्हें भी। मैं तो आज सुनाने पर क्या आया कि बस। अरे हाँ श्रीधर! तुम उस दिन अपनी दादा के बारे में कुछ बताना चाह रहे थे न?

और श्रीधर बाबू किंचित मुस्करा दिये। कमल उठते हुए बोली

—मैं तो मालिनी दीदी से मिलने को बहुत उत्सुक हो उठी हूँ विमन बाबू!

—मुझे तो प्रत्येक नारी अपने में सम्पूर्ण इकाई समाप्ति लगती है।

—और प्रत्येक पुरुष एक दूसरे का पूरक न??

श्रीधर की बात का जवाब देकर विमन बाबू बड़ी जोर से हँस दिये।



महाराज बाड़े के सामने आज अपार भीड़ थी। खारे पानी से नमक बनाया जाएगा और अंग्रेजी नमक कानून को चुनौती दी जाएगी। चूँकि यह देसी राज्य था यहाँ नमक पर कर नहीं था इसलिए लोगों को खास कौतूहल था। सवेरे छह बजे के पूर्व महाराज बाड़े के सामने तिल धरने की जगह न रही। तभी भीड़ में अफवाहों की भिनभिनाहट सी उठी। किसी ने जोरों से कहा कि—पी० ए० और ए० डी० सी० अभी बाड़े में गये। लोगों के चेहरों पर अजीब भयात्मक चुप्पी छा गयी। आँखों में शंका तिरने लगी। बाड़े के फाटक और दीवार के पास तैनात पुलिस की ओर हजारों आँखें उठ गयीं। तभी किसन बाबू ने पुस्तके साहब के कान में फुसफुसाया

—आप इसी समय अपना भाषण शुरू कर दीजिए। लोग पी० ए० और ए० डी० सी० का नाम सुनकर लगता है डर गये हैं।

और इसके बाद पुस्तके साहब ने अपना भाषण रौलट एक्ट के बारे में शुरू किया। तभी भीड़ को चीर कर पुलिस सुपरिटेन्डेंट ने आकर पुस्तके साहब को रोका कि वे अपना भाषण बन्द कर दें और यह नमक बनाया जाना भी बन्द किया

जाए। जब दोनों ही बातें बन्द न हुईं तो उनने बढ़कर पुस्तके साहब को मच से नीचे घसीट लिया। पुलिस की सीटियाँ बज उठीं और देखते न देखते पुलिस की लाठियाँ चल पड़ीं। पुलिस ने पुस्तके साहब, मालती देवी को पकड़ लिया था लेकिन विमल बाबू कमल पुस्तके तथा भीमर बाबू को पकड़ इसके पूर्व ही वे तीनों निकल भागे। देखते-देखते भीड़ भाग रही थी और पुलिस-लाठियाँ बरस रही थीं। सूर्योदय हो रहा था। धूप मकानों की छतों पर से उतर कर सड़कों गलियों को पीतल का बना रही थी। थोड़ी देर में ही उस विशाल मैदान में पुलिस ही पुलिस रह गयी। कहीं-कहीं भागे लोगों की चीजें फटी-टूटी यहाँ-वहाँ बिखरी पड़ी थीं। भागते लोगों ने आते कैम सुन लिया कि पुस्तके साहब मालती देवी तो गिरफ्तार हो ही गये लेकिन उनकी लड़की कमल पुस्तके तथा विमल बाबू और भीमर बाबू के नाम भी वारन्ट निकल गये। पर वे तीनों कहीं निकल भागे। शहर में देखते न देखते १४४ धारा लागू कर दी गयी और अब पुलिस, लोगों के घर तलाशी लेने आने वाली है। सारा कारोबार जैसे ठप्प हो गया। सन् १८५७ के बाद पहली बार इन्दौर के भागों के मुँह पर और कानों में 'स्वतन्त्रता' 'स्वराज्य' शब्द गूँज रहे थे।

विमल बाबू जानते थे कि लाठीचार्ज के बाद गिरफ्तारी का वारन्ट तथा तलाशी होगी ही। वे तीनों गलियों से भागते हुए पहले बाग पर पहुँचे। अभी छावनी तक लाठीचार्ज की खबर नहीं आयी थी। लोग आराम से रोज की तरह ही सवेरा किये हुए थे। तरकारियाँ लाने लोग झोले हाथ में लिये निश्चिन्त घूम रहे थे। औरतें पीतल के घड़ा का 'बेवड़ा' सिर पर रखे कुआँ की ओर आ-जा रही थीं। अभी जब थोड़ी ही देर बाद लाठीचार्ज की तथा १४४ धारा की बात फैलेगी तब यही सुखी प्रसन्न निश्चिन्त जीवन अपने को भय से सिकोड़ लेगा। पीतल के चमकते घड़ों के ये बेवड़े घर से घरा में छिन जाएँगे। तरकारियाँ मुँह तक भरे ये पारिवारिक झोले तब चाल से या भाग कर गलियों में छुपते-छुपाते डरते घरों में घुस कर दरवाजा बन्द कर लेंगे। सारा शहर एक बड़ी चुप में चुपा जाएगा। हर घर एक द्वीप की भाँति अपने में कटा हुआ हो जाएगा। इस समय रास्तों पर लोग चल रहे हैं लेकिन थोड़ी ही देर में गदर्र, पुलिस और भय के अतिरिक्त कोई यात्री न होगा। लोग न केवल घर के दरवाजे ही बन्द कर लेंगे बल्कि स्वयं बन्द दरवाजों के घर की तरह हो जाएँगे। बाहर सब कुछ सम्पन्न होता रहेगा— धूप होगी प्रहर बदलेंगे लेकिन लोग और कामों का व्यापार न होगा। लोगों के होते हुए भी शहर जैसे मर जाएगा। लेकिन लोगों तक अभी ये भयानक खबरें

नहीं पहुँची है । वे तीनों तेजी से कदम बढ़ाते बढ़ रहे थे । गिरफ्तारी पुलिस तलाशी आदि का यह अनुभव कमल और श्रीधर बाबू के लिए एकदम नया था । दोनों के मन उत्साह में उछल पड़ रहे थे जैसे रोमान्स रूप रहा हो । बिसन बाबू ने कुछ जरूरी कागज-पत्र तेजी से समेटे और वे तीनों फिर सड़क पर आ गये । अब तक खबरें [illegible] सहमे-सहमे होने लगी थी । बिसन बाबू इस समय किसी भी समाचि[illegible] नहीं जाना चाहते थे । जूनी इन्दौर में गोटा किनारी बेचने वाला एक फ[illegible]गा था जिसके साथ कभी बिसन बाबू ने भी दोपहर में गली-गली आवाज लगाकर गोटा-किनारियाँ बेची थीं । परिवारहीन हरखचन्द फेरीवाला राजस्थान का रहने वाला था । उसके बारे में कोई कुछ विशेष नहीं जानता था । बस वह बिसन बाबू को बहुत मानता था । जिस वेला गलियों से सपाटे मारते हुए हरखचन्द की कोठरी पर पहुँचे वह धूप में बैठा हुआ दतौन कर रहा था । थोड़ी देर पूर्व किसी ने उससे महाराज बाड़े की घटना के बारे में बताया था लेकिन उसने किसी भी बात पर कोई आश्चर्य नहीं प्रकट किया । घुटन्नी धोती कमर में चाँदी का कंदोरा (करधनी) धूँसे बदन का यह राजस्थानी बनिया अजीब असम्पृक्त व्यक्ति था । बायें कान में ऊपर की तरफ एक मोती की बाली तथा सिर पर पगड़ी के रंग का घेरा बना हुआ था । अधेड़ हरखचन्द ने बिसन बाबू को देखा तो किंचित मुस्करा दिया ।

—अहो बिसन बाबू ! बहुत दिनों पर ?

—हरखचन्द जी ! जरा सुनिए, आप से काम है ।

—हाँ हाँ चलो । दो चार बरस में कभी दिखते भी हो तो काम से ही ।

तेजी से वे हरखचन्द की कोठरी में घुसे । पहुँचते ही दरवाजा बन्द कर दिया गया ।

हरखचन्द ने बिसन बाबू की इस हड़बड़ाहट पर किंचित मुस्कुराते हुए कहा

—क्या बात है ? आप लोग बहुत घबराये हुए मालूम दे रहे हैं ।

—हरखचन्द जी । हमारे नाम वारण्ट है

पूरी बात सुने बिना ही हरखचन्द ने लकड़ी के एक जीने की तरफ इशारा करते हुए कहा,

—कोई बात नहीं आप लोग ऊपर चले जाएँ । म जरा आता हूँ अभी बाजार से । मैं नीचे का दरवाजा मत लगाना ।

और हरखचन्द ने अपना कुरता पहना तथा दरवाजा खुला छोड़कर बाहर निकल गया ।

सबकी पर मीना उन तीनों को दुछत्ती वाले एक कमरे में ले गया। वहाँ थोड़ा बहुत फुटकर सामान हरखचन्द ने पटक रखा था। शहतीरों और खपरैलों के बीच से कहीं-कहीं धूप की नीली रस्सियाँ तनी हुई थीं और धूप की चिंदियाँ यहाँ वहाँ छिटकी हुई थीं। एक छोटी खिड़की थी जिससे दूर-दूर का दृश्य दिखता था। दूर पर जाता हुआ हरखचन्द और उसकी जयपुरी [illegible] रही थी। रात इससे अधिक भीड़ यहाँ से दिखती हामी लेकिन इस समय धूप छिपा दृश्य ही अधिक दिख रहा था लोग नहीं के बराबर थे।

—कमल ! इस सेठ हरखचन्द के साथ मैंने भी गोटा किनारी बेचने का व्यापार इन्दौर की गलियों में दोपहर भर घूम-घूम कर किया था।

—सच ??

कमल ने आश्चर्य से आँखें फैलाते हुए कहा लेकिन श्रीधर बाबू चुपचाप ही रह कर विश्वन बाबू की साहसिकताओं के प्रति प्रशंसनीय बने रहे।

शाम तक हरखचन्द के द्वारा इन लोगों को पता लग गया कि वातावरण में अब उतना तनाव नहीं रहा। इन तीनों की खोजखबर काफ़ी कम की गयी तथा अभी भी जारी है लेकिन कहीं पता नहीं लग पा रहा है। चूँकि 'गोल्ड एक्ट' का देशी राज्यों से कोई सम्बन्ध नहीं था इसलिए पुष्पके साहब तथा मालती देवी के रिहा कर दिये जाने की संभावना है। दो-तीन दिनों में ही इनके नाम के वारन्ट भी रद्द कर दिये जायेंगे।

दूसरे दिन से फिर शहर का सारा कारोबार चल निकला।

हालांकि हरखचन्द की बिल्कुल इच्छा नहीं थी कि ये लोग घर से कहीं बाहर जाएँ लेकिन वे तीनों अल्ल सवेरे ही निकल पड़े। काफ़ी ठण्ड थी। ये लोग उज्जैन जाने वाली सड़क पर निकल आये। जिस समय वे लोग शहर को बहुत पीछे

छोड़ चुके उस समय धूप खेतों में हरिणी की भाँति निश्चिन्त फुदक रही थी। सड़क-सड़क चलना खतरनाक हो सकता था इसलिए पीठ पर सूर्य किये वे खेतों के बीच पगडंडी से बढ़ते रहे। अपनी लम्बी-लम्बी छायाएँ खेतों में बिछाते हुए वे लोग उस झील की तरफ बढ़ रहे थे जहाँ कभी विपिन बाबू आये थे। शहर कम से कम तीन-चार मील दूर तो रहा ही होगा। सामने बड़ी ऊँचाई पर जैसे बाँध था और उसके साथ कतारबद्ध पेड़ों की कतार चली गयी थी।

—आओ कमल ! थक तो गयी होगी लेकिन ऊपर पहुँच कर तबियत खुश हो जाएगी।

और सचमुच घने पेड़ों से चारों ओर से यह झील घिरी हुई थी। खूब पानी था। लकड़ी का एक घाट बना हुआ था जहाँ दो चार नावें थीं। झील के बीच में पक्का चबूतरा बना हुआ था। पानी जैसे लबालब भरा था। हल्की हवा से पानी में खूब लहरें उठ रही थीं। पीछे की तरफ इन्दौर शहर हल्का दिख रहा था। मिलों की चिमनियों से धुंआ आकाश में अजगर की भाँति रेंग रहा था। इस तरह घर से बाहर मारे-मारे फिरते तीसरा दिन था आज।

—विपिन ! चलो नाव से उस बीच वाले चबूतरे पर चला जाए।

कमल का प्रस्ताव सुनकर श्रीधर बाबू बोले

—जरूर चलना चाहिए। चारों ओर लहरों से भरे जल से घिरे होने पर बहुत अच्छा लगता है।

—भाई ! मुझे अच्छा-अच्छा तभी लगता है जब पेट भरा हो।

विपिन बाबू की बात सुनकर सब हँस पड़े।

—अजीब पेटू हो विपिन ! सवेरे से ही भूख लग आयी ?

कमल ने हँसते हुए कहा।

—मुझे क्या मैं जाता हूँ पास ही जो गाँव दिख रहा है वहीं से माँग कर खा आता हूँ आप लोग दिन भर मस्त बनकर भूखों मरिएगा।

पास के एक गाँव से खा-पीकर जब वे लोग वापस झील पर पहुँचे तीसरा प्रहर था। डाँड़ चलाते विपिन बाबू को कमल किंचित मंत्रमुग्ध होकर देख रही थी कि व्यक्ति कितना खुला साहसी तथा निश्छल है। श्रीधर बाबू शान्त रहे थे

कि कमल से विपिन को विवाह कर लेना चाहिए लेकिन गृहस्थी का क्या होगा ? तीनों ही सोच रहे थे अपने में। काफी देर तक किसी को ध्यान नहीं हुआ कि वे लोग चुप हैं क्योंकि विपिन बाबू तो कमल के बारे में ही सोच रहे थे कि किस तरह कमल से विवाह का प्रस्ताव किया जाए। हठात् तीनों को लगा कि अजीब शान्ति नाव जल किनारों तथा पेड़ों की फुनगियों पर टिकी धूप तक में है। केवल चौड़ के छपाछप की ही आवाज है। कोई वनपाखी तक नहीं था जो कि विपिन को प्यार देता है बार-बार टेर कर बताये कि यहाँ इस पेड़ के तने में पगडण्डी के रास्ते इस घाटी में वनदेवी आयी है।

—श्रीधर ! संसर्ग दोष इसी को कहते हैं।

और विपिन हँस दिये।

—संसर्ग दोष ?

—और क्या ? मूर्खों की तरह चुप रहना मुझे तुम्हारे संसर्ग से ही तो आया वर्ना बताओ जिस कमल से मिलने के लिए आकुल होकर मैं बम्बई तक जाता हूँ भला वह इतने आत्मीय सन्दर्भ में मेरे साथ एक ही नाव में हो तो मुझे कितना कुछ नहीं बोलना चाहिए !

—लेकिन यह भी तो श्रीधर बाबू के संसर्ग से ही तुम्हें आया कि जब बाहरी व्यक्ति उपस्थित हो तो नारी का सम्मान किया जाना चाहिए।

और तीनों खिलखिला पड़े।

झील के चबूतरे पर जाल वहीं से कहीं धूप का एक टुकड़ा आया और कमल उसमें नहा उठी। अजीब चुप्पी थी कि टूट ही नहीं रही थी। लगता था तीनों फिर सोचने लगे। यह चुप टूटे इसका प्रयत्न दो-एक बार किया गया लेकिन लगता सार बार-बार टूट जाता है। हठात् तीनों फिर चुप हो गये। श्रीधर बाबू को इस बार लगा कि इन दोनों की चुप के एकमात्र कारण वे हैं। ये दोनों अवश्य कुछ बातें करना चाह रहे होंगे लेकिन उनकी उपस्थिति के कारण नहीं कर रहे हैं। पर झील के बीच बैठकर वे कैसे कहीं जा सकते हैं ?

—मुझे नहीं होना चाहिए था यहाँ इस समय।

—क्यों ?

श्रीधर बाबू की बात पर कमल ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

—बात तो ठीक है श्रीधर ! तुम्हारी।

—क्या बात ठीक है ?

विपिन की ओर मुँह कर कमल सप्रश्न हुई।

छाड़ चुके उस समय धूप खेतों में हरिणों की भांति निश्चिन्त फुदक रही थी। सड़क-सड़क चलना खतरनाक हो सकता था इसलिए पीठ पर धूप लिये वे लोग खेतों के बीच पगडंडी से बढ़ते रहे। अपनी लम्बी-लम्बी छायाएँ खेतों में बिछाते हुए वे लोग उस झील की तरफ बढ़ रहे थे जहाँ कभी विपन बाबू आते थे। दोपहर कम से कम तीन-चार-मील-दूर तो रहा ही होगा। सामने बड़ी ऊँचाई पर जैसे बाँध था और उसके साथ कतारबद्ध पेड़ों की कतार बनी गयी थी।

—आओ कमल! थक तो गयी होगी लेकिन ऊपर पहुँच कर तबियत खुश हो जाएगी।

और सचमुच उसने देखा कि, चारों ओर से वह झील घिरी हुई थी। खूब पानी था। लकड़ी का एक घाट बना हुआ था जहाँ दो-चार नावें थीं। झील के बीच में पक्का चबूतरा बना हुआ था। पानी जैसे लबालब भरा था। हल्की हवा से पानी में खूब लहरें उठ रही थीं। पीछे की तरफ इन्दौर शहर हल्का दिख रहा था। मिलों की चिमनियों से धुँआ आकाश में अजगर की भांति रेंग रहा था। इस तरह घर से बाहर मारे-मारे फिरते तीसरा दिन था आज।

—विपन! चलो नाव से उस बीच वाले चबूतरे पर चला जाए।

कमल का प्रस्ताव सुनकर श्रीधर बाबू बोले

—जरूर चलना चाहिए। चारों ओर लहरों से भरे जल से घिरे होने पर बहुत अच्छा लगता है।

—भाई! मुझे अच्छा-अच्छा तभी लगता है जब पेट भरा हो।

विपन बाबू की बात सुनकर सब हँस पड़े।

—अजीब पेटू हो विपन! सवेरे से ही भूख लग आयी?

कमल ने हँसते हुए कहा।

—मुझे क्षमा, मैं जाता हूँ पास ही जो गाँव दिख रहा है वहीं से मोल कर ला जाता हूँ आप लोग दिन भर मस्त बनकर भूखों मरियेगा।

पास के एक गाँव से खा-पीकर जब वे लोग वापस झील पर पहुँचे तीसरा प्रहर था। नाव चलाते विपन बाबू को कमल किंचित मंत्रमुग्ध होकर देख रही थी कि व्यक्ति कितना भला साहसी तथा निश्छल है। श्रीधर बाबू सोच रहे थे

कि कमल से विपिन को विवाह कर लेना चाहिए लेकिन गृहस्थी का क्या होगा ? तीनों ही सोच रहे थे अपने में। काफी देर तक किसी को ध्यान नहीं हुआ कि वे लोग चुप हैं क्योंकि विपिन बाबू तो कमल के बारे में ही सोच रहे थे कि किस तरह कमल से विवाह का प्रस्ताव किया जाए। हठात् तीला को लगा कि अजीब शान्ति नाव अस किनारों तथा पेड़ों की फुनगिया पर टिकी हुई हुक में है। केवल डाँड़ के छपाछप की ही आवाज है। कोई बनपाखी तक नहीं था जो कि विपिन को स्वर देता है बार-बार टर कर बताये कि यहाँ इस पेड़ के तने में पगडण्डी के रास्ते इस डाली में बनदेवी सोयी है।

—श्रीपर! संसर्ग दोष इसी को कहते हैं।

और विपिन हँस दिये।

—संसर्ग दोष ?

—और क्या ? मूर्खों की तरह चुप रहना मुझे तुम्हारे संसर्ग से ही तो आया वर्ना बताओ जिस कमल से मिलने के लिए आकुल होकर मैं बम्बई तक जाता हूँ भला वह इतने आत्मीय सम्पर्क में मेरे साथ एक ही नाव में हो तो मुझे कितना कुछ नहीं बोलना चाहिए!

—लेकिन यह भी तो श्रीपर बाबू के संसर्ग से ही तुम्हें आया कि जब बाहरी व्यक्ति उपस्थित हो तो नारी का सम्मान किया जाना चाहिए।

और तीनों खिलखिला पड़े।

झील के चबूतरे पर आते वहाँ से आती धूप का एक टुकड़ा आया और कमल उसमें नहा उठी। अजीब चुप्पी थी कि टूट ही नहीं रही थी। लगता था तीला फिर सोचने लगे। यह चुप टूटे इसका प्रयत्न एक-एक बार किया गया लेकिन लगता तार बार-बार टूट जाता है। हठात् तीला फिर चुप हो गये। श्रीपर बाबू को इस बार लगा कि इस दोनों की चुप के एकमात्र कारण वे हैं। वे दोनों अवश्य कुछ बातें करना चाह रहे होंगे लेकिन उनकी उपस्थिति के कारण नहीं कर रहे हैं। पर झील के बीच पैठकर वे कैसे कहीं जा सकते हैं?

—मुझे नहीं होना चाहिए था यहाँ इस समय।

—क्यों ?

श्रीपर बाबू की बात पर कमल ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

—बात तो ठीक है श्रीपर! तुम्हारी।

—क्या बात ठीक है ?

विपिन की ओर मुँह कर कमल प्रसन्न हुई।

—अरे नहीं कि—दो प्रेमियों के बीच मैं मूसर चन्द
और विपन 'हा-हा' कर हँस पड़े। कमल थोड़ा लजा गयी। वह बोली
—तुममें जरा भी लज्जा
—मुझ में ही नहीं कमल! मेरे गाँव के किसी भी आदमी में यह दुर्गुण कभी नहीं था।
हँसते हुए तीनों को लगा कि वातावरण हल्का हुआ। अच्छा लगा।
—क्यों अब चलना नहीं है?
कमल ने ढीले जूड़े की पिन ठीक करते हुए कहा।
—जैसी तुम्हारी मर्जी लेकिन मैं चाह रहा था कि सूर्यास्त को साक्षी करके श्रीधर को गवाह बनाकर तुमसे विवाह का प्रस्ताव करता और चलो आज न सही। गाँधीबाबा फिर कोई आन्दोलन छेड़ेंगे तो फिर इसी तरह भागकर कहीं चलेंगे। लेकिन अबकी बार प्रस्ताव मैं मांडव के उस बुर्ज में खड़े होकर पेश करना चाहूँगा जहाँ से रूपमती नर्मदा के दर्शन किया करती थी।
श्रीधर बाबू अवाक होकर बोलते विपन को देख रहे थे। कब यह व्यक्ति गंभीर और कब नहीं थाह ही नहीं लगती। कितनी गंभीर बात को कैसे चलताऊ ढंग से कह रहा है कि बस। जब कि कमल को इतने खुलेपन पर वैसी ही लाज आयी जैसे सहसा साड़ी पिंडलियों तक ऊँची हो आयी हो लेकिन यह मन हो आये कि इस मुँहे बरस के विपन को अपने चुम्बनों से टोक दे बस टोक दे। कैसा है यह व्यक्ति?? दोनों ने देखा कि सूर्यास्त के लिए आकर सूर्य को विपन बाबू देखने का भाव बहाना किये हैं। असल में तो वे अपने को छुपा रहे हैं। भला कमल से विपन बाबू अपने को अब और क्या छुपा सकेंगे? वह बढ़ी और उसने पीठ किये विपन के कंधे पर अपना हाथ रख दिया। श्रीधर बाबू तन्मय थे। कितना वैसा वातावरण था जैसे किसी देवता का मुख हो। श्रीधर बाबू ने अत्यन्त सुखी मन से दोनों को अपनी पीठ की आड़ में ले लिया। केवल पीठ के पार उन्होंने विपन बाबू का स्वर सुना
—चलो कमल! चलें न?
—हाँऽऽ, साक्षी और गवाही दोनों ही तो हो गयी।
विपन बाबू की हल्की हँसी सुनायी दी।
लौटते न नाव में फिर मौन था।

उस दिन वाणी घटना मंत्री के लिए आया-गया हो गयी। रात कमल जब बम्बई जा रही थी तो विमल बाबू के साथ माथुर बाबू स्टेशन नहीं गये थे। लेकिन स्टेशन पर विमल बाबू की बातों से लगा पुस्तक साहब और पत्नी मालती देवी को कमल और विमल की यह मैत्री बहुत सुखकर नहीं लग रही थी। संभवतः आयोजन के इन तीन-चार दिनों में कमल का इस प्रकार विमल के साथ-साथ घूमते रहना भी उन्हें बहुत नहीं सुहाया। बहुत देर रात तक विमल बाबू कमल से हुई बातों के यहां-वहां के टुकड़े बताते रहे। इन सब बातों से वे दुःखी ही थे यदि कहीं कुछ सन्तोष था तो मात्र यही कि कमल अत्यधिक साहसी थी। आज वैसे भी रविवार था और अगले दिन उत्सव न दौड़-धूप थी न किसी तरह का गहमागहम। विमल बाबू अभी भी ताश खेलने जा रहे थे। दिन भर कहीं अपनी ही धुन गाने लग थे। बातों के लिए जैसे बल प्राप्त हो रहे थे। सवेरे की धूप में जो पहले मामा-मौसी वाला उदास रहता था अब वैसे सब नहीं रह गया था बल्कि एक नया विश्वास की चमक आ गयी थी। दिन-ब-दिन को देखकर ज्यादा ऐसा लगता कि जैसे आज ने आगे कल्पनी शुरू कर दी है। लेकिन इस समय तो

सवेरा था। छत पर धूप फैली हुई थी। नदी में लड़के चिल्ला-चिल्लाकर नहा रहे थे। सारा व्यापार यथावत था। तभी विशन बाबू आँख मलते हुए आये और बोले

—मेरा तो ख्याल है कि दुनिया में अगर ब्राह्मण लोग न हों तो सूर्य तक को चैन हो जाए। तुम लोगों के नहाने-धोने पूजा-पाठ के डर से सूर्योदय जल्दी होता है।

—लेकिन विशन बाबू! ब्राह्मण बेचारे हैं ही कितने? अब्राह्मणों से कहिए न कि ज़ोर लगाएँ। बहुमत है बहुमत।

—पापी लोग जितने ही कम हों वज़न उतना ही अधिक होता है। जानते नहीं एक पापी ही नाव को ले डूबता है।

और वे लोग हँसने लगे।

—श्रीधर! कोई आया तो नहीं था?

—क्यों? कोई आने वाला था क्या?

—पता नहीं सवेरे-सवेरे नींद में बराबर मुझे ऐसा लगता रहा कि मुझे पुस्तके साहब ने बुलवाया और उनसे काफ़ी झड़प हो गयी।

—किस मामले में?

—यही कि इन्दौर में गधे अधिक हैं या घोड़े?

—अच्छा??

—जी हाँ पण्डित श्रीधर नाथ ठाकुर! मैंने कहा कि इन्दौर में एक भी गधा नहीं था लेकिन कुछ ही दिन हुए देहात से एक गधा आ गया है।

और वे ज़ोरों पर हँस दिये।

—वाह जनाब! सवेरे-सवेरे ही

—जो आदमी यह नहीं समझ सकता कि भावी ससुर और भावी दामाद में क्या क्या बातें हो सकती हैं उस भले आदमी को गधा न कहा जाए तो क्या कहा जाए?

—तब तो आपके ससुर साहब ने आपकी खूब खातिरदारी की होगी।

—अरे साहब वो-वो जाने दिखाये कि बस—

—विशन! तुम पता नहीं हर बात को गम्भीर बनाकर क्यों सामने रखते हो?

—क्या करूँ? बताओ मैं जानता हूँ कि पुस्तके महाशय कभी भी कमल का विवाह मेरे साथ नहीं होने देंगे। सपने में उनसे बड़ी झड़प हुई। सच मानो श्रीधर! मुझे उनकी आँखों में हिंसपशु की चमक दीखी। मेरी आत्मा कहती है कि यदि कमल की शादी मुझ से हो गयी तो वे मुझे मिटा देने के लिए सब कुछ कर सकते हैं।

—तो फिर तुम कमल से विवाह मत करो।

—श्रीधर! अभी भी कहता हूँ कि तुम अपने घर लौट जाओ। इतना भोलापन लेकर सिवाय ठोकरें खाने के और कुछ हाथ नहीं आएगा। भले आदमी! यह दुनिया है। क्या अपनी दुर्गति करना चाहते हो? गोमुखी में बाघनख छिपाये इन 'भक्तजनों' ने हर यशस्वी नारी को कन्यादान प्रदान किया और हर पुरुष को दास बनाया। श्रीधर! इन 'भक्तजनों' की नाक पर यदि घूँसा मार सकते हो तब तो घर-परिवार छोड़ना वरना

और श्रीधर बाबू ने आज पहली बार विमल को क्रोध में फुँकते देखा। मुँशी यह परम्परा रही थी जैसे म्यान में निकली तलवार हो।

—श्रीधर! आज अपनी भाभी के पास जाना चाहता हूँ, चलोगे? सोचता था कि मैं ही तुम्हारे साहब से कमल के बारे में बातें करूँगा लेकिन कल रात स्टेशन पर उनका व्यवहार देखकर लगा कि नहीं, ऐसा करना ठीक नहीं होगा।

—मेरा भी ख्याल है कि तुम्हें इस बारे में उनसे कोई बात नहीं करना चाहिए। वैसे अपनी भाभी से भी पूछ देखना।

—उनसे क्या पूछूँगा? वो एक दूसरी आदर्शवादी श्रीधर हैं। स्नेह से वह बरसा हो गयी थीं मन से तो वह देवता ही रहीं आजन्म जन्म-जन्मान्तर से। और देवता मुझे निर्जीव लगते हैं।

बिना काजल अँधेरी आँख सा सन्ध्याकाश और उसमें आँसू सी टिकी सन्ध्या थी जब श्रीधर बाबू और विमल बाबू सान्याली के घर पहुँचे। बाहर के फाटक पर ही लछमन मिल गया था। बाहरी बैठक में बैठाकर वह अन्दर सूचना देने चला गया। श्रीधर बाबू बड़े ध्यान से सभी चीजों को देख रहे थे। तभी लछमन आकर विमल बाबू को बुला ले गया। अब श्रीधर बाबू बैठक में नितान्त अकेले रह गये। बैठक की सारी सज्जा से स्पष्ट था कि यहाँ अब कोई नहीं बैठता है। वह सब इसलिए है कि उन्हें ऐसा ही रखा गया था। किसी वस्तु पर धूल नहीं थी उतना भी नहीं लग रही थी कि जब कोई नहीं बैठता है तब उन्हें सुर

मिल क्यों किया जाए ? सब में अत्यन्त व्यवस्था थी लेकिन जिस वस्तु में मानवीय हाथों की छुअन या मानवीय-स्पर्श नहीं होता है उस को अजीब भिन्नता का आभास करती है वही लग रही थी । फ्रेमित चित्रों और कलियों में एक अजीब अपनापन था । अनेक बार चीजें भी होती हैं यानि सुन्दर भी होती हैं इन्हें लगता है कि वे मुस्कराती हैं बुलाती हैं लेकिन हाय रे विवशता—वे बस इसी ही हैं । न वे देखती हैं न सुनती हैं । न उनमें सपने होते हैं न मोह न दूर के क्षितिज न पास का आश्वासन—जैसे कौड़ियों को किसी ने पलकें लगा दी हों । मूर्ति अन्वेषण से डर नहीं लगता जितना कि इन सूनी आँखों के अपनेपन से लगता है । बड़ा अजीब है कि चीजों पर बैठते रहिए तो उनका काष्ठभार हठात कम होता है, लेकिन न बैठने पर शायद तिनका भी शेषभाग के लिए भारी हो जाता होगा । जीवन का यही तो कारण है कि वह भार नहीं होता । हम वस्तुओं के बिना रह सकते हैं लेकिन वस्तुएँ मानवीय अभाव में नहीं रह सकतीं । श्रीधर को लगा कि यह बैठक कभी की मर चुकी है ।

कमरे के पार किसी के खाँसने तथा गड़बड़ बोलने की आवाजें आ रही थीं । तभी चिक उठाकर उज्ज्वल ताम्रवर्ण की आभा वाला एक नारीमुख यद्यपि कम हँसता प्रणाम करता चला दिखा ।

—श्रीधर बाबू ! आइए, भीतर आइए ।

—मैं तो मात्र श्रीधर हूँ ।

और मालिनी एक बड़े फूल सी खिल आयी । मालिनी के साथ जब श्रीधर बाबू भीतरी बैठक में पहुँचे तो देखा कि विपिन बाबू गाव तकिया पीठ में रखे खिड़की के पार देख रहे हैं ।

—देखा श्रीधर ! विपिन अपनी दीदी की कितनी चिन्ता रखते हैं कि आज महीनों बाद आये । मैंने तो उस दिन ऐसी कोई बात नहीं कही थी ।

और श्रीधर समझ गये कि जब तक वे बाहर बैठक में थे दोनों के बीच कुछ बातें हुई हैं । यह भी स्मरण आया कि जब ही जब से वे इन्दौर आये हैं तब से एक बार भी विपिन बाबू अपनी इस दीदी के पास नहीं आये । बात कहकर मालिनी अन्दर चली गयी थी । वे थोड़ी देर में ही लौट आयीं साथ में चाय की ट्रे लिये शारदा भी थी ।

आते ही बोलीं

—श्रीधर ! जप-तपस्या सब ब्राह्मण के हाथ का है ।

—दीदी ! आप भी कैसी बातें कर रही हैं ।

श्रीधर की बात पर किशन बाबू बोले
—दीदी ! आपको मालूम होना चाहिए कि श्रीधर बिल्कुल ही दर्शनी से आक्रान्त हो गया है।
—दर्शनी से ? क्या मतलब ?
हँसते हुए मालिनी ने पूछा।
—और नहीं तो क्या ? मुझ जैसे ही आक्रान्त होता है।
तीनों हँस रहे थे।
—श्रीधर ! तुम किशन की बात का जवाब क्यों नहीं देते ? तब तो यह सिर चढ़ जाएगा।
—किशन का काम और इस पगला ही जानता है।
—अरे वाह ! तुमने अपना जादू श्रीधर पर भी चला रखा है ?
हँसते हुए मालिनी बोली।
—तो क्या दीदी तुम पर भी चला जादू है ?
—देवताओं पर कोई जादू नहीं चलता, उन्हें उनका ही जादू होता है।
—दीदी ! बार-बार अपने को इतना कहकर क्या बड़ा सुख होता है ?
किशन ने अत्यन्त पीड़ित होकर कहा।
—तुम लोगों को जब देखती हूँ किशन ! तो भूल जाती हूँ और मन जाने कहाँ कहाँ भटकने लगता है रे, एक बड़े परिवार पर जहाँ तुम लोग होते हो वहाँ उड़कर पहुँच जाती हूँ और तभी अच्छा लगता है कि मुझ अभागिन का ऐसा भाग्य कहाँ ? अन्त ही तक भाई भी भाग हैं। इसीलिए बार-बार दुहराती हूँ कि मैं मात्र बच्ची ही हूँ। तुम लोग मदन की सम्पत्ति हो।
—लेकिन अपने को बार-बार ऐसे कोसना मुझे नहीं अच्छा लगता।
—किशन ! मनुष्य को पाँचों इन्द्रियों से देख हो स्वीकारना चाहिए जैसे कि वह भाग हो। बिना ऐसा किये और मुक्ति कहाँ गति नहीं। मैं भी वैसी हूँ श्रीधर भाग हो जाता है और भाग रहा करता कि कभी है कहीं छिपने चलो है। श्रीधर ! किशन क्या यह न कि तुम
—हाँ दीदी ! वो भी मसाला बन रही है।
—तो तुम्हें भी अपनी राजनीति में यह भाग रहा है ?
—फिलहाल तो यहाँ लग गया है।
—क्यों भाभर ! मैंने कब कहा कि आप राजनीति में आयें ?
किशन भी इस प्रकार श्रीधर और मालिनी हँस पड़े। मालिनी बोली

—नहीं होता है होम करते हाथ जलता है।

और दोनों को लगा कि वातावरण थोड़ा स्वस्थ हुआ।

—तुम्हारे उस दिन की मीटिंग में मैं भी आना चाहती थी और तुम्हें देखना चाहती थी लेकिन उसके पूर्व ही सुना लाठियाँ चल गयीं।

—और यह नहीं लछमन ने बताया कि विपन बाबू पुलिस के हाथों बाल-बाल बचकर भाग निकले ?

—लछमन ने तो यह भी बताया कि तुम श्रीधर और प्रेस के मालिक की लड़की तीनों साथ-साथ निकल आये।

और वो हँस दी।

—लछमन को तुम्हारे यहाँ नहीं पुलिस में नौकरी करनी चाहिए थी।

श्रीधर को लगा कि विपन बाबू और मालिनी में इतने दिनों न मिलने पर मान चल रहा है। पता नहीं क्यों मालिनी अच्छी लग रही थी।

—अब तुम्हीं बताओ श्रीधर ! एक तो बेचारा लछमन इनकी खोज-खबर रख कर मुझे बताता रहता है कि ये हमेशा क्या करते फिर रहे हैं उस पर ये हैं कि उस बेचारे लछमन पर ही बिगड़ रहे हैं।

—मैं बिगड़ कहाँ रहा हूँ ?

—अब मैं तुम्हें न जानूँगी ? तुम लाख चेष्टा करो कि दीदी को भूल जाओ लेकिन हम लोग तो ऐसा नहीं कर पाती हैं न ? जरा सा उस दिन सिरहाने बैठने के लिए मना क्या कर दिया कि आज महीनों बाद मुँह दिखाया। पूछो तुम्हीं इनसे पूछो कि जाने कैसी-कैसी अनही-अनजानी व्याधियाँ लाके मेरे पास ऐसे बैठा जाता है ? श्रीधर ! तब मानना यह विपन लाख तुम लोगों के लिए नेता हुआ लेकिन मैं जानती हूँ कि यह कितना कुछ समझता है।—श्रीधर ! सुना तुम तो गृहस्थ आदमी हो क्यों नहीं अपने मित्र को किसी खूँटे से बाँध देते ?

—अब आप दीदी हैं, क्यों नहीं कुछ आप ही प्रबन्ध कर देतीं ?

—तुम इनसे पूछो न कि कहीं कोई है क्या ?

—क्यों लछमन इस बारे में कुछ पता न लगा सका ?

और विपन बाबू हँस दिये।

—एक बार कुछ पता लगाकर आया तो था लेकिन मुझे विश्वास न आया।

विपन बाबू का चेहरा हल्का फक पड़ गया।

—क्यों ? विश्वास क्यों नहीं आया ? कौन थी वह लड़की ?

श्रीधर सप्रश्न हुए।

—विमल ! बताओ तो कौन है वह लड़की ?

—जब तुम सब जानती हो तो फिर क्या नाम न मालूम कर सकीं ?

इस बार मालिनी काफी जोरों पर हँस दी बाबा

—विमल ! तुम क्या समझते हो कि मुझ या सज्जन को सिर्फ यही काम है कि दिनभर तुम्हारी निगरानी ही करते रहें ?

—मैंने तो नहीं कहा।

—तब फिर ? मैंने तो लड़की वाली बात यूँ ही कह दी थी। तुम कहीं भी विवाह करो मुझे सुख ही होगा। लेकिन बस एक ही शर्त है।

—क्या ?

—ब्याह के पूर्व मैं लड़की देखना चाहूँगी। इसका मतलब यह मत समझना कि मैं उससे कोई बातें करना चाहूँगी या तुम उस बारे में मुझसे कोई परामर्श लेना। नहीं। मैं तो उस पर अपना आधिपत्य छाया तक नहीं पड़ने देना चाहती। बस दूर से देखना चाहती हूँ। सोचा हूँ न ? अपने सामर्थ्य भर यहाँ की तुष्टि करना चाहती हूँ। वर्ना जीवन भर यही सालेगा कि विमल ने अपनी बहू को ब्याह के पूर्व नहीं दिखलाया।

—दीदी !

—क्या है रे ?

—तुम पुष्पके साहब को जानती हो ?

—हाँऽऽ, वो जो वकील हैं ? उन्हीं को तो डिब साहब व लड़कों ने मेरे खास मामले में वकील बनाया है।

—तुम्हारे खास मामले में ?

—हाँ क्यों ? वे तो मुझे बड़े भाई जैसे भी तो हैं।

—यों ही।

—तो फिर ?

—अच्छा आज नहीं फिर कभी कहूँगा।

—ये सब तो कानूनी बातें हैं विमल ! तू अपनी बात बता।

—मैं बताऊँ किसको ?

श्रीधर ने देखा कि विमल बाबू संभवतः बता नहीं पा रहे हैं।

—तुम्हीं बता दो श्रीधर ?

और विपिन कमरे के बाहर चले गये उसी तरफ जहाँ कि सरदार सिंघे और मालिनी ने दिन थे। छज्जे में पड़ी एक आरामकुर्सी पर जाकर लेट गये। नीचे के रेतीले मैदान में लैम्प की रोशनी मन्द बिछी थी। चारों ओर सन्नाटा था। मौत पड़े काफी देर हो चुकी थी। कमरे इतने बड़े थे कि एक लैम्प की रोशनी खोयी सी लग रही थी। कभी किसी का दूर कुछ बोलना सुनायी पड़ जाता वर्ना तो सारा वातावरण एकदम स्थिर था कि अपनी ही धड़कन साँस तक सुनायी दे रही थी।

विपिन, मालिनी दीदी के बारे में इस वीरान वैभव के बारे में सरदार सिंघे के बारे में और सबसे ज्यादा उस पाप के बारे में सोच रहे थे जो कि मालिनी की उसकी देह को आत्मा को जन्म जन्मान्तर के लिए न भी सही लेकिन इस मोह के लिए तो विषैला कर ही गया था। विपिन या और कोई लाख चाहे लेकिन मालिनी की मुक्ति इससे सम्भव नहीं थी। पुण्य तो क्षणिक होता है लेकिन पाप अनन्त होता है। स्मरण के लिए पुण्य नहीं बना है, वह तो पाप है, खासकर दूसरे का पाप जो कि याद रखा जाना चाहिए। मालिनी कहीं भी जाए अब दुनिया उसे जीने नहीं देगी। विपिन बाबू को लगा कि इस मृत वातावरण में मालिनी किस प्रकार क्षण-क्षण टूटती होगी। और जाने कब से टूटते-टूटते उस दिन अन्तिम टूट कर पीपल्या टैंक पर आत्महत्या के लिए गयी होगी। आज उस बात को भी काफी समय हो गया। तब से अनुमान फिर रिसते रहने के लिए दीदी जी रही है। जाने कितनी नन्ही बीमारियाँ लिये इस नगर के पेट जैसी कोठी में दीदी की एक-एक साँस घुट रही है। यहाँ की दीवारें जब रात के अँधेरों में सुनहरी हो जाती होंगी। सरदार कहीं तो जाती होगी और सम्भवत नीचे किसी दालान में गुर्राहट भर रहा हुक्का होगा तब दीदी की कच्ची-कच्ची पलकें इसी अँधेरे में फटी-फटी सी कुछ सहारे के लिए जगी चिमगादड़ों सी इन दीवारों पर अँधेरा टटोलती छिपकली सी रेंगती रहती होंगी। और ऐसे जाने कितने दिन कितनी रातें बीत गयी होंगी। न इनका कोई अन्त दिखलायी देता होगा और न कोई ऐसा व्यक्ति जो नारी के इस सहज विषय अँधेरेपन को अपना सके। जिस व्यक्ति ने हाथ पकड़ा था वह इतना कामी विलासी और देह-लोलुप था कि वह वेश्या ही बना सका पत्नी नहीं। इतना सब होने पर भी जाने कैसा संस्कार है इस नारी का कि अपरिचित विपिन क्या करता है, कहाँ रहता है क्या खाता है का ध्यान बिना घर से बाहर गये भी अनुमान रखती आयी है। क्या मैं इसे माँ या दीदी कह कर, माँ बनाकर इस इसके मन [illegible] से मुक्त कर सकता हूँ? क्या यह मिथ्या प्रदर्शन भर नहीं है? क्योंकि माँ या दीदी बनाकर उसके व्यक्ति के

सुख-दुःख से हम अपने को असम्पृक्त कर लेते हैं। दूर-दूर का बड़ा ही मधुर-मधुर संबंध बन जाता है जिसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है। हममें साहस नहीं कि बढ़कर हम उसका हाथ पकड़ लें और कहें कि आओ मेरे पार्श्व में खड़ी हो जाओ तुम मेरी नारी हो और मैं तुम्हारा पुरुष !! और मेरी नारी को उसके पुरुष के रहते देखें कोई कैसे लांछित कर जाता है ??

सहसा बिसन बाबू को लगा कि वे सोचते-सोचते किस भयंकर निर्णय की सीमा पर पहुँच गये हैं। क्या वे अपनी दीदी को ही अपनी 'नारी' बनाएँगे ? और अँधेरे में आती दीदी दिखीं। क्रमशः प्रकाश में आती दीदी का आकार स्पष्ट होता जा रहा था। कन्धे पर सूखती महीन धोती चलने से हिल रही थी। उस मन्द आलोक में दीदी के मुख की व्याधियाँ तथा परिताप सभी अस्पष्ट थे। धूमिल मुखाकृति कुल मिलाकर सुन्दर लग रही थी। आज तक जिस मुख को दीदीमुख माना उसे कभी नारीमुख की भाँति विश्लेषित नहीं किया कि भला यह मुख अब अँजुरी में हो या बिलकुल अधरों के पास हो तो कैसा लगेगा ? सम्बन्ध की पवित्रता मुख को भी पवित्र रहने देती है लेकिन जब वही सहज संबंध के स्तर पर देखा जाता है तब ओठों की बनावट नासापुट, पलकों का मुँदना ग्रीवा की चिकनाई सब पर ध्यान जाता है। बाँहें हमें घेर कर कैसी लगेंगी ? और जब भरा भरा वक्षस्थल तथा पेट हमसे सटा होगा तो तो … और हँसती हुई दीदी दरवाजे की चौखट में चित्र बनी हुई थीं।

—री पगले ! इसमें इतने घबराने की क्या बात थी ?

—नहीं यह बात नहीं थी

—क्या कमला बहुत सुन्दर है रे ? देख भाई ! मेरी बहू खूब सुन्दर होनी चाहिए। कौन दस-पाँच भाई हैं मेरे।

—लेकिन मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

—मैंने सब सुन लिया। पुन्नाके साहब जरूर ही इस विवाह के लिए नहीं तैयार होंगे। क्या करूँ मुझ मुँहजली के पैरों पड़ने से वह मान सरल होते ना मैं एक क्षण को भी लाज नहीं करती बिसन ! … तेरे लिए नहीं बल्कि अपने स्वार्थ के लिए।

—क्या स्वार्थ है इसमें तुम्हारा ?

—बिसन रे … कभी किसी जन्म में तुम्हें अपने पेट से उत्पन्न करना चाहती हूँ और उसी क्षण में मेरा यह बंध्यापन का पाप धुलेगा। तुमने मुझ अनजान में भगवान की दृष्टि में एक गरिमा दी गया दी। मैं नारी से कन्या हो गयी

थी। तूने उस वेश्या को अपने पावन स्पर्श से दीदी बनाया।—बस प्रभु! ऐसे ही किसी दिन जन्म लेकर मुझे जगत्तारिणी बनाकर शापमुक्त कर देना।

विधान ने देखा कि दीदी की आँखों से आँसू धारासार बरस रहे थे। वे दोनों हाथों की हथेलियों में मूँदे फड़कते ओठों से चिपकाये जाने किस अँधकार को चीरते जाने किस जन्म के आलोक वाले अपने 'माविम्ब-मानव' के नामरूप में डूबी मौन हो रही थीं।

श्रीधर बाबू पिछले दिनों से मन ही मन स्वयं से बड़े असन्तुष्ट थे । उन्हें अपना प्रयोजन ही समझ में नहीं आ रहा था कि उन्होंने क्या बम्बई की नौकरी छोड़ी और जब छोड़ी थी तो क्या इसी निरुद्देश्यता के लिए ? आज वे जो कुछ कर रहे हैं जहाँ हैं क्या इसी के लिए वे अपना घर, अपने बच्चे माता-पिता को रातों-रात छोड़ आये ? कई बार तो स्वयं ही संशय में पड़ जाते कि क्या वे ही स्वयं हैं या और कोई ? घर का कोई समाचार उन्हें नहीं मिला । कैसे हैं सब ? सबों का पीछे से क्या हुआ होगा ? क्या नारायण बाबू को एक पत्र भी गायत्रीने न भेजा गया होगा ? सम्भवतः उज्जैन तक वे आये हों और ढूंढ़-ढांढ़ कर निराश हो लौट गये हों । जो भी हो लेकिन इस प्रकार निरुद्देश्य वे कितने दिन घूम सकते हैं ? और क्या ? पिछले चार-पांच महीनों के राजनीतिक सम्पर्क में यह बात तो उन्हें स्पष्ट हो गयी थी कि राजनीति उनका क्षेत्र नहीं । मजदूरों की पाठशाला में पढ़ाना भी तो एक प्रकार की राजनीति ही है क्योंकि सिवाय किशन बाबू के प्रायः सब लोग उन राजनीतिक कारणों से चल रहे थे । इसके अतिरिक्त इन्दौर में अधिक कुछ नहीं किया जा सकता । इन्दौर वे छोड़ना चाहते हैं लेकिन किन्तु ,

बाबू की एक न एक झंझट लगी ही रहती है। बिल्कुल नारायण बाबू का सा बेलौसपन है। सम्भवतः बिरजन भी बूझते हैं कि श्रीधर का मन अब इन्दौर में बिल्कुल नहीं लगता। लेकिन किसी सीमा तक उन्हें मोह ही नहीं श्रीधर से व्यामोह हो गया है। ऐसा ही व्यामोह कहीं उन्हें भी तो बिरजन से नहीं हो गया है? ठीक है बिरजन का ब्याह हो जाए तो वे एक दिन भी अब किसी मोह व्यामोह में नहीं पड़ने वाले हैं। बिरजन बाबू इस बीच बम्बई फिर गये थे और कमल को ब्याह के लिए राज़ी कर लिया है। यही तय पाया कि ब्याह हो जाने के पूर्व पुस्तके साहब से कुछ नहीं पूछना है इसीलिए 'सिविल मैरेज' करना तय हुआ। अभी इसकी चर्चा किसी को नहीं मालूम।

जाते ग्रीष्म में दिन तथा सन्ध्या की आयु बढ़ गयी थी। इन्दौर अब अपरिचित नगर नहीं रह गया था लेकिन इससे कोई रागात्मक सम्बंध भी तो नहीं था। यही दो-चार बार आधी-आधी रात में आवारों की तरह स्टेशन पर चाय पीने निकल गये हैं या फिर सत्याग्रह के दिनों में जो मारे-मारे फिरे थे उसकी कुछ याद है बाकी तो मालिनी ही एकमात्र ऐसी व्यक्ति है जो कहीं कुछ छूती है या कुछ खींच जाता है। बहुत कुछ भिन्न थी इन्दु दीदी लेकिन मालिनी के दीदीत्व में जो एक उदास-दुख अपरिग्रह का मोह, अप्राप्ति की विवशता थी वह इन्दु के दीदीत्व में नहीं थी। उसमें वात्सल्य का आतप था ऊष्मा थी सहायता थी जब कि मालिनी में सन्ध्या का उदास गौरव है ठंडी होती हुई ऊष्मा है तथा मोहक दुख है। और सबसे बड़ी बात तो यह कि इन्दु, श्रीधर की दीदी थी जब कि मालिनी बिरजन की दीदी है। दोनों ही अनसूया थीं केवल आकाश का अन्तर है। लेकिन विवश दोनों ही हैं। एक समाज युक्ता होकर तो दूसरी समाज-त्यक्ता होकर।

कई बार साँसें बड़ी लम्बी लगती हैं और साँस का ऐसा लम्बापन पता नहीं क्यों ईथर की गंध की तरह अस्पताल के बरामदों की तरह साफ-सुथरा होने पर भी अजीब लगता है। बिशन बाबू पिछले कई दिनों से कुछ उदास लगते रहे हैं जबकि इन दिनों तो प्रसन्न लगने चाहिए। इस बीच मालिनी दीदी के पास भी सम्भवतः कम ही गये हैं। क्या सचमुच ही कोई कुछ रहस्य है बिशन के भीतर और बाहर या मात्र आकार भर ही है? आये दिन गायब हो जाते हैं और फिर आठ-दस दिन पता नहीं कहाँ रहते हैं। क्या बात हो सकती है? कल शाम वे मालिनी दीदी के पास गये थे। प्रायः साथ चलने के लिए कहते रहे हैं लेकिन पता नहीं उस दिन जब श्रीधर बाबू ने कमल वाली बात कही तब से मालिनी दीदी के घर वे अकेले ही गये हैं। प्रायः तो उस समय मजदूरों की रात्रि पाठशाला में श्रीधर बाबू को वहाँ रहना पड़ता है लेकिन इससे क्या? कल रात जब मालिनी दीदी के पास से लौटे थे तो किंचित आवेश में लग रहे थे। ऐसे तो बिशन को नहीं देखा है पहले कभी। उसके बाद सहसा आये और सामान ठीक करने लगे। बड़ा अजीब लगा जैसे बिशन में बहुत बदलाव आ गया हो। पूछा

—क्यों? क्या बात है बिशन?

—कुछ तो नहीं सहसा जा रहा हूँ नागपुर।

और जल्दी-जल्दी चीजें सहेज रहे थे।

—नागपुर या बम्बई?

और श्रीधर ने निश्चय ही तो हँसा था। बिशन एक क्षण को हतप्रभ हो आया। मुँह जो कि सामने नहीं किया जा रहा था उठाया और श्रीधर की ओर हैरान देखता रहा। लगा कि बिशन कहीं आहत हुए हैं।

—मेरी बात का बुरा लगा?

श्रीधर ने किंचित स्नेह से कहा।

—नहीं श्रीधर! बम्बई नहीं जा रहा हूँ लेकिन यह न पूछना कि कहाँ जा रहा हूँ।

—क्यों?

—हर बात में 'क्यों' ठीक नहीं होता।

बिशन बाबू को लगा कि श्रीधर पूछकर किन्हीं गलत निर्णयों की ओर बढ़ रहा है। कई दिनों का उदास तथा गंभीर बिशन किंचित हँसा और पास आकर अत्यन्त स्नेह से श्रीधर के कंधे पर हाथ रखा। श्रीधर आँखों में कुछ क्षण रुका।

—श्रीधर! सच ही किसी काम से जा रहा हूँ और जल्दी ही लौट आऊँगा।

परेशान मत होओ ।
और श्रीधर ने देखा कि आगे कोई प्रश्न किया जा सके इसका मुहूर्त भर भी अवसर दिये बिना मुस्कराते विमल चल दिया । श्रीधर बाबू उठने की चेष्टा ही करते रहे कि आदेश सुनायी दिया
—तुम रहो श्रीधर ! नीचे तांगा है । मैं जा रहा हूँ ।

श्रीधर बाबू कल वाली इस घटना पर सोच रहे थे । खिड़की के शीशों पर चमकती हुई धूप पीली रँग उठी थी । तभी छज्जे पर किसी के पैरों की आहट सुनायी दी ।
—कौन ?
—बाबू जी ! मैं लछमन हूँ ।
वे कमरे के बाहर आये । अशोक की पत्तियाँ धूप में चमचमा रही थीं । शुरू गर्मियों की खुली शाम थी जो अँधेरे से अधिक दिन के निकट थी । कमरे में बैठकर ऐसी प्रदोष वेलाओं में जो उदासी घिरा करती है बाहर आने पर आप आस-पास विस्तृत हो जाते हैं और स्नान की सी ताजगी लगने लगती है ।
—क्या बात है लछमन ? विमल बाबू तो रात ही चले गये हैं ।
—माँजी ने आपको बुलाया है ।
—मुझे ? अभी ?
—जी !!
—क्या बात है ?
—अब सरकार ! आप लोगों की बातें हम क्या जानें ? जो हुकुम हुआ वही किया ।
लगा कि लछमन किसी बात से दुखी है । एक क्षण श्रीधर बाबू असमंजस में रहे कि क्या कहें, बोले
—अच्छा आते हैं ।
—कोई बात नहीं मैं नीचे बैठा हूँ । सवारी लाया हूँ ।
—सवारी ?
—जी ।
तो इसका मतलब हुआ कि वह साथ ही ले जाएगा ।

आज अनेक दिनों बाद अथवा विवाह के दिनों के बाद पालकी पर श्रीधर बाबू चढ़े थे। पहले तो बड़ा अजीब लगा लेकिन चढ़ना था ही। गनीमत यही थी कि खुली पालकी थी शिविका या डोली नहीं। लछमन कहारों के साथ ही दौड़ता रहा रास्ते भर। मालिनी दीदी का घर काफ़ी दूर था। रास्ते में दीप जल आये तथा स्वल्प अँधेरा भी हो आया। रास्ते भर कयास लगाते रहे कि क्या बात हो सकती है जो पालकी भेजकर बुलवाया गया और लछमन साथ में ही लिवा के जा रहा है? बस शाम ही तो किशन बाबू गये थे। अवश्य ही किशन बाबू की ही कोई बात होगी। लेकिन क्या बात हो सकती है? किशन बाबू शाम तनिक गम्भीर क्या थे? कहीं किसी बात को लेकर दीदी और उनमें कुछ कहा सुनी हो गयी क्या? लेकिन यह असंभव है। तब क्या संभव है?

और महाराजबाड़ा अपने अँधेरे में घुमड़ा रहा था। अनेक पालकियाँ तथा शिविकाएँ आ-जा रही थीं। सभी वर्ग के लोग सभी कामों पर निकले हुए थे। मन्दिर में सभा-आरती की तैयारी हो रही थी। सराफ़े में चहल-पहल जग रही थी कि पालकी दीदी के घर के लिए मुड़ गयी। गली सुनसान थी। कहारों के बदन पसीनों से लथपथ थे। वे बिना रुके सिर्फ़ कंधे बदलते तेज़ी से छावनी से यहाँ तक एक साँस में ही आये थे। पसीने से उनकी पीठ चमचमाने लगी थी। पालकी का आना देख बाहर का दरवाज़ा खोल दिया गया था। देहरी पर पालकी टिका दी गयी। ओसारे में खड़ी शारदा तेज़ी से अन्दर चली गयी। श्रीधर बाबू समझ गये कि शारदा अपनी मालकिन को सूचित करने गयी है। देहरी पार कर आना चढ़ने को हुए कि जीने के ऊपरी सिरे पर खड़ी मालिनी ने लछमन से कहा
—लछमन! कहारों को अब जाने दो।
—अब नहीं जाइएगा?
—अब आज नहीं। देखते नहीं कितनी देरी हो गयी।
इस वाक्य के समाप्त होते श्रीधर बाबू मालिनी के पास आखरी सीढ़ी पर थे।
—आओ।
श्रीधर ने देखा कि मालिनी कहीं बाहर जाने को तैयार खड़ी थी।
—कहीं जाना है क्या?
—जाना था लेकिन आज तुमने तो इतनी देरी कर दी।
—मैंने?
—और नहीं तो क्या मैंने? तुम लोग तो हमेशा हम लोगों का ही दोष दोगे।
वे भीतरी बैठक में पहुँचे।

—क्या सो रहे थे ? मालूम होता है कि तुम आये नहीं बल्कि स्वप्नवत तुम्हें उठा के लाया है, क्यों ? अरे शारदा !
और शारदा प्रकटी ।
—बिना कहे चाय-नाश्ता नहीं आयगा क्या ?
—अभी ला रही हूँ ।
और शारदा निकली ।
श्रीधर बाबू की समझ में कुछ नहीं आया कि वे क्यों बुलाये गये । क्योंकि जैसा अभी ज्ञात हुआ कि कहीं जाना था और संभवतः उन्हें भी साथ जाना था देरी हो गयी इसलिए जाना नहीं जाता है लेकिन कहाँ जाना था ? यह तो दीदी की मुद्रा से स्पष्ट ही था कि वे बाहर जाने को उद्यत थीं लेकिन आज उनके चेहरे पर सहज प्रसन्नता जो कि अन्य दिन हुआ करती थी वह नहीं थी । बल्कि लगा कि जैसे अत्यधिक परेशान हैं । बल्ब का धुंधला प्रकाश कमरे में फैला हुआ था । कमरे में अगरु की गन्ध थी । सप्तमी का चन्द्रमा खिड़की के पार पारदर्शी आकाश में फूट आया था ।
—तुम्हें आश्चर्य तो हुआ होगा कि सहसा कैसे बुलवाया गया ।
—नहीं तो मैं तो स्वयं आना चाह रहा था ।
—चाहना और आना क्या एक ही होता है ?
—दोनों मिलकर बुलवा लिया जाना हो जाते हैं ।
दोनों ही हँस पड़े । शारदा चाय-नाश्ता रख गयी ।
—सुनती हूँ तुम्हारी कोई मनु दीदी है जिसे तुम बहुत चाहते रहे हो ।
—हाँ बहुत ही ।
—कहाँ है अब वो ?
—अपने पति के घर, पूना ।
—विशन कह रहा था कि तुम नौकरी छोड़कर घर से भाग आये हो ।
—हाँ यही समझ लें ।
—क्यों ? यदि दूसरा भी कुछ समझा जा सकता है तो वही क्यों न समझा जाए ?
—इसलिए कि वास्तव में कोई अन्तर नहीं होगा ।
—मनु बहू को भी बिना बताये आये हो ।
—बताने पर कौन कब मिल सका है ?
—तो क्या करने का विचार है ?
—अभी तो विचार नहीं आया है ।

—या विपिन विचारने नहीं देता ? उसका बस चले तो वह किसी को नहीं सोचने विचारने दे ।

—मैं तो ऐसा नहीं सोचता ।

—लेकिन मैं उसे जितना जानती हूँ उतना कोई नहीं जानता। यह वेम नहीं है मात्र वास्तविकता है । पता नहीं वह मुझसे ऐसा क्यों व्यवहार करता है ?

बीबी ने प्रश्न इस जिज्ञासात्मक रूप स रखा था कि म पूछूँ कि क्या बात है लेकिन

—मैं कहती हूँ कि वह पागल है । सुनती हूँ पहले तो यह ऐसा नहीं था लेकिन जब से वह मरे सम्पर्क में आया तभी स उसमें परिवर्तन आने लगा। वह मूल है ।

—क्या हुआ बीबी ?

—मुझे ही कुछ हो जाता तो रोना किस बात का था रे ! मुझे कभी कुछ हुआ है मात्र तक ? मृत्यु बीमारियाँ सभी तो मरी छाया स घबराती हैं । मुझे डर है कि मरे विपिन को कहीं कुछ और न हो जाए । अब तुम्हीं बताओ श्रीधर ! फिर मैं उसकी मूर्खताओं का क्या उत्तर दूँ ? कहता है मुझे उत्तर देना ही होगा । मैं तो अपने भाग्य को ही कोसती हूँ श्रीधर ! उसका क्या दोष इसमें ? तुम्हारी क्या राय है ?

श्रीधर एकदम चौंक गये । चर्चा विपिन तथा मालिनी की चल रही थी । विशेष उसके बारे में वे कितना जानते हैं जो कि उसकी राय हो । श्रीधर अवाक हो बीबी की ओर देखने लगे जैसे पागी देख रहा हो । इतना स्पष्ट था कि विपिन बाबू बीबी के किसी मर्म को छू गये हैं और वे तड़प उठी हैं ।

वे फिर बोलीं

—तुम्हें नहीं लगता कि उस एसा नहीं करना चाहिए ।

—कैसा ?

—जो वह करता है । बड़ी देशभक्ति उस पर सवार हुई है ।

—ओह देशभक्ति ।

—यह तुम्हारे गाँधी बाबा वाली नहीं, बोल्‌

—तो कौन सी ?

—क्या तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम श्रीधर ?

—नहीं तो ।

—तभी तो मैं कह रही थी कि निश्चय ही श्रीधर को नहीं मालूम होगा भला तुम उसे बम-पिस्तौल वाली देशभक्ति की सलाह कैसे दे सकते हो ?

श्रीधर सहसा बात की गंभीरता नहीं समझ पाये । इसलिए कि इस बारे में बिल्कुल

ही नहीं जानते थे। जो पढ़ा था उसके द्वारा यह कल्पना कभी नहीं हुई कि इस देश में भी ऐसा हो सकता है। बोले,

—बम-पिस्तौल ?

—ये जो आये दिन कभी नागपुर, कभी अजमेर, कभी बम्बई कहकर जाता है तो वह अपने क्रान्तिकारी दल के काम से ही जाता है।

—लेकिन आपको कैसे पता चला ?

—तुमसे इस बारे में उसने कभी चर्चा नहीं की ?

—नहीं तो।

—श्रीधर ! उसे कैसे वहाँ से निकाला जाए ?

—आप जब तक साफ-साफ बताएँगी नहीं तब तक कुछ समझ नहीं सकता।

—पूरी बात मुझे भी कहाँ मालूम है श्रीधर ? समझती हूँ किसी गहरे षड्यंत्र से उसका सम्बन्ध है।

—कैसा षड्यंत्र ?

—यहाँ नहीं श्रीधर ! कल सब बताऊँगी। कल पीपल्या टैंक पर। तुम तो कभी नहीं गये होगे ?

—गया तो नहीं हूँ किन्तु सुना है सब सुना है।

—विशन को किसी बात की खबर नहीं है।

—तो फिर आज चलूँ ?

—क्यों ? क्या बिना विशन के

—नहीं दीदी ! बात यह है कि

—क्या अपनी इन्दु दीदी की बात मुझे नहीं सुनाओगे ?

और इन्दु दीदी की गाथा पूरी सुनाकर दीदी के घर से लौटते श्रीधर बाबू को इतनी देर हो गयी कि छिपलनपुरे के पुल के पहले ताँगा नहीं मिला। सड़कों पर रात में जलनेवाली बत्तियाँ बुझी पड़ी थीं। शहर एकदम अँधेरे में डूबा हुआ था। गर्मियों का आकाश था तारों भरा। बस उसी आकाश का प्रकाश था और दूर-दूर पहरुओं की आवाजें थीं। कहीं एकाध कोई लैम्पपोस्ट जल रहा होता जैसे नींद डूबा हो। घोड़े की टापों तथा पहियों की आवाज में विशन बाबू मालिनी

रही बम-पिस्तौलवाली राजनीति तथा प्रिन्स क्रोपाटकिन साइबेरिया में भागते हुए क्रान्तिकारियों की पिस्तौलों की चमक सब स्पष्ट दिखायी दे रही थी। रूस की क्रान्तियों के बारे में वे पढ़ चुके थे। इसी तरह अँधेरे में डूबे सेंट पीटसबर्ग की सड़कों पर किसी सेनापति या गवर्नर की छाती बग्घी पर कोई पिस्तौल तन जाती और उसके बाद गवर्नर की लाश पुलिस की सीटियाँ भागते कदम अनेक कदम उन पत्थरों टँकी गलियों में आवाजें करते भागने लगते हैं। ऐसे क्रान्तिकारियों के पकड़े जाने पर या तो गोलियों से उड़ा दिया जाता रहा या फिर साइबेरिया के वीरान स्टेपस में गल जाने के लिए, पागल बन जाने के लिए जानवरों की तरह घेर कर छोड़ दिया जाता रहा है।

शुरू गर्मियों की आधी रात का तीसरा प्रहर होगा। रात में सर्दी का आभास स्पष्ट था। जाड़ों में इस समय कितनी सर्दी होती है और फिर साइबेरिया में क्या होता होगा? बर्फीली आँधियों में फटे चिथड़ों में लिपटे भूख-प्यासे क्रान्तिकारी काटती बर्फ पर घिसटते हुए टूट जाते रहे होंगे। अनन्त बर्फ का विस्तार और हिमानी थपेड़ कैसे ही मनोबल को गला सकता है चूर-चूर कर सकता है और फिर भी अनेक क्रान्तिकारी वहाँ से भाग आते रहे हैं। श्रीधर बाबू यह सब सोचते हुए अजीब फुरहरी से भर गये थे। उन्हें अपने चारों ओर सड़क के दसों ओर किन्हीं अज्ञात गलियों में पिस्तौल लिये एक नहीं अनेक किसान दौड़ते हुए दिखे और उनका पीछा करते हुए पुलिस की गारद मशालें लिए भागती दिखी। वे अज्ञात में चिल्लाने-चिल्लाने को हुए ही थे कि ताँगेवाला बोला

—हुजूर कहाँ जाइएगा?

—पुल के पार पारसी मुहल्ले में।

—हुजूर! आप जैसे शरीफजादों को जब इसी-इती रात में कोठों से आते पकड़ता हूँ तो बड़ी तकलीफ होती है साहब!

और श्रीधर बाबू चौंके कि ताँगेवाला उन्हें कितना गलत समझ गया। लेकिन वे और क्या प्रत्युत्तर देते? रुपए के पैसे भी वापस नहीं लिए क्योंकि वह तब अवश्य ही उन्हें पहचानने की कोशिश करता और उन्हें यह स्वीकार नहीं था। ताँगेवाला कहता ही रहा

—हुजूर! पैसे??

और श्रीधर बाबू चोरों की तरह कालेज का जीना चढ़ने लगे। उन्होंने पीठ ओर से सब सुना कि घोड़ा 'टप' 'टप' करता मुड़ा और फिर पहिये तेज हुए। रात भर गरजने और जागने का भेद श्रीधर बाबू को नहीं मालूम हुआ।

वैसे सवेरे वे कभी मजदूर बस्ती की तरफ नहीं गये लेकिन आज पता नहीं क्यों वे अनायास उधर निकल पड़े। यह ठीक है कि आज ग्राम में पाठशाला नहीं जा सकेंगे इसकी सूचना रामसिंह को देनी थी मगर वह तो किसी को भेजकर मिल में कहलवाया जा सकता था। अभी मुँहअँधेरा ही था। पूरब के आकाश के नीचे कच्ची झोपड़ियों वाली मजदूर बस्ती बिछी थी। वातावरण काफी ठंडा था। मजदूर रात-पाली से लौट रहे थे। दिन-पाली के लिए तैयारी हो रही थी। रामसिंह की कोठरी अपेक्षाकृत अधिक साफ-सुथरी थी। अभी वह सोया हुआ था। इतनी सवेरे टीचर बाबू को सहसा देखकर रामसिंह किंचित अचकचा गया। टीचर बाबू के पास कोई जवाब नहीं था कि वे क्यों इतनी सवेरे आये हैं। इधर-उधर की बातें करते रहे।

रामसिंह के घर के सामने ही रेलवे का लोको था। जिसके पार मिल की ऊँची चिमनी धुँआ छोड़ती आकाश में खिंची हुई थी। धुँधलके की छोटी-छोटी गाड़ियाँ सीटी बज रही थीं। रामसिंह बोला

—तो टीचर बाबू कब जाने वाले हैं ?

—एक दो दिन में आया है कि आ जाएँ।

—असल में श्रीधर बाबू! यहाँ दो-एक पुलिस के आदमी पिछले आठ-दस दिनों से बड़ी सरगर्मी से चक्कर काटने लगे हैं।

—क्यों?

—पता नहीं वे सबसे हर बार यही पूछते हैं कि वे किसी शफ़ीउल्ला को जानते हैं? अब भला बताइए कि यह शफ़ीउल्ला कौन है?

—शफ़ीउल्ला? कौन है यह?

—अब मालूम होता तो मैं आपसे पहले उन पुलिसवालों को न बता देता? कहते हैं कि उसका पता बता दोगे तो अंग्रेज सरकार इनाम देगी। एक पुलिसवाला कहने लगा कि यह शफ़ीउल्ला क्रान्तिकारी है इसी इन्दौर का है। और साहब! यह भी कि हम जानते हैं और बताते नहीं हैं इसलिए चौबीसों घण्टे यहाँ तैनात रहते हैं कि कौन आया कौन गया।

वह ज़ोरों पर हँसा और फिर बोला

—क्या श्रीधर बाबू! कहीं आप ही तो शफ़ीउल्ला नहीं हैं?

सहसा श्रीधर बाबू एकक्षण को भय से पीले पड़ गये। अपने से अधिक वे विशन के लिए चिन्तित हो गये कि कहीं शफ़ीउल्ला विशन बाबू ही तो नहीं हैं? कहीं यही बताने को तो दीदी ने इतनी एकान्त जगह तो नहीं चुनी? तो क्या विशन क्रान्तिकारी है? कहीं यही तो वह रहस्य नहीं जिसे मनुष्य से उन्हें उनके पास और लगता रहा है? पर विशन बाबू क्रान्तिकारी जैसे लगते तो नहीं हैं। तब तो और भी उन्हें क्रान्तिकारी होना चाहिए। ऐसा ही व्यक्ति सफल क्रान्तिकारी हो सकता है जो लगे नहीं।

वे बेचैन हो गये। पूरा दिन काटना कठिन होने लगा क्योंकि अभी तो सवेरा ही हुआ था। साथ ही यह भी ध्यान आया कि पुलिस के आदमी उन पर भी दृष्टि रखे हुए होंगे। इसका मतलब हुआ कि शाम को जब वे पीपल्या [illegible] जाएँ तो सम्हल कर जाएँ।

रास्ते भर उन्हें लगा कि कोई दूर-दूर से उनका पीछा किये है। इसी व्यक्ति को वे दो-एक बार पिछले दो-चार दिनों में घर के आसपास भी देख चुके हैं। विशन ने इस सी० आई० डी० वाले पर पूर्व ही श्रीधर को चेतावनी दे रखी थी।

लेकिन वे हर बार भूल जाते रहे हैं। संभवतः इसीलिए श्रीधर बाबू सीधे घर न जाकर तापसवाले रोड की तरफ बढ़े। यद्यपि वे ऐसा नहीं करते हैं फिर भी एक होटल में घुस गये। नाश्ता करते हुए वे बार-बार होटल के बाहर फुटपाथ पर आते-जाते लोगों को देखते रहे कि कहीं सी० आई० डी० दिखता है या नहीं? जैसे ही वह दिखा उन्होंने झुक कर सामने बैठे आदमी की आड़ ले ली। तेजी से खा-पीकर वे पीछे के रास्ते से गली में निकल आये। वे बिल्कुल विपरीत दिशा में चले जा रहे थे। कई छोटी-छोटी गलियों से तेजी से मुड़ते हुए उन्होंने कृष्ण पुरे के पुल के पास चाल पाने के बाद सड़क पार की और तेजी से चम्पातला की ओर बढ़े। उनके इस आचरण से वे बिल्कुल क्रान्तिकारी षड्यंत्रकर्ता होने की पुष्टि कर रहे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि आज ही इतना और ऐसा वे क्या बचना चाह रहे थे? उन्हें लगा कि आज उन्हें घर नहीं जाना चाहिए। संभव है पुलिस उनकी प्रतीक्षा में हो। उन्हें पहली बार यह शंका हुई कि घर पहुँचने पर यदि पुलिस ने छापा मारा और विमल के सामान में से कुछ संदिग्ध सामग्री मिल ही गयी तो क्या होगा? और मान लो घर पहुँचने के पूर्व उन्हें मालूम हो जाए कि पुलिस ने पहले ही घर घेर लिया तो क्या होगा? वह मिसेस एलची मकान मालकिन क्या ऐसा होने पर उन्हें एक दिन भी रहने देगी? और विमल की अनुपस्थिति में क्या ऐसा होना उचित है? उन्हें अपनी शंकाएँ हास्यास्पद अवश्य लग रही थीं कि ऐसा नहीं हो सकता किन्तु सम्पूर्ण रूप से आश्वस्त भी नहीं हो पा रहे थे। अपने को तर्क देकर भय से निरापद नहीं किया जा सकता।

वे फिर भी घर की तरफ बढ़ते रहे। रास्ते भर वे अनेक योजनाएँ बनाते रहे कि ऐसा होगा तो क्या किया जाएगा या यह कि कोई रास्ते में मिल जाए तो उसी के साथ चल दें। वैसे एकाध बार बीरी के घर चलने की बात मन में आयी लेकिन मन को यह स्वीकार नहीं हुई। दिन में वैसे भी वे कभी गये नहीं फिर शाम मिलना ही था और इस समय आने के बारे में वे क्या कहेंगे? पुस्तकें साहब? उनका प्रश्न ही नहीं उठता।

घंटे-दो घंटे की भी तो बात नहीं थी वर्ना किसी पार्क में ही बैठ लिया जाता। पूरा दिन। एक दिन शाम होने तक बिताना था। चार बजे तक का समय तो था ही। उसके बाद पीपल्या टैंक चले जाएँगे लेकिन तब तक पुलिस-सी० आई० डी० से कैसे बचा जाए? लेकिन इसका क्या प्रमाण कि पुलिस घर पर हो ही?

इसी असमंजस में पड़े वे छावनी की तरफ बढ़ रहे थे। धीरे पानीवाले नाले में

तरकारीवाले तरकारियाँ धो रहे थे। उन्हें सहसा बड़ा भाव आया कि ये कुँजड़े कितने गन्दे होते हैं कि यही तरकारियाँ बेचेंगे और हम-आप इन्हें खरीदेंगे।

जैसे ही वे घर पहुँचे सोफे पर मिसेस एलची को बैठा पाया। वे अपना पारसी ढंग की साड़ी पहने थीं तथा कंधे पर क्लिप। सफेद साफा का घूँघट उनके शुद्ध मोतिया रंग के मुख पर खूब फब रहा था। पैरों में काला पम्प पहने थीं। श्रीधर बाबू उन्हें कनखियों से ही देखना चाहते थे लेकिन स्थिति ने उन्हें बात करने के लिए ही प्रेरित किया।

—नमस्कार मिसेस एलची!

—नमस्कार!! तुमारे को एक मामला पूछने को आया था।

—नाम बताया अपना?

—हम तो घर में था नहीं। मिस्टर एलची से बात बोला था।—श्रीधर बाबू यहीं बाहर गाम का प्रयोग है न ई?

—जी नागपुर गये हैं।

—आजकल जो मान घूमने का मौका है न? अरे तुम उसको काम की नेई समझाता कि ईस राजनीती में क्या धरा है? खोमखा समय खराबा है। तुम तो कभी आता नेई हामरे घर। मिस्टर एलची बोला कि कभी इन दोनों को चाय पे आने को बोलो ना? पन क्या करे बीउवा ई गई तुम लोग तो।

—अरे मिसेस एलची! सब आपकी दया है।

—अच्छा! कभी चाय पे आना—हां??

—अच्छा।

तीसरे पहर तक अपने ही घर में श्रीधर बाबू बिल्कुल चोरों की तरह दुबके पड़े रहे। क्षण भर को नींद तक नहीं आयी। कान दरवाजे और छत पर पैरों की आहट के लिए उन्मुख बने रहे। सोची हुई योजना के अनुसार वे सीधे पोलिस्या टैंक की ओर नहीं जाना चाहते थे। धूप कड़ी हो चली थी। कुछ [illegible] ही वे जाना चाहते थे।

बम्बई-आगरा रोड पर पेड़ों की छाया में चलते-चलते जिस समय वे पीपल्या टैंक पहुँचे गर्मियों की सांस भी कहीं नहीं रह गयी थी। कचनार गाछों की सघनता ने अजीब सांवला रहस्य उत्पन्न कर रखा था। नमी की का सा अनुभव हो रहा था। और आगे की ऋतु थी। सन्तरों में पानी दिया जा रहा था। नालियों में बहता हुआ पानी प्रसन्न घूम रहा था। स्तब्ध शान्ति थी। केवल वनपाखियों की आवाज आ रही थी। चारों ओर खूब हरा-हरा सा था इसलिए वहां भीगा भीगा सा लग रहा था। संभवतः कहीं माली होगा इसके अलावा किसी की उपस्थिति का कोई भान नहीं हो रहा था। टैंक की पक्की सीढ़ियाँ चढ़कर जब श्रीधर बाबू ऊपर पहुँचे सामने अथाह जल बड़ी दूर तक बिछा था। विमल बाबू से उस दिन इस स्थान घटना की जो कथा सुनी थी उससे श्रीधर बाबू को यह नहीं लगा कि जैसे वे यहां पहली बार आ रहे हों। दाहिने हाथ अनेक झुरमुट थे और उन्होंने अन्दाज किया कि कौन सा वह झुरमुट रहा होगा जहां से विमल बाबू ने उस दिन दीदी को आते देखा था। आज वे भी वैसे ही छिपकर दीदी का आगमन देखना चाहने लगे।

सामने वही स्थान दिखायी दिया जहां से कूद कर दीदी आत्महत्या करना चाह रही थी। सांझ की रक्त आभा उस पार के आकाश गाछों तथा जल को रँगे हुए थी। अपने कस्बे का तालाब याद हो आया तथा इन्दु दीदी की वह कोठी। उन्हें लगा जैसे प्रत्येक तालाब के साथ एक दीदी का सम्बन्ध है। जल में भीगा हुआ नरसल सांझहवा में हिल रहा था। आज पहली बार इन्दौर में उन्हें बहुत अच्छा लग रहा था जैसे मन पर कोई दबाव नहीं है सब फैला-फैला सा है, जिसमें धूप तक हल्की हवा में हिल रही है, अपने सम्पूर्ण रंग के साथ। ऊँचाईयों पर कोई बोझ इन्हें नहीं घेरे है। प्रत्येक शब्द स्पष्ट है। और तो और मक्खियों की भिन-भिनाहट तक शरीर में सुनायी देती है। ऐसे में आप कितने सम्पूर्ण लगते हैं, समर्थ होते हैं। जैसे आप अपने को समस्त इन्द्रियों के साथ अनुभव कर रहे हों। लोग प्रायः ऐसी निजात्म समग्रता से घबराते हैं। क्योंकि यह ठीक है कि आपको अपना ही वजन अनुभव होता है। समाज में हमारा यह वजन विभाजित होता है इसलिए वहां बड़ा सहज लगता है। ऐसे सहज की आदत के बाद एक दिन सहसा अपनी समग्रता से साक्षात् हो जाने पर जाने कैसा संभवतः डर सा मनमें लगता है। इसीलिए एकान्त में अपनी ही समग्रता का भय सबसे अधिक हमें होता है।

श्रीधर बाबू ने देखा कि जैसे ही पालकी आकर रुकी वैसे कि विमल बाबू

की गाथा में रुकी थी। कहारों का ठीक वैसे ही आश्रय लिया गया। काना के पास साड़ी के ऊपर का दुकूल वैसा ही थामा गया था। संभवतः उस दिन भी बायाँ पैर ही सीढ़ी पर पहले रखा गया होगा। श्रीमुख उस दिन परिभाषित रहा होगा जब कि आज चिन्तित। उस दिन वे वैवाहिक्य की स्थिति में स्वाभिमान हो रही होंगी जब कि आज ममता की चिन्ता थी मुख पर। श्रीधर बाबू का मत कि नारी को मात्र एक सूत्र की आवश्यकता होती है और वह उसी के सहारे इतना बड़ा जीवन जो कि दिन के कोलाहलों में और रात के एकान्त में फैला हुआ है काट ले जाती है। लेकिन नहीं हम उस नारीत्व को नष्ट करके ही सुखी होते हैं।

ऊपर पहुँच कर सरला ने चारों ओर देखा। बहुत कुछ उस दिन की घटना मन में घुमड़ उठी होगी। फिर वे सहसा उस झुरमुट की ओर मुड़ीं। श्रीधर बाबू को समझने में किंचित भी संशय न रहा कि ठीक इसी झुरमुट में कभी विराम बाबू ने छिपकर उन्हें देखा था। धीरे किंचित मुस्कराते हुए झुरमुट की ओर बढ़ीं। चूँकि अभी सूर्यास्त भी नहीं हुआ होगा तब भला झुरमुट कैसे स्वच्छ न होने लगा?

—श्रीधर! झुरमुट में छुपने वाले अच्छे नहीं होते।

—तो क्या विराम को आप अच्छा नहीं मानतीं?

झुरमुट से निकलते हुए श्रीधर बाबू बोले।

—मेरे मानने को वह सुनता कब था तभी तो कह रही हूँ।

—कैसे?

—यही कहते-सुनते तो इतनी दूर आयी हूँ। अब बताओ वह मेरी जान किस मौसम में डाल गया है कि क्या बताऊँ! उस दिन मुझे यहीं उसने मरने नहीं दिया और आज मुझे जीने नहीं दे रहा है।

—क्यों क्या बात हुई दीदी?

—वह क्रान्तिकारी हो गया है।

—तो क्रान्तिकारी होना तो बुरी बात नहीं है।

—अब बुरा और किसे कहते हैं? सुनती हूँ मास्को-हाउस में रहने वाले ए० आ० जी० के विरुद्ध वह षड्यन्त्र करने में लगा है।

—क्या??

—हाँ श्री!! और ... और ... [illegible] आँसू भरते हुए है।

श्रीधर बाबू ने दोनों आँखों से भरपूर गहरी साँस ली। जाने क्यों उन्हें लगा कि

दीदी का यह वाक्य वातावरण में गूँज गया और पुलिस के आदमियों को मालूम हो गया कि यह फणीन्द्रनाथ कोई और नहीं विमल बाबू ही है।

—लेकिन आपको कैसे मालूम ?

—लछमन बता रहा था।

—लेकिन लछमन को

—ओ श्रीधर ! शक न करो। मैं जानती हूँ कि यह बात राई रत्ती ठीक है। विमल तुम सबसे झूठ बोलता है कि वह नागपुर गया है, अजमेर गया है। वह अक्सर झाँसी या आगरा जाता है। दो एक बार बनारस गया है। उधर इन क्रान्तिकारियों का बड़ा भारी अड्डा है। श्रीधर ! बताओ इसे कुछ हो-हुआ हो गया तो

और दीदी फफक-फफक कर रो उठीं।

—दीदी ! रोने से क्या होगा ?

अपने आँसू पोंछते हुए वे तालाब में दूर उड़ती एकमात्र बगुला देखने लगीं।

—मैं भी जानती हूँ कि वह कोई बुरा काम नहीं कर रहा है। लेकिन श्रीधर ! आज कितने बरस हो गये इसे अपना दूध ही नहीं पिला सकी बाकी इसे अपने पेट के बेटे की तरह मानती आयी हूँ। वह नहीं जानता मैं तो नहीं कहूँगी लेकिन वह तो बड़ा भारी बुद्ध बनता फिरता है न ? भगवान जानता है, जिस दिन उसने खाना नहीं खाया होगा उस दिन इस दीदी के मुँह में अन्न-जल भी गया हो तो शपथ है ! वह मुझसे छुपाकर जाने क्या-क्या करता रहा। मैं कुछ नहीं जानती। मेरा ऐसा भाग्य कहाँ कि मैं बस दूर से उसे देख भर सकती हूँ। सोचती थी कि इसकी बहू आ जाए तो उसे चुपचुप सब कुछ सौंप कर कहीं निकल जाऊँगी। भगवान वह दिन दिखाना चाहता है तो यह आये दिन कुछ न कुछ उत्पात किया करता है। लड़की मैं देख आयी हूँ। बहुत अच्छी है। श्रीधर किसी तरह इसका ब्याह हो जाता तो मेरी रही-सही जिन्दगी सार्थक हो जाती। सुनती हूँ कि उस पर तो ब्रिटिश सरकार ने वारण्ट जारी कर रखे हैं। और अब यहाँ-वहाँ यहीं भी हुजूर षड्यंत्र करने वाले हैं। तुम्हीं कुछ बताओ न ?

—सचमुच में दीदी ! विमल ने अभी तक मुझे कुछ नहीं बताया।

—तब कैसे पता हो श्रीधर ?

—यह ठीक है फणीन्द्रनाथ की खोज-खबर बड़ी जोरों पर जारी है।

—दिखने में जितना सीधा लगता है विमल लेकिन पुलिस वालों को उल्लू बनाये हुए है कि वह उड़ीसा का रहने वाला है।

—पर दीपी ! पुलिस को विपन बाबू पर पूरा शक है। चाहे वे अपने को उड़ीसा का बताएँ या सिन्ध का ।

—तो फिर क्या हो ?

—यही तो समझ में नहीं आता ।

—वह कब आने वाला है ?

—किसी भी दिन आ सकते हैं। कुछ ठीक है भी उनका ?

—तुम्हीं कुछ समझाओ उसको ।

—मुझे तो व गांधी बाबा की प्रार्थनावाली राजनीति के भी योग्य नहीं समझते, तब भला बम-पिस्तौल वाली के बारे में क्या बताएँगे। असल में दीदी' विपन बाबू कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ। शुरू-शुरू में जब मैं आया था तो किसी ईसाई लड़की के साथ शादी करना चाहते थे पता नहीं क्या हुआ उसका ? उसके बाद अब कमठ से करना चाहते हैं कि क्रान्ति के पीछे इस तरह पड़ गये हैं कि बस । आज या कल स कुछ हो-हुआ जाए तो बेचारी कमला

—श्रीधर ! विपन मन्मरी पागी हो गया है। असल में जो जिस ईसाई लड़की से शादी करना चाहता था न? एक तो वह ईसाई नहीं है। दूसरे वह लड़की भी क्रान्तिकारी पार्टी की है। इन लोगों के आपस में मिलने का बर्ष में तय हुआ था । वहीं पर ये लोग अपनी पार्टी का काम करते हैं। सुनती हूँ उस लड़की की मदद से किसी तरह आलजा-हाउस में घुसने की चेष्टा में हैं। यदि और कोई तरकीब सफल न होगी तब वह लड़की ही हमला करेगी ।

—अच्छा ??

और एकक्षण को श्रीधर बाबू को विपन बाबू बड़े षड्यंत्री भयानक व्यक्ति लगे । लेकिन दूसरे ही क्षण विपन बाबू के साहस के प्रति वहीं ईर्ष्या भी हुई कि कितना साहसी व्यक्ति है जिसे किसी चीज का भय नहीं । गिरधारी की दुकान पर पान खाने से लेकर सभा-मीटिंगों तक वही पुलकपन हँसी । शायद ऐसे ही हँसते हुए व किसी दिन आल्जा-हाउस में घुसकर ए० जी० जी० पर पिस्तौल भी तान देंगे और पकड़े जाने पर सम्भव हुआ तो गिरधारी का पान मुँह में दाबे फाँसी पर भी झूल जाएँगे । उस बेलौसपन में एक क्षण को भी कोई परिवर्तन या भिन्नता नहीं आएगी। लेकिन विपन कितना सौभाग्यशाली है कि दीपी जैसा व्यक्ति उसके लिए चिन्तित ही नहीं आतुर भी है ।

—दीदी ! आपको कैसे मालूम कि वह लड़की ईसाई नहीं है और

दीदी उस चिन्ता में भी इस बात से कम ही हँस पड़ीं जैसे कि कोई माँ अपने

पुत्र की घातानी की ऐसी बात सुने जो वास्तव में अद्वितीय ही थी, तो जो भाव मां के मुख पर होता है वैसा ही दीप्तिमुख पर भी था, बोलीं
—उसका नाम तुमको रोजी बताया न ?
—हाँ रोजी ही।
—असल में उसका नाम रत्ना है वह ईसाई नहीं है। विपिन ने तो झूठ ही बताया था लेकिन रत्ना ने ही मुझे बताया कि वह बनारस की है। शायद बंगाली है। रत्ना को विपिन ही मेरे यहाँ लाया था। रत्ना भी तो क्रान्तिकारियों के ग्रुप की है।

आज अष्टमी थी। चन्द्रमा बीचोंबीच आकाश में टँका हुआ था। सांझ पड़े बड़ी देर हो चुकी थी। तालाब के जल में तारे उतर आये थे। अधरों की भाँति सब निःशब्द था।
—श्रीधर ! विपिन को किसी प्रकार बचाना ही होगा।
—हाँ यह तो बहुत जरूरी है दीदी ! लेकिन कैसे ?
—तुम उसे लेकर कहीं दूर छोड़ आओ।
दीदी के इस व्यामोह पर करुणा ही आयी और श्रीधर बाबू हँस पड़े। कुछ देर के बाद सायास दीदी भी हँस पड़ीं।
—आप क्यों हँसी दीदी ?
—अपनी मूर्खता पर। विपिन कोई अबोध है कि उसे दूर वन में अज्ञात छोड़ आया जाए ?
—दीदी ! क्या कमल को यह सब मालूम है ?
—क्यों ?
—संभव है कि उसे मालूम न हो।
—संभव है।
—तब तो कमल से कह कर कुछ किया जा सकता है।
—लेकिन वह भी तो राजनीति में है।
—शौकिया राजनीति है वह।
—लेकिन यदि मालूम हो तो क्या होगा ?
—तो कमल से कहा जाए कि वह विपिन बाबू को बाध्य करे।
—मुझे नहीं लगता कि विपिन को बाध्य किया जा सकता है।
—तब तो आप ही कुछ कर सकती हैं।
—मैं कुछ कर सकती होती तो कभी का कर चुकी होती। वह बड़ा निर्मम

है। मैंने उसे डाँट कर, रो कर सभी तरह तो राका लेकिन वह नो बस हँस रहा है।

—लेकिन जब आप कुछ नहीं कर सकीं तो फिर कुछ नहीं किया जा सकता।

—भीयर ! उसके बसने पर ध्यान तो है नहीं। परन्तु मुझे धमकी जरूर मिला है।

—धमकी ?

—हाँ धमकी। मैंने उससे विवाह की चर्चा की। बोला विवाह नहीं करूँगा। मैंने भी उसे धमकाते हुए कहा कि ठीक है जब तुम्हें बम-पिस्तौल ही चलाने हैं तब बेचारी बहू को सामने में डालने से लाभ ? तुम तो किसी दिन भगवान न करे कालापानी या फाँसी पर जाओ और वह तुम्हारे नाम को रोती रहे। तो वालम ही बड़ी जोरों पर हँसा और बोला कि अगर मैं चाहती हूँ कि वह विवाह करके एक सद्गृहस्थ की तरह रहे तो फिर वह जिससे शादी करना चाहे उससे मैं शादी करने दूँ। मैंने कहा कि अगर वह कमला से विवाह नहीं करना चाहता है तो न करे। क्या वह दूसरी लड़की कौन है ? भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? तो कहने लगा कि नहीं मुझे प्रण करना होगा कि मैं उससे उसका विवाह करवा दूँगी। मैंने कहा कि अगर यही बात है तो मुझे मंजूर है। वह लड़की का नाम बताए तो ? अगर मैं जानती हूँगी तो अवश्य करवा दूँगी और भीयर ! उसने जानते हो क्या कहा ? भीयर ! ! वह मुझसे ही ब्याह

और दीदी फूट पड़ीं। काफी देर तक भीयर की समझ में नहीं आया कि क्या कहे और रोती दीदी को कैसे समझाए।

—दीदी ! आप उस पागल की बात पर शान्त रहें। आवेश में व्यक्ति को ध्यान नहीं रहता कि वह क्या बोल रहा है।

सभी तरह पर लगभग निरुत्तर किया। दीदी स्वस्थ होने लगीं।

दो तीन दिन श्रीधर बाबू को अत्यन्त ग्लानि बनी रही। किशन बाबू के प्रति अजीब वितृष्णा का भाव आता रहा। उस दिन पीपल्या टैंक पर चलते समय दीदी से कहा था कि वह दूसरे दिन आएगा लेकिन जाने क्यों जाते हुए लज्जा आयी। किशन ने यह बात कह कर तो दूसरे किसी का भी मुँह न रहने दिया। दिन भर घर में ही पड़े रहे। शाम अवश्य ही मजदूर पाठशाला के लिए हो आये पर परिषद् के कार्यालय में हफ्तों से नहीं गये थे। पिछले दिनों से वे ही कार्यालय मंत्री थे लेकिन इस बीच चाहने पर भी नहीं जा सके।

इन दो-तीन दिनों में किशन पर क्रोध भी आता कि दीदी की विवशता को, अतिरिक्त स्नेह को इस प्रकार अपमानित या लांछित कर जाने का क्या अधिकार था? क्या किशन ने यह बात कह कर यह नहीं सिद्ध किया कि वे वेश्या हैं? क्योंकि मन से यदि किशन ने दीदी का सम्बन्ध स्वीकारा होता तो वह कभी ऐसा कहना तो दूर सोच भी नहीं सकता था।

श्रीधर बाबू के मन में अनेक संकल्प-विकल्प आते रहे। किशन ने किसी क्षोभ के वश तो ऐसा नहीं कहा होगा। क्योंकि क्षोभ क्या हो सकता है? दीदी के

पैसे का लोभ विसन को हुआ। यह बात गले नहीं उतर रही थी अब ?? और कुछ समझ में नहीं आ रहा था। दीदी निश्चय ही विसन बाबू से न सही तो दस बरस तो बड़ी होंगी ही उस पर वैसा भयंकर व्याधियों से ग्रस्त रमणी के प्रति लोभ हो ही क्या सकता है ? फिर, फिर विसन ने यह बचकानापन क्यों किया ?

अनेक तर्क-वितर्क किये गये किन्तु किसी सही निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। जाने क्यों दादी की यही बात उन्हें सही लगा कि जैसे विसन बाबी बात उन्होंने ही कही हो। वो एक दिन इसी प्रतीक्षा में रहे कि विसन बाबू आ जाएँ तो पूछा जाए कि उन्होंने दीदी से ऐसा क्यों कहा ?—लेकिन विसन बाबू का कहीं पता ही नहीं था लेकिन तो यह था कि मन्दार में ही कहीं विसन बाबू के लिए चिन्ता भी थी कि मालवा-हाउस वाला षड्यन्त्र यदि हो जाए तो क्या हो ? निश्चय ही विसन पकड़ लिये जाएँगे और ... और, एक गंभीर प्रश्न श्रीधर बाबू के मन में था कि इस प्रकार के क्रान्तिकारियों का क्या होगा ? एक अंग्रेज अफ़सर के मार दिये जाने पर क्या सचमुच ही ब्रिटिश शासन-तन्त्र या सत्ता कमज़ोर हो सकेगी ? दो चार बम-पिस्तौल के धमाकों से अंग्रेज जैसा शक्तिशाली शासक-वर्ग क्या इस देश के मताधिकार का स्वीकार लेगा ? तब क्या हो ? गांधीबाबा अभी स्वयं अस्पष्ट हैं। कहीं किसी के मन में स्पष्ट योजना कुछ नहीं है कि अंग्रेज से किस प्रकार युद्ध किया जाए। क्रान्तिकारी लोग समाज से इतने हटकर काम करते हैं कि उनके पवित्र उद्देश्य के बारे में कोई जनमत नहीं बन पा रहा है। क्रान्तिकारिता में अपनी ओर आकर्षित करने की असीम क्षमता है किन्तु अभी वे इस तक ही सीमित हैं, विशाल आन्दोलन तो नहीं बन पा रहा है न ? न इन की जनशक्ति का ही ज्वार ही दिखता है न शासन की राजशक्ति को भी ललकारता। एकमात्र व्यक्ति में इसकी संभावनाएँ थीं—लोकमान्य तिलक में पर अब वे नहीं रहे। केन्द्रीय व्यक्तित्व का विघटन हो गया है। जिसके साम्राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता उस ब्रिटिश का एक पताका कौन हरा दे यह बात कुछ समझ नहीं आती लेकिन विसन बाबू उस पताका को तिनके के साथ पकड़े हुए हैं।

बड़े ही धड़कते दिल के साथ श्रीधर बाबू दीदी के यहाँ पहुँचे। आज एकादशी थी। दिनभर निराहार के बाद अभी पूजन करने में व्यस्त थीं। कमरे में पूजन की गंध स्पष्ट थी। बैठक में थोड़ी देर प्रतीक्षा करते हुए सहसा इस रहस्यमय दीदी के प्रति अपार करुणा ममता क्या सभी कुछ हुआ। सम्बन्धहीन वेश्या लेकिन किसी भी व्रतचारिणी कुलकामिनी से कम नहीं। समाजभ्रष्टा, किन्तु किसी भी प्रतिमा से कम पवित्र नहीं।

तभी बैठक में प्रवेशते हुए दीदी बोलीं

—प्रतीक्षा करनी पड़ी न? मुझे भी तुमने दो-तीन दिन प्रतीक्षा करवायी।

—दीदी! बस आ ही नहीं सका।

—उन क्रान्तिकारी महाशय का कुछ पता चला?

—नहीं तो।

—अच्छा तुम रत्ना से थोड़ी देर बातें करो मैं तब तक फलाहार कर आऊँ।

—रत्ना? कौन रत्ना?

—तुम्हारे क्रान्तिकारी महाशय की रोमी सेक्सन। रत्ना!

पृष्ठभूमि से ही किसी ने 'आयी दीदी' कहा।

और श्रीधर बाबू ने देखा कि दोनों हाथ जोड़े मुसकराते एक अत्यन्त सुन्दरी रमणी समक्ष खड़ी है।

—रत्ना! यह है श्रीधर बाबू। तुम बतियाओ तब तक मैं

—हाँ दीदी! दिन भर से जल तक नहीं लिया। ऐसी भी क्या एकादशी। इतना पुण्य कमाकर भी क्या करिएगा?

—पुण्य?? जिसे एक छोटा भाई तक वासनाशील हो उठा उसके पाप का कोई अन्त है रत्ना?

—दीदी! मैं विपिन बाबू को इतना गिरा हुआ नहीं समझती थी।

—अपने दल के नेता के बारे में ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए तुम्हें।

—सम्बन्धों की पवित्रता को दूषित करने का अधिकार किसी को नहीं है।

—रत्ना! विपिन के कहे पर जाती तो सारे दल का छिन्न-भिन्न हो गया होता। मुझे तो भगवान ने वेश्या इसीलिए बनाया कि मैं विपिन श्रीधर रत्ना लक्ष्मण शारदा सबके लिए समर्पित हो जाऊँ। जो मैं भी कैसी हूँ बातें करने पर आ जाती हूँ तो यह भी ध्यान नहीं रहता कि कितनी आत्मप्रशंसा करने पर आ गयी हूँ।

और वे उठकर कमरे में चली गयीं।

रत्ना और श्रीधर बाबू दोनों को सहसा नहीं समझ में आ रहा था कि पहली बार किसी से क्या बात कही जाए? बोलना सोचते हुए दोनों ही बैठे रहे। उचित तो यह था कि श्रीधर बाबू कुछ बोलते पर रत्ना ही बोली

—आपको मैं कई बार देख चुकी हूँ।

—मैंने तो आपको एक बार बस ही में देखा था।

रत्ना हँस उठी।

—क्या उस दिन जब हम एक नवविवाहिता दम्पति को नाव पर बिठलाने आये थे और ?

—जी हाँ उस दिन ही। लेकिन विपिन बाबू ने उसके बारे कभी विशेष नहीं बताया।

—आवश्यकता भी क्या थी ? आपको 'चैतन्य-वचनामृत' समवतः बहुत ही प्रिय है।

—आपको कैसे मालूम ? क्या विपिन ने बताया ?

—जी नहीं। आपकी किताबें अक्सर मैंने आपके ही बासे पर उलटी-पलटी है।

—क्या आप वहाँ आती रही है ? लेकिन कभी

—नहीं मिली। आवश्यकता भी क्या थी ?

—हाँ आप तो अपनी पार्टी के काम से

—जी और क्या ?

—आपको आश्चर्य नहीं हुआ कि मुझे यह मालूम है कि आप क्रान्तिकारी दल में है।

—मुझे जब आपके बारे में इतनी सारी बातें मालूम है तो आपको यह जान जाने का तो अधिकार है ही कि मैं काली की हूँ बंगाली हूँ क्रान्तिकारी हूँ तथा इसाई नहीं हूँ और न ही विपिन बाबू से विवाह ही करना चाहती हूँ।

श्रीधर बाबू क्षण भर को सकते में आ गये। लगा कि यह नारी बहुत तेज प्रवाह की जान है।

—क्या मुझ कुछ इतना ही मालूम है ?

—मेरा ख्याल है।

—क्या इतना जानना काफी नहीं होता ?

—यह तो वैसा ही हुआ कि कौन ट्रेन कहाँ जाती है कब जाती है बाद में कौन कौन से स्टेशन पड़ते हैं पर इतना सारा जान जाने से भी यात्रा तो नहीं करते न ?

श्रीधर बाबू हठात् हतप्रभ हो गये। न कोई प्रश्न न उत्तर कुछ भी तो सूझ नहीं पड़ा बल्कि रत्ना उन्हें अनावश्यक रूप से तेज लगी क्योंकि रत्ना जिस तुष्टि के साथ हँस रही थी उससे वह अपने को श्रीधर बाबू से ऊँचा किये हुए थी।

—क्या आप राजनीति में विश्वास करते हैं या विपिन बाबू के कारण संसर्गदोष से आ गये हैं?

—आप क्या सोचती हैं?

—मैं तो संसर्गदोष ही मानती हूँ।

—क्या यह भी विपिन बाबू ने बताया?

—विपिन बाबू की बात विपिन बाबू ही जानें। मुझे तो ऐसा ही लगा कि आप सात्त्विक निष्ठावान और वैष्णव हैं।

—क्या बुरा है?

—ऐसे युग में तो है ही जब कि देश पराधीन हो।

—लगता है आप अपना सर्वस्व देश पर न्योछावर कर सकती हैं।

—सर्वस्व से आपका तात्पर्य श्रीधर बाबू? स्व तो जानती हूँ।

—सर्वस्व माने   सब कुछ

—सब कुछ क्या? और, जो सब कुछ देने की बात कहता है वह झूठ बोलता है। आप अपने को दे दें यही बहुत है। रही मैं!!   अपने को देने वाली हूँ। दे सकूँगी कि नहीं इसका निर्णय केवल आगामीकाल करेगा।

—इसका मतलब हुआ कि आपके मन में अभी भी सन्देह है।

—आपको लगता है ऐसा?

—क्या कह सकता हूँ।

तभी दीदी ने फिर प्रवेशा। बोली

—क्या नहीं कह पा रहे हो श्रीधर?

—क्या कह सका हूँ आज तक दीदी?

—दीदी! श्रीधर बाबू असल में भद्रजन हैं। श्रीधर बाबू! सच माने एक दाग को भी इसमें परिहास नहीं।

—रत्ना! लगता है श्रीधर ने तुम पर काफी प्रभाव डाला है।

—यदि ये पति और पिता न होते तो मैं निश्चय ही विवाह करना चाहती इनसे।

वातावरण थोड़ा सुखद हुआ। दीदी हँसने लगीं तथा रत्ना आत्मस्थ हो अपने में मुसकराती रही। श्रीधर के कान तक लाल हो गये। आज तक कभी सपने तक में प्रेम का अभिनय और परिहास तक नहीं किया होगा। कभी किसी दिन कोई

रमणी और वह भी रत्ना जैसी अप्रतिम सुन्दरी जो कि अभी-अभी उस तर्क में परास्त कर चुकी है कभी इतने सामाजिक रूप में विवाह की बात कहेगी इसकी कल्पना तक नहीं की थी।

—रत्ना! ये तुम क्रान्तिकारियों में विवाह प्रस्ताव रखने का क्या कोई नियम है?

और वे ज़ोरों से हँस पड़ीं।

—मैंने तो दीदी! विपिन बाबू को समझाया था कि दीदी से यह प्रस्ताव रखना घोर अनर्थ है लेकिन

—कहाँ आया दीदी से ब्याह करने वाला? कहाँ है वह? ज़रा ब्याह करनेवाले की सूरत मैं भी तो देखूँ।

—जाने दीजिए दीदी! कोई अच्छी सूरत नहीं है उसकी। अच्छी होती तो मैं ही नहीं विवाह करती?

और रत्ना खूब ज़ोरों पर हँस उठी।

दीदी और श्रीधर बाबू दोनों को लगा कि रत्ना खूब खुले हृदय की है। कोई छल नहीं है, कुण्ठा नहीं है। यदि कुछ है तो वह मात्र संकल्प है प्राणों को होम कर देने का। श्रीधर बाबू को लगा कि रत्ना में शक्ति है, मोह है तथा दिल की भी निर्मलता है। वे उसकी शक्ति के सामने मौन ही प्रणम्य हो उठे।

—वैसे आप यहाँ क्या करती हैं रत्ना जी?

—मिशनरी गर्ल्स स्कूल में पढ़ाती हूँ।

—तो क्या आप ईसाई हो गयी हैं।

—क्या, बुराई क्या है?

—लेकिन किसलिए?

—आप मुझसे सर्वोपरि और कोई प्रश्न पूछ सकते हैं यह या इस जैसे नहीं।

—क्या पागल हैं विपिन बाबू विवाह करेंगे?

—न मैं पागल हूँ और न विपिन बाबू हैं।

—आप जानती तो हैं।

—जानती तो यह भी हूँ कि पक्की सड़क बम्बई जाती है लेकिन मैं उस पर चलने तो नहीं लगती हूँ न?

—दीदी का जो अपमान विपिन बाबू ने किया क्या वह मज़ाक है? या उसमें गम्भीरता है।

—आप तो मुझसे अधिक पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं श्रीधर बाबू! एकान्त में मात्र

पुत्र के मिलने को भी तो ऐसी ही दुरावस्थाओं से बचाने के लिए शास्त्रकारों ने वर्जित किया है।

—आपने भक्ति का मार्ग क्यों चुना ?

—लगता है आप तो जैसे बयान ले रहे हैं।

—आप बात काट गयीं।

—यही समझ लें। दीदी ! अब मैं चलूं। काफी देर हो गयी।

—अच्छा तो रत्ना ! फिर कब आओगी ? एकादशी को ही आती हो और सारा नियम-धरम टूटता है। जानते हो श्रीधर ! रत्ना कहती है कि एकादशी के दिन अभागी चावल जरूर खाता है। और इसके लिए बनवाना पड़ता है जबकि हम लोग एकादशी के दिन चावल तो नहीं ही रांधते।

—क्या करिएगा जब दीदी हैं तो सब भुगतना भी पड़ेगा। अच्छा दीदी ! अब की एकादशी के दिन नहीं आऊँगी बस !!

—नहीं नहीं रत्ना ! ऐसी कोई बात नहीं। तुम लोगों से ज्यादा धरम थोड़े ही है।

—लेकिन यमराज के सामने क्या जवाब दोगी दीदी ?

—हाँ-हाँ मैं सब कह दूँगी कि बाल-बच्चों से बड़ा न तो कोई धर्म है और न तुम्हारा यह स्वर्ग या नरक।

—और, आप जानें।

—तो आओगी न ?

—दीदी ! 'माँ' कहने को मन करता है।

और रत्ना अत्यन्त तेजी से कमरे के बाहर चली गयी।

१

डोरी इन दिनों बीमार थी। किसी तरह से रत्ना को बुलाना चाहती थी, इसलिए श्रीधर बाबू को मिशनरी स्कूल जाना पड़ा। मन में कहीं उत्सुकता भी थी कि किस प्रकार वह अपने को वहां सहेजे हुए है। श्रीधर बाबू को रत्ना अत्यन्त शिष्ट किन्तु रहस्यमयी लगी। जितनी सहज वह दिखती है सम्भवतः अन्दर में उतनी नहीं है। उसके व्यक्तित्व में एक ऐसा निषेध था जिसे अस्वीकार कर के जाना कदापि आसान नहीं था। उस किसी भी बात पर आश्चर्य न करने के ढंग से कभी-कभी तो भय लगने लगता था। सौन्दर्य और रहस्य का विषयात्मक मोह वहीं शान्त कक्ष में श्रीधर बाबू को झकझोर न भी सही किन्तु सचेत अवश्य कर गया था।

स्कूल बन्द हो रहा था। मिस रोजी सक्सेना से वहां सभी परिचित लगे। स्कूल के प्रिन्सिपल से श्रीधर बाबू को मालूम हुआ कि मिस रोजी सक्सेना तो अपने घर अजमेर गयी हैं क्योंकि उनका विवाह है और आज गए भी आठ दिन हो गए। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्हें गये आठ दिन हुए। आज से ठीक आठ दिन पूर्व ही तो। इत्तफाकन थी क्योंकि वह डोरी के घर मिली।

थी। उन्हें हाल में कमला दिखायी दिया और वे बिना और कुछ पूछे-ताछे लौट आये।

दीदी को बतलाने पर उन्हें काफी आश्चर्य हुआ कि वह कहाँ चली गयी। दोनों का संशय एक ही था कि बिमल बाबू जो अभी तक नहीं लौटे हैं, जरूर ही रत्ना उनसे मिलने गयी होगी। दोनों काफी गंभीर हो गये क्योंकि बिमल बाबू को पहले कभी इतने दिनों तक गायब हुए नहीं देखा। यदि कहीं मालवा-हाउस वाले षड्यन्त्र की बात सही है तो क्या होगा ?

—दीदी! आपने रत्ना से इस मालवा-हाउस के षड्यन्त्र के बारे में पूछा था ?

—वह तो हमेशा बिमल की तरह ही हँस दिया करती है।

—तो फिर कैसे पता लगाया जाए ?

—जिसका पता अभी सरकार तक नहीं लगा पाती उसका पता भला हम-तुम क्या लगा सकते हैं ?

—एकादशी वाले दिन रत्ना ने अपने बाहर जाने के बारे में कुछ भी नहीं कहा ?

—नहीं कुछ भी तो नहीं कहा। तुम्हारे सामने जब पूछा कि बताओ कब तक आओगी तो यही तो कहा था कि अब एकादशी के दिन नहीं आऊँगी।

—इसका मतलब ही यह था कि वह बाहर जा रही है।

—भला इसका मतलब यह भी हो सकता है यह कौन समझ सकता है ?

—कहने वाला समझने वाले के लिए नहीं कहता। सब अपने परितोष के लिए ही कहते-सुनते हैं। तो लछमन को कहीं भेजकर पता लगवाइए न।

—लछमन को भेजा तो है लेकिन इस बार लगता है वह कुछ नहीं कर सकता।

—क्यों ? लछमन जिस प्रकार खोज-खबर लाता फिरता है आपके लिए, इससे तो पता चलता है कि वह कहीं

और शेखर बाबू हँस दिये

—सी॰ आई॰ डी॰ ??

और दीदी स्वयं हँस दीं फिर बोलीं

—यही शक तो बिमल को भी है उस पर। असल में शेखर! वह पुलिस का सी॰ आई॰ डी॰ नहीं मेरा सी॰ आई॰ डी॰ है।

—किन लोगों के लिए रख छोड़ा है ?

—तुम लोगों की खोज-खबर लगती रहे इसलिए। पता नहीं शेखर! वह मुझे क्यों नहीं छोड़ कर चला जाता।

—पुराना आदमी है। वफादारी कूट-कूट कर भरी होती है इन लोगों में।

—ओ श्रीधर ! अब क्या किया जाए ?

—आप तो ऐसे कह रही हैं जैसे कुछ होने जा रहा है।

—तुम्हें नहीं लगता कि कुछ होने वाला है ?

—मुझे तो दीदी ! फिलहाल गर्मी लग रही है।

और यह कहते हुए उन्होंने सिर के ऊपर चलते हुए बड़े से सागौन पत्ते को देखा जो कि कमरे के साथ खिंचा जा रहा था। सहसा दोनों को ही लगा कि पंखा या तो धीमा है या फिर गर्मियाँ बढ़ गयी हैं। दीदी ने सुराही से पानी पिया और एक गिलास श्रीधर को देते बोलीं

—पता नहीं क्यों मुझे अन्तस में ऐसा लग रहा है जैसे कुछ अपशकुन घट रहा है अथवा घटने वाला है।

—यह आपका अतिरिक्त मोह है जो कि कुशंकाएँ करता रहा है।

—क्या करें श्रीधर ! बिना मोह के हम रह ही नहीं सकतीं।

—अच्छा तो मैं चलूँ अब।

—इस गर्मी में ? थोड़ा ठण्डा हो जाए तब जाना।

—असल में मजदूर यूनियन के एक काम से पुस्तके साहब से मिलना है। कई दिनों से यह काम टालता आ रहा हूँ।

—तो कब आओगे ?

—जब आप कहें।

—तुम्हें कभी आने को मन नहीं करता ?

—मैं यहाँ से जा ही कब पाता हूँ कि आने को मन करे।

और दोनों हँस पड़े।

—बातें बनाना तुम भी सीख गये आखिर।

—अभी पूरी तरह नहीं दीदी !

दीदी के यहाँ से निकल कर वे कई दिनों बाद कुछ देर के लिए पब्लिक लाइब्रेरी में चले गये। वहाँ भी कुछ खास मन नहीं लगा। सहसा उन्हें लगा कि पिछले दिनों में उनमें उद्विग्न होने का नया परिवर्तन आया था। प्रायः उन्हें लगता कि जैसे वे एक सपना देख रहे हैं जो कि थोड़ी देर बाद टूट जाएगा। इसलिए चिन्ता की कोई बात नहीं। लेकिन यह भ्रम भी कब तक ?

दीदी के मन की शंका वास्तव में तो उनके भी मन की शंका थी। जैसे दूर क्षितिज के पास कोई काली आँधी चल रही है जिसमें आहत सियारों का रोना सुनायी पड़ रहा है। वे चौंक उठे। दीदी के घर से लौटते हुए उन्होंने पाया

निर्णय यही लिया कि विपिन बाबू के आते ही संभव हुआ तो पहली गाड़ी से इन्दौर छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाएँगे। लेकिन कहाँ? और अपने ही प्रश्न पर हँसी आ गयी। घर पर छोड़ते यह नहीं सोचा था कि वे कहाँ जा रहे हैं तब भला इन्दौर छोड़ते यह प्रश्न क्यों? यहाँ क्या है? काम के नाम पर मजबूर पाठशाला में पढ़ाना तथा विपिन बाबू की राजनीति की बेगार स्वरूप परिषद के आफिस का काम करना और पढ़ना। लेकिन क्या आजीवन यही करना है? ऐसा संभव था यदि वे स्वयं ही होते लेकिन वे तो परिवार वाले हैं विपिन बाबू कोरे ही। कहीं विपिन बाबू से स्वस्थ ईर्ष्या भी हुई कि वे कितने स्वतंत्र हैं। उनकी स्वतंत्रता तो बल्कि इस सीमा तक भी है कि वे किसी से भी कमल से रत्ना से और तो और बीबी तक से विवाह प्रेम आगे क्या-क्या कह-सुन सकते हैं।

वे यही सब सोचते-गुनते पुस्तके साहब के घर की तरफ चन्द्रभागा चले आ रहे थे। गर्मी खासी थी। बाहर दालान में माधवराव पसीने में डूबा सो रहा था। जगाने पर चौंकते हुए बोला

—साहब तो अभी-अभी सोये हैं। कुछ खास काम है क्या श्रीधर बाबू!

—नहीं खास तो कुछ नहीं शाम को आ जाऊँगा।

—अरे श्रीधर बाबू! वो कोई दो जने आपके गाँव से यहाँ आये थे आपकू खोजने वास्ते। मिले थे आपकू?

—कौन? हमारे गाँव के?

—हाँ साहब को अपना नाम भी बता गये हैं।

—क्या नाम बताया? नारायण बाबू?

—जी हाँ नारायण बाबू। वा जो थोड़े से गोरे हैं और मोटे भी।

—दूसरा क्या नाम था? श्रीमोहन ठाकुर?

—नहीं यह नाम तो नहीं था।

—अच्छा।

और तेजी से वे जीना उतरने लगे। माधवराव वहीं से बोला

—श्रीधर बाबू! वे लोग नसिया में ठहरे हैं।

श्रीधर बाबू बिना कुछ सोचे तेजी से दिशाहीन बढ़े।

उनके मन की अजीब मनःस्थिति थी। वे जिस यथार्थ से बच रहे थे व घर वालों की जिस सोच से डरे हुए थे वे जिन नारायण बाबू के सामने नहीं पड़ना चाहते थे वे सारी बातें परिस्थिति तथा व्यक्ति हठात इतने दिनों की शान्ति भंग करके उनके सामने मौजूद हैं। अब वे करें तो क्या करें? जाएँ, तो कहाँ जाएँ? क्या सहसा इन्दौर छोड़ देना पड़ेगा? अभी तो विद्वान बाबू भी यहाँ नहीं हैं। दीदी से जाने के बारे में क्या कहा जाए? क्या वे भीतर के मन की दुरभिसंधि समझ सकेंगी?—और मान लो ये लोग सब समझ जाएँ लेकिन वे नारायण बाबू से क्या कहेंगे? किस प्रकार घर न जाने के निश्चय पर अटल रह सकेंगे? और क्या यह कभी नारायण बाबू स्वीकारेंगे भी? पता नहीं साथ में और कौन आया है। पिता जी तो नहीं ही होंगे। छोटा भाई डाक्टर भी नहीं ही होगा। बड़े भाई तो नहीं आये हैं। संभव है पवन बाबू हों। पता नहीं ये दोनों घर की स्थिति किस प्रकार कह सकें कि घर लौट जाने को बाध्य ही हो जाना पड़े। और क्या वे घर लौट जाएँगे? बस?? हो गया विद्रोह?? मुक्त बनने के लिए ही घर छोड़ा था और यह भी धराशायी??

नहीं अब किसी से नहीं मिला जाएगा। बासे पर जाना खतरे से खाली नहीं होगा। निश्चय ही नारायण बाबू वहाँ धरना दिये बैठे होंगे। और देर किये जाने पर पुनः उसी कूप का मण्डूक बनना होगा। बिना बासे पर गये ही ट्रेन से, कहीं चल दिया जाए। पर इस समय तो कोई ट्रेन नहीं जाती। और क्या पता नारायण बाबू ने सतर्कता बरती हो कि किसी को स्टेशन पर भी तैनात कर रखा हो। तो ठीक है महू से ट्रेन पकड़ी जाए। वहाँ तक पैदल ही जाया जाए। किस दिशा में?

बिना कुछ सामान लिये और खर्चा लिये वे महू की ओर पैदल ही निकल पड़े। वे जान रहे थे कि गाड़ी जानेवाली रेल रात के आठ बजे मिलेगी और इस समय चार बज रहा था। महू तक की चौदह मील की दूरी वे बखूबी चार घंटे में पार कर सकते हैं।

रास्ते भर मन में यही परितोष बना रहा कि कम से कम दीदी से कह कर आना चाहिए था। वे क्या सोचेंगी? लेकिन जब वे मन को बिना बताये निकल पड़े थे तो फिर   और उन्हें लगा कि महू अब अधिक दूर नहीं है। महू

छावनी के बंगलों की रोशनियाँ दिखने लगी थी। गर्मियों की रात शुरू होने में देरी थी। अजीब सन्नाटा था चारों ओर। क्षितिज में आती ट्रेन का हल्का आभास था। उन्हें अभी भी लगभग दो मील और चलना था। पैर काफी थक गये थे ट्रेन पकड़नी ही थी। क्रमशः ट्रेन की रोशनी दूर के मकानों में कभी चमक जाती।

जिस समय वे स्टेशन पर पहुँचे ट्रेन आ चुकी थी। वे तेजी से एक डिब्बे में चढ़ गये। इतने दिनों बाद फिर अनाम यात्रा पर निकल पड़ने पर सहसा न जाने क्यों विश्वास नहीं हुआ। ट्रेन चल भी पड़ी थी लेकिन न जाने क्यों ऐसा नहीं लग रहा था कि अब सदा के लिए न भी सही तो काफी दिनों के लिए दीदी किसन बाबू इन्दौर शहर छोड़ आये हैं। खिड़की के पास कुहनी टिकाये घिरते अँधेरे में डूबते मैदानों को घूरते बैठे थे।

सरो मा रही थी कि पाने कैसे चौंक कर जागी। संभवतः वह सपना देख रही थी। सपने में वह कुँए की जगत पर बनी   नहीं खड़ी थी बल्कि पति से कह रहा था कि सामने रहा यहाँ मैं अभी आया और पता नहीं कैसे उसका पैर नहीं कदम कुँए की ओर बढ़ा और वह उसमें गिरती चली जा रही थी कि वह चीख उठी। भयभीत उसने चौंक कर देखा तो तीनों बच्चे सो रहे थे। पति काम काम के लिए जा चुके थे। भयभीत का कोई कारण नहीं था फिर भी लगा कि जब वे अनाथ बन ही गये हैं तो फिर अन्य और आएँ। अभी बड़ा सवेरा था। कैसे भी जाड़े का सवेरा था। कुछ देर बिस्तरे में पड़े ही पड़े सोचने का मन हुआ। क्या कभी वे ऐसा कुछ नहीं करेंगे कि वह भी उतनी निश्चिन्तता अनुभव कर सके जो कि उसकी जेठानी या देवरानी करती है? ठीक है वहाँ तक सास-ससुर हैं वे तो हैं ही उनकी सेवा करना तो उसका धर्म है लेकिन वे सासों भी कभी सीधे मुँह क्या नहीं बात करती? आखिर किस बात का दंभ है उन्हें? उनकी दृष्टि में नौकरानी से भी बदतर कीमती इज्जत होगी उसकी। इतना सब मरने-खपने के बाद भी वह न तो अपने बच्चों का ही न पति का ही जमा गरम खाना खिलाना

चाहती है नहीं कर सकती। जब उसके बच्चे लाने आये होंगे तभी कोई न कोई खटराग किये जेठानी आ जाएँगी और बच्चों का ठण्डी या बासी रोटियाँ ही दी जाती हैं। ठीक यही तो 'इनके' साथ भी होता है। लेकिन 'ये' कभी कुछ नहीं कहते। और तो और अपनी माँ तक से नहीं कहते कि जब दादा या देवर जी के लिए गरम खाना होता है तब बासी या ठण्डा खाने के लिए क्या वे ही बचे हैं? लेकिन नहीं आज तक किसी से कुछ नहीं कहा होगा। और तब भला भाभी जी के ढंगे से कि कोई और क्या खाता है पीता है या क्या करता है? जब 'ये' ही किसी से कुछ नहीं कहते तब भला वह किसी से क्या कह सकती है? सासूमाँ सब कुछ समझती हैं लेकिन इन जामुनवा भाभी जी के मारे कुछ नहीं कह पाती हैं। जेठ जी सिरस्तेदार क्या हो गये मानो घर भर के लोगों को फाँसी दे देंगे। खबरदार, जो अगर उनकी रानी जी से किसी ने कुछ कहा तो। पता नहीं किस बात का मान है कि चौबीसों घण्टे माँ तो हँसती-बोलती रहेंगी दूसरों से लेकिन उनने कुछ पूछा-सुना नहीं कि बड़ी भर का मुँह सूज जाएगा और एक एक शब्द काढ़ने में भैंस ही कोंखेंगी-कराँहेंगी जैसे बच्चा पैदा कर रही हों।

अपनी इस बच्चा पैदा करने वाली उपमा पर स्वयं हँसी आ गयी। नीचे ससुर जी की बँगलाई के कड़ बाजने लगे थे तथा 'विष्णु सहस्रनाम' का पाठ भी शुरू हो गया था। दीवार पर बजती घिसनी सुबा की ओर वह दरवाजा खोलकर जीना उतर रसोईघर की तरफ बढ़ी। परिवार में अपने-अपने ढंग से सवेरा हो रहा था। सरो का सवेरा रसोईघर में चौकी पर टेक झटका कर चूल्हा बालने से शुरू हुआ।

जब दोपहर भी ढलने लगी और श्रीधर बाबू नहीं लौटे तो माँ और पत्नी दोनों को अपने-अपने ढंग की चिन्ता हुई। माँ को लगा कि यह भी क्या बात हुई कि जगन्नाथ क्या तो वहीं जाकर बैठ गया। न इस बात की चिन्ता कि पीछेवाले क्या सोचेंगे। कोई घर में ऐसा भी प्राणी है जो बिना उसके आये नहीं खा-पी सकता। अब तीसरा प्रहर झुक आया। सारा बर्तन चौका भी हो गया। सवेरे का बना खाना रखा-रखा एकदम सूखा हो गया होगा। अब कब आएगा? कब खाएगा? फिर बहू कब खाएगी? अभी तो उस कपड़े-लत्ते भी धोने हैं। कब सब होगा? उधर श्रीमोहन के आने का वक्त भी हो जाएगा उसे रोटी-पानी मिलने

में देर होगी तो उनकी बहू भुनभुन करने लगेगी। इस श्रीधर को कभी भी घर गृहस्थी का सोच-विचार नहीं आएगा।

उधर पत्नी को लगा कि लो गये तो वहीं जम गये। घर-बाल-बच्चों की पहले ही कौन चिन्ता है जो आज ही होती लेकिन कम से कम अपने तो समय से खा लेना चाहिए? कौन पकवान मिलते हैं कि स्वास्थ्य तो बनेगा ही चाहे ठंडा खाओ या गरम। न सही मेरी की चिन्ता कि वह भूखी-प्यासी बैठी होगी। दिन भर बीस आदमियों का खाना बनाकर चौका-चूल्हा करते इस समय तक उसके पेट की आँतों का क्या हाल होगा। अपनी ही भूख का ख्याल रखें। मेरी की भूख-प्यास चूल्हे में जाए। अपने तो समय से खा लेना चाहिए? दूसरे की नौकरी करने में क्या नहीं क्या भूख मिलती है? जेठ जी का बस भाभी जी को भूख बर्दाश्त नहीं होती इसलिए सबसे पहले खा लेते हैं। एक यही हैं कि किसी भी बात की चिन्ता नहीं। और फिर आज अभी तक नहीं आये। बैजनाथ हमेशा हो जाते हैं कोई नयी बात तो नहीं, फिर भला वहाँ क्या करने लगे अब तक? नारायण बाबू तो सुनती हूँ कभी इस तरह की देर-अबेर नहीं करते। क्यों नहीं मौजी से कहा जाए। लेकिन मौजी अपने मन में क्या कहेंगी?

और मेरी वही राधीपरवाला अचूड़ा (बैष्णवों में भजन के काम में आने वाला रेशमी वस्त्र) पहने एकदम बनी चूल्हे के पास घुटनों के ऊपर हाथ पर ठोड़ी टिकाये घूँघट में बैठी रही।

तभी माँ ने प्रवेश किया

—पता नहीं यह दुष्ट बैजनाथ में बैठा-बैठा क्या कर रहा है।

सरो सिर झुकाए अनुसार बनी बैठी थी। रसोईघर के बाहर बेगमी नहान घर के पास खड़ी आर-पार से बोल रही थीं

—अब कपड़ नहीं खाने में तो बहलवा दिया होता। कहने में तो तेरी होती है न?

माँ ने रसोईघर के दरवाजे से कहा

—चलो बहू! अभी बेचारी मौसी का खाना-पीना ही नहीं हुआ तब भला वह करेंगे कैसे भाभी?

—माँ जी! देर से काम शुरू होगा तो यही होगा। उनको भी रोज गाने में देर हो जाती है। बच्चों के कपड़े देर से धुलते हैं। भला आपों के दिनों में बदन बदलना? साल से आज तो किसी बच्चे ने धोया कपड़ा पहन लिया और कहीं कुछ नियमनिषेध वगैरह हो गया तो काला मुँह हम लोगों का होगा किसी दूसरे का तो नहीं न?

एक बात पर इतनी सारी बातें सुनकर माँ को बहुत बुरा लगा लेकिन यह साहस नहीं हुआ कि बड़ी बहू की ज्यादती पर कुछ कह सकें। जिस साहस के साथ मँझली बहू का पक्ष लेकर वे खड़ी हुई थीं वह पता नहीं कहाँ चला गया। और वे निर्वाक सरो का मुँह ताकने लगीं। सरो बिना कुछ बोले आप उठी और हाथ धोकर अबूदया बदल कर तेजी से कपड़ों के गट्ठर की ओर बढ़ी। सरो को तभी मालूम हुआ कि जेठानी अपने पानदान के कत्थे में पानी डालने आयी थी। बड़ी अन्दाज से बोलीं

—रहने दो भाई, हम अपने कपड़े धो डालेंगे। मैं तो रोज धो डालती हूँ। आज जरा सा सर दर्द हुआ कि बस। जरा सी बात पर लोगों की बातें सुननी पड़ें, इस गैरत से तो अच्छा है कि आदमी डूब मरे। मैंने तो 'इनसे' पचास बार कहा कि धोबी को रोज कपड़े धोने पर लगा लो धोने नहीं माँ जी बुरा मान जाएँगी और फिर घर में इतने लोग हैं तो क्या चार कपड़े नहीं धुल सकते?

सरो इस बड़बड़ाहट को बिना सुने कपड़े धोने लगी। माँ को अपमान से अधिक विवशता के कारण वहाँ से चला जाना पड़ा। जेठानी पैरों की पायल बजाती सगर्व चली गयीं।

जाड़ों का तीसरा प्रहर होता ही कितना है। खपरैलों पर धूप पहुँची नहीं कि वेला बुझने को हो जाती है। माँ और पत्नी दोनों को लगा कि छावनी में नारायण बाबू के यहाँ पुछवा लिया जाए कि वे लोग आज अभी तक क्यों नहीं आये? पर किसे भेजें? श्रीमोहन सिरस्तेदारी करके कचहरी से लौटे। पहले तो माँ से हाँ भर ली लेकिन जब घर में पहुँचे तो श्रीमती जी के द्वारा श्रीधर ठाकुर के बारे में जो भी चर्चा सुनी हो माँ को कहलवा दिया गया कि उनका सिर फटा जा रहा है। और, गली में जाते किसी से मन्दिर में कहलवा दिया कि कीर्तनिया जी को फौरन घर बुलाया है। श्रीनाथ ठाकुर को कभी नहीं स्मरण था कि वे इस प्रकार बुलवाये गये हों। कपरस से बाहर आकर कपड़े बदल कर पहुँचे। जब पत्नी ने बताया कि श्रीधर अभी तक घर नहीं लौटा तो निस्पृह चिन्ता उन्हें भी हुई। एक बार मन में

आया कि श्रीमोहन से कहें कि वह जाकर नारायण बाबू के यहाँ तगादा कर आये लेकिन कुछ सोचकर स्वयं ही छावनी की ओर निकल पड़े ।

सवेर से रात तक के अपने बँधे-बँधाये यांत्रिक जीवन में मन्दिर से घर और वासुदेव की दुकान के अलावा और भी कुछ है यह उन्हें भूल ही गया था । छावनी की तरफ आज वे बरसों बरसों बाद आये थे । नित्य के जीवन में यह अनिवार्य न था । आरती की बेला अभी नहीं हुई थी । उन्हें जल्द ही वापस मन्दिर भी लौटना था । पूरे दरवाजे से जहाँ जो छोटा तालाब का किनारा था वहाँ अब भी औरतें पानी के घड़ों का बजड़ा सिर पर रखे पीने का पानी लिये आ रही थीं । केवड़ा हवा में महक रहा था । सरो राज इसी रास्ते तालाब से बल पाकर आती है । वह औरतें कपड़ों का गट्ठर लिये चली आ रही थीं । तालाब में शिकारे वालों की नौकाएँ साँझ में एकान्त लग रही थीं । उधर के एकदम नाले तालाब का बाँध था और बाँध के उस पार छावनी शुरू हो जाती है । पन्पनीबाग के कुएँ पर पानी वालियों की भीड़ थी । लाई के रेहट और गिर्रियाँ आवाजें करती पानी भरने में व्यस्त थे । खूब लम्बी सड़कें तथा लाल बजरियों वाली छावनी इस पारदीय साँझ में बड़ी अच्छी लग रही थी । अफसर-कप्तान लोगों के बँगलों के सामने लान की दूब फूल और और पौधे खिल रहे थे । दो-दो चार-चार में सिपाही आ जा रहे थे । बैजनाथ का यही रास्ता था । थोड़ी देर वे उस रास्ते पर खड़े रहे कि शायद श्रीधर आ रहा हो । निराश हो वे नारायण बाबू के घर की तरफ बढ़े । नारायण बाबू के पिता जब जीवित थे तब वे कभी-कभी आया जाया करते थे । वे जवानी के मित्र थे । तब छावनी भी ऐसी नहीं थी । तब रेल नहीं चली थी । मेवाड़ (मध्य-भारत) का ही रिवाज प्रसिद्ध था । जीवन के वे आरंभिक दिन थे । नारायण बाबू का घर बना था कोठी थी । बाहर दालान में ही नारायण बाबू आराम कुर्सी पर बैठे थे । नारायण बाबू हठात विश्वास नहीं कर सके कि श्रीधर के पिता आये हैं । लेकिन दूसरे ही क्षण वे दौड़े और पैर छूकर उन्हें मसनद पर बिठाया ।

—आपने कैसे कष्ट किया ?

—वैसे ही ।

—भाई साहब से काम था क्या ?

—नहीं । हाँ नारायण ! तुम बैजनाथ से कब लौट आये ?

—बैजनाथ से ! मैं तो बैजनाथ नहीं गया ।

—तो तो का श्रीधर तो यही कह कर गया था । आज सबेरे चार बजे से हैं कि तुम सब बैजनाथ जा रहे हो ।

—श्रीधर ने कहा था ? और वह अभी नहीं आया ?

—नहीं अभी तक तो नहीं आया। सब उसकी राह देख रहे हैं घर पर।

—अच्छा आइए पेमेन के घर पूछने चलें।

—बेटा ! अब तुम्हीं पूछकर घर बता आना। मुझे मन्दिर से आना पड़ा। मैं नहीं चलता हूँ।

—चलिए मैं आपको पहले छोड़ आता हूँ।

—क्यों तकलीफ करते हो नारायण !

—अरे वाह तकलीफ की क्या बात हुई इसमें ?

और तेजी से कपड़े बदल नारायण बाबू श्रीनाथ ठाकुर को फिटन पर लेकर मन्दिर की ओर चले। नारायण बाबू सहसा समझ नहीं पाये कि श्रीधर बाबू बैंक नाथ गये कि नहीं और गये तो फिर कहाँ चले गये ? और मान भी लिया कि त्याग-पत्र देने के बाद मन में ग्लानि थी तो इसका यह तो तात्पर्य नहीं था कि वे घर से ही चले जाएँ। नारायण बाबू को अपने ही सोचने पर आश्चर्य हुआ कि क्या श्रीधर बाबू घर छोड़कर चले गये ? अपनी बगल में बैठे पिता श्रीनाथ ठाकुर पर उन्हें अत्यन्त दया आयी कि श्रीधर ने यदि ऐसा किया है तो कल यही पिता श्रीधर की माता पत्नी बच्चे और मन्दिर के सामने फिटन खड़ी हुई।

—तो नारायण !

—आप चिन्ता न करें। मैं उसे ढूँढ कर अभी लाता हूँ।

दिया-बत्ती कभी के जल चुके थे। मन्दिर के बाहर खम्भे में लगी लालटेन जल रही थी। मन्दिर के बाहर का बड़ा सा फाटक जिसकी ठीक सामी लकड़ी अँधेरे में डूबी हुई थी मन्दिर की मोटी दीवार में झुका-झुका सा लग रहा था। जिस मेहराब के नीचे पिता श्रीनाथ ठाकुर खड़े बात कर रहे थे उसमें बन्दनवार के आम के पत्ते सूख कर, कड़े पीले पड़ गये थे। मन्दिर में आते-जाते लोगों के मुख को किर्तनिया भी को इस बेला अपरस में न देखकर, बाहर खड़ा देख आश्चर्य होता फिर भी 'जय श्रीकृष्ण' कहते हुए निकल जाते।

जब पिता श्रीनाथ ठाकुर अन्दर चले गये तब हठात नारायण बाबू को लगा कि श्रीधर न तो पेमेन के यहाँ ही होगा और न ही पेमन के साथ बैजनाथ ही गया होगा। उन्हें अन्तर में निश्चय ही यह उठा कि श्रीधर कहीं जा चुका है लेकिन कहाँ ?

मन्दिर में सन्ध्या-आरती का टकोरा गूँजा और नारायण बाबू पेमेन के घर की तरफ बढ़े।

कई दिनों से नारायण बाबू पेमन मजूमदार से नहीं मिले थे। जिस समय उनकी फिटन तारघर पहुँची रात हो गयी थी। सड़क अँधेरे में एकदम तो नहीं डूबी थी लेकिन तारों की अँधेरी रात थी। तारों की झिलमिल में आसपास के पेड़ों व तथा वस्तुओं के मोटे-मोटे आकार भर थे। रात ठंडी भी हो चली थी तथा हवा भी थी। पेमन का फाटक चारों तरफ से बन्द था। उपासनागृह के झरोखों से रोशनी झिर रही थी। चारों ओर एक गहरा सन्नाटा था। ठीक बगल में बहती नदी की हल्की कलकल अवश्य थी। जब साँकल बजायी गयी तो दरवाजा खोला गया। खाँसते हुए शाल से ढँके पेमेन ने इस बेला नारायण बाबू को सहसा देखकर आश्चर्य भी प्रगट किया तथा प्रसन्न भी हुए।

—क्यों खाँस क्यों रहे हो?

—अरे कफ से खाँसी हो गयी है जरा।

नारायण बाबू बिना कुछ पूछताछे पता लगाना चाहते थे।

—वैजनाथ गये होंगे।

—और पेमेन हँस दिये।

—तो तुम वैजनाथ नहीं गये।

—क्या पुलिस में थानेदारी शुरू कर दी नारायण बाबू?

—नहीं की यही गलती की।

—क्यों क्या बात है? गंभीर लग रहे हैं।

नारायण बाबू कुछ देर तक चुप बने रहे। समझ नहीं पड़ा कि अब क्या करें। पहले तो सिर्फ सोचा ही था कि थीपर यहीं चला गया। अब तो स्पष्ट हो यह पता लगा था। सम्भव है कि वैजनाथ में ही महागम तान्त्रिक गये हुए हों। राम इन्द्र परमहंस योग वैराग्य इनमें से कोई एक ही दिशा भी व्यक्ति का निर्माण करने के लिए बहुत है जबकि इस सदाशय पर तो चारों ओर से हमला हुआ है।

—पेमेन !

पेमेन ने बरसों बाद नारायण बाबू को इस तरह गंभीर पाया। पेमेन कहीं डर भी उठे।

—क्या बात है नारायण बाबू ?

—लगता है भीतर कोई पागलपन कर ही बैठा।

—क्या ??

पेमेन ने फटी आँखों से आश्चर्यता प्रकट अवश्य की लेकिन अभी कुछ नहीं समझ पाये थे।

—हाँ आज तो सवेरे से ही घर से गायब है। घरवालों को कहा कि हम सब लोग आज बैजनाथ जाएँगे। पूरा दिन हो गया और जब वह घर नहीं पहुँचा तो 'कौसीगिया जी' पर आये पूछने। मैं उन्हें मन्दिर छोड़कर तुम्हारे यहाँ टकटकाने आया था कि कहीं तुम दोनों ही न गये हो।

पेमन के हाथ पैर एकदम ठण्डे हो गये जैसे मृत्यु का समाचार सुना हो। दोनों ने सिर उठाकर देखा कि पेमेन-पत्नी दरवाजे की चौखट में खड़ी खड़ी हुई सब सुन रही है। वे बोलीं

—नारायण बाबू ! आप लोग बैजनाथ जाकर क्यों नहीं धीधर को खोजता ?

पेमेन पत्नी की बात से सोत्साह हो उठे और बोले

—ठीक है नारायण बाबू ! यही करना चाहिए।

—हाँऽऽ, करना तो यही चाहिए, पर पता नहीं क्यों मेरा मन कहता है कि वह वहाँ नहीं है।

—लेकिन उसको वहाँ देखना तो होगा न ? सोच के किया होगा खोजना तो होगा उसको।

पेमेन-पत्नी ने जैसे दोनों को आदेश दिया।

—ठीक है बहू ठीक कहती है पेमेन ! गरम कपड़े ठीक से पहनना समझे !!

छावनी की सुनसान सड़कों पर फिटन चली जा रही थी। नारायण बाबू

और पसेन दोनों ही अपने-अपने ढंग से इस बारे में सोच रहे थे। वैसे पसन बाबू की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि श्रीधर बाबू ने जिस मनस्ताप से इसका त्याग किया था उसी का आवेश होगा। ये सही परिणाम तो समय है [illegible] ही हो। लेकिन वे उस वक्त ठण्डी हवा तथा [illegible] मन में यही कामना कर रहे थे कि श्रीधर बाबू मिल जायें। उज्जैन भी काफी पीछे छूट चुकी थी। उज्जैन के मंदिर-कलश की कान्ति भी छूट गयी थी। रास्ता अब उतना साफ सुथरा नहीं रह गया था। आस पास गन्दा पड़ा जा रहा था। हवा में सड़े गुड़ की गन्ध थी। यहाँ हवा एकदम कसैली लगती थी। पसन बाबू काफी गरम पहने थे फिर भी ठिठुरा रहे थे। वे तीन तीन [illegible] समान अँगोछे पूरा ढँके हुए थे। [illegible] बाबू के कमजोर शरीर तथा वस्त्र की गर्मी [illegible] था कि वे न तो ठण्डी हवा का अनुभव कर रहे थे [illegible] न रास्ते की ऊबड़-खाबड़ ही उनका ध्यान तोड़ पा रही थी [illegible] न तो उनके शिविर में उस बैजनाथ को [illegible] जानने की आकुल-व्याकुल हों। वे [illegible] इस समय [illegible] मग्न रहे थे। रास्ते में बड़ा परिचित नाला पड़ा जिसे इन दोनों ने अनेकों बार सभी मौसमों में देखा होगा। इस समय उसका शान्त बहना [illegible] देखने को [illegible] एकान्त [illegible] गया था। उसके प्रवाह में [illegible] थी। जल में तारे तक उतरे मग्न रहे थे। जल काला [illegible] हो। [illegible] ही माने [illegible] की रीता। [illegible] में [illegible] की [illegible] हो गया। जल अनेक में टूट बिखरा। टूटा जल आपस में ही टकराता [illegible] उठा। तब में सारी बालू [illegible] दिशाओं में बिखरकर उठी और [illegible] पार पाते के [illegible] धूल में निशान बनाते ठौर से निकल गये। बैजनाथ वाली पगडंडी आ गयी थी। किसी भी प्रदेश की [illegible] ध्यान [illegible] की यह विशेषता होती है कि उसकी तरह [illegible] होती है—जो कि [illegible] अंचल से पृथक करता है। [illegible] में [illegible] किसी मुसलमान [illegible] दूरी पर [illegible] बकरी की [illegible] सुन पड़ने पर लगता है उस [illegible] उठा हो। यह गन्ध या [illegible] में बड़ी अधिक [illegible] है। मास्टर पाँड़े ने बैजनाथ की ओर से [illegible] में [illegible] ही बह गये अनुभव की।

बहुत सा उतार पार कर जिस समय वे लोग नदिया में पहुँचे चारों ओर एकदम निर्जन शान्ति थी। और ना और पगडंडी तक नहीं थे [illegible] उनके जाने का चिह्न भी नहीं थी। दोनों [illegible] पार कर गये। वहाँ भी निर्जन देश [illegible] मन्दिर की तरह था। शिवलिंग के सामने दीप जल रहा था। दिन भर अँधेरे

—पेमेण !

पेमेण ने बरसों बाद नारायण बाबू को इस तरह गंभीर पाया। पेमेण कहीं डर भी उठे।

—क्या बात है नारायण बाबू ?

—लगता है श्रीधर कोई पागलपन कर ही बैठा।

—क्या ??

पेमेण ने फटी आँखों से आश्चर्यमंता प्रकट अवश्य की लेकिन अभी कुछ नहीं समझ पाये थे।

—हाँ आज वो सबेरे से ही घर से गायब है। घरवालों को कहा कि हम सब लोग आज बैजनाथ जाएँगे। पूरा दिन हो गया और अब वह घर नहीं पहुँचा तो 'कौर्तनिया जी' घर आये पूछने। मैं उन्हें मन्दिर छोड़कर तुम्हारे यहाँ तलाशने आया था कि कहीं तुम दोनों ही न गये हो।

पेमेण के हाथ पैर एकदम ठण्डे हो गये जैसे मृत्यु का समाचार सुना हो। दोनों ने सिर उठाकर देखा कि पेमेण-पत्नी दरवाजे की चौखट में खड़ी खड़ी हुई सब सुन रही है। वे बोलीं

—नारायण बाबू ! आप लोग बैजनाथ जाकर क्यों नहीं श्रीधर को खोजते ?

पेमेण, पत्नी की बात से उत्साहित हो उठे और बोले

—ठीक है नारायण बाबू ! यही करना चाहिए।

—हाँऽऽ, करना तो यही चाहिए, पर पता नहीं क्यों मेरा मन कहता है कि वह वहाँ नहीं है।

—लेकिन उसको वहाँ देखना तो होगा न ? खोज के लिया होगा खोजना तो होगा उसको।

पेमेण-पत्नी ने जैसे दोनों को आदेश दिया।

—ठीक है, वह ठीक कहती है पेमेण ! गरम कपड़े ठीक से पहनना समझे !!

छावनी की सुनसान सड़कों पर फिटन चली जा रही थी। नारायण बाबू

और पेमेन दोनों ही अपने-अपने ढंग से इस बारे में सोच रहे थे। वैसे पमन बाबू की समझ में कुछ यही आ रहा था कि श्रीधर बाबू ने जिस मनस्ताप में त्यागपत्र दिया था उसी का आवेग होगा। न सही परिताप तो सम्भव है ग्लानि ही हो। लेकिन वे उस तेज ठण्डी हवा तथा मामती फिटन में यही कामना कर रहे थे कि श्रीधर वहीं मिल जाएँ। छावनी भी काफी पीछे छूट चुकी थी। छावनी के अंग्रेज कर्नल की कोठी भी छूट गयी थी। रास्ता अब उतना साफ सुथरा नहीं रह गया था। आस पास घना घेरा आ रहा था। हवा में धाने पुष्प की गन्ध थी। यहाँ हवा एकदम मन्दगाय चलती थी। पेमन बाबू काफी गरम पहने थे फिर भी जाड़िया रहे थे। वे दाँव भीचे जबड़े सटाये अंधेरा घूरते बैठे हुए थे। नारायण बाबू के बलिष्ट शरीर तथा बढ़ने की तर्ज से स्पष्ट था कि वे न तो ठंडी हवा का अनुभव कर रहे थे न अँधेरा उन्हें परेशान किये था न रास्ते की ऊबड़-खाबड़ ही उनका ध्यान तोड़ पा रही थी वे तो अँधेरे क्षितिज में बसे बैजनाथ को जैसे खोजने को आकुल-व्याकुल हों। वे फिटन चलाते इस समय आकाश सव्यसाची लग रहे थे। रास्ते में वही परिचित नाला पड़ा जिसे इन दोनों ने अनेकों बार सभी मौसमों में देखा होगा। इस समय उसका शान्त बहता जल काले दर्पण की भाँति एकान्त चमक रहा था। उसके प्रवाह में व्यवधानहीन स्वच्छता थी। जल में तारे तक उतरे लग रहे थे। जैसे काला मोर हो। भागते घोड़े ने सरपट ही नाले के जल को रौंदा। नाले में एकदम को मान्दाम्न हो गया। जल अनेक में टूट बिखरा। टूटा जल आपस में ही टकराता जैसे चौंक उठा। तल में सभी बालू पहियों से किरकिरा उठी और पल्ले पार घोड़े के गीले खुर, गीले पहिये सूखी धूल में निशान बनाते तीर से निकल गये। बैजनाथ वाली पहाड़ियाँ आ गयी थीं। किसी भी जैसे भी निर्जन स्थान तक की यह विशेषता होती है कि उसकी एक गर्मी तथा गन्ध होती है—जो कि उसे अलग स पृथक करती है। जंगल में रात बे रात किसी सुनसान रास्ते दूरी पर किसी गाड़ी या भेड़ बकरी की गलघन्टी सुन पड़ने पर लगता है जैसे दीपक जल उठा हो। यह गंध या गर्मी हम से कहीं अधिक जानवर पता पहचान लेते हैं। भागते घोड़े ने बैजनाथ की ओर से आती हवा में नथुने फुला कर एकबार ही वह गंध अनुभव की।

बड़ा सा उभार पार कर जिस समय वे लोग मन्दिर में पहुँचे चारों ओर एकदम निर्जन शान्ति थी। और तो और ब्रह्मचारी तक नहीं थे इसलिए उनके ध्यान की चीज भी नहीं थी। दोनों सीधे घाट तक गये। वहाँ भी निर्जन देख वे मन्दिर की तरफ बढ़े। शिवलिंग के सामने दीप जल रहा था। शेष सब अँधेरे

में डूबा हुआ था। केवल नाले की 'खलखल' के अतिरिक्त सब कृष्ण-मौन था। हवन मण्डप की ? सीढ़ियों के पास आकर नारायण बाबू जैसे पराजित व्यक्ति की भाँति आ खड़े हुए। पेमेन नारायण बाबू की सारी मनस्थिति तथा परेशानी बूझ रहे थे। स्थिति बोलने से परे की थी। इतना घबराया एकान्त था कि स्वयं का अनुभव अपने को ही दूसरे के सामने होने पर ही हो पाता था। वे बोले
—तोऽऽ ?

नारायण बाबू का 'तो' अनन्त भाषा की व्यंजना था। जिसमें दीप्ति भी खोजने की सीमा थी भविष्य का अंधकार था अनेक सम्बन्धित व्यक्तियों की अनिर्णयात्मकता थी और सबसे अधिक तो श्रीधर बाबू के परिवार का रोता हुआ कक्ष था जो यहाँ तो अभी ही आ गया था। आज के अँधेरे में धूपवाला कल का दिन रोता हुआ उपस्थित हो चुका था।

माना कि बैजनाथ जाते हुए उत्साह या सम्पूर्ण निश्चयात्मक विश्वास नहीं था तब भी संभावना तो थी ही। तभी तो ठण्डे अँधेरे फुटपाथ हवा सभी को चीरते चले आये थे। लेकिन अब लौटने में क्या रह गया था ? वे श्रीधर-परिवार की उत्कण्ठा को क्या कहेंगे ? प्रतीक्षा करते श्रीधर के पिता-माता पत्नी-बच्चे इस समाचार को किस प्रकार सुनेंगे ? इसका क्या अर्थ लिया जाएगा ? क्या अर्थ लिया जाना चाहिए ? जैसा कि श्रीधर ने उस दिन कहा था यहीं बैजनाथ में कि नारायण बाबू ! दो पाँव हैं और पूरी पृथ्वी है। विवेकानन्द की भाँति मैं भी निकल जाऊँगा। जहाँ तक परिवार का प्रश्न है उसके बारे में अधिक सोचना व्यर्थ है। श्रीधर की बात में उस दिन कितना असम्पृक्तता का निर्णय था और लगता है उसने अपने पाँव इस पृथ्वी पर विवेकानन्द की भाँति बढ़ा ही दिये।

रात काफी जा चुकी थी जिस समय नारायण बाबू पेमेन बाबू के साथ श्रीधर बाड़ी पहुँचे। अँधेरा काफी था। दीवार पर एकमात्र मंदी चिमनी जल रही थी। दरवाजे पर आहट हुई और श्रीनाथ ठाकुर—'बच्चा ! !' कह कर उठे। गरम कम्बल ओढ़ तथा गरम कनटोप पहने दरवाजा खोला। पता नहीं क्यों पिता श्रीनाथ ठाकुर ने उत्सुकता नहीं दिखायी। नारायण बाबू से मात्र यही पूछा
—ये साथ में कौन हैं ? पेमेन बाबू ?
—जी हाँ।
पेमेन बाबू ने नमस्कार किया। दरवाजे की पतली गली लाँघते हुए श्रीनाथ ठाकुर बोले
—सम्हल कर आना भाई, कच्चा-पक्का घर है यह तो।

किसी का साहस बातें करने का नहीं हो पा रहा था हालाँकि बेंगबई पर आकर सब बैठ गये थे। उस असह्य मौन को तोड़ते हुए नारायण बाबू बोले

—अम्मा जी कहाँ हैं?

—आती हैं ऊपर बहू के पास गयी हैं।

—सब ठीक है न?

—हाँ बेटा ठीक ही है। पूरा दिन हो गया बहू ने एक दाना मुँह में नहीं डाला। पता नहीं क्या होगा। अरे भाई, वो कोई नादान नहीं है। बच्चा गया है कहीं पर आ जायेगा। घबराने की क्या बात है? और घबराने से क्या होना है? क्यों नारायण बाबू! गलत कह रहा हूँ?

श्रीनाथ ठाकुर का स्वगत सुनने पर नारायण बाबू का भी साहस हुआ वरना यही नहीं सोच पा रहे थे कि कैसे कहें? क्या कहें? बोले

—हाँ और क्या। आज आने वह बेवजह नहीं गया।

—अरे मैं सब समझता हूँ।

तब तक सीढ़ियों पर पैरों की आहट सुनायी दी तथा श्रीधर बाबू की माता जी की आवाज भी—जैसे वे बहू से कहती नीचे उतर रही हों—नाई ऐसे कै दिन चल्या? तुम अपनी जान वने पे क्यों आती हो?

सब ने देखा कि एक अँधेरी छाया सीढ़ियाँ उतरती आयी बोली

—कौन नारायण बाबू?

—हाँ अम्मा जी!

—किसन की आवाज सुनी थी। कहीं मिला न वह दुष्ट? मैं तो जानती थी। वह कहीं दूर निकल गया। ये तुम्हारे साथ कौन है? प्रेमेन बाबू हैं क्या?

प्रेमन बाबू ने नमस्कार किया। श्रीधर की माता जैसे अपने में ही डूबी बोलती रहीं।

—कहीं जाओ-आओ भाई तुम्हें क्या!! लेकिन बस अपने ठीक से रहो तथा दूसरों की साँसत न करो। अब यही श्रीधर कहकर जाता तो क्या बिगड़ जाता? ठीक है बुरा तो लगता है लेकिन भाई, न सही माँ-बाप तो ये नारायण बाबू थे ? प्रेमेन बाबू थे इन्हीं से पूछ-ताछ की होती राय ली होती। बेचारी बहू अधमरी हो रही है। न सोचा न विचारा कि बूढ़े माँ-बाप होते ही क्या हैं पीछे से बाल-बच्चों का क्या होगा? भाई ता जैसा है वह सब के सामने है। उसकी बला से साथ मरे कल दूसरा दिन!!

पता नहीं वे इस तरह जाने कब तक बोलती जातीं लेकिन पिता श्रीनाथ ठाकुर ने टोक दिया

—अब तुम अपनी ही रामायण खोल कर बैठ गयी। किसी और की भी सुनोगी कि नहीं? हाँ नारायण बाबू! तो अब क्या हो? श्रीधर ने तो हमारे सब के सामने समस्या खड़ी कर दी। जाने कहाँ गया होगा?

—अभी एकदम तो मैं कुछ कह नहीं सकता कि श्रीधर कहाँ गया लेकिन वह किसी बड़ी जगह जाकर ही कोई नौकरी ढूँढ़ेगा। और संभवतः तब तक वह अपना अतापता कुछ न दे।

तभी श्रीधर की माता जी बोलीं

—तो भैया जब ऐसी बात है तो कम से कम तुम ऊपर जाकर एक बार बहू को समझा दो। शायद तुम्हारी बात समझ में आ जाए। न खाना न पीना, न रोना न बोलना—बस जस घिग्घी बँध गयी हो। अरे चिन्ता की क्या बात है? कहीं चला ही तो गया है वह आ जाएगा और हमारे रहते इस घर में किस बात की चिन्ता उसे?

और नारायण बाबू उठकर सीढ़ियाँ चढ़ते श्रीधर बाबू के कमरे की ओर चले। देवव्रत और सुशीला सो गये थे लेकिन गुणवंती अपनी माँ के सिरहाने उदास बैठी हुई थी। एक चिमनी का आलोक था। उस कमरे में ऐसा मौन था जैसे बहुत बोला गया हो और हठात् बहुत बोला जाना रुक गया हो। नारायण बाबू को देखकर गुणवती खड़ी हो गयी।

—काका जी आप?

—हाँ बेटा कैसी हो?

—जिजी! छावनी वाले काका जी आये हैं।

और सरो उठ गयी तथा घूँघट ले लिया। उस उठने से चरमराते हुए रस्सी के बुने मूढ़े पर बैठते हुए बोले

—बहू सुना तुमने दिन भर से खाना वगैरा न खाया न पिया। क्यों गुणवंती! माँ ने कुछ नहीं खाया-पिया न?

गुणवंती के दिन भर के उपासे मुख पर अजीब सौन्दर्यपूर्ण मुस्कान आ गयी। गुणवंती इकहरे बदन एवम् कुन्दन वर्ण की थी। हँसते में उसके दाँत थोड़े लम्बे दिखते। आँखों में अजीब दोपहरी का सा भाव लेकिन सम्पूर्ण मुख में एक ऐसा विगत सौन्दर्य झलकता था जो उसे पौराणिक सुन्दरी की सी पवित्रता देता था। नारायण बाबू के प्रश्न पर हठात् हँसी आ गयी और उसने अत्यन्त परितृप्ति से माँ की ओर देखा जो कि घूँघट लिये थीं। नारायण बाबू फिर बोले

—देखो बहू तुम तो स्वयं श्रीधर से कहीं अधिक समझदार हो। आज वह चला

गया है इससे क्या ? कल उसे लौटना होगा तुम्हारे ही पास हम बच्चों के पास। किसी आवेश में उसे कुछ बुरा लगा और वह गया है। हम सब जानते हैं कि वह लोकपट् नहीं है लेकिन ज्ञानी है। शायद इस जाने में भी हम सब की अच्छाई की ही कोई बात हो। क्योंकि वह किसी भी कुपथ पर नहीं जाएगा या कोई भी ऐसा काम कभी नहीं करेगा जो योग्य न हो। तुम इस तरह अन्न-जल छोड़ कर बैठोगी तो बापू-अम्मा का क्या होगा ? हम बच्चों की देखभाल कौन करेगा ? कल जब वह लौटेगा और तुम्हें इस तरह अपरिग्रहा देखेगा तो क्या उसे सुख होगा ? क्या वह चोरी करके गया है जो हम प्रायश्चित्त करें ? ठीक है उसे कह कर जाना चाहिए था लेकिन तुम तो खुद जानती हो कि कहकर जाने पर कोई जा सका है ? या जाने दिया गया है ? जब वह जा चुका होता है तब सब कहते हैं कि अगर कह कर जाता तो क्या हम रोक लेते ? यह सब मोह है ? श्रीधर निश्चय ही सत्कार्य पर गया है। हम चाहे जानें या न जानें वह एक दिन निश्चय ही कोई ऐसा कार्य करके लौटेगा जिसके कारण हम सबको गर्व होगा।

और फिर कोई एक दिन की बात तो नहीं है कि भखो भाई, दो दिन की बात है न खाओ कुछ ही मना लो। कब तक नहीं खाओगी ? और तुम्हारे खाना न खाने से श्रीधर लौट आये तो जरूर न खाओ। तुम्हें हमारी शपथ है बहू ! जो अपने को खास दो समझीं ?

सरो ने अपने घूँघट में से ही गुनवती से कुछ कहा। गुणवती बोली

—काका जी ! उज्जैन किसी को क्यों नहीं भेजते ?

नारायण बाबू हँस दिये।

—अरे तो क्या तुम समझती हो कि उसे खोजा न जाएगा ? लेकिन यह भी सोच लेना चाहिए सबको कि जाग्रत हुए पुरुषार्थ को मोह से नहीं रोकना चाहिए। श्रीधर का पता जरूर ही लगाया जाएगा पर वह यहाँ लौट आए और वापस इसी छोटी जगह में पड़ा रहे यह मैं नहीं चाहता। वह विद्वान है गुण संपन्नी है। उसके किये बड़े काम हो सकते हैं। जब वह एक बार छोटी जगह का मोह त्याग गया तब हम सबका कर्तव्य है कि उसे नमज़ार न बनाएँ बल्कि बल दें। कितने लोगों में ऐसा पुरुषार्थ जाग्रत होता है ? क्या पता एक दिन उसी के नाम तथा कार्यों के सहारे ही हम लोग भी जान जाएँ ? मैं स्वयं उसे खोजूँगा। यदि वह वास्तव में पुरुषार्थी होकर कार्य कर रहा होगा तब उसे नहीं टोकूँगा वर्ना उसे तुम्हारे पास लौटा लाऊँगा यह मैं

विश्वास दिलाता हूँ। तुम्हारा कर्तव्य अब इन बच्चों तथा बापू-अम्मा के प्रति है अपने प्रति है। तुम इसे सौभाग्य समझो कि तुम्हारा पति किसी बड़े उद्देश्य के लिए बना है। न वह सिरस्तेदारी करने के लिए बना है न बाल-बच्चों। मैं चलता हूँ। लेकिन मैं अपनी बहू को वास्तव में सरस्वती देखना चाहता हूँ। तुम तो स्वयं ज्ञान की देवी हो। तुम कमजोर हुई जाओगी तो इस कमजोर घर की मर्यादा किसके कन्धों पर खड़ी रहेगी? तुम इन बच्चों की न केवल माँ ही हो बल्कि आज से पिता भी हो। तो मैं चलूँ फिर आऊँगा। तुमने घर, परिवार को जिस सहनशील पृथ्वी की भाँति सहा है लेगा है उस तुम्हारे असली जेठ-जेठानी न जानें न बूझें लेकिन छावनी वाले तुम्हारे जेठ-जेठानी भलीभाँति बूझते ही नहीं हैं बल्कि ऐसी बहू को 'बहूमाँ' की भाँति पूजते हैं।

नारायण बाबू सहसा भूले से उठ गये। गुणवती की ओर हँसते हुए निकल आये। सीढ़ियाँ उतरने की आवाज आती रही कि नारायण बाबू चले गये। और सरो जिस मन से जो घुटी पड़ रही थी हठात रो उठी। नारायण बाबू उसके मर्म को छू गये थे। जैसे वे उस एक सहज नारी से उठाकर प्रतिमा बना गये कि जो अपना दुःखजीवी नहीं होती। प्रतिमा परदुःखजीवी होती है। लेकिन अन्तर में नारायण बाबू के प्रति वह सहसा प्रणामवती हो उठी कि छावनी में कोई जेठ-जेठानी हैं जो उसके बरतने को पकाना को न केवल बूझते हैं लेकिन पूजते हैं। एकबार ही तो वह छावनी जा सकी है आज तक। नारायण बाबू की पत्नी—भाभी थीं जो कितनी ममतामयी पाया था। नारायण बाबू कैसे उसके मन में उठती शंका-कुशंकाओं का निदान कर गये। सच ही यदि वे कह कर जाते तो क्या मैं या बापू या माँ ये उनको जाने देते? वह अपने में डूबी हुई थी—

कल रात—

कल रात इसी समय वे यहीं बैठे हुए थे। आज आज न जाने कहाँ हैं। रुपये-पैसे भी तो उनके पास कहाँ थ? सामान भी तो कुछ नहीं ले गये। क्या हुआ होगा? कहाँ होंगे? क्या 'उन्हें' मान लो बापू-अम्मा मरो गुणवती, सुशीला किसी की याद न आयी हो तो क्या देवव्रत भी नहीं याद आया होगा? कहते थे कि देवव्रत को किसी गुरुकुल में भेज कर पढ़ाया जाएगा।

कल रात 'उनके' मुख पर कुछ था। कुछ उड़ा उड़ापन सा नहीं था? था न?? कैसे मेरी ही बात की स्वीकारोक्ति कर गये कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में रामायण का वनवास प्रिय-विरह सम्पन्न होता है। कहने लगे कि पति पत्नी की शक्ति

परीक्षित करता ही है न ? मुझी से उल्टा प्रश्न किया । सेकिन क्या 'उनकी' बातों में कहीं सचाई नहीं थी कि राम ने सीता का जो अपमान किया था उसी के कारण वे पृथ्वी में समा गयीं और सरो ने अपनी ही जीभ काट ली । वह अनायास ही कैसी अयथा की बात बुदबुदा बैठी थी । 'वे' ज्ञानी हैं । 'उन्हें यह कहते धामा भी देता है कि—सरो सीता को रावण ने नहीं राम ने पीड़ा पहुँचायी थी । लेकिन सरो तो ज्ञानी नहीं है न ? यथा तर्क नहीं कर सकती । कल शाम जैसे अनायास एक वनवास किसी ने स्वेच्छा से ले लिया । राम-युद्ध की गाथा कैसे मिल गयी ? तभी तो दिन भर कल मन अज्ञात ही में बुझा-बुझा सा था । जैसे कहीं कोई भारी कदमों को रखता हुआ अँधेरा-अँधेरा चल रहा हो । डीकरी की मजारों की वे आँखें जैसे मोमबत्तियाँ जैसे दिन भर दूर क्षितिज के पास जलती हुई रानी रही । तो—अचानक 'वे' चल गये ! ! कहा कि बैजनाथ जाना है । जाते समय हम सब सोते ही रहे । हल्का खटका उनके जाने पर हुआ जरूर था लेकिन क्या पता था कि वे अनेक दिनों के लिए अन्तिम जा रहे हैं । न होता तो जरूर ही पुकार लेती ।

गुणवती इस बीच आ चुकी थी । नीचे से भी बोलना नहीं आ रहा था । सम्भवत नारायण बाबू तथा पमेन बाबू आ चुके थे । बापू की बँगबई होले-होले बोल रही थी। एकदम निस्तब्धता थी । गुणवती थाली में भोजन ले आयी । अजीब तरह से मन खाली होने पर भी भरा हुआ था । नारायण बाबू की बातों तथा गुणवती की आँखों के मौन अनुनय के सामने वह दो चार मस्से किसी तरह खाकर उठ गयी । गुणवती थाली लेकर चली गयी । अम्मा ने गुणवती का थाली वापस ले जाते देख पूछा

—कुछ खाया उसने ?

—हाँ अम्मा !

तभी बापू की 'हरि इच्छा' जोरों पर सुनायी दी तथा अम्मा का 'ओम नमो भगवते वासुदेवाय' तथा बँगबई के कदों की जोरों से 'खर्रमर्र' की आवाज । एक अध्याय जैसे बड़े दिनों में उपवास के उपरान्त बड़ी प्रतीक्षा के बाद पूरा हुआ ।

कल से समय है और दिनों की तरह की नियता मौन भाव ।

सारे बच्चों से घिरी अज्ञात अँधेरे में कहीं चले गये अपने पति के पद चिह्नों को खोजती रही और जैसे कहीं वह भी चली जा रही है—ऐसे ही कटे कटे।

पहले ही कौन सुख था सरा जो जो अब दुःख हो जाता। फिर भी वह अनाथ तो नहीं थी न? कैसे ही चुप रहनेवाले श्रीधर बाबू क्यों न रहे हों पति थे। पति की एक छाया होती है जो अनजाने में ही पत्नी बाल-बच्चों के लिए ऊपर ही ऊपर मौसमों के विभिन्न तापमान स्वयं झेल लिया करती है। पति के पास में न रहने पर आकाश एकदम सिर ऊपर आ जाता है। सारी तपन सियरापन सभी तो सीधे-सीधे फिर भुगतना होता है।
श्रीधर बाबू की उपस्थिति भाई-भौजाइयों के लिए सीमा तक ही स्वतंत्रता देती थी। सास-ससुर को भी बहू का पक्ष लेने में सुविधा होती थी। बच्चों की उपेक्षा भी ताई चाचियाँ चुप कर ही कर सकती थीं। लेकिन अब जैसे मरुस्थल में माथ जेठ की दोपहरी ही तप रही थी। न कहीं छायाश्रय था न तपने का अन्त। जो था वह इतना भाँय-भाँय वाला उजड़ापन था कि न केवल वह बरन आत्मा भी डोल दे। यदि आप अपने दारिद्र्य में न सही वस्त्र तो घर तो पहने हुए होते हैं लेकिन सहसा भूकम्प आ जाए और दीवारें बह जाएँ तो तो क्या हो? आप लिपट न हो जाएँ? परदयाजीवी कि हमें कोई कुछ कह न दे। लेकिन लोग जब कुछ नहीं होता तब बहुत कुछ कह-सुन लेते हैं हथेली पर सरसों जमा दी जाती है भला जब सरेआम मौका हो स्थिति हो और हो आपकी विवशता तो आप उस फेंके गये हड्डी के व्यर्थ टुकड़े होते हैं जिसमें कोई माँस नहीं होता फिर भी कुत्ता है कि आपको मार टपकाता कभी इस दाढ़ से कभी उस दाढ़ से चबाने में लगा है। जब तक आप चब नहीं उठते तब तक आपकी निष्कृति नहीं। भले ही आप कुत्ते की दाढ़ का रक्त निकाल कर अपने को रक्तमय कर लें। और जब कुत्ते को आप में से रक्त का स्वाद आने लगता है तब वह खिन्न गर्व से आपको चूसकर फेंक देता है, एक विजेता की भाँति—कि बन्धु, आखिरकार तुममें रक्त था और उसे मैंने चूसकर ही दम लिया।

प्रत्येक विवशता बड़ी हड्डी का टुकड़ा है। सरो भी यदि अपनी जेठानी श्रीमती सावित्री श्रीमोहन ठाकुर की बातों में चबायी जा रही थीं तो क्या लोकविरुद्ध था? बल्कि यह सरो की क्षमता थी कि वह देर तक चबायी जाने पर भी रक्त का स्वाद नहीं दे पा रही थी। सरो यह भूल रही थी कि किसी ने भी अपने काम से त्याग से सामने वाले को लज्जित नहीं किया है, भले ही स्वयं ऊँचा हो जाता हो वह व्यक्ति। जब काम करता हमारा व्यक्ति ऊँचा हो जाता है तो हम यह समझने की भूल करने लगते हैं कि अब सामने वाला छोटा हो गया है जब कि वह तो उतना ही बना रहता है। अन्तर मात्र इतना हो जाता है कि आप उसकी बातों के लिए बहुत बड़े कौर हो गये होते हैं उसकी पहुँच के नहीं रह जाते हैं। अब आप चाहें तो इसे लज्जित होना कह लें हृदय-परिवर्तन होना कह लें या सह-अस्तित्व कह लें कि बड़ा कौर और छोटी भूनी दाढ़ें एक साथ रह रहे हैं।

दिन पर दिन बीतते जा रहे थे। पति की तलाश में बापू तथा नारायण बाबू दोनों उज्जैन तथा इन्दौर तक गये लेकिन चार-छह दिनों की तलाश के बाद निराश लौट आये। कोई श्रीधर बाबू के इस प्रकार घर छोड़ जाने को कुछ भी कहे कि वे कल बाप का नाम ऊँचा करके ही एक दिन लौटेंगे लेकिन एक तो भविष्य की बात बाद कोई नहीं कह सकता कि कल आप क्या कर सकेंगे दूसरे जब बात इतनी साफ हो कि कायर की भाँति नौकरी छोड़ भाग गये और अपने सिरदर्द चार भाई के सिर पर पिता-माता पत्नी तथा तीन-तीन बच्चों का बोझ लाद कर चले गये तो इस बात को जेठानी श्रीमती सावित्री देवी क्यों नहीं मुहल्ले-टोले में गाती फिरें कि—बहना क्या करें, बस हम लोग तो लुट गये। पहले ही कौन कुछ ऐसा-वैसा था लेकिन अब तो बस जान पूरी आफत में है। बिटिया कान्ता की सगाई तुड़वाना चाहते थे ये देवर महाराज पर, भगवान ने भी कैसी सुनी कि और इसी तरह की अनेक बातें नाइन से तेल मलवाते पान चबाते दोपहर में पड़ोसिनों के आ जाने पर होने लगी।

—हाली बहन, तुझे क्या बताऊँ, ये श्रीधर की बहू अब तुम जानो सिवाय कमी-

कभी खाना बना देने के कटी अँगुली पर पेशाब नहीं करती। कभी कह दो कि बहुत जरा कट गया तो कहेगी—भाभी जी अभी-अभी पेशाब करके आ रही हूँ।

और जाने कितनी गन्दी-गन्दी बातों का रस पान की पीक के साथ श्रीमती सावित्री देवी अपनी बैठक में बैठी काली फूलकुँवर, अम्मा सरजू, मनुष्या भगा आदि से कहती-सुनती खिलखिलाती होती और उधर सरो तीसरे पहर चूल्हे के पास मदूद्या पहने एक मोढ़ के नीचे पानी का लोटा दाबे चोरों की तरह खाना खा रही होती। दाँतों में सवेरे की बनी रोटी 'किस्स किस्स' करती जाती या रही होती कि छमक कर बिछिया तथा पायल बजाती जेठानी चून में पानी डालने के बहाने आकर देख जातीं कि महारानी जी अभी खाना ही खा रही हैं? कपड़े कब धुलेंगे?—सरो जेठानी को देख कर काँप उठती जैसे बिल्ली देख ली हो। एक रोटी खाकर ही उठ जाती। आँतें सहस्रमुखी होकर उस समय खाना खा रही होतीं कि उन्हें पानी के एक लोटे से ही परितृप्त कर दिया जाता। सरो आत्म विस्मृत बनी दिन भर काम में लगी रहती। वह भी मनुष्य है सम्पयुक्त नारी है—यह उसे तभी याद होता जब सामूमी या तो वह पुकारती या फिर बच्चे उसे 'जिजी' सम्बोधन करते। विशेषकर जब किसी काम से सामने पड़ जाने और वह थके अंगों तथा बुझे मन से पृथक एक सहज माँ के रूप में निहारती तो उसकी आँखों में तारे नाचने लगते-जैसे चक्कर आ रहे हों। सब घूमने लगता। जैसे दूर आँधियाँ चल रही हों बैसाख की। चारों ओर धूल-धक्कड़ हो गया है। धूल के बगूले गोल-गोल घूम रहे हैं और तेज-तेज चल रहे हैं।—क्षितिज में ऐसे बगूले ही बगूले खड़े हुए हैं। बचपन में अलादीन की कहानी वाला जिन भी तो ऐसे ही बगूलों में से निकला करता था। ऐसे ही किसी पूर्णावर्त राक्षस का संहार कृष्ण ने किया था। बच्चों के पुकारने की आवाज में कहीं 'उनकी' भी वाणी अनुगुंजित लगती और तब चेत होता कि वह भीगी पाटी में ही दिन भर से है। अंगों में हल्की सिहरन आ जाती। मन करता कि वह भी दमयत को अपने सीने से सटा ले। वह भी अपनी जेठानी की भाँति धूप में चटाई डाल कर अपने बच्चों से घिरी बैठी रहे। पान वह भी खाना जानती थी बल्कि उस कि नजर लग जाए, लेकिन आये दिन वैद्य जी की दवाई खाने से फुर्सत मिले तब न??

इतना कामकाज किसी मशीन को भी करना पड़ता तो वह भी बीमार नहीं टूट भी जाती।

आज चार बरस से वह मायके नहीं जा सकी तब भला आराम कैसे मिल पाता ? चार बरस से अनथक नित्य बारहोंमास सबेरे चार-पाँच बजे से रात दस-ग्यारह बजे तक कामकाज करते रहने पर कोई भी टूट सकता है। सरो टूटी नहीं यही क्या कम आश्चर्य की बात है ?—बीमार है तो क्या है। और फिर ऐसी क्या बीमारी है ? कोई मोतीझरा निकला है ? जलोदर है क्या ? सन्निपात हुआ है ? क्या हुआ है ? कोई पूछे तो जरा इन महारानी जी से ? कहती हैं रात को हल्का-हल्का बुखार हड्डियों में हो जाता है। सुनती हो बहना ! हड्डियों में बुखार !! हाय हाय कुरबान जाऊँ ऐसी नजाकत पर। इस देहात में जैसे लखनऊ की बेगम साहबा आय गयीं बेचारी ! इलायची न छीलना बाजी ! हमारी बहूरानीजी की हड्डियों को जुकाम हो जाएगा—हीः !! बाप ने बेगम तो भेज दी लेकिन लौंडियाँ और खवासिनें क्यों रख ली ? तुम तो लखनऊ की ही जमींदारिन हो बहना ! कह दो न कोई शेर-वेर—

—फर्शे मखमल पे मेरे पाँव छिले जाते हैं।

—हाय माँ ! मर गयी मैं तो।

—चिकोटी न काटो सरजू ! अरे उईई   !!

और जेठानी जी के दरबार में यही सब दोपहर भर होता रहता।

रात और वह भी अपने से थके, हड्डियों में बुखारवाले व्यक्ति की रात। पति जिनके अज्ञात में चला गया ऐसी पत्नी की रात। अधभूखी पसलियोंवाले बच्चों से घिरी माँ की रात—रात नहीं कालीन्धु होती है। जिसमें मात्र सुनसान ही नहीं होती सब ऐंठ जाता है। जैसे दर्द गठिया हो। एक मात्र व्यक्ति जो रहता होता है, जब वही नहीं होता —तब कुछ नहीं होता क्योंकि सब कुछ होने लगता है। और जब होने लगता है तब आप विवश हो जाते हैं—हड्डी के टुकड़े !! शहतीरों के रन्ध्रों से हवा और चाँदनी बाहर के उन्मुक्त अनिंद्य सौन्दर्य की रेशमी रश्मियाँ थाम देते हैं उस अँधेरे में जैसे चाँदी की बंसियाँ नीरव एकान्त गा रही हों—मौन एकान्त !! मन उसी के पीछे मृग बन जाता है—नील आकाश होगा

ऊपर ही छुट्टी दिवारें होंगी जिनकी कोई जेठानी नहीं होगी जिनकी कोई, निठल्ली पड़ोसिनें नहीं होंगी जो पीक थूकती दूसरे की थाली में छेद करती बैठी होंगी। वहाँ सोने के स्वर्गिक सेज की भाँति एकान्त परिवार होगा। जिसमें तारों की चमक होगी। वह भी अपने पति की बाँह पर सिर टेक किसी ऐसे ही एकान्त क्षण को चाहती है लेकिन उसे इसके ठीक विपरीत ही प्राप्त हुआ है और अब—अनन्त अनेक अन्धकार, अनिश्चय।
हड्डियों के बुखार के अतिरिक्त सिर तवे सा तप उठता है। पसलियों में जैसे घरघराहट घूमती हुई पूरे सीने में बगूला बन जाती है और वह खाँसकर उसे थूक देना चाहती है। लेकिन वह अपने अन्दर में बैठे बगूले के इस विष को जानती है और वह कहना चाहती है कि यह उसका गला काट रहा है, उसे अन्दर ही अन्दर खा रहा है उसका नाम है—लेकिन किससे कहे?
सब तो सो रहे हैं!! इन अबोध बच्चों से क्या कहे? सामूली से? वे बेचारी कर ही क्या सकती हैं? बाबू से?—और वह फीके हँस उठी। बाकी कौन है? जो इसे सुन सकता था या जिसे सुनना ही पड़ता वह तो दूर जाने कहाँ है। घबराहट होने लगती। संशय होने लगता कि क्या वह 'उनके' आने के पूर्व ही तो अपने इन बच्चों को छोड़कर नहीं चली जाएगी? तब गुमसुमी सुशीला देवव्रत का क्या होगा? अधभूखे से भूखे और भूखे के बाद नहीं नहीं यह नहीं होगा। और वह सोते बच्चों को अपने में समेट लेती है।
हड्डियों का बुखार, तपा मस्तक और प्रतापित मन—न बीतने वाली रात—लेकिन दिन सभी के लिए होता है। सरो के लिए रात चाहे हड्डियों में घुस जाये दिन तो काम ही ला सकता था। दवाई और विश्राम नहीं।

जब से श्रीधर बाबू गये तब से सासूमाँ के अतिरिक्त जेठानी ने कभी बात न की। जेठानी के बच्चे अब उसे वैसे ही घूरते दूर-दूर से ताकझांक करते जैसे वह मेहतरानी हो। काम-काज में लेकिन बढ़ोतरी ही हुई होगी कमी तो नहीं ही। मुझे से जेठानी कभी सामने पड़ जातीं तो अब दामन ही नहीं आँखें भी चुराने लगी थीं क्योंकि जेठानी भी नया महाभारत रच रही थी।

श्रीमोहन ठाकुर तथा श्रीमती सावित्री देवी अब खुल्लमखुल्ला अलग होने की घोषणाएँ चर्चाएँ करने लगे थे। भगोड़े भाई के निठल्ले परिवार को वे लोग कब तक खिला-पिला सकते हैं? हैं न?? दो-चार-आठ दिन की बात हो तो चलो भाई कोई बात नहीं। अब मान लो श्रीधर लौटे ही नहीं तो? तो क्या उसके बाल-बच्चों का भी करना-धरना होगा? बड़ी लड़की सुखवंती तो जवान हो ही गयी समझो। सुशीला भी हो ही जाएगी। छुटकी की बात बाद की तरह

बढ़ती है । कल को सब कहने लगेंगे कि श्रीमोहन बड़े हैं अब शादी-ब्याह भी करें । वाह साहब—भलाई किसी की बुराई किसी की !! बाबू-अम्मा का दर्द होता है तो वे अपना सम्हालें । श्रीमोहन तो बहुत पहले ही जानते थे कि श्रीधर आवारा है । बड़े विवेकानन्द बनने चले हैं । चूहे को मिली क्या मिली बजाज बनने चला ।

—करेंगे मार्क्सवाद और वो—क्या रामकिसन ! क्या नाम है उसका रापाटकिन? या क्रिपोपाटकिन—जो भी हो श्रीधर हैं और बनेंगे क्रिपाटकिन ! हुँह !!

—अरे हाँ सिरस्तेदार साहब ? कब तक कोई यह कर सकता है ? आदमी घर बाँधता है धर्मशाला तो नहीं न ? अरे हाँ वो जमीन क्या हुई ?

—रामकिसन ! छापनी वाली वह जमीन तो ले ली है लेकिन

—अरे तो फिर, अब विलम्ब नहि कारण कीजे राम भुलाय रामपद दीजे । और क्या !! सम्मनसी में तो मारे जाइएगा आप ।

—हाँ ख्याल आता है कि कल से लोग यह न कहें कि भाई चला गया तो उसके बाल-बच्चे बाहर हो गये थे इसलिए

—अरे वाह साहब आज साल भर होने आया श्रीधर को गये लेकिन न आपके मुँह से और न आपके घर में से ही किसी ने इस बारे में उफ तक न की । श्रीधर के बच्चों को देखकर कोई कह सकता है कि इनका बाप भाग गया है ? सब लोग आश्चर्य करते हैं जनाब ! ऐसी दरियादिली सिरस्तेदार साहब निबाह रहे तो इनके बाल-बच्चों का क्या होगा ? माफ करें, कौशिल्या भी यह बात सीने से बाँध रहें तो समझ में आता है कि हाँ भाई बेटे का परिवार है लेकिन आप यह सब किसलिए कर रहे हैं ? मैं पूछता हूँ साहब ! कि क्या श्रीधर आपसे पूछकर नौकरी छोड़ने गये थे ? क्या वो रहकर घर से भागे हैं ? तब क्यों साहब ! आप उनके बाल-बच्चों की खैर-खबर रखने वाले कौन होते हैं ? नहीं मैंने तो एक बात कही । मेरा मतलब है कि जब वे हजरत गये हैं तो जरूर ही अपने बाल-बच्चों का इन्तजाम भी कर गये होंगे ।

रामकिसन की बात पर श्रीमोहन हँस दिये ।

—कौन सा इन्तजाम ? खाना-खर्च तो हमें ही करना होता है । और आप तो जानते ही हैं कि मैं तो ऊपर की कोई आमदनी बनाता नहीं ।

—अरे अब यह भी आपको बताना होगा ?

—तब बताओ किस तरह गाड़ी खिंचती होगी ?

—तभी तो कहता हूँ कि क्या यह गाड़ी खींचने का ठेका लिया है आपने ? अरे आप भी किस चक्कर में पड़े हैं? भगवान का नाम लेकर नींव खुदवाइए और तीन महीने में शानदार बँगला न खड़ा हो जाए तो मेरा नाम बदल दीजिएगा। गफूर को ठेका दे दीजिए। सेठ मगनमल की हवेली इसी ने बनाई है।

—वो तिमंजली ?

—जी हाँ हवेली क्या है ख्वाब है। नजर नहीं ठहरती।

—लेकिन वो गोपाल ठेकेदार कैसा है ?

—अरे उस घोसी के बापदादों ने कभी मकान बनाये हों तो वो बनाएगा। गायें भैंसे पाले और दूध बेचे। पुश्तैनी काम करे। मकान बनाएगा वो ? ज़माने भर का चोर। उस सीका-मोरी वाले मारवाड़ी का मकान बनाया है उसने देखा नहीं आपने ? जैसे डब्बा बना दिया हो। रो रहा था वह मारवाड़ी कि बीस हजार भी लग गये और   ।

गर्मियों में कान्ता का विवाह पड़ा और वह भी उसके मामा ने नहीं माना इस लिए ननिहाल में ही विवाह होगा। कान्ता के इस विवाह के बारे में न तो श्रीमोहन ने ही और न उसकी बहू ने ही किसी ने भी न बापू से न अम्मा से कोई भी चर्चा नहीं की। एक माह पूर्व ही श्रीमोहन की बहू अपने बच्चों को लेकर मायके चली गयी। जाते समय भी श्रीमती सावित्री ने सरो से कोई बात करनी जरूरी नहीं समझी जब कि सरो पिछले तीन महिनों से खाँसी और बुखार से पीड़ित रहने लगी थी। रोज रात का बुखार हो जाता लेकिन गृहस्थी संबंधी उसकी दिनचर्या तथा दायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं था।

सरो को कभी-कभी अपने पर आश्चर्य होता कि वह क्या से क्या हो गयी थी। उसके माता-पिता ने जो शिक्षा दी थी वह उसके किसी काम नहीं आ रही थी। विवाह के बाद जिस प्रकार की महिलाओं से काम पड़ा उस तरह की किसी महिला को उसने कभी नहीं देखा था। प्रोफेसर पिता ने आदर्शवादी वातावरण में पालन किया था जब कि ससुराल में जेठानी जो कि नख से शिख तक औरत थी स पाला पड़ा था। वह अत्यन्त सहनशील मानी जाती रही है जब कि अब कभी

कभी वह बच्चों पर बरस पड़ती है। जिस दिन जेठानी तथा उनके बच्चे आने वाले थे पता नहीं किस बात पर देवव्रत और जेठानी के बच्चों में झगड़ा हो गया और जेठानी ने सारा घर सिर पर उठा लिया।

—हमारी ही रोटियाँ खाकर हमारे ही बच्चों को मारा जाएगा ? हम तरह देते जाते हैं कि बच्चो कोई बात नहीं लेकिन अब यह नौबत आ गयी ?

शाम को पति के आने पर सारी बातें रो-राकर पत्नी ने पति को सुनायी तो बीच आँगन में देवव्रत को बुलाकर श्रीमोहन ने दो चाँटे लगाये और बोले

—खबरदार, जो अब बच्चों पर हाथ उठाया तो टाँग तोड़ दूँगा।

अम्मा टुकुर-टुकुर देखती रहीं लेकिन किसी का साहस नहीं हुआ कि कुछ कह सकें। जब कि जेठानी के बच्चों ने ही उल्टे देवव्रत की कमीज फाड़ दी थी तथा पीटा था। उस दिन रात में श्रीमोहन ने बापू से साफ शब्दों में कह दिया कि अब वे श्रीधर के नालायक बच्चों के साथ अपने बच्चों को नहीं रख सकते। क्योंकि छावनी में श्रीमोहन के बँगले की नींव डाली जा चुकी थी।

जेठानी मायके गयीं तो तीन महीने में लौटीं। कान्ता के विवाह में बापू तक नहीं गये। श्रीवल्लभ को श्रीमोहन ने नहीं बाकायदा बुलवा लिया था। अम्मा को इस बात का बहुत बुरा लगा कि एक बार भी बहू ने मन रखने के ख्याल से भी कान्ता के विवाह की बात उनके सामने नहीं चलायी। श्रीनाथ ठाकुर ने मुख पर ऐसा कोई भाव तक नहीं आने दिया कि वे कितने आहत एवम अपमानित हुए क्योंकि कान्ता उनकी पोती थी और उसका विवाह उसके ननिहाल में हो लेकिन ।

रात जब वे लौटे और अपनी पत्नी से देवव्रत के पीटे जाने की बात सुनी तो वे किंचित उबल पड़े। वैसे उबल पड़ना उनका स्वभाव नहीं था। श्रीमोहन ने

तथा विशेषकर उसकी बहू ने इस घर की प्रतिष्ठा को जो धूल में मिलाया था उससे वे आहत हुए थे लेकिन मुँह से कहना नहीं चाहते थे। जब देवव्रत के पीटे जाने की बात सुनी तो उनकी पत्नी पहले तो सकपकायीं लेकिन पहली बार पुरुष की भाँति उन्हें आचरण करते देखकर कहीं प्रसन्न भी हुईं।

श्रीनाथ ठाकुर "विष्णु सहस्त्रनाम" का पाठ अधूरा ही छोड़कर गाव तकिये के सहारे तन गये बोले

—मैं आज साल भर से देख रहा हूँ कि जब से श्रीधर गया है यह नालायक श्रीमोहन रोज एक न एक बखेड़ा किया करता है। यह समझता है कि हम सबको यह अपनी सिरस्तेदारी से पालता-पोसता है। मैं तरह देता हूँ कि लड़का है लेकिन—

और अमिया की उस आधीरात के घुप्प अँधेरे में जब कि चारों ओर सुनसान हो गया था उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि इतने बड़े लड़के के लिए क्या कहा जाए? और जिस तरह वह मनमाने ढंग से मकान बनवा रहा है अपनी लड़की का ब्याह अपनी ससुराल में कर रहा है बिना अपने परिवार वालों से पूछे-ताछे इससे तो स्पष्ट ही है कि वह किसी को कुछ नहीं समझता। ऐसी स्थिति में उससे कुछ कहा जाए और वह उलटकर यदि जवाब दे बैठे ऐसा कि आपको तुच्छ कर दे तो क्या होगा? उसकी पत्नी से भी कोई कुछ नहीं कह सकता है क्योंकि श्रीमोहन को ऐसा बनाने में उसी का हाथ है। वह मुँहजोर भी है और घमण्डी भी। उसने अपनी सास तक से कान्ता के ब्याह की कोई चर्चा करना उचित नहीं समझा। भला ऐसी स्त्री से कोई क्या कह सकता है? आज सातों महीनों से बुखार में पड़ी हुई है लेकिन श्रीमोहन की बहू को दर्द नहीं होता कि कभी उसका हाथ बँटा दे। दिन भर पान खाने से ही फुरसत नहीं उसे। अड़ोसियों-पड़ोसियों से एक की दो लगाने से छुट्टी मिले तब न देवीजी कुछ करें? अपने को जमींदारिन समझने लगी है। सुना है मैके वालों को कोई आम का बगीचा खरीद कर दिया गया है। अरे हम लोगों को दिखाने के लिए कह दिया कि उन लोगों को जरूरत थी उन्हें खरीदवा दिया गया है। अच्छा तो जो तीन गाँवों की जमींदारी जो चुपके-चुपके खरीदी गयी है वह किसके लिए है? बेटा मैं तुम्हारा बाप हूँ तुम नहीं समझे??

लेकिन आज नाराज होने से क्या लाभ? और इस सारी गड़बड़ी के कारण क्या वे स्वयं नहीं हैं? उन्होंने क्या शुरू से सारे बच्चों की गतिविधि नहीं रखी थी? श्रीमोहन की बहू को यदि डाँटकर शुरू में ही बरज दिया गया होता तो उसकी यह हिम्मत हुई होती कि वह उनकी पोती के ब्याह में उन्हें दूध की मक्खी की

भाँति अलग कर दे ? क्या उन्हें उनकी पत्नी ने गाहे-बगाहे नहीं बताया है कि श्रीधर की बहू ही बराबर खटती रही है और श्रीमोहन ने या उसकी बहू ने कभी हाथ तक नहीं बँटाया। छोटा श्रीवल्लभ तो परिवार की झंझटों से हमेशा ही दूर रहा। उन लोगों की आँखों के सामने कंचन सी सरो ठीकरा हो गयी थी। आज जबकि उसका पति एक बरस से जाने कहाँ चला गया है तथा उसकी बीमारी भी वैद्य जी कह रहे हैं कि असाध्य है ऐसी स्थिति में यदि कहीं कुछ हो गया तो क्या होगा ?

पति श्रीनाथ ठाकुर ने देखा कि उनकी पत्नी उसी बँगवाई पर आ गयी है और जैसे उन्हें पढ़ रही है। श्रीधर के कमरे से बहू का खाँसना जोरों पर आ रहा था। सम्भवतः गुणवती ही जो कह रही थी

—जिज्जी ! पानी पियोगी ? छाती में दवा मल दूँ ?

—नहीं रे तू सो जा। तू क्यों जाग गयी ?

—जिज्जी !

—क्या है रे ?

—बाबा कब आएँगे जिज्जी ?

इसके बाद श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी को किंचित सुबुकने के और कुछ नहीं सुनायी पड़ रहा था। वे अवाक् परस्पर देखते हुए विवश थे। चारों ओर सन्नाटा था। गर्मियों की रात उजली अँधेरी थी। आँगन में काफी स्पष्ट लग रहा था। पत्नी बोलीं

—आखिर यह श्रीधर कहाँ चला गया ?

—जो कहीं नहीं गये हैं उन्होंने ही तुम्हें कौन सिकड़ी पहना रखी है ?

—वह इन दोनों से भिन्न है।

—तुम्ही ने सब का सिर चढ़ा रखा है।

—अच्छा अच्छा आपसे तो कभी नहीं कहा कि सिरचढ़ों का बोझ लग रहा है जरा बँटा लो।

—किस मुँह से कहतीं ? बहू ने तो कौड़ी की इज्जत करके मिला दी धूल में।

—अपनी सम्हालिए। दुनिया तो आप पर हँस रही है कि कीर्तमिया जी की पोती अपने ननिहाल में ब्याही जा रही है।

—मैं तो समझता था कि तुम सास हो।

—हाँ मैं भी तो आपको ससुर समझती थी।

—लेकिन मैं औरतों के मामले में क्या बोलता ?

—बहू तो मान लो दूसरे के घर से आई थी लेकिन बेटा तो आपका अपना ही था उसे क्यों नहीं फटकारा ?

—इतना बड़ा बेटा क्या फटकार सुन सकता है ?

—तो क्या गिरस्तदार की पत्नी तुम-आपकी बात सुन सकती है ?

—ठीक है, श्रीमोहन अलग हो जाए तो रोज-रोज की झंझट मिटे ।

—नहीं यह नहीं होगा। जब तक मैं बैठी हूँ घर का बँटवारा नहीं हो सकता।

—लेकिन तुम्हारे कहने न कहने की जरूरत किसे है ? उसका तो अंग्रेजी फैशन का मकान छावनी में बन रहा है ।

—श्रीमोहन तो मुझसे कह रहा था कि उसको किराये पर उठाएगा ।

—उसने कहा और तुमने मान लिया है न ?

—हाँ और क्या ??

—जानती हो वो कितना बड़ा रिश्वतखोर है ?

—रिश्वतखोर !? मेरा श्रीमोहन ?? क्या कहते हो ?

—हाँ हाँ तुम्हारा श्रीमोहन रिश्वतखोर है । उसने रिश्वत से दस हजार रुपये पैदा किये हैं ।

पत्नी पति की बात का कैसे विश्वास ? लेकिन पति पुत्र के लिए अविश्वसनीय बात क्यों कहने लगे ? उन्हें श्रीमोहन से वितृष्णा होने लगी। साथ ही कहीं चिन्ता भी हुई कि किसी मुसीबत में न पड़ जाए । श्रीमोहन रिश्वतखोर है ? तभी तो आये दिन यह आम का बगीचा खरीदा तो जमींदारी बेचा या नम्बरदारी से ली करता फिरता है । अब तो छावनी में 'नयी विलायत' का मकान भी बनवा रहा है। तभी उनके मन में एक बात कौंधी कि शायद वह कान्ता को खूब सारा दहेज देना चाहता होगा। यहाँ रह कर करता तो परिवारवालों की आँखों में भी आता तथा दूसरे लोगों की नजर जाती । इसी रिश्वत के बल पर ही मुन्ना अपने जमाई को डाक्टरी पढ़ाने लखनऊ भेजने वाला है श्रीमोहन । राम-राम कैसी नियत हो गयी है इस लड़के की । घरवालों से पर्दा किये है। माता पिता भाई सब पराये हैं। क्यों बाबा इसके लिए ? अब तो बस पत्नी ससुराल वाले ही सगे रह गये हैं । उसकी चले तो वह हम सब लोगों से पूरे मुहल्ले की झाड़ू निकलवा कर छोड़े ।

—आपको कैसे मालूम कि वह रिश्वत लेता है ।

—रिश्वतखोरी में तुम्हारे बेटे ने बड़ी दूर-दूर तक नाम कमाया है । क्या समझती हो उसे ?

भाँति अलग कर दे ? क्या उन्हें उनकी पत्नी ने गाहे-बगाहे नहीं बताया है कि श्रीधर की बहू ही बराबर खटती रही है और श्रीमोहन से या उसकी बहू ने कभी हाथ तक नहीं बँटाया। छोटा श्रीवल्लभ तो परिवार की झंझटों से हमेशा ही दूर रहा। उन लोगों की आँखों के सामने कंचन सी सरो ठीकरा हो गयी थी। आज जबकि उसका पति एक बरस से जाने कहाँ चला गया है तथा उसकी बीमारी भी वैद्य जी कह रहे थे कि असाध्य है, ऐसी स्थिति में यदि कहीं कुछ हो गया तो क्या होगा ?

पति श्रीनाथ ठाकुर ने देखा कि उनकी पत्नी उसी बँगवई पर आ गयी है और जैसे उन्हें पढ़ रही है। श्रीधर के कमरे से बहू का खाँसना जोरों पर आ रहा था। सम्भवत गुणवती ही थी जो कह रही थी

—जिजी ! पानी पियोगी ? छाती में दवा मल दूँ ?

—नहीं रे तू सो जा। तू क्यों जाग गयी ?

—जिजी !

—क्या है रे ?

—बाबा कब आऐंगे जिजी ?

इसके बाद श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी को किंचित सुबुकने के और कुछ नहीं सुनायी पड़ रहा था। वे अवाक परस्पर ताकते हुए विवश थे। चारों ओर सन्नाटा था। गर्मियों की रात उजली अँधेरी थी। आँगन में काफी स्पष्ट लग रहा था। पत्नी बोलीं

—आखिर यह श्रीधर कहाँ चला गया ?

—जो कहीं नहीं गये हैं उन्होंने ही तुम्हें कौन सिकड़ी पहना रखी है ?

—यह इन दातों से भिन्न है।

—तुम्हीं ने सब का सिर चढ़ा रखा है।

—अच्छा अच्छा आपने तो कभी नहीं कहा कि सिरचढ़ों का बोझ लग रहा है जरा बैठा था।

—किस मुँह से कहती ? बहू ने तो कौड़ी की इज्जत करके मिला दी धूल में।

—अपनी सम्हालिए। दुनिया तो आप पर हँस रही है कि कीर्तनिया जी की पोती अपने ननिहाल में ब्याही जा रही है।

—मैं तो समझता था कि तुम मास हो।

—तो मैं भी तो आपको ससुर समझती थी।

—कलिन में औरतों के मामले में क्या बोलता ?

—बहू तो मान लो दूसरे के घर से आई थी लेकिन बेटा तो आपका अपना ही था उसे क्यों नहीं फटकारा ?
—इतना बड़ा बेटा क्या फटकार सुन सकता है ?
—तो क्या मिसेज़ नागर की पोती हम-आपकी बात सुन सकती है ?
—ठीक है श्रीमोहन अलग हो जाए तो रात-दिन की झंझट मिटे ।
—नहीं यह नहीं होगा । जब तक मैं बैठी हूँ घर का बँटवारा नहीं हो सकता ।
—लेकिन तुम्हारे कहने न कहने की ज़रूरत किसे है ? उसका तो अंग्रेज़ी फ़ैशन का मकान छावनी में बन रहा है ।
—श्रीमोहन तो मुझसे कह रहा था कि उसको किराये पर उठाएगा ।
—उसने कहा और तुमने मान लिया है न ?
—हाँ और क्या ??
—जानती हो, वो कितना बड़ा रिश्वतखोर है ?
—रिश्वतखोर ?? मेरा श्रीमोहन ? क्या कहते हो ?
—हाँ हाँ तुम्हारा श्रीमोहन रिश्वतखोर है । उसने रिश्वत से दस हज़ार रुपये पैदा किये हैं ।

पत्नी पतिव्रता बात को कैसे विश्वास ? लेकिन पति पुत्र के लिए अविश्वास की बात क्या कहने लगे ? —हे श्रीमोहन से वितृष्णा होने लगी। साथ ही बड़ी चिन्ता भी हुई कि किसी मुसीबत में न पड़ जाए । श्रीमोहन रिश्वतखोर है ? तभी तो सारे जिले में यह भाव का अफ़सर माना था कर्मचारी वर्ग का नम्बर वाले से ली रंगदा लिया है । अब तो छावनी में 'नयी निवास' का मकान भी बनता रहा है। तभी उसके मन में एक बात कौंधी कि शायद यह कान्ता का कुछ साथ पहन देना चाहता होगा । यहीं रह कर करता तो परिवार वालों की आँखों में भी आता तथा दूसरे लोगों की नज़र जाती । इसी रिश्वत के बल पर ही मुझे अपनी कमाई का धौंस दिखाने लगते सजने वाला है श्रीमोहन । रात-रात कैसा निष्ठुर हो गया है इस लड़के को । घर वालों से दगा किये हैं। माता पिता भाई सब पराये हो गये सब इसके लिए ? अब तो बस पत्नी ससुराल वाले ही सब रह गये हैं । उसकी यह बात बन चले तो वह हम सब लोगों से पूरे मुहल्ले की नाक निकलवा कर छोड़े ।
—आपको कैसे मालूम कि वह रिश्वत लेता है ।
—रिश्वतखोरी में तुम्हारे बेटे ने बड़ी दूर-दूर तक नाम कमाया है । क्या समझती हो तुम ?

—जैसे तुम्हारा तो वह दुश्मन है न ?

—कस्बे में जिधर निकल जाता हूँ लोग उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। बड़े पुण्यात्मा को जन्म दिया है तुमने ।

—आज आपको क्या हो गया है ?

—मुझे बड़ा दुख है श्रीधर की माँ ! कि मैं आज तक अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे कैसे सब देखता रहा ? आज जब पट्टी हटाकर देखता हूँ तो तीनों लड़के मेरी आँखों से कहीं दूर चले गये हैं । बड़े ने मेरे जीवन की सारी कमाई, प्रतिष्ठा पर पानी फेर दिया क्योंकि उसे अपने लिए प्रतिष्ठा धन सभी तो अर्जित करना था । अपनी प्रगति में वह परिवारवालों को बाधा पाता है, इसलिए वह सबके प्रति निर्मम हो गया है । दूसरा श्रीधर, बिल्कुल मेरी तरह । सहनशील विनम्र लेकिन लोकाचार से अनभिज्ञ । मर्यादा में दोनों पति-पत्नी टूट जानेवाले लेकिन उफ तक न करने वाले। और वह श्रीवल्लभ अपनी सास की अँगुलियों पर नाचने वाला व्यक्ति जहाँ सुख-समृद्धि के साधन दिखे उसी ओर बह कर चला जानेवाला पानी का रेला। श्रीधर की माँ! तीनों अपने-अपने तरीके से पराये हैं । इसी दिन के लिए घर की ये चार दीवारें खड़ी की थीं कि इनकी नींव में छेद कर ये तीनों पानी के रेले चले जाएँ ? एक हमें अपमानित कर गया है, दूसरा हम से दुखी होकर गया है और तीसरा ऐसे गया—मानों उसे गोद लिया था और अब हमें छोड़ गया हो ।

पत्नी ने पहली बार देखा कि दिन भर घर से दूर मन्दिर में अपरस में रहनेवाले पति ने कितने सतर्क होकर सब सहा है । वह समझती थी कि मंदिर, पूजा के अलावा 'इनके' लिए घर-गृहस्थी लड़के-वाले कुछ हैं ही नहीं। जैसे उसी ने जाया है और अब वही भुगते भी । लेकिन इस बेला वह देख रही थी कि संभवतः पति कहीं अधिक दुखी मर्माहत पीड़ित उपेक्षित जाने क्या-क्या हुए हैं। सदा चुप रहने वाला व्यक्ति देर रात में आने वाला गृहस्वामी भी कितना कोमल होता है अपने ही हाड़-माँस से उत्पन्न प्रजा के बारे में यह वह आज समझ रही थी । क्या ही अच्छा होता कि यदि वे इस तरस्थ देखते रहने के साथ-साथ कहीं बागडोर थामे रहते तो आज यह तीन-तेरह की नौबत तो न आती ।

आज यह घर क्या वैसा ही नहीं लग रहा था जैसे कि किसी पतीली में ढेर सारा पानी काफी देर तक निरर्थक खौलाया जाता रहा हो आँच भी मंद हो गयी हो पानी भी खौलकर उड़ गया हो तथा पतीली में भूरी-भूरी उदास सफेदी ही लेप रह गयी हो। इतना खलना चूल्हे पर चढ़ना सब ही तो निरर्थक हो गया था ।

सरो बीमार है। शालिगराम वैद्यजी आये थे। च्यवनप्राश वसन्त-मालती लौह-भस्म जाने क्या-क्या तो शहद में खाने के लिए बता जाते हैं। गुणवंती घंटे-घंटे भर में एक न एक दवाई लेकर सिर पर खड़ी हो जाती है। श्रीधर बाबू गये उसके बाद ही गर्मियों में गुणवती का पढ़ना बन्द हो गया। चकिया का स्कूल चौथे तक ही है और वह चौथा पास कर चुकी है। सरा चाहती थी कि पति से कहकर वह गुणवंती को अपने माता-पिता के पास सोरों भेज देगी ताकि वहाँ पढ़-लिख जाएगी। लेकिन अब वह किससे कहे और सोरों भी किस मुँह से भेजे ? सुशीला स्कूल जाती है, दूसरे में है। जबसे गुणवती ने पढ़ना छोड़ा है बिचारी अपनी माँ की बीमारी के कारण दिन भर काम में लगी रहती है। और फिर सरा की तबियत भी तो साल भर से ही ज्यादा खराब रहने लगी है। गुणवती भी कैसी दुबला गयी है अब। बढ़ने की उमर है, ऊपर लम्बी भी निकलेगी पर हाथ पैर कैसे सींक जैसे हो गये हैं। शायद अब वह सब समझने लगी है। बारह की हो रही है न ? सब समझती है कि उसकी माँ के साथ ताईजी कितने क्रूर हैं। ताईजी की शान्ता गुणवती से तीन चार महीने ही तो बड़ी होगी। काई

देखे तो कहे कि कितना अन्तर है दोनों में। कान्ता जैसे साँवली है संभवत: रूप रंग भी गुणवंती की तरह नहीं है। लेकिन इससे क्या? गुणवती तो एकदम पीली-पीली पैसी आँखों की उदास चौंक-चौंक उठने वाली हो गयी है। कुछ काम का कहो तो पता नहीं कहाँ रहती है कि एक बार में कभी नहीं सुनती। सुनती भी है तो भूल जाती है।
—क्या आपने कुछ माँगा था?
—अभी तो तुमसे कहा था कि पानी दे जा और तूने कहा था कि लाती हूँ।
—भूल गयी अभी लाती हूँ।
भला कोई पूछे कि इस उमर में यह हाल है तो ससुराल में क्या होगा? सरो अपनी बेटी के इस तरह बढ़ने को मौन होकर सिर झुकाये देख रही है सबेरे से रात तक। लेकिन क्या कर सकती है?
—गुणवती! जा तू पास-पड़ोस में ही हो आ मन बहल जाएगा।
—जीजी! काम में मन बहलता है कि ठल्लमठल्ला करने में?
और वह सीपियों जैसे सफेद दाँतों की बत्तीसी में हँस देती है, लेकिन सरो के मन पर भारी बनती है।

आजकल जैसे शान्ति है सरो को गुणवंती को और संभवत: सभी को। क्योंकि श्रीमोहन का परिवार अभी लौटा नहीं है। लौट आने पर सभी की साँसत तो है ही लेकिन जाने क्यों गुणवंती काँप-काँप उठती है। आज चार दिन से उसकी जिजी ने खाट पकड़ ली है। रोज की तरह सबेरे उस दिन भी ठंडे पानी से वे नहायीं और घाम होते-होते तो सरो के दाँत बजने लगे। गुणवंती हाथ पकड़ कर जबरन बिस्तरे पर लिटा गयी और दोनों भाई-बहिनों को ताकीद कर गयी कि जिजी की तबियत ठीक नहीं है, शोर न हो। अम्मा से भी कह दिया कि जिजी की तबियत ठीक नहीं है। अम्मा आकर बहू के सिरहाने बैठ गयीं। गुणवती ने घर सम्हाला। पर महेनतै पैर कितनी चलनी क्योंकि खटपाग करने वाला कोई नहीं था। ताई मा उनके बन्द होते तो मजाल था कि गुणवंती इस तरह

सबको जल्दी-जल्दी खिला-पिलाकर ढाँका-ढूँकी कर पाती । उसे अच्छा लगा कि यदि ऐसे में बाबा आ जाएँ और अपनी गुणवती को काम करते देखें तो कितने प्रसन्न हों कि—अरे वाह, हमारी गुणवंती अब इतनी बड़ी हो गयी कि सारी गृहस्थी सम्हालने लगी है ??

गत एक बरस में ही गुणवंती सहसा ऐसी बनी लगने लगी जैसे वह कहीं खोयी हुई थी । रात-रात भर अपनी माँ के सिरहाने बैठी वह खिड़की की राह जाने कहाँ होती है । तरो बुखार में तपती हानी है अथवा व्यथित हुए हाँफने लगती हुयी है । दीप के मन्द आलोक में बुझते हुए माँ के मुख को अब वह सहसा समझने लगी है । बाबा का गम्भीर मुख स्मरण हो आता है । कहाँ होंगे वे ? क्यों चले गये वे ? घर में कोई इस बारे में बातें नहीं करता । प्राय: ताई पड़ोसियों से बिरी अजीब तरीके से बाबा के बारे में बातें किया करती थीं । जो अच्छी नहीं होती थीं । वह जानती है कि ताई और ताऊ को छोड़कर और सब बाबा की प्रशंसा ही करते हैं । पता नहीं क्यों ताई-ताऊ न केवल बाबा से बल्कि हम सबको फूटी आँखों नहीं देख पाते हैं । जिमी कितनी काम में लगी रहती हैं । चौका-चूल्हा कपड़ा-झाड़ू घर का कौन सा काम है जो उन्हें नहीं करना पड़ता है जब कि ताई को लोगों की बुराई, पान चुगली तथा झगड़ा इनसे ही फुरसत नहीं मिलती । हम लोगों को वे कैसे दुत्कारती रहती हैं । कभी भूल से भी उनकी कोई चीज छू लो तो कैसे आँखें तरेरती हैं । बाबा तो किसी से कुछ नहीं कहते थे लेकिन बापू और अम्मा इन लोगों से क्यों नहीं कुछ कहते ? सुना ताऊ जी बहुत बड़े आदमी हैं सुबात में—सिरश्तेदार ! ! क्या सिरश्तेदार बहुत बड़ा आदमी होता है? होता ही होगा तभी तो ताई जी के लिए आये दिन कैसे-कैसे जेवर बनते रहते हैं । सुना कान्ता दीदी के ब्याह के लिए भी खूब सारे गहने बनाये गये हैं । उसने खुद सुना है जब ताई जी किसी से इस बारे में बता रही थीं । खूब सारे जेवर पहनकर दीदी कैसी लगेंगी ? पहले तो कान्ता दीदी कितना चाहती थीं क्या अब भी चाहती होंगी ? अपने ब्याह में तो बुलाया नहीं ?
और खुली खिड़की की राह इस सर्द आकाश में भी गुणवंती जाने किन-किन दिवास्वप्नों में खोयी हुई होती ।
—सोयी नहीं गुणवंती तू ?

—जिजी ! नींद नहीं आ रही है।
—बेटा बहुत थक गयी होगी। क्या करूँ रे, मैं मारी हूँ तुझे सारा काम करना पड़ता है।
—तो क्या हुआ ?
गुनवंती ने देखा कि माँ अपनी बूढ़ी-रूखी आँखों से उसके मुँह को जैसे सींच रही थी।
—गुनवन्ती !
—जिजी ! क्या सिर दुख रहा है ?
—न हो बेटा अपने बाबा की पुस्तकों में से ही कभी कुछ पढ़ लिया कर।
—तुम अच्छी हो जाना जिजी ! तो फिर खूब पढ़ लूँगी।
—कितना चाहती थी कि वे लौट आते तो तुझे सौंप देती।
—नानी भी कितना भुलाती है सबको है न जिजी ?
—हाँ रे, अच्छा अब तो सो जा सवेरे वे लाला आएँगे तो बहुत काम बढ़ जाएगा।
—कौन आ जाएँगे ?
—वही ताई जी और कौन ?
और गुनवंती ने देखा कि जिजी को खाँसी का दौरा पड़ गया।
जिजी किसी तरह मुँह फेर सो गयीं लेकिन गुनवंती सो न सकी। ताई की क्रोध भरी आँखें आधी रात के उस अँधेरे में उभर आयीं। वह डर गयी। और अब तो उसे ही चूल्हे के पास बर्तन माँजते हुए, झाड़ू-बुहारू करते हुए, उन क्रूर आँखों का सामना करना होगा। बाबा रे ताई तो एकदम डरावनी बिल्ली है जो कि झपट्टा मारने के लिए हौले-हौले जमीन पर अपनी पूँछ हिला रही हो और नीली मरोती आँखें किसी आड़ से चमक रही हों।

दूसरे दिन सवेरे श्रीमोहन का परिवार, कान्ता का विवाह सम्पन्न कर लौट आया। श्रीमोहन ने जब देखा कि न माँ न बापू कोई भी विवाह के बारे में कुछ

भी आगन को उत्सुक नहीं है तब उन्होंने तथा उनके परिवार ने एक क्षण को यह प्रदर्शित नहीं होने दिया कि वे विवाह करके वहाँ दिना साथ लौटे हैं। बल्कि सबको यही लगा कि जैसे किसी पिकनिक पर सवेरे गये थे और शाम लौट आये हैं। तब भला पूछ-ताछ की कैसी औपचारिकता? श्रीमोहन की पत्नी सावित्री को जब मालूम हुआ कि सरो बहुत बीमार है तो उसने अत्यन्त सहजता से काम की महत्ता पर जोर-शोर से भाषण दे डाला कि काम न करने से व्यक्ति बीमार हो जाता है और इसके बाद यात्रा की थकान तथा सिर दर्द के कारण वे जाकर सो गयीं।

चूल्हे के पास बैठी गुणवती आदेश की प्रतीक्षा में अपनी माता की भाँति घुटनों में सिर दबाये बैठी रही कि क्या बनाया जाएगा? इस बीच दस बज गया। श्रीमोहन को कचहरी जाना था। जब खाने के लिए रसोईघर में पहुँचे और खाना न बना देखा तो आगबबूला हो गये। पति की बकझक सुन पत्नी ने गुणवंती को आड़े हाथों लिया कि मुफ्त का खा-खाकर भैंस होती जा रही है, काम का जरा भी शऊर नहीं। कभी माँ बाप ने काम किया हो तो बच्चों को भी काम करना आये। जो रोटियों का जब सहारा नहीं इन लोगों का तो फिर क्या फायदा इन मुस्टंडों को पालने-पोसने से?

और श्रीमती सावित्री देवी जी ने गुणवंती को इतने जोरों से चूल्हे के पास से धक्का मारकर उठाया कि बेचारी के हाथ की हड्डी उतरने से बची। वे बड़बड़ाती जा रही थीं और जोरों से रसोईघर के बर्तन उठा-पटक करती जा रही थीं। गुणवती कोने में खड़ी डरी कबूतरी सी सहमी हुई थी। न उससे रोते बन रहा था और न भागते। तभी माँ दरवाजे के पास दिखलायी दीं।

—बस गुनी! अब क्यों खड़ी है यहाँ?

श्रीमती सावित्री ने सास को गुणवंती को ले जाते देखा तो भभक पड़ीं।

—मैं जानती हूँ इन कमबख्तों को आपने ही शह दे रखी है वर्ना इन टुकड़खोरों की यह मजाल जो

—बस बहू जबान सम्हाल कर बात करना।

—वर्ना क्या कर लेंगी आप?

और सास की बात का सावित्री ने उत्तर दिया तथा तब गुस्से में आँखें तरेरते हुए फूँक उठी। फिर बोली

—बोलिए, बोलिए, कह क्यों नहीं देतीं कि जूतियों से पिटवा देंगी है न?

हे भगवान बस ही घर में पिटना ही तो बाकी रह गया था।

जीने के ऊपर दरवाजे के पास सिर थाम आँसुओं में डूबी खड़ी है। वे दरवाजा पकड़े गिरने से बच रही थी। गुणवंती लगभग चिल्लायी
—माँ ! जिज्जी
और गुणवंती जीने से ऊपर भागी। पीछे माँ भी चढ़ने का उठीं।

रोज की तरह जब पति मन्दिर से वापस लौटे तो नित्य पाठ-पूजन भोजन आदि समाप्त कर बैंगनबाई पर लेटने ही जा रहे थे कि पत्नी ने टोका। वैसे इतनी देर तक पत्नी को जब अबोला पाया तभी उन्हें हल्का सन्देह हुआ था कि अवश्य कुछ बात हुई है। भोजन करते समय भी गुणवंती की सूनी उदास मौन आँखों तथा घर की अजीब निस्पृह चुप्पी से वे निःसन्देह आशंकित हुए थे। पत्नी ने ही सम्भवतः मात्र सूचना दे दी थी कि श्रीमोहन सपरिवार लौट आया है। जब वे भोजन कर रहे थे तब अनायास रसोईघर की चौखट के पार खड़े होकर श्रीमोहन ने बड़े ठंडे ढंग से दो-चार व्यावहारिक बातें ही की थीं। यह भी तो उन्हें अजीब ही लगा था कि श्रीमोहन उनसे उनकी बैठक या बैंगनबाई नामी जगह न मिलकर यहाँ मिलने आया। जब पूछा कि भोजन वगैरा कर लिया तब भी उसने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। पिता श्रीनाथ ठाकुर का कभी यह स्वभाव ही नहीं रहा है कि वे अपनी ओर से खोद कर पूछें। तथा दर्शक भाव से ही क्या घर, क्या बाहर सभी जगह रहते आये हैं। कभी उन्हें जिज्ञासा नहीं हुई। इसलिए उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व आचरण सभी में आवेगहीन शान्ति या असंपृक्तता ही रहता है। इसका यह भी अर्थ नहीं था कि वे कुछ समझते नहीं थे या उन्हें सब कुछ विदित नहीं था। बल्कि वे मन ही मन समझ गये थे कि बड़ा लड़का श्रीमोहन किसी प्रकार अपने परिवार की संकुचित सीमा छोड़ कौटुम्बिक दृष्टिकोण से नहीं सोच सकेगा। छोटे लड़के श्रीवल्लभ ने बड़ी चतुराई से कौटुम्बिकता से अपने को लगभग पृथक कर ही लिया था। शेष श्रीधर ने उनके लिए तथा बाकी सभी के लिए समस्या उत्पन्न कर ही दी थी।

जब श्रीमोहन दो-चार उड़ी-उड़ी सी बातें कर गया तो पिता श्रीनाथ ठाकुर की समझ में आ गया कि श्रीमोहन कान्ता के विवाह से संबंधित कोई बात नहीं करना चाहता और न ही घर-गृहस्थी के बारे में कोई बात करने को तैयार है। गुणवंती से उसकी जिज्जी के स्वास्थ्य आदि के बारे में पूछकर वे ओसारे में निकल

आये जहाँ कि बेंयबई थी। पत्नी शायद माला फेर चुकी थी और सोने की तैयारी में थी। वे समझ गये कि आज अवश्य ही कुछ हुआ है। घर का वातावरण कसे हुए ढक्कन की भाँति लग रहा था। बस छूने भर की देरी थी कि अभी सब कुछ एक साथ ही एकबारगी ही बज उठेगा। और भला उनके जैसा शान्तिप्रिय व्यक्ति इतना बड़ा दायित्व (संकटपूर्ण) कैसे उठाने को तत्पर होता ?

वे रात की भाँति बेंयबई को भूला के तकिये के सहारे अभी लेटे ही थे कि पत्नी ने गहरी उसाँस लेकर—हे ठाकुर जी महाराज ! ! कहा। चारों ओर इस समय निस्तब्ध था अँधेरा हुआ। केवल श्रीधर के कमरे में उसकी बहू की खाँसी की आवाज से कभी-कभी मानो सोया वातावरण हुआ-हुआ सा जाग उठा करता। पत्नी ने उसाँस लेकर ठाकुर जी का स्मरण जिस ढंग से किया था उसका स्पष्ट संकेत था कि वे अभी सोयी नहीं हैं। यही तो समय होता है जब वे आपस में कुछ बात पाते हैं। इन्हीं बेलाओं में बातें कर बच्चों के विवाह लेन-देन जमीन जायदाद हिसाब-किताब होते आये हैं। जाने कितनी बातें सुख-दुख की अच्छी बुरी अपनी परायी होती आयी हैं और वे दो से आज इतने बड़े कुटुम्ब में फल-फूल हुए हैं।

—क्या सो गयीं श्रीधर की माँ ?

—भजन हो गया ?

—हाँ। बहू की तबियत कैसी है ?

—अभी ही है। अरे हाँ सोमोहन आ गया है, मिला नहीं ?

—मिल लिया।

—कहाँ ?

—रास्तेबार में।

पति इसी दुखती रग को तो टालना चाह रहे थे जबकि पत्नी उसी रग को बरा बर छू रही थी। बोली

—क्या कहा ?

—कहना क्या आ गया है बस ! !

पत्नी को लग गया कि पति इस संबंध में बातें करने को उद्यत नहीं हैं जब कि वे तो भरी बैठी थीं। जिस प्रकार सावित्री का पक्ष लेकर उसका पति उनसे लड़ने आया था और सभी तरह से उनका अपमान कर गया था क्या उनके पति का धर्म नहीं है कि उनकी तरफ से वे भी उन दोनों को डाँटे फटकारें ?

—आज आपके सपत का खाना शाम से अलग बना है और अब अलग ही बना करेगा।

—हूँ!!

—हूँ क्या??

—यही कि उनकी रसोई अब अलग बनेगी।

—लेकिन मेरे रहत यह नहीं हो सकेगा।

—तुम यह भी तो कहती थीं कि तुम्हारे रहते कोई अलग नहीं रहेगा। सिरस्तेदार साहब का बँगला जो बन रहा है छावनी में।

—ठीक है जब अपन बँगले में चले जाएँ तो जो मर्जी में आये सो करें।

—चलो तो तुमने इतनी बड़ी बात मान ली तो फिर इसमें क्या है? गुड़ खाएँगे गुलगुले से परहेज करेंगे? हाथी भले ही निकल जाए मगर उसकी पूँछ नहीं निकलने देंगे है न?

ऐसा प्रायः हुआ है कि अत्यन्त गंभीर मौकों पर पति श्रीनाथ ठाकुर अँगुलियों के अंतिम पोरों तक विनोदी हो आया करते हैं। जाने कहाँ से उनमें व्यंग्य फूट जाता है और बेचारी पत्नी को भुगतना पड़ता है। आज उन्हें पति से आशा थी कि वे नाराज हो उठेंगे श्रीमोहन को आड़े हाथों लेंगे लेकिन ऐसा सब कुछ नहीं हुआ। वे सनक उठीं बोलीं

—आपको और तो कोई मिलता नहीं कि किसी से कुछ कह सकें। ले-देकर मैं ही हूँ सो सही-गलत सुना लीजिए जो मर्जी आये। अपने दिल में मलाल न रहने दीजिएगा समझे? चाहे लड़के हों या पति सुनना तो हमें ही है।

—ब्याह करके लड़का लौटा है क्या-क्या अच्छा सुनने को मिला? जरा हम भी तो सुनें। कहा होगा कि किस शान से बारात आयी किस शान से कान्ता के माता-मामा लोगों ने स्वागत-सत्कार किया दान दहेज लिया-दिया गया। अरे हाँ तुमको कुछ पोती के विवाह की पेरावनी (कपड़े-लत्ते) आयी कि नहीं?

—यह आपको कभी-कभी क्या हो जाता है?

पत्नी समझ गयी कि पति इसी प्रकार धीमे-धीमे कंडे की भाँति सुलगते हैं और फिर आग पकड़ते हैं। आधी रात के इतने गहन में बँगवई के कड़ों की हौली-हौली सी आवाज तथा बुदबुदाते हुए पति-पत्नी जाने क्या-क्या बातें करते रहे। सम्भवतः पत्नी को इतना आश्वासन अवश्य हो गया कि पति सचमुच ही नहीं बहुत मर्माहत हुए हैं, श्रीमोहन को लेकर, कान्ता के विवाह को लेकर, बड़ी बहू सावित्री के ओछेपन को लेकर, तथा सरो की बीमारी को लेकर।

पत्नी पूछती ही रही कि उनकी क्या प्रक्रिया है लेकिन वे आवेश में चूँकि अपमानित अनुभव करते अँधेरा चूसते सिर पीछे हाथ गूँथे गाव तकिये के सहारे लेटे रहे।

श्रीमोहन परिवार का खाना-पीना सचमुच ही अलग होने लगा था और उस पर किसी भी प्रकार की कोई बहस या कानाफूसी तक नहीं हुई। एक प्रकार से श्रीमोहन ने शेष कुटुम्ब से अपना परिवार पृथक कर लिया था। अब वे घर के प्रमुख द्वार से कभी ही आते-जाते दिखते। घर के पीछे की ओर जो बाड़ा था उधर ही से उन्होंने अपना आना-जाना शुरू कर दिया था। पिता तक ने कभी भूलकर एकबार भी श्रीमोहन से यह नहीं पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया? इस उपेक्षा से श्रीमोहन तथा उनकी पत्नी सावित्री कहीं मर्माहत हुए थे। माँ को तो वे दोनों एक तरह से अपमानित कर चुके थे इसलिए माँ से यह आशा करनी व्यर्थ थी कि वे इस बारे में कुछ पूछेंगी। अब तीन चार दिन बीत गये और उस दिन रात्रीभर के बाद से पिता को देखा तक नहीं तो उन्हें इतनी उपेक्षा अपमान जनक ही लगी। उनका छावनी वाला बँगला लगभग बन कर तैयार हो गया था। वे शीघ्र ही वहाँ चले जाना चाहते थे। एक प्रकार से घर में पहले ही अलग होने की यह स्थिति पति-पत्नी की पूर्व नियोजित ही थी। लेकिन दोनों को यह आशा नहीं थी कि इतनी आसानी से ऐसा हो जाएगा। यह तो बल्कि अपमान ही सहा जाएगा। दोनों का ख्याल था कि पिता-माता बाधा देंगे तब श्रीमोहन अपनी विवशता जतलाएँगे श्रीधर का निकम्मापन गिनाएँगे तथा सरो और उसके बच्चों के बोझ को वहन न कर सकने की असमर्थता दिखायी जाएगी और इसी प्रसंग के बीच छावनीवाले मकान की चर्चा भी हो जाएगी। हालाँकि सबको मालूम था कि श्रीमोहन ने मकान बनवाया है लेकिन न तो कभी पिता ने ही पूछा और न पुत्र ने ही इस बारे में कोई चर्चा की। श्रीमोहन का सम्बन्ध अपने कुटुम्बी जनों से खिंचता ही चला गया। एक के बाद एक इस तरह घटनाएँ घटती चली गयी। अब यदि वे पिता या माता को ही सुनाने लगें तो उनका कुछ भी मुँह

नहीं रह जाता। कान्ता के विवाह के बारे में वे बिल्कुल सहमत नहीं थे कि वह उज्जैन से हो लेकिन सावित्री ने अपने पति की एक न चलने दी और तो और उसने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि श्रीमोहन के परिवार की ओर से कोई न गया। श्रीवल्लभ का यह तो ऐन मौके पर श्रीमोहन ने किसी प्रकार सुलझा लिया। सावित्री ने अपने ससुराल वालों को हवा तक नहीं लगने दी कि लड़की के लिए क्या-क्या जेवर बने हैं तथा क्या-क्या दिया जा रहा है। श्रीमोहन ने झूठ ही पिता से कहा था कि जो अमराई और जमींदारी खरीदी है वह उसकी ससुराल वालों के लिए थी। बल्कि सावित्री ने विवाह के बाद उनकी कान्ता के नाम रजिस्ट्री करवा दी। श्रीमोहन के पास अब कोई मुँह नहीं रह गया था कि वे पिता से आँखें मिलाकर बातें कर सकें फिर भी पिता की इतनी चुप्पी उन्हें निरा तिरस्कार ही लगी। स्वयं सावित्री को लग रहा था कि यह तो बड़ा भारी अपमान है कि किसी ने भी बुरा नहीं मनाया। वह अपमान से पीड़ित नहीं थी बल्कि फुँक उठी थी।

—देखो मेरी बात कान खोलकर सुन लो।

—क्या बात है ?

श्रीमोहन अभी कचहरी से लौटे ही थे।

—मैं यह घर छोड़ने के पहले यह चाहती हूँ कि हम लोगों का सारा हिसाब-किताब साफ हो जाना चाहिए।

—क्या मतलब ? तुम बँटवारा करवाना चाहती हो ?

—जो भी समझो। मैं इतनी पागल नहीं हूँ कि यहाँ से जाऊँ और पीछे से अपना सारा हिस्सा छोड़ दूँ।

—देखो तुम में यही बुरी आदत है कि तुम किसी भी बात के पीछे पड़ जाती हो। तुम्हारे कहने से आज तक काम करता आ रहा हूँ उसी का नतीजा यह है कि मैं अपने घर में ही परदेसी हो गया हूँ।

—तो फिर जाओ अपने भाई-बन्धों में ही जाकर बैठो। किसने तुम्हारा हाथ थामा है ? मैं तो तुम्हारी दुश्मन हूँ न तभी तो तुम्हारे बाल-बच्चों के लिए जमींदारी खरीदवाती फिरती हूँ मकान बनवाती फिरती हूँ। बाँट दो सब अपने भाइयों को। किसने तुम्हारा हाथ पकड़ा है ?

—तुम नहीं जानती कि कान्ता का विवाह उज्जैन में कर हम लोगों ने कितनी बड़ी भूल की है।

—तो किसने मना किया था ? कोई एक पैसे की मदद नहीं करता यहाँ। उल्टे

जाने को तभी हो जाते। एक तो बेचारे बाबू जी और भैया ने इतनी दौड़ धूप करके शादी की उस पर अहसान मानना तो दूर रहा उल्टे आप साहब को भी नाराजगी ही है। इन बेचारों के तो होम करते हाथ ही जले।

—मालिनी! ज्यादती तुम करती हो और उसे मानने को तैयार भी नहीं होती हो।

—मैं क्या ज्यादती करती हूँ सुनूँ तो ?

—बेचारी सरो की तबियत खराब है तो उस अकेली से घर भर का खाना कैसे बन सकता है ? तुम्हें तो हाथ बँटाना चाहिए था।

—सरो के लिए इतना ही दर्द है तो रख लो एकाध नौकरानी ? अरे जिस दिन हम साथ नहीं होंगे इस घर में इन लोगों को रोटियों के लाले न पड़ जाएँ तो मेरा नाम बदल देना। ये लोग हैं किस फेर में ? बड़े माँ-बाप बनते हैं एक बार भी तो कहने नहीं आये कि तुम लोग क्यों अलग रसोई बनाने लगे हो बोलो अब! देख लिया न ? क्योंकि अब पैसा उड़ाने को उनके हाथ में नहीं मिलता तो किस बात का मीठा रहा ? कान्ता के ब्याह के बारे में क्या कम ऐंठी हो जाती ? सरो क्या इतनी बीमार है कि चलकर यहाँ आकर मुझसे कुछ पूछताछ नहीं कर सकती थी ? अपनी लड़की की तरफ से लड़ने तो आ गयी थी ?

—अच्छा भाई सारी दुनिया खराब है और तुम सही हो। बस अब तो।

—देखो जी मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हें इतना बुरा लगा बैठा है दिल में। मुझे क्या करना। जो मर्जी आये करो। बाद में मुझसे कुछ मत कहना। मैं कल ही बाबू जी के पास चली जाऊँगी। अम्मा ने कितना रोकना चाहा कि इतनी जल्दी क्या है, दो-चार आठ दिन और रुक जाओ।

—तो अभी तुम्हारा वहाँ से पेट नहीं भरा था ?

—मेरे बाबू जी-अम्मा सरीखे माँ-बाप आपको मिलते तो आप समझ जाते कि माता-पिता किसे कहते हैं।

—अच्छा अच्छा मेरा खाना-वाना जल्दी दिला दो तो कोठी तक हो आऊँ।

—कितना काम बाकी है अब ?

—कमरों का फर्श तो तैयार हो गया। सिर्फ बरामदों का बाकी है।

—तब तो मैं समझती हूँ कि पन्द्रह दिन में एकदम तैयार हो जाएगा।

—ठीक है इतनी जल्दी क्या है ?

—अरे वाह जल्दी क्यों न हो ? मैं इस अपमान के बाद घड़ी भर भी नहीं ठहर सकती।

—तुम तो हर बात की गाँठ बाँध लेती हो।

—सिरश्तेदार साहब ! तभी काम भी होता है । मगर तुम्हारे कहने से चलती तो जमाने भर के मवक्किलों को खिलाते-खिलाते तन पर एक कपड़ा नहीं होता।
—तो तुम्ही क्यों नहीं मेरी तरफ से कचहरी भी हो आया करती ?
—नहीं मेरा कहना नहीं मानते हो तभी तो घर भी फाइलें लाते हो ।
अरे हाँ यह किशनचन्द सेठ का मामला क्या हुआ ?
—मकान किशनचन्द सेठ के पास गिरवी था । उसमें होना क्या है ? मकान उस बच्चों को मिलेगा ।
—आज तो किशनचन्द सेठ की बहू आयी थी । बड़ी रो-गीज रही थी बेचारी ।
—फिर तुमने कुछ गड़बड़ी की है क्या ?
—कैसी गड़बड़ी ?
—देखो तुम सरकारी मामलों में मत पड़ा करो। तुम लोगों से ले लिया करती हो और मेरी मुसीबत हो जाती है ।
—मैं तो मना करती रही । अब तुम्हीं वापस करवा देना । भई मुझसे तो किसी का दुख नहीं देखा जाता । वह यह हार दे गयी है ।
—कैसा हार ?
और सावित्री उठकर भीतर गयी और एक हार निकाल कर ले आयी ।
—देखो सावित्री ! किसी दिन तुम्हारी इस आदत से मेरा मुँह काला हो जाएगा ।
—तभी तो कहती हूँ भाई कि इसे सेठ किशनचन्द को वापस करवा दो । मेरा तो कहना माना नहीं उसकी बहू ने ।
—सावित्री ! तुम नहीं जानती कि लोग मुझे रिश्वतखोर समझने लगे हैं। तुम्हारे ही कहने से यह छावनी वाली जगह मुझे रिश्वत में लेनी पड़ी ।
—मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ । मुझसे तब किसी बात के बारे में मत पूछा करो । मैं तो भाई वही सलाह दूँगी जो दुनिया देती है। सभी अपना घर भरने की सोचते हैं । तुम कोई दुनिया से न्यारे तो हो नहीं ।
—कान्ता को इतना जेवर चढ़ाया गया तो क्या वहाँ लोगों ने कानाफूसी नहीं की होगी ?
—रहने दो। हमारे घरवाले तुम्हारे यहाँ के लोगों की तरह ओछे मन के नहीं हैं समझे ? दिया भी तो कैसे तुमने हाथों और तुमने दिल से था याद नहीं है ?
—लेकिन अब इस हार का क्या होगा ?
—कहो तो वापस कर दूँगी ।
—सेठ किशनचन्द का तो उस मकान पर कोई हक ही नहीं है ।

—यही तो वह भी कह रही थी लेकिन बेचारों को उस मकान की बड़ी जरूरत है।

—अच्छा ! !

—अरे तो इतने परेशान क्यों होते हो ? आसानी से हो जाए तो उनका भाग्य न हो तो उनका भाग्य।

—असल में तुम जानती नहीं यह सेठ बड़ा पाजी है। न होगा तो बदनाम कर देगा।

—क्या वह कहेगा कि हमें हार दिया था ? कल ही इसे बाबू जी के पास रवाना कर दूँगी तो किसी को कानोंकान खबर ही नहीं होगी कि

—अच्छा तो फिर मैं छावनी जाना चाह रहा था।

—यह मकान जल्दी से बन जाता तो कान्ता सीधे वहीं आती।

—नहीं भाई कान्ता ब्याह के बाद पहली बार आ रही है उसे यहीं आने दो। उसके बाद ही मकान बदला जाएगा।

कई दिनों तक सोचते रहने के बाद भी श्रीमोहन की समझ में नहीं आ रहा था किस प्रकार पिता को बताएँ कि उसने मकान बनवाया है तथा कान्ता आने वाली है। मान लो मकान वाली बात सम्प्रति और टाल दी जाए तो वह किस प्रकार कान्ता के आने की बात बताए ? मान लो पिता ने कोई भाव नहीं प्रकट किया तो क्या होगा ? क्या उस तिरस्कार, अपमान को वह सह लेंगे ? मान लो वह सह भी लेंगे तो क्या सावित्री सहेगी ? और अगर कहीं वे पूछ बैठे कि जब विवाह पूछ कर नहीं किया तो फिर इस बारे में पूछने की क्या जरूरत है ? तब क्या जवाब दिया जाएगा ?

इस असमंजसता में दिन बीतते चले गये और कान्ता कल आने वाली थी

है। कुछ तो कर्तव्यवश तथा कुछ घबराहट में वे पिता के पास पहुँचे। पिता ने श्रीमोहन के आगमन पर कोई आश्चर्य प्रसन्नता उत्साह कुछ भी प्रकट नहीं किया। वे नित्य नियमादि से निवृत्त हो भोजन कर सोने की तैयारी में थे। माँ का बिस्तर खाली पड़ा था।

—माँ कहाँ गयी है ?

—ऊपर बहू के पास है।

—क्या बहू की तबियत ज्यादा खराब है ?

पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। श्रीमोहन किंचित हतप्रभ हो गये।

—बापू ! को खाने की तकलीफ के कारण अलग रसोई का प्रबन्ध किया गया।

—हाँ कोई बात नहीं। अच्छे तो हो न तुम लोग ? और तो सब ठीक है न ?

श्रीमोहन को लगा पिता को भेदकर कोई बात कर पाना कठिन ही है।

—बापू ! वो कान्ता

—हाँ सुना। कान्ता का ब्याह अच्छा हुआ न ? चलो ठीक हुआ। क्या इतनी इतनी रात तक जागते रहते हो ? जल्दी सोना चाहिए तुम लोगों को। कचहरी में भी तो दिन भर काम करना पड़ता है। और बहू भी अकेली होगी उधर।

श्रीमोहन समझ गये कि पिता बहुत नाराज हैं और कोई बात नहीं करना चाहते हैं। पिता के चरित्र का यह नया ही रूप उन्हें इन दिनों में देखने को मिला कि वे चाहें तो न केवल असम्पृक्त ही हो सकते हैं बल्कि सामने वाले के चित्त में कम बोलकर भय भी उत्पन्न कर सकते हैं। बचपन में जिस पिता की अँगुली पकड़ कर 'मन्दिर जी' जाया करते थे तब से लेकर इस समय सामने बैठे पिता में कितना बड़ा परिवर्तन लग रहा था जैसे पहचान में नहीं आ रहे हों।

—बापू ! वो कान्ता

—हाँ क्या हुआ कान्ता का ? सब ठीक है न ?

—ससुराल में कष्ट पा रही है।

—बड़ा अच्छा है। ठाकुर जी सब अच्छा करेंगे। हे नाथ नारायण वासुदेव"। और उन्हें नींद भरी बड़ी सी जँभाई आयी और उसके साथ ही चुटकियाँ बजायीं।

श्रीमोहन हतप्रभ पराजित से उठ खड़े हुए। उन्हें लगा कि पिता ने उन्हें पैदल से मात दी है। जीवन में इतने विवश वे पहले कभी नहीं हुए थे। पिता ने कितने प्रकार हटकर उनके साथ व्यवहार किया था। वे पिता से इतनी कठोरता की अपेक्षा कभी नहीं करते थे। वे बापू को कहीं न कहीं अपेक्षाकृत बहुत सीधा समझते थे। वही सीधापन एकदम धूल की भाँति उनके मस्तक में घुस गया

था और दर्द दे रहा था—असह्य दर्द ! ! ये तो पिता थे क्या बहुत ? ? स्पष्ट था कि शेष कुटुम्ब ने दीवारहीन एक दीवार ऐसी खींच ली थी उठा ली थी कि जिसकी अपेक्षा कोई सी भी दीवार अच्छी ही होती । दीवार होने पर लगता है कि दीवार है । सबको दिखती है कि दीवार है । लेकिन न होने पर उस दीवार के लिए किसम क्या कहा जाए ? सब होते हैं सब में दीवार खिंची होती है । कब सामनेवाले की दीवार आपके लिए अभेद्य हो जाएगी कुछ नहीं कहा जा सकता । दीवार अभेद्य तभी होती है जब अन्तर में खिंची होती है । ऐसी दीवारों का आभास हमें तभी होता है जब स्थान व्यक्ति परिस्थिति नितान्त खाली-खाली लगे कोई उत्तर न आये । हमें चलते हुए या बात करते हुए एक साथ ये लगता ही जाये जैसे कि जमे हुए पानी की गहराई में आप चल रहे हैं आधीरात की सी दोपहर विवर्ण होकर आपको सुन रही हो—तब हमें मान लेना चाहिए कि स्थान व्यक्ति या परिस्थिति अब मात्र दीवारें हैं । ऐसी दीवारें जो गूँगी हैं अन्धी हैं बहरी हैं । जिन्हें अब नहीं तोड़ा जा सकता है क्या ऐसी दीवारें मात्र उठती हैं खिंचती हैं—टूटती नहीं हैं, गलती नहीं हैं । क्योंकि ये दीवारें सम्बन्ध टूटने पर ही उठती हैं । जरा सी भी भावना शेष हो तो ये दीवारें नहीं बन पाती हैं । तब ऐसे में कोई क्या कर सकता है ? और जब श्रीमोहन के मन में तो बहुत पहले ही ऐसी दीवार उठ चुकी थी तब आज पिता के मन में भी दीवार देखकर मात्र विवर्ण होने के और क्या शेष था ?

कान्ता आ गयी ।

कान्ता को उसका छोटा मामा लेकर आया था । पिता श्रीनाथ ठाकुर ने अपने पुत्र के साथ कड़ाई का व्यवहार किया था, लेकिन कान्ता तो आखिरकार उनकी पोती थी और इसमें उसका क्या दोष ? कान्ता की माता में यह दोष है कि वह एक की दो लगाती फिरती है । ठीक है लड़की के ब्याह में श्रीमोहन और सावित्री ने उन्हें तथा कुटुम्ब को अपमानित किया था, लेकिन इसमें बेचारी लड़की का क्या दोष ? और फिर सभी जानते हैं कि कान्ता कितनी मिलनसार हँसमुख स्वभाव की है । जब यहाँ थी तो गुणवंती को तो सगी बहिन से भी ज्यादा मानती रही है । अपनी काकी माँ को अपनी सगी माँ से कम थोड़े ही मानती रही है ? केवल कान्ता ही तो एक ऐसी रही है जो दिनभर हँसना खेलना और खाना किया करती थी । बड़ा हो या छोटा, अपना हो या पराया सबके साथ प्रेम से बोला करती थी ।

इसलिए जिस समय वह घर आयी, पिता श्रीनाथ ठाकुर अपना बरसों का नियम भंग कर उस समय घर पर ही थे । वर्ना वह समय तो उनका मन्दिर में

'मंझा-मारती' का होना है। यह ठीक था कि सावित्री ने अपनी बेटी के स्वागत के लिए सारा खाना-पीना कर रखा था लेकिन सरो ने भी बिना किसी के कुछ कहे-सुने तथा गुणवती ने भी अत्यन्त मन से माँ से पूछ-पूछ कर कान्ता के लिए भोजन तैयार कर रखा था। सरो ने सास्मूर्ति से कह-कह कर जमा-पूँजी में से कान्ता के लिए हाथों की चार सोने की चूड़ियाँ ब्याह के समय ही बनवा रखी थीं लेकिन तब देने का कोई अवसर ही नहीं आया था वे रखी हुई थीं। आज तो सरो ने मास्मूर्ति से कह कर एक साड़ी और मँगवा ली थी क्योंकि ये चूड़ियाँ तो ब्याह के नाम पर थीं। लड़की जब ससुराल से पहली बार आएगी और काकी माँ के पैर छूएगी तो क्या उसे कुछ न दिया जाना चाहिए ?

गुणवंती तो पूरे दिन उत्साह में रही। बारम्बार दरवाजे तक हो आती कि रेल कब आएगी। वह जानती थी कि रेल शाम को ही आती है। फिर भी वह दिन भर अपनी उसी कान्ता के लिए बचैन रही जिसके साथ उसने श्रावण के दिनों में 'सझाएँ' फूलों से दीवार पर बनायी हैं। कितने सुन्दर मगरकाट हाथी-घोड़े, पालकी-सवार बनाती थी गुणवती और कान्ता रो दिया करती थी तो वह कान्ता की 'मझा' अपनी 'मंझा' से अच्छी बना दिया करती थी। दशहरे-दीवाली के उन बीस दिनों में पाखियों के कच्चे-कच्चे घरों में बड़े-बड़े दीपक धर कैसे मुर से 'घड़ल्या' गाया करती थी और तब पैसे इकट्ठे हो जाया करते थे और फिर उन पैसों की गाठ हुआ करती थी। सरीखान लड़के कैसे पत्थर मार कर घड़े फोड़ दिया करते थे। वह तो कम कर न्माथा मार दिया करती थी लेकिन यह कान्ता तो बस रोने बैठ जाती थी। कैसे छुपकर बैजनाथ के मठ में मसाई का बरफ या बरफ के मास-पीसे लड्डू लाया करते थे। यह कान्ता तो मरी बस इमलियों पर कैसी जान देती थी और बाजार की बनी पानी के सब खरीद कर कैसे चुप चाप स्कूल से ले आया करती थी और उस भी रजाई में छुपकर खिलाया करती थी—कितनी अच्छी लगती थी न ? उसके बिना कान्ता तो छिन भर नहीं रह पाती थी। बताशी तो कान्ता की कभी बन ही नहीं होती थी लेकिन क्या मजाल जो उसका कहना न मानती। ताई जी से वह मचल कर झगड़ा कर उसके लिए भी कोई चीज हो चाहे खाने की चीज की पहनने ओढ़ने की जरूर लाती। यही दो-चार महीने बड़ी है उससे लेकिन सदा बराबरी ही की होगी उसने। —और उसी अपनी कान्ता के विवाह में वह नहीं जा सकी। वह क्या कोई भी नहीं जा सका। अच्छा आने दो सब पूछूँगी। कहीं बदल गयी होगी वह भी तो ?—नहीं कान्ता नहीं बदल सकती। मुझसे ज्यादा बाबा का

वह ध्यान रखती थी और बाबा भी तो उसे कितना मानते थे? वह या सुशीला भी बाबा से अधिक बात कहाँ कर पाते थे पर यह कान्ता तो बस इतना पूछती थी कि उनकी हालत खराब कर लिया करती थी। बाबा कहा भी तो करते थे कि—हमारी कान्ता तो एक दिन बालिस्टर बनेगी समझे।!

और वही कान्ता कान्ता दीदी आज बाली है। उसने भी कान्ता को देने के लिए दो रेशमी रूमाल काढ़े हैं—एक कान्ता के लिए और दूसरा उसके दूल्हे के लिए।—कैसा है उसका दूल्हा? कान्ता का कैसा लगता है वह? वहाँ क्या वह वैसे ही दिन भर हँसती रहती है?

—अरे कान्ता से कितनी सारी बातें करने का है। तीसरा पहर भी होने आया और वह तैयार तक नहीं हुई। चोटी गूँथनी है कपड़े बदलने हैं। किसी को भी तैयार करना होगा।

सरो अपने बिस्तरे पर पड़ी कुछ काम नहीं सोच रही थी। कान्ता अब बड़ी हो गयी होगी? लेकिन कितनी बड़ी हो गयी होगी आखिर इतने दिनों में? मुनी से कुछ ही बड़ी है। हाँ, ब्याह हो जाने पर बड़ा-बड़ा सा तो लगने ही लगता है सब। मुनी का भी ब्याह हो जाता तो खूब भर जाती यह भी। अभी ऐसी लग रही है तब थोड़े ही ऐसी लगती। मेरे बराबर की लगती।—चलो अच्छा हुआ कान्ता में उसकी माँ के गुण नहीं आये। कितनी अच्छी है न कान्ता? बेचारी का 'चाची माँ' चाची माँ करते दिन भर मुँह सूखता था। भगवान करे वह सुखी रहे। सुना तो है उसे घर अच्छा मिला है। पता नहीं यहाँ क्यों नहीं ब्याह होने दिया? कौन जाने कितनी सच कहते हैं कितनी झूठ। सासूमाँ ही तो कह रही थीं कि भाभी जी तो अपने मैके वालों का घर भर रही हैं। होगा भाई 'जिसको जो सुहाये करे।' वे पेट में दुभाव रखती हों, रखें। अपने से तो हो नहीं पाता। कान्ता और मुनी में क्या अन्तर है? अरे लड़की आखिर लड़की ठहरी। आज नहीं तो कल चली जाएगी। उस बेचारी से दुराव करने से क्या लाभ? मुझे तो छिन भर को उनके न तो जेवरों से न उनके बन रहे मकान से किसी से भी कोई ईर्षा होगी—पता नहीं कैसा बाबा स्वभाव पाया है उन्होंने कि किसी का भी भला या सुख उनसे देखा नहीं जाता। न हुई मैं तो इस बेचारी लड़की से ही जाते के साथ जलन थी। अरे पूछो कि जब उसे किसी ने बताया नहीं कि क्या बनना

जब तक बन जाना चाहिए तब तक भला क्या मालूम हो किसी को ? अपनी-अपनी समझ है। उन्हें तो समझ में बीस थी। कोई उल्टा उनसे पूछ न ले कान्ता के ब्याह के बारे में इसलिए बात के साथ ही समझना शुरू कर दिया। इसी को तो "तिरिया चरित्तर" कहते हैं लोग। और कोई गलत थोड़े ही कहते हैं'!

जब कि माँ कुछ नहीं सोच रही थी। रात को श्रीमोहन के आने के बाद जब वे बहू के कमरे से लौटीं तो पति ने बताया कि क्या हुआ। रात ही को पति पत्नी में तय हो गया कि लड़की के नाम जो माला बनवायी थी वह उस पैर छूने के मौके पर दे दी जाए। वैसे उसके खाने-पीने का प्रबन्ध रहे। यद्यपि बहू महारानी अपनी आदत के अनुसार बखेड़ा जरूर करेंगी। न हो तो कान्ता का मुँह जूठा करवा देना और बाकी श्रीमोहन जाने और उसकी बहू जाने। इस में ज्यादा पाँव घुमड़ने की जरूरत नहीं है। इस निर्णय के अनुकूल ही वे इस तीसरी प्रहर सरो के सिरहाने बैठी बतिया रही थीं। सरो ने जब कान्ता के तिलक तथा पूजन आदि की बातें पुलकती से समझायी तो उन्होंने एक बार हँस के कहा भी था कि—बहू क्यों ज्यादा ममता दिखाती हो जो महारानी जी कुछ नहीं होने देंगी लेकिन सरो ने बड़ा फीका-फीका सा भाव हँस लिया था। जिसका भाव यही था कि—सासू माँ सबको अपना-अपना कर्तव्य करना चाहिए और फिर मैं यह जो कुछ कर रही हूँ वह केवल अपने सन्तोष के लिए, न कि भाभी जी को दिखाने के लिए और न उनकी प्रसन्नता के लिए। माँ मात्र देखती रहीं। साथ ही आश्चर्य भी करती रहीं कि कितने प्रसन्न मन से सरो स्वयं तैयार हुई जैसे अपनी लड़की ससुराल से आ रही हो। कहीं मुख पर या आचरण में ऐसा कोई परायापन या दुभाव की छाया तक नहीं थी जो यह बता सके कि सरो यह सब दिखाने के लिए कर रही थी। उन्हें सरो पर आश्चर्य भी था साथ ही प्रसन्नता भी थी कि उनकी एक ब्याहता पोती पहली बार ससुराल से आ रही थी और उसके स्वागत की तैयारी हो रही थी। यद्यपि ये सारी तैयारी ऊपर के दिखावे से अधिक इन लोगों के मन में हो रही थी।

उधर सावित्री देवी ने बाड़े वाले उस बड़े फाटक से कान्ता की अगवानी के लिए केले के खम्भे सजवाये थे। तोरण बँधवायी थी। बन्दनवार लगवाये थे। पूरा घर-आँगन लीपा गया था। चौक पूरा गया था। पड़ोसिनें तथा अपने पक्ष की रिश्तेदारिनें भी एकत्र थीं मंगलाचार के लिए। बाड़े में सफाई की गयी थी तहसील के सिपाहियों के द्वारा। फर्श तथा बिसात बिछवायी गयी थी। पान-बतासों का, इत्र-गुलाबजल का, नफीरी वालों का सभी का तो प्रबन्ध किया गया था। सिरस्तेदार साहब आज कचहरी से जल्दी आ गये थे और इस समय वे सब पालकी वालों के स्टेशन पर मौजूद थे। इस सारे प्रबन्ध में सावित्री देवी ने झूठमूठ भी अपनी सासु माँ तक से पूछना अनिवार्य न समझा और न ही बीच का वह दरवाजा भी खोलना जरूरी समझा जो कि उस दिन समझ कर उन्होंने बन्द कर लिया था। इसलिए उधर क्या हो रहा था यह बिना बाड़े की तरफ से गये कौन कह सकता था? हाँ अजीब सी चहल-पहल की गड़मड आवाजें जरूर आ रही थीं। बखत जरूर बच्चों के साथ नफीरी सुनता सड़क पर बच्चों के साथ खड़ा है वर्ना सासु माँ ने सुशीला तक को उधर नहीं जाने दिया है।

और देवदत्त दौड़ता हुआ आया तथा सूचना दी कि कान्ता बीबी आ गयीं। सूचना देकर वह तुरन्त लौट गया। सुशीला जाना चाहती रही लेकिन माँ के डर के मारे वह अपना मन मारे बैठी रही। कान्ता दीदी की विशेष स्मृतियाँ उसके पास कुछ भी नहीं इसलिए सिवाय कौतूहल के और उसके कुछ पास था ही क्या?

कान्ता के आने के करीब घंटे भर बाद श्रीमोहन कान्ता को लेकर आया। पिता बड़ी देर से प्रतीक्षित बैठे थे अपनी बैठक पर। कान्ता आयी उसके पैर छुए। माँ तथा काकी माँ ने उसका माथा सूँघा। काकी माँ ने तिलक-आरती की सुशीला ने शंख बजाया। गुणवंती ने खीलें बिखेरीं। सबने देखा कि कान्ती खूब बड़ी भी लग रही थी। सिर से पैर तक जेवरों से लदी कान्ती बड़ी ही सुन्दर लग रही थी। माँ ने उसके गले में माला पहनायी काकी माँ ने उसे चूड़ियाँ तथा साड़ी ओढ़ा दी सरो ने जब उसे निरख किया तो उसने देखा कि कान्ता की आँखें अब कितनी बड़ी हो गयी थीं तथा वे कितनी विशेष मुसकुरा रही थीं। सरो को देखकर कान्ता कैसी लिपट गयी थी कसक कर। सरो को बड़ा अच्छा लगा। अन्तर तक भीग उठा था। वे समझ गयीं कि मात्र आयु के कान्ता में और कुछ भी नहीं बदला है और उन्होंने सन्तोष तथा सुख की साँस ली। अब यह स्वागत हो गया और श्रीमोहन को बड़े ही देखा तो माँ ने हल्के से भर्त्सना करते हुए कहा

—अरे तो क्या कान्ता को साथ ही लिवा लाने के लिए बहू ने कहा है? कान्ता क्या तेरी या उसकी ही है रे?

श्रीमोहन को लगा कि सच ही सावित्री ने साथ लिवा लाने को खास कहा था पर उन्हें सोचना चाहिए था कि आखिर माँ क्या सोचेंगी? सरो क्या सोचेगी? कान्ता क्या सोचेगी? और फिर कान्ता सरो को मानती भी कितना है। कान्ता ने कितना कहा था कि काकी माँ ब्याह में क्यों नहीं आयी? वह आकर कहेगी उनसे। कहीं उन्हें अच्छा ही लगा कि चलो उन लोगों के कारण जो कौटुम्बिक एक तनाव आ गया है उसे कान्ता किसी सीमा तक दूर कर सकेगी। और वे खिसिआये से चले गये। बड़े पिता श्रीनाथ ठाकुर ने चलते हुए कान्ता से यही कहा

—कान्ता! अभी तो बेटा मुझे मन्दिर भी जाना जरूरी है।

—कोई बात नहीं बापू! आप हो आइए। आपसे मुझे बहुत लड़ना है। मुझे ऐसा भुला दिया आप सब ने?

कान्ता की इस बात से बड़े पिता की आँखें छलछला आयीं। वे बिना किसी तरफ देखे अपनी पगड़ी सिर पर ठीक करते हुए जूतियाँ (विद्यासागरी) पहन दरवाजे की तरफ चौक निकल गये।

सरो बोली

—चलो बेटी! पहले मुँह मीठा कर लो।

—काकी माँ! आप क्यों नहीं आयीं उज्जैन? ये गुनी ने तो ऐसा भुला दिया कि पत्र का जवाब तक नहीं देतीं। मैं बापू और काकी माँ गुनी सबसे बहुत नाराज हूँ। काका जी ने भी भुला दिया।

और कान्ता ने देखा कि माँ काकीमाँ सब पल्लू में मुँह छुपा कर सुबक रही थीं। वह हतप्रभ हो गयी। बोली

—मैंने कुछ भूल की माँ? क्यों काकी माँ?

—नहीं रे मेरी कान्ता भला भूल कर सकती है?

और सरो ने उसे अपने सीने से सटा लिया लेकिन उसके आँसू फूट पड़े जिसमें कान्ता नहा रही थी।

कान्ता ने सावित्री की एक न चलने दी । सावित्री ने यह मंजूर कर लिया कि कान्ता उधर ही जाएगी लेकिन सावित्री ने अपनी रसोई की जिद नहीं छोड़ी । कान्ता और गुनवंती अब दोनों मिलकर खाना बना लेतीं तथा कान्ता काकी माँ का सारा काम भी करती फलस्वरूप माँ बड़े पिता के मन में श्रीमोहन तथा सावित्री को लेकर जो तनाव आ गया था वह कुछ कम हुआ । जब तक सारी दोपहर में सो न पाती कान्ता उनका सिर दाबती रहती और अजीब-अजीब किस्से सुनाकर हँसाती रहती । जब काकी माँ सो जातीं तब 'कान्ता और गुनवंती या तो छज्जे के एकान्त में बैठकर बतियाती रहतीं या फिर कहीं और । गुनवंती ने बताया कि बापू कितने नाराज हुए थे सुनकर, कि कान्ता का ब्याह उज्जैन से होगा । स्वयं कान्ता ने बताया कि जब उसके विवाह में कोई नहीं आया तो वह कितनी रोयी थी । वह सब समझ गयी थी कि जिजी ने ही यह किया होगा । वह जानती है कि जिजी को दूसरा कोई नहीं सुहाता है—लेकिन वह नहीं जानती कि वह इसके लिए क्या करे ? जब गुनवंती ने कान्ता को एकान्त में दो रूमाल दिये तो वह खिल उठी । वह भी दौड़ी हुई गयी और गुनवंती के लिए दो कपड़े

आमों में लगाने के विभिन्न भांति लायी थी सब दिखाये। मुनवनी ने जब लेने से इन्कार किया तो कान्ता की आँखें छलछला आयीं और वह उसी तरह काकी माँ के पास जाकर रोने लगी थी। तब माँ और बापू के कहने पर मुणवनी को लेना पड़ा था। सुशीला दबदबा को देने का तो एक प्रकार न उसका अधिकार ही था।

अब तो रोज का यह धन्धा हो गया था कि दोनों बैठी हुई हैं। मुणवंती को कान्ता की एक आदत से बड़ी चिढ़ रही है कि वह पट में गुनगुनी चलाती है और गुनवती को हँसी भी खूब आती है। ब्याह के बाद भी कान्ता वैसी ही चंचल थी। ब्याह होने के दिन से यहाँ के आने के दिन तक की पूरी गाथा कान्ता ने उसे सुना डाली। उसकी सुसुराल में कौन-कौन हैं व कैसे हैं सासू माँ कैसी हैं। लालच सागों के पेट में कितनी बड़ी दाढ़ी बढ़ाये बैठा रहता है। जितना ब्याह में दिया गया वह भी उसकी ससुराल वालों को कम ही लगा। कान्ता का तो कई बार मन हुआ कि कह दे चलो हमारे घर जितनी चीजें हैं सब ले जाओ। उनमें डरों पुराने जूते भी तो हैं न?

और इस बात पर कान्ता पेट पकड़ कर हँसती रहा। कान्ता को कई दिनों तक इस बात का होश ही नहीं रहा कि गुनवती से भी उसके हालचाल पूछे। वह तो बस जैसे बावली पर उतारू थी।

—सच गुनी! तुम खूब मालामाल। मेरे सास-ससुर के पास काफी पैसा है लेकिन एकदम चमार हैं चमार। दो पैसे की भाजी आएगी और लोटा भर भंगा बस—बस भात, यह तो हो गया पकवान। और अगर इस पकवान का गले के नीचे निगलने के लिए कहीं अचार की किसी से माँग की तो सासू माँ का तो माला दिवाला ही बाम गया। गुनी! क्या सुना है कि इस जने घर में हों तो पच्चीस आमों का अचार साल भर चलता है? नहीं न? ना चला हमारे यहाँ। अचार खाने के लिए थोड़े ही होता है जनाब! सूँघा जाता है और वह भी लौट कर नहीं शीशे की बर्नी में से झाँकते अचार की फाँकों को देख कर।

और कान्ता खूब शैतानी से उसे सूँघने का बार-बार से करके दिखाती कि गुनवती की हँसी भी न रुकती।

—तुम तो बड़ी तेज हो गयी हो कान्ता!

—पाँच बूँद तेल में समाये पान वाली अपनी मुस्कान की छौंक की तरह तब। जानना हो सासू माँ माला फेरते हुए "बाक थू" "बाक थू" करती आना

है। और कहने लगती है कि—वह इतना-इतना तक जानती हो तभी घर और वर को झोंकें आती है।

लगता कि कान्ता की तो हँसी बन्द होने का नाम ही नहीं लेगी।

—कान्ता ! तुम अपने 'उनको' क्या कहती हो ?

—एकान्त में 'पंडिज्जी' कहती हूँ। उनकी माँ ने उन्हें बिल्कुल 'पंडिज्जी' ही बना रखा है बेचारों को 'पंडित जी' तक नहीं।

कान्ता फिर शैतानी से हँस दी।

—लगता है तुम्हें बहुत प्यार करते हैं न ?

—अरे गुनी ! पूछो नहीं बस !! बहुत कहने पर "पंडिज्जी" घुमाने ले गये। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि "पंडिज्जी" जब बाहर जाते हैं तब पतलून पहनते हैं।

वह फिर हँसी।

—यह हर बात में क्या हँसती हो तुम ?

—मुझ में और तुम में यही अन्तर है गुनी ! कि मैं बेवकूफी किसी की हो हँसना जानती हूँ। हाँ तो मैं कह रही थी कि हम शाम घूमने गये। बड़े डरते-डरते तो "पंडिज्जी" घर से ही गये थे। घर से बाहर मैंने कहा कि आप कहें तो घूँघट थोड़ा कम कर लूँ। असल में जीजी ! गलीजी-गलीजी चालियाँ पाते-पाते उकता गयी थी। एक दुकान पर पकौड़ियाँ बन रही थीं। मैंने कहा कि क्यों न थोड़ी पकौड़ियाँ ही खायी जायें ? बस साहब पंडिज्जी की सूरत देखने के काबिल हो गयी। वे तो इतने घबरा गये कि बस। बोले जानती हो इस तरह घर से बाहर निकलने वाली पहली बहू तुम्हीं हो। मैंने कहा तो फिर पकौड़ियाँ खाने का सौभाग्य भी मुझे मिलना चाहिए। गुनी ! तुम सोच नहीं सकतीं कि उनके गुस्से का क्या हाल था। क्या कि अगर और कुछ कहा तो वे रो देंगे। सो जनाब दूसरे दिन अपने राम ने जब इधर के लिए कूच किया तो कहीं जान में जान आयी। अजीब दकियानूसों से पाला पड़ा है। कि क्या बताऊँ। अपनी पढ़ाई लिखायी तो चौपट हुई ही गुनी ! पता नहीं 'पंडिज्जी' ने पढ़ लिखकर क्या हासिल किया।

कान्ता जिस ढंग से सारी बात सुना रही थी उससे गुनवंती को तो लगा कि उसे अपनी ससुराल में कोई सुख नहीं है लेकिन जैसे वह किसी बात की कोई खास चिन्ता भी नहीं करती। बल्कि वह सब पर हँसना जानती है।

—गुनी ! लगता है तुम मेरी बातें सुनकर दुखी हो गयी कि कान्ता को बड़ा कष्ट

है ससुराल में है न ? बिल्कुल नहीं । पढ़े-लिखे पति की अपनी मुसीबत होती है और बेपढ़े-लिखे की अपनी ।

—मालूम होता है बहुत अनुभव हो गया है न ?

दोनों एकान्त में बैठी दुनिया-जहान की बातें किया करतीं । गुणवंती को याद आया कि कान्ता के साथ के दिन ही उसके जीवन के सबसे सुखी दिन रहे हैं । वही तो रही है जिसके सामने गुणवती खूब खुलकर बातें करती है । फिर भी अपने बारे में उससे बातें करते सदा एक गहरा संकोच होता रहा है । अपने बारे में बातें करना उसे वैसे ही लगता है जैसे जल में पैठकर नहाया जा रहा हो । ढेर सारा पानी आकर अंग अंग को छूता हुआ आपको अजीब सा अनुभव कराता है कि वह आपको घेरे हुए है । उसके निकट आप अवस्थित हो गये हैं । कैसी फुरहरी सी दौड़ जाती है देह में ।

जब कई दिनों उपरान्त कान्ता ने गुनी को कुरेदा कि वह कैसी है क्या करती है आदि-आदि तो गुणवन्ती को हठात समझ में कुछ न आया कि वह क्या है ? वह तो बस—है ! ! ऐसे होने में कैसे क्या वगैरह कुछ नहीं होता । बस होते हैं । वही तो गुणवंती है । और क्या करती है ? करने को कौन इतना विविधपूर्ण है कि आज यह किया और उकता कर कल दूसरा कुछ करने लगे । इतना विविध कभी था ही नहीं । जो कुछ करती रही है वह भी ऐसा कुछ विशेष भी नहीं कि उसे कहकर बताया जाए । कोई यह कहे कि वह रोज उठता है, खाता है, बातें करता है और सो जाता है—तो आपको कैसा-कैसा लगे न ? और कहने वाले पर आश्चर्य हो कि क्या यह सब कहने के लिए होता है ? क्योंकि इसमें विशिष्टता क्या है जो कहा जाए ? कहा तो विशिष्ट ही जाता है न ? सुनने वाला भी विशिष्टता की अपेक्षा से ही तो सुनता है । ऐसी हालत में गुणवंती के पास या तो अति साधारण है और असाधारण या विशिष्ट के नाम पर यदि कुछ है तो वह इतना अस्पष्ट है कि स्वयं भी रात को खिड़की के सिरहाने उसका सिर दाबते हुए या फिर कभी चिमनी की टेढ़ी-मेढ़ी लौ के मीठे मन्द प्रकाश में घंटा सोचते अपने अन्दर कुछ खोजती रही है कि कौन सा मधुरत्व है जो उसे कभी-कभी बड़ा सुख देता सा लगता है अथवा कभी बड़ा उन्मन सा कर जाता है । जब कभी बावड़ी से पानी भरने जाती है तो उसका गहरा पथरीलापन —भूरा ठण्डा जहाँ कबूतरों की 'गुटरगूँ' या एकान्त पीपल का नन्हा सा गाछ अजीब आमंत्रण भरे लगते हैं । वह खालीपन जैसे उसकी आँखों में कहीं होता है जो रात की नींद की वेला गूढ़ मादक फैल जाता है जिसमें वह डूबने लगती है—

नितान्त एकाकी —कुछ भी तो समझ में नहीं आता कि वह क्या सोचती है क्या करती है ऐसा जिसे कान्ता को सुनाए। कान्ता के पास न सही तो लोगों के किस्से हैं अपने 'पंडितजी' को लेकर ही या फिर सास को लेकर ही खूब सारा हँसने को है। जब कि वह यही कह सकती है उससे कि कान्ता ! बस ऐसा लगता है एक बासी ठण्डा चूल्हा है राख भरा जिसके चारों ओर जूठे बर्तन—उदास अनमने से फैले हुए हैं। अब बताओ क्या कहूँ ? क्या कान्ता इसे समझ सकेगी ? लेकिन प्रश्न तो यह है कि क्या मैं स्वयं समझी हूँ यह कह कर ? तब भला उसे क्या बताया जाए ? लोगों की बातें क्या की जाएँ। बड़ा फिजूल सा लगता है कि आप बैठकर लोगों की बातें कर रहे हैं।

—क्या सोच रही हो गुनी ! कुछ बताया नहीं तुमने ?

—क्या बताऊँ कान्ता ? यही सोच रही हूँ।

—मैं समझती हूँ गुनी !

—इसीका तो मुझे सन्तोष है कि एक कान्ता ही तो अकेली ऐसी है जो मुझे समझती है। जब तुम नहीं थी तब कान्ता ! तुम से ढेरों बातें किया करती थी।

—लेकिन अब तो तुम चुप हो।

—तुम अब सामने हो न इसीलिए। सामने बैठे होने पर पता नहीं क्यों बात नहीं हो पाती। बस सुनने को मन करता है। तुम सुनाती हो न तो लगता है कि हाय-हाय इतने दिनों नहीं सुना तो कितना छूट गया न? और समस्त इन्द्रियों से सुनने लगती हूँ। आश्चर्य भी होता है कि कोई सुना भी सकता है। बीते तो सभी हैं, लेकिन उस सबको सुना सकना सबके बस की बात नहीं होती।

—नहीं तुम मुझसे भी अब छिपाने लगी हो।

—तुमसे छिपाऊँगी ? मेरा भगवान जानता है कान्ता ! असल में मुझे बोलना आता ही नहीं। रोज जाने कितना कैसा-कैसा सुनते-देखते बस देखने की आदत पड़ गयी है। इसीलिए एकान्त में होने पर विगत में देखने लगती हूँ और वहाँ तुम होती हो। लगता है तुम मेरी आँखें पढ़ती हो और मैं जाने कितना निरन्तर बहुत गंभीर हो गयी हूँ।

—गुनी ! तुम बहुत गंभीर हो गयी हो।

—कान्ता ! तुम नहीं जानतीं जब व्यक्ति को एक दिन से बहुत कुछ रखना पड़ जाए तो उसकी भाषा चली जाती है। मुझे बड़ा दुख है कि तू यहाँ नहीं रही। सारा जीवन भर विमूढ़ उदास जाने क्या बने रहे और आज जाने

कहाँ न जाने क्यों बसे गये हैं। जिजी ने लगता है हमेशा को चुप्पा पकड़ ली है। ताऊ जी ताई जी पता नहीं क्यों किसी से भी तो खुश नहीं हैं? छोटे काका तो जैसे परिवार में कभी थे ही नहीं। बापू और माँ जाने किस युग के मूक चरित्रों से ओसारे में बैठे सब देखते रहते हैं। विभिन्न कड़ियाँ हैं हम सब! कि छिन्न-भिन्न हो जाने के लिए आतुरता से अपनी-अपनी दिशा में जोर लगाकर टूट जाना चाहती हैं। कभी-कभी सोचती हूँ कि बाबा लौट कर नहीं आये तो जब ताऊ जी-ताई जी अलग हो जाएँगे बापू और माँ बूढ़े हो जाएँगे तथा मैं और सुशीला ब्याह के बाद चली जाएँगी तब रोगिणी जिजी यह जर्जर घर निरावलम्ब बापू माँ तथा अबोध देवव्रत इन सबका क्या होगा कान्ता? सच मैं भी हँसना चाहती हूँ 'खूब जोरों से हँसना चाहती हूँ लेकिन पता नहीं क्या रो पड़ती हूँ जैसे इस जर्जर घर की प्राचीरों में जिजी बापू माँ और देवव्रत दब गये हैं। वे हमें सहायता के लिए पुकार रहे हैं और हम अपने अपने घरों में कान्ता! उस दिन क्या होगा? और सुधवंती सचमुच ही रो पड़ी। कान्ता भी उदास हो गयी।

कान्ता में सहज बुद्धि तथा हँसमुख स्वभाव का अजीब मिश्रण था। वह कुटुम्ब की वस्तुस्थिति अच्छी तरह समझ गयी थी। तथा उसके कारणों को भी। ननिहाल तथा ससुराल में उसने पैसे की लालसा तथा कामना का नग्न रूप देखा था। जब कि उन परिस्थितियों में उसे भी वैसा ही हो जाना चाहिए था। लेकिन पता नहीं ईश्वर काका जी की कब-कौन सी बात उसे याद आती रहती कि वह वैसी नहीं बन सकी। बस यही हुआ कि उसने सब पर हँसना सीख लिया। यद्यपि अन्तर में वह भी बहुत गंभीर थी पर अपनों की विवशताओं को भी समझती थी। अपने माता-पिता के प्रति वह उदास थी क्योंकि ननिहाल में जाकर जिस प्रकार ये लोग यहाँ के बारे में बातें करते थे वह अपमानजनक ही कहा जाएगा और यह कान्ता को कभी अच्छा नहीं लगता है। गुनी की गंभीरता से वह काँप उठी। वह स्पष्ट देख रही थी कि यदि काकी माँ की दवा-दारू ठीक से नहीं

होती है तो वे बच नहीं सकतीं। माता-पिता ने इन लोगों से सारा सम्बन्ध तोड़ ही लिया था। बापू की आमदनी ही कितनी थी। तब इतने बड़े परिवार का लालन-पालन कैसे हो? काका जी के जाने के बाद गुनी की पढ़ाई तो छूट ही गयी समझो। सुशीला भी ऐसे कहाँ तक पढ़ पाएगी? जिस कौटुम्बिक हाहाकार को गुनी ने अभी कहा वह तो जैसे अनिवार्य लग रहा था। इस गुनी तथा सुशीला का अभी विवाह होना ही है। पिता इसमें कुछ मदद करेंगे इसकी आशा ही व्यर्थ है। वे तो दो-चार दिनों में छावनी में चले जाएँगे तब तो नैतिक दायित्व से भी मुक्त हो जाएँगे। तब क्या होगा?

जब वह अपने पलंग पर पड़ी करवटें बदलती लेटी रही और सो न सकी तो जिज्जी ने पूछा

—नींद नहीं आ रही कान्ता?

—नहीं जिज्जी।

—क्या तू भी दिन भर उस गुनी के साथ बतियाती रहती है। अरे कुछ घर काम किया कर। तेरे बाबा कह रहे थे कि लड़की की तो शकल ही नहीं दिखती। क्या सिर दुख रहा है तेरा?

—कुछ खास तो नहीं जिज्जी।

—पता नहीं तुझे ऐसा क्या मीठा है जो उधर घुसी पड़ती है। जब देखो उस गुनी के साथ खाना बनाती रहती है, तो कभी उसकी माँ का सिर दाबती रहती है। अरे दिखाने को कभी कुछ कर दिया और बस।

—जिज्जी! क्या तुम्हारे पास दिल नहीं है?

—क्या मतलब?

—कि तुम किसी का अगर भला नहीं सोच सकतीं तो दूसरों को बुरा सोचने को क्यों कहती हो?

—अच्छा तो अब मैं ही बुरी हो गयी क्यों? और वो तेरी काकी माँ और गुनी इतनी मीठी हो गयी कि अपनी जिज्जी को ही भला-बुरा कहने लगी, क्यों?

—तुम से तो जिज्जी! आज तक किसी की बनी नहीं।

—बस कान्ता! मुझे सीख देना तेरा काम नहीं है समझी। तेरा जैसा मन आवे वैसा तू अपने घर में करना। अरे, जब सिर पर पड़ेगी तब देखूँगी कि तू कैसे करती है। तेरी यह गुनी तुझे यही सब न सिखाती रहती है दिन भर? खबरदार जो कभी उनके लिए कुछ कहा-सुना तो। तुझे क्या मालूम कि तेरी वो काकी माँ कैसी घुन्नी हुई है।

—अच्छा भगवान के लिए मेरे कारण उन लोगों को मत कोसो ।

—अरे मैं उन लोगों की सब बातें समझती हूँ । ठीक है और दो-चार दिन घुट घुट कर बातें कर लो फिर देखूँगी कि छावनी से भला किस तरह तू आती है और वे दोनों तुझे बहकाते हैं ।

कान्ता समझ गयी कि बहस बेकार है और वह करवट लेकर सोने की चेष्टा करने लगी ।

वैद जी ने तो बड़े चुपके से भोलानाथ ठाकुर को बताया था कि बहू को यक्ष्मा हो गया है, लेकिन सरो के सतर्क कान उस बात को सुन ही ले गये। आँखों के सामने अँधेरा छा गया कि अब क्या होगा ? इतने छोटे बच्चे बूढ़े सास-ससुर और पति का पता ही नहीं कहाँ है—यदि वह नहीं रही तो इन सबका क्या होगा ? एकदम विह्वल हो गयी स्वस्थ होने के लिए, जैसे कि कहीं कुछ नहीं हुआ है, बल्कि वह तीज-त्योहारों पर सजी बहू की तरह शृंगार किये है। पैरों में महावर, हाथों में मेंहदी सिर पर तिलक तथा माँग भरे, दीवार में जड़े शीशे में अपना रूप निरख रही है—जैसे आज ही ब्याह कर आयी हो। कैसा भरा सा कंचनमुख और उसमें विशाल नेत्र। घर के सारे अँधेरे कोने दमक गये हैं। कैसी धूप और दीप की गंध भरी हुई है कमरों में। सवेरे की धूप का कैसा सुहाना सा आलोक फर्श और दीवारों पर पुता सा लग रहा है। परेंडी पर रखा पानी का बड़ा सा पीतल का गगरा तथा पटिये पर सजे माँजे हुए पीतल ताँबे के चमकते बर्तन कैसे दाँत निकाले हँस रहे हैं। चूल्हे पर पकवान की गंध आ रही है। बच्चों ने एकदम धुले कपड़े पहन रखे हैं जैसे तारे कहीं के थमे हों। दरवाजे पर अल्पना बिगड़

न आए, इसलिए बाते-बाते बच्चे फर्मायते निकलते हैं—क्या रोज ऐसे घर नहीं रह सकता है ? क्या रोज ऐसा उत्सव जैसा नहीं लग सकता है ? क्या रोज हमारा मन और जीवन घर और आपसी सम्बन्ध इतने ही धुले-धुले पवित्र तथा सुन्दर नहीं रह सकते हैं ?

और तभी सरो को जोरों से खाँसी आयी। दिवास्वप्न टूट गया। अभी थोड़ी देर पूर्व का वह काण्ड उसकी आँखों के सामने फिर नाच उठा। सबेरे ही श्रीमोहन तथा उसकी पत्नी ने माँ तथा बापू से यह साफ-साफ उद्घोषणा की थी कि सरो तथा गुणवती कान्ता को बहकाती हैं। वे लोग जानते हैं कि ये काम क्या कर रहे हैं। इन दोनों ने इन लोगों का इस घर में रहना हराम कर दिया है। वे अब इस घर में एक मिनिट नहीं रहेंगे और बाहर गाड़ियों पर सामान लादा जा रहा था। माँ और बापू एक क्षण अवाक् बने रहे। उसके बाद बापू मात्र इतना ही कह सके

—अच्छा भाई ! जहाँ रहो सुखी रहो।

माँ कुछ न बोलीं जैसे उन्हें लकवा मार गया हो। उपरान्त वैद्य जी आये थे। सिकुरी आँखों को घूँघट में छिपाये हाथ वैद्य जी को थमा कर वह धक-धक करते कलेजे से सिमटी बैठी रही। नाड़ी थामे वैद्य जी बड़ी देर के बाद बोले

—अब तुम जाओ बहू ! घबराने की बात नहीं दवा भिजवा दूँगा। बस आराम और परहेज से रहा करो।

वैद्य जी ने जिस प्रकार उससे यह कहा था उसका स्पष्ट संकेत था कि अब तुम जाओ मुझे तुम्हारी बीमारी के बारे में इन लोगों से कहना है। वह ऊपर आ तो गयी लेकिन दरवाजे की आड़ से सुन ही न सकी कि "बहू को यक्ष्मा है शायद।" और दरवाजा न पकड़ा होता तो सरो गिर ही पड़ती। आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

एक दम टूटी सी अपने बिस्तरे पर जाकर बिखर पड़ी। आज रविवार था। सुधीमा और देवव्रत गुप्तजी के साथ तालाब पर नहाने तथा कपड़े धोने गये थे। कमरे में एकान्त था सरो रो पड़ी। उसे लगा कि वह जीवन भर बिखरी ही रही। बिखराव से कोई मुक्ति नहीं। उसने किशोरी भावनाओं के साथ जीवन आरम्भ किया था। पुस्तकों में तथा पिता के ज्ञान से उसे यही प्राप्त हुआ था

कि यह जीवन स्वर्ग है। दूसरों के साथ अच्छाई करने पर ही जीवन स्वर्ग बनता है। उसे याद आया कि उसने कितने मन से तथा किस कठिनाई से कान्ता के लिए सोने की चूड़ियाँ बनवायी और सावित्री ने मुहल्ले भर में यही प्रचार किया कि चाँदी की चूड़ियों पर सोने का झोल चढ़वाया गया था। अरे, सोने की नहीं दनी थीं तो दिखाने की क्या आवश्यकता थी? क्या कान्ता को जेवरों की कमी है?—नहीं दुनिया को दिखाने के लिए हमने भतीजी को सोने की चूड़ियाँ दीं।—लेकिन सावित्री की आँखों को धोखा देना आसान नहीं है—देखना यही सोने चढ़ी चूड़ियाँ मैंने गुणवंती के ब्याह में न दीं तो मेरा नाम नहीं। देवी जी ने सोचा होगा कि ये लोग तो बेवकूफ हैं चलो बदले में अपनी लड़की को सोने का जेवर मिल जाएगा। सुनार ने देखते के साथ कह दिया कि इन पर तो पानी चढ़ा है।—अरे, शक तो मुझे उसी दिन हो गया कि क्या बात है जो कान्ता के इतने लाड़ लड़ाये जा रहे हैं? तुम जानो बहना मैंने तो कभी ऐसा किया नहीं किसी के साथ सो समझ नहीं पायी पर खटका जरूर हुआ। अरे हाँ और क्या जल्दी पता चल गया नहीं तो हम लोग जाने कितने के नीचे आ जाते। जब 'इनको' बताया सारा हाल तो आँखें सुर्ख कर्रा कहते थे कि भाई, गुनी की शादी में कुछ तो ज्यादा करना ही होगा। भाई की बेटी में और अपनी बेटी में क्या भेद है? तुम जानो सच्ची बात सुनकर सभी चुप रह जाते हैं। मैं भी कुछ नहीं बोली कि हाँ भाई, सच्ची बात है।—एक हार तो देना ही पड़ेगा जैसा कान्ता को दिया है। आखिर इन लोगों ने भी तो चार चूड़ियाँ दीं कान्ता को। मेरा तो बहना एकदम मुँह ही बन्द हो गया। कुछ भी कहते से रही। बताओ कैसा जमाना आ गया है यह कलयुग कि लोग अब तो बस कमाल ही करे हैं। अब बताओ न दस रुपये की चाँदी की चूड़ियों पर भरी पाँच रुपल्ली का सोने का पानी—हुईं पन्द्रह की चूड़ियाँ न? और नाम हुआ चार तोले की चूड़ियाँ!!—कलयुग है और क्या सींग होवे है बहना? अब तुम्हीं बताओ? किसके पेट में दाढ़ी है कब पता चले है? इन लोगों को अपना पेट काट-काट के खिलाया है और ये हमारे साथ ऐसा व्यवहार करें, कभी सुना थी ऐसी होनी? सच्ची अब तो कसाई से सास का भी ब्याह हो जाए तो भी अचरज नहीं करना चाहिए बाबी!—तुम कहोगी जेठानी होकर देवरानी की बुराई करे है पर दिल जले तो कहना ही पड़े है।—

औरतों की बातें भँवर का पानी होती हैं। दूर-दूर का पानी घूम-घूम कर, घिर-घिर कर, सारे कूड़े करकट के साथ गहरा ही होता जाता है। एक बार शक भर होने की देर होती है कि बस जिस औरत के भी चारों ओर यह भँवर

घूमने लगता है उसे यह ले के ही रहता है। सिवाय डूबने के अन्य कोई गति नहीं होती। साफ और गहरे जल में भँवर नहीं पड़ते। किनारों पर कूड़े-करकट वाले जल में भँवर ही भँवर तैरते होते हैं।

सरो बड़ी देर तक रोती रही। कभी सुखद कभी दुखद कामनाओं में डूबी छत की शहतीरों में कोई छेद खाजती रही ताकि न सही पूरा आकाश तो कम से कम आकाश का कोई तितली की तरह छोटा सा नीला टकड़ा ही दिख जाए—और बँधी हुई दृष्टि को पथ मिल सके। दूरी पर श्रीमोहन बाबू का चिल्ला-चिल्ला कर सामान रखवाना सुनायी पड़ रहा था। उसे आश्चर्य था कि श्रीमोहन तथा सावित्री किस दुस्साहस के साथ मकान बनवाने की कोई सूचना माँ या बापू को बिना दिये नये घर में प्रवेश करने जा रहे हैं, और वह भी लड़ कर। ऐसी स्थिति में कोई कुछ भी पूछने की कहने की स्थिति में नहीं है। शायद कोई किरायेदार भी इतने अनुत्सवी इतनी दुश्मनी के साथ मकान नहीं छोड़ता है जैसा कि ये छोड़ रहे थे।

फिर भी कान्ता कितने निर्दोष मन से सबेरे आयी थी। रात वह देर तक सिरहाने बैठ काकी माँ से बातें करती रही सिर दबाती रही। सरो ने बातों ही बातों में पूछ लिया था कि उसने चूड़ियाँ क्यों उतार डाली? कई दिनों से नहीं दिखीं। कान्ता यह सुन कितना तमतमा गयी थी। सरो एक क्षण तो अवाक् हो गयी कि कहीं अपनी माँ के प्रचार में कान्ता ने तो यह नहीं समझ लिया कि चूड़ियाँ चाँदी की हैं?

—काकी माँ! सहने की जिस प्रकार सीमा होती है न उसी प्रकार सुनने की भी होती है।

—ऐसा क्या सुना रे?

—उसी प्रकार देखने की भी सीमा होती है काकी माँ!

और सरो ने देखा कि कान्ता का जैसे मन मर्रा गया है।

—क्या बात है कान्ता! बहुत उत्तेजित मालूम होती हो।

—क्या करूँ काकी माँ! या तो मैं आपकी कोई नहीं होती तो अच्छा था। कम से कम यह तो होता कि आप से कोई परिचय ही नहीं होता और अगर होना ही था तो क्यों नहीं बेटी ही बनाया?

—तो क्या तू मेरी बेटी नहीं है रे?

सरो को लगा कि कान्ता उसका स्पर्श चाहती है। सरो ने जैसे ही उसे चूमा एक क्षण में देखत-देखते कान्ता की आँखें भी भर आयीं और धाराधर बरसने भी

लगी। सरो ने उसे बाँहों में समेट लिया और सीने से सटा वह स्वयं भी फूट पड़ी। दोनों की हिचकियाँ बँध गयीं। सरो के आँचल भर उठे। उन्हें लगा कि क्या यह सावित्री की बेटी है? वही बेगानी महारानी की जिनके लिए वे आश्चर्य कर रही थी कि कान्ता कितनी विपरीत है अपनी माँ से। जैसे गंदे तीर्थ कुण्ड में पुष्प कहीं छिपा हुआ रहता है, उसी तरह।

—कान्ता!

और उन्होंने उन रोती आँखों को अपनी ओर उठाते हुए कहा

—कान्ता! तुझे मैंने जाया नहीं रे बल्कि पाया है।

और कान्ता फिर फूट उठी।

—देख भाई, यों ही बेटियाँ रुलाती हैं अपने माता-पिता को। ज्यादा न रुला कान्ता!

और दोनों की अभी की रोयीं सम्पूर्ण आँसुओं डूबी आँखें—पानियों के पार से एक क्षण को देखने के लिए, रोना छोड़—थिर हो देखने लगीं। जाने कितना निःशब्द बोल गयीं और फिर सीने से सट गयी।

तभी गुनवंती गरम पथ्य की पतीली बोरी के खूँट से पकड़े प्रवेशी। कान्ता को जिज्जी के सीने से सटे देख अत्यन्त सुखी मुसकाते हुए शरारत से बोली

—अच्छा तो मुझसे तो कहा कि—सुनो मैं जाकर काकी माँ का सिर दाबती हूँ और यहाँ यह सिर दाबा जा रहा है या दबवाया जा रहा है?

जीवन में सम्भवतः अपनी माँ के सामने पहली बार शरारत करने की सूझी थी।

—तो तुम्हें क्यों ईर्ष्या हो रही है? लाड़ करने के लिए ही तो मुझे बुलवाया गया, काम करने वाली बेटी से लाड़ थोड़े ही किया जाता है? क्यों काकी माँ?

और सरो ने भी बहुत ही सुन्दर मुख से हँसती आँखों से बड़ा-बड़ा सा अनोखा हामी वाला मुख हिला दिया।—गुनवंती समझ गयी कि जिज्जी बहुत प्रसन्न हैं। सरो ने सम्भवतः पहली बार, जाने कितने बरसों बाद गुनवंती को भी कान्ता के साथ सटा लिया।

शायद अब सामान रखा जा चुका था। सावित्री कान्ता को पुकार रही थी। मालूम होता था कि जैसे वह वहाँ नहीं है। तभी जीने पर कान्ता के चढ़ने की आहट हुई। सरो सहम कर बैठ गयी। कान्ता ने काकी माँ के पैर छुए। सरो को लगा कि जैसे औपचारिकता का कोई स्थान इस समय नहीं है।

—माँ से मिल ली ?

—हाँ वे अपने कमरे में उदास बैठी हैं।

—भाभी जी का कम से कम सासू माँ के तो पैर छूकर आना चाहिए।

—गुनी कहाँ है ?

—नीचे नहीं है क्या ?

—मैं उसे अच्छी तरह समझती हूँ।

—अच्छा कन्ता! जरूर आना बेटा कभी काकी माँ को पराया न पाओगी।

—मुझे मालूम है काकी माँ!

दूरी पर सावित्री पुकार रही थी। कान्ता फिर बोली

—तो जाऊँ न काकी माँ ?

—कैसे कहूँ बेटा इधर से तो दरवाजा बन्द कर रखा है वर्ना सोचती थी कि दादा-भाभी के चरण छू लेती। मेरे ही कारण तो यह महाभारत हो रहा है।

—काकी माँ! अपने को अब अधिक शाप न दो, न कोसो ही। अच्छा अब चलूँ।

—तो आओगी न ?

—क्यों नहीं आऊँगी ?

और कान्ता चली गयी। पता नहीं सरो को याद पड़ता है कि नहीं कि कभी छज्जे की खिड़कियों से उसने सड़क की ओर झाँका हो लेकिन आज वह लोभ संवरण न कर सकी। तभी उसने देखा कि सासू माँ भी आ गयीं ऊपर। सड़क पर गाड़ियों में सामान लदा था। कुछ गाड़ियाँ जा चुकी थीं। एक दमनी (छोटी गाड़ी जो बैठने के लिए ही होती है) में सावित्री कान्ता आदि बैठ गये। सड़क पर दोनों ओर मुहल्ले वालों की भीड़ थी। जिस घर से ये लोग विदा हो रहे थे उस घर का प्रमुख द्वार चुपचाप बन्द था केवल बन्द खिड़की के पीछे से माँ और देवरानी आँसू बहाती अमान मौन विदा दे रही थीं। एक बार श्रीमोहन ने अवश्य बन्द पैतृक घर की ओर देखा तथा अपनी गाड़ियों के साथ बढ़ गये।

—आखिर बहू बेटा छीन ही ले गयी।

और गहरी साँस के साथ कुछ क्षण तो रुकीं उपरान्त उन बूढ़ी आँखों ने छलछलाना शुरू कर दिया।

—सासू माँ!

—तीन-तीन बेटे पर घर में एक भी नहीं।

और वे फूट पड़ीं।

कई दिनों के बाद रात में सरो को बुखार हो आया। श्रावण के पहले मेघ आकाश में घिर आये थे। ठण्डी-ठण्डी हवा चलने लगी थी। बच्चों के लिए सवेरे का ही खाना रखा हुआ था। बड़ों ने खाया ही नहीं। सरो को बुखार हो आया इसलिए पथ्य नहीं बनाया गया। कान्ता के बारे में सरो ने भी गुणवंती से कोई विशेष चर्चा नहीं की क्योंकि जानती थी उसे दुःख होगा। आश्चर्य था कि पिता श्रीनाथ ठाकुर ने न परिताप न क्षोभ न दुःख कुछ भी व्यक्त नहीं किया। सारा घर भाँय-भाँय कर रहा था। ओसारे की एकाकी चिमनी श्रावण की इन प्रथम हवाओं में बारम्बार काँप उठती थी। माँ रह रह कर—"दीया दीतवार" "दीया दीतवार"—(हे दिये! रविवार, हे दिये! रविवार—उनका विश्वास था कि ऐसा कहने पर दीया नहीं बुझता है) कहने लगतीं। पति श्रीनाथ ठाकुर ने अनुभव किया कि आज कोई भी चर्चा पत्नी से करने का अर्थ होगा कि वे रोने लगेंगी। अतएव वे आज बड़े ज़ोर-ज़ोर से स्तवपाठ करने लगे। सरो के कमरे में यह पाठ-स्वर स्पष्ट सुनायी पड़ रहा था।

गुणवंती ने जब देखा कि बिटी का सिर जल रहा है तो वह दाबने लगी। सरो लगातार मना करती रही। घर भर का खाना बनाया था फिर दिन भर खूब

अपने कोने में उसके बाद उन्हें सुलाया गया था इसलिए वह खूब थक गयी थी। साथ ही वह घर की मनःस्थिति भी समझ रही थी। जब रात बढ़ने लगी तो उसी ने जबरन गुणवंती को सुला दिया और स्वयं ज्वर में काँपती पड़ी रही।

पहले ही घर कौन भरा था उसके लिए। एक बरस हो रहा था पति को गये—न कोई खबर, न चिट्ठी-पत्री। नारायण बाबू इन्दौर तक जाकर भी जब उनका पता न पा सके तो वह बिलकुल निराश हो गयी। आज जब वैद्य जी ने उसे दमा बता दिया तब से उसे अपने जीवन की कोई आशा नहीं रही। कभी यह घर, सारी परेशानियों के बीच कितना सुखद लगता था। आज वही घर भाँय-भाँय लग रहा था। जेठ-जेठानी ने कितने अपमानजनक रूप से विदा ली थी। मेघों की इस पहली वृष्टि में जैसे घर के प्रत्येक कोने में अँधेरा प्रविष्ट होने लगा था। तपती आँखों तथा धमकते सिर में एक ही बात रह रह कर फिरती थी कि क्या 'वे' कभी नहीं आएँगे? लेकिन क्यों? उससे तो कोई ऐसी भूल नहीं हुई है कि वे उसका परित्याग सदा के लिए कर जाएँ। इन बच्चों की भी क्या कभी याद नहीं आती होगी? मान लो कल उसे ही कुछ हो जाए, और क्यों नहीं हो जाएगा? अब होने में क्या शेष है? तो, ये बच्चे क्या बिलकुल अनाथ नहीं हो जाएँगे? गुणवंती के विवाह का क्या होगा? लोग तो बड़ा घर समझ मुँह फाड़ेंगे कि इतना दो तो ब्याह करेंगे। कहाँ से आएगा उतना सब? बापू बेचारे कितना करेंगे। आखिर मंदिर जी से मिलता ही कितना है? जमीन-जायदाद तो जेठ जी हड़प ही बैठे हैं। देवव्रत नहीं पढ़ पाएगा तो क्या करेगा? क्या उसे छोरी भेज दे? लेकिन   और वह तेज बुखार में काँप रही थी। सिरहाने की खिड़की से ठंडी तेज हवा के साथ बौछार भी आ रही थी जिसमें तकिया तथा ओढ़ना भीग रहा था। उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह उठकर बन्द कर दे। तभी बिजली की कौंध तथा मेघ गर्जन से जर्जर घर की प्राचीरें आलोड़ित तथा प्रकम्पित हो उठीं। एक क्षण को कौंध में सारा घर दिप उठा था। एक-एक चीज चमक उठी थी। उसे असमय जाड़ा लग रहा था। लेकिन क्या गुनी को जगाकर और ओढ़ना माँगे? उसके दाँत बजने लगे थे।—गीली तकिये पर धमकते मस्तक में पत्थर की तरह एक ही प्रश्न भद् भद् कर रहा था कि—

क्या वे अब नहीं आएँगे ? तब मेरे इन बच्चों का क्या होगा ? ओसारे में बैठे वृद्ध सास-ससुर का क्या होगा ?

कल यदि वह नहीं रहती है तो क्या उसे पति के हाथ से अग्नि नहीं दी जाएगी ?

तो क्या देवव्रत का ही ?

और श्रावण मास की पहली मूसलाधार वृष्टि में भी उसे एक चिता सीगती धुँधुआती दिखने लगी जिसके चारों ओर गुनी सुशीला देवव्रत सासू माँ और बापू रोते दिखायी दिये ।

उसने घबराकर देखा—तो उसका अकेला मस्तक ओसारे में भीग रहा था ।

अँधेरा पूरा बैठे श्रीधर बाबू को गाड़ी ने खण्डवा रात के दो बजे छोड़ दिया। इतनी रात में उनकी समझ में कुछ नहीं आया कि क्या करें कहाँ जायें ? बिल्कुल अनजानी जगह और वह भी बिना सामान के। स्टेशन पटरियों के पार था जहाँ दो चार कुली आँख मलते किसी गाड़ी की प्रतीक्षा में खड़े थे। ओवरब्रिज आकाश के अँधेरे में उदास फँसा हुआ था। प्रतीक्षित गाड़ी की रोशनी उभरती चली आ रही थी। वे भी ओवरब्रिज चढ़कर उधर ही बढ़े। किसी कुली ने बताया कि गाड़ी बम्बई से आ रही है। बम्बई जाने वाली गाड़ी के बारे में मालूम हुआ कि सवेरे आठ बजे मिलेगी। उन्होंने तय किया कि वे रात किसी तरह बिता सवेरे बम्बई की ओर चल देंगे। तब तक वह गाड़ी आ गयी जिसके लिए कुली तैयार खड़े थे। अजमेर के लिए चूँकि यह जंक्शन था इसलिए यात्री भीड़ उतरी। वे ओवरब्रिज के पास ही एक लाइट के नीचे खड़े हो गये और सवारियों को देखने लगे। मराठी मारवाड़ी हिन्दुस्तानी सभी तो थे। थोड़ी देर पूर्व का शान्त वातावरण अनायास ही इस कोलाहल से हड़बड़ा उठा था। सारा शोर था। कई पुलिस के सिपाही भी जाने क्यों तेजी से डिब्बों में ताक-झाँक कर रहे थे तथा सवारियों

को घूर रहे थे। एक मोटी सी पगड़ी बाँधे अधेड़ छैंगा लाठी के सहारे भी
में धक्के खाता ओवरब्रिज की तरफ ही बढ़ रहा था। अनेक सवारियाँ अब ओवर
ब्रिज पर से या तो स्टेशन से बाहर जाने के लिए या फिर अजमेर गाड़ी पकड़
ने के लिए चली जा रही थी। गाड़ी पंजाब-मेल थी। मेल ने तब सीटी दी और
गाड़ी 'छो-छूँ' करती चलने लगी। खुली हुई खिड़कियाँ फिर बन्द होने लगीं
दो पुलिस के कान्स्टेबल्स और एक सब-इन्सपेक्टर काफी परेशान नज़र आ रहे थे
वे कुछ देर तो जाती गाड़ी और खाली प्लेटफार्म पर खड़े रहे फिर बीड़ी सिगरेट
सुलगा बातें करने लगे।
—मुंशी जी! पता नहीं साला कहाँ निकल गया।
—मैंने तो वर्मा साहब! आप से पहले ही कहा था कि वह बदमाश शर्तिया
इन्दौर जाने के लिए [illegible] नहीं उतरेगा।
सब-इन्सपेक्टर वर्मा काफी परेशान नज़र आ रहे थे। मुंशी जी की बात पर गौर
गौर कर रहे थे। तीसरा साथी जो कि मुसलमान कान्स्टेबल था बोला
—जनाब! मुसाफिर तक तो मुझे मालूम है कि वह कमबख्त था।
वर्मा साहब चिढ़ गये।
—तुम मुसाफिर की बातें कर रहे हो मैं कहता हूँ वह उज्जैन तक था और मुझे
पूरा शक है कि वह कोई मारवाड़ी के भेष में इस समय इन्दौर-अजमेर
वाली गाड़ी में ऊपर की सीट पर चैन से सोने की कोशिश में होगा।
बात तीनों को ही जँचे की जमी और वे बीड़ियाँ फेंक तेजी से कमर के पट्टे ठीक
कर, टोपियाँ पहन फुर्ती से ओवरब्रिज चढ़ने को हुए कि उनकी दृष्टि श्रीधर
बाबू पर पड़ी। वर्मा ने एक बार उन्हें घूरा और कड़क कर पूछा
—क्या नाम है?
—श्रीधर ठाकुर।
—कहाँ से आ रहे हो?

—इन्दौर से।
—यहाँ क्या कर रहे थे?
—गाड़ी बदल रहा था।
—कहाँ जाओगे?
—बम्बई।
वर्मा ने जितनी तेजी से सवाल किये थे उतनी ही तेजी से जवाब मिलने पर सन्देह

नहीं रहा और वे तीनों ओवरब्रिज से चले जा रहे थे । इस ठंडी रात में भी श्रीधर बाबू को काफी पसीना हो आया । अब तक दिमाग एकदम सुन्न था लेकिन अब बड़ी तेजी से वे सोचने लगे । जैसे कि विपिन बाबू के बारे में पुलिस की उपस्थिति में विचार करना भी खतरे से खाली नहीं है । अजीब तरह से मन घिर उठा—क्या विपिन बाबू इसी पंजाब मेल से अभी उतरे हैं ? सम्भवतया यहीं तो हैं—तब वे इस समय कहाँ हैं ? क्या वेष बदले वे अभी यहीं आ गये हैं ? क्या उन्होंने उन्हें नहीं देखा होगा ? शायद देखा हो और पुलिस के डर के मारे कुछ न बोले हों तो क्या उन्हें खोजा जाए ? लेकिन पुलिस भी तो उनकी खोज कर रही है । अगर पुलिस उन्हें इन्दौर वाली गाड़ी के पास घूमता हुआ देखेगी तो उसे शक हो जाएगा कि कहाँ तो यह व्यक्ति बम्बई जाने की बात कर रहा था और कहाँ इन्दौर वाली गाड़ी के चक्कर काट रहा है । जरूर दाल में काला है । तब क्या वे ताक में पकड़ नहीं लेंगे ? यह भी तो हो सकता है कि वे यहाँ उतरे ही न हों । लगता है पुलिस बड़ी सरगर्मी से उनका पीछा कर रही है ।
मालवा-हाउस वाला षड्यन्त्र का किस्सा होगा ।
उस पार का प्लेटफार्म रोशनी में किंचित स्पष्ट दिख रहा था । सवारियों की खासी भीड़ वहाँ हो चली थी । पुलिस के तीनों सिपाही सवारियों को घूरते फिर रहे थे । गाड़ी प्लेटफार्म पर लगने जा रही थी । सवारियाँ धक्कम-धुक्का करती चढ़ती गाड़ी में सामान फेंकती चढ़ने के लिए उतावली कर रही थीं । श्रीधर बाबू की समझ में कुछ नहीं आया कि क्या करें । विपिन बाबू अगर इस समय यहाँ उतरे हैं तो उनसे किस प्रकार मिला जाए और अगर नहीं उतरे हैं तो बेचारे कितनी परेशानी में होंगे । अन्त में यही तय किया कि एक बार प्लेट-फार्म पर कोशिश तो की ही जाए । अगर पुलिस ने फिर पूछा कि वह यहाँ क्या कर रहे हैं तो कह देंगे कि सबेरे आठ बजे गाड़ी जाती है तब तक आराम करने की जगह खोज रहे हैं । वे सीढ़ियाँ चढ़ने लगे । सीढ़ियाँ चढ़कर जब वे ओवरब्रिज के ऊपर पहुँचे और मुड़े तो उनका पैर लाठी से टकरा गया और वे गिर पड़े । कुछ झल्लाहट भी हुई कि भिखमंगे प्रायः ऐसी ही जगहों पर सोते हैं और अपनी लाठी वगैरह भी ठीक से नहीं रखते । तभी उन्हें हल्की सी आवाज सुनायी दी
—श्रीधर !
श्रीधर बाबू चौंके । यह तो कोई उन्हें ही पुकार रहा है । नहीं, भ्रम हुआ ।
—श्रीधर !
—कौन ?

श्रीधर बाबू को हल्का विश्वास हो गया कि गठरी बना मुँह लपेटे जो व्यक्ति बैठा हुआ है वह निश्चित ही बिसन बाबू है। यदि सारा काण्ड मालूम न होता तो वे कभी नहीं समझ पाते कि कौन पुकार रहा है।

—इन्दौर वाली गाड़ी पर मत जाओ। गाड़ी के जाने के बाद एक बार पता लगाना कि वे तीनों चले गये कि नहीं। उसके बाद मिलना। मैं यहीं हूँ। जाओ अब।

श्रीधर बाबू उल्टे सीढ़ियों से लौट आये। एक बेंच खाली थी विचारमग्न वे हत्थे पर सिर रख लेटे रहो गये। लोहे का ठंडा हत्था गर्दन में चुभ रहा था लेकिन आज की रात की यह विषमता साहस विसन बाबू का इस प्रकार मिलना पुलिस जाने क्या क्या सोचते अँधेरे में लगे थे कि वे तीनों फिर इधर ही आते दिखायी दिये और यहाँ भी सवारियों का घूरने लगे। अँधेरे में लेटे श्रीधर बाबू को फिर झकझोरा

—कौन हो जी तुम ?

और श्रीधर बाबू को देखकर वे फिर मुस्काते हुए आगे बढ़ गये।

और इन्दौर गाड़ी की तरफ जब वे लोग वापिस लौटे जा रहे थे तब वर्मा को बोलते सुना कि

—शफीक! वो जो पुलिस की वर्दी में बैठा था न ?

—जी हाँ।

—उसी पर मुझे शक है।

इन्दौर गाड़ी चली गयी।

वैसे दूर से ही गाड़ी में चढ़ते हुए पुलिस के आदमियों को श्रीधर ने देखा था लेकिन फिर भी सम्पूर्ण आश्वस्तता के लिए वे एक बार उस छोटी लाइन के प्लेटफार्म को देख आये। ओवरब्रिज पर जब वे बिसन बाबू से मिलने आये तो बड़े सकपकाये क्योंकि बिसन बाबू वहाँ नहीं थे। श्रीधर बाबू ने घबराकर अपने चारों ओर देखा तो आश्चर्य में आ गये। कहीं भी दूर-दूर तक बिसन बाबू का पता नहीं था। एक बार वे सोचने लगे कि जिससे बातें की थीं वह बिसन बाबू ही थे न ? हाँ और क्या बिल्कुल वही आवाज थी। तब क्या हो ? सहसा उन्हें वही रात वाला लँगड़ा उसी तरह लाठी लिए दूर नल के पास हाथ मुँह धोता दिखायी दिया। श्रीधर बाबू समझ गये कि यही बिसन है। रात को भी तो यही लँगड़ा जब उनके

पास से गुजरा था तो कितना चूर रहा था। तब नहीं समझ पाये थे धीमर। किस कौशल से वेष बदला हुआ था कि धीमर तक न पहचान सके थे। तब भला पुलिस वाले चित्रों के आधार पर क्या खाक पहचानेंगे ?
जब वे नल के पास पहुँचे सारा प्लेटफार्म खाली पड़ा था। किताबों की दूकान होटल वगैरा सभी बन्द थे। खाली काहटें जल रही थीं। धीमर ने पास पहुँच कर बिल्कुल पहचान लिया कि विपन बाबू ही हैं। नल बुता हुआ था। विपन ने बहुत धीमे से बताया कि स्टेशन के बाहर धर्मशाला है वहीं वे जा रहे हैं और धीमर वहीं आयें।

वहाँ पहुँचकर दोनों काफी दूरी आपस में बनाये रखे तथा धीमर उनके पीछे-पीछे आये—ऐसे नहीं कि पीछा कर रहे हैं।
रात के बारह ज्यादा ही थे। सूनी सड़कों पर कोई नहीं था। भौंकते कुत्ते वीरान सड़कों वाली दुकानों वाली बस्ती को पार कर वे लोग रेल पटरियों पर जब काफी दूर निकल आये तब कहीं जाकर विपन ने अपनी लँगड़ी छोड़ी। बाहिने हाथ पूरब में प्रकाश फूटने का उपक्रम हो रहा था। भोर के पूर्व के धुंधले आकाश में सवेरे की ताजी अलमस्त हवा स्वच्छन्द बह रही थी। खण्डवा दूर छूट गया था। काफी दूर पीछा करने के बाद धीमर विपन को पकड़ सके। दानों रेल के स्लीपरों पर पैर रखते बढ़ रहे थे।
—क्या जनाब ! तुम खण्डवा में क्या कर रहे थे ?
—मेरी छोड़ो यह बताओ कि यह तुमने क्या स्वाँग बना रखा था ?
—देखो प्रश्न पहले मैंने किया है।
—लेकिन उत्तर पहले तुमको देना होगा।
—सबेरे-सबेरे झगड़ा करने से पूरा दिन झगड़ा करते बीतता है मालूम भी है कुछ ?
—ऐसो विपन ! तुम मुझसे हमेशा छुपाते रहे हो। मुझे सब मालूम है।
—तो फिर क्या जानना चाहते हो ?
तब तक एक बड़ी सी पुलिया आ गयी। वे लोग नीचे उतर आये। वहाँ सुन्दर कोई नाला बह रहा था।
—धीमर ! चलो वहाँ बैठ कर बातें करेंगे।
और धीमर ने देखा कि दूर विन्ध्या की श्रेणियों के बीच एक बड़ा-सा झुरमुट से होकर नाला आ रहा था। उसी की ओर विपन ने संकेत किया था। रेल की पटरियाँ ऊँचाई पर पीछे छूट गयी थीं। प्रकाश तेजी से फैलने लगा था। चारों

और स्पष्ट निस्तब्धता थी ऐसी कि सुई भी गिरती तो बोध हो जाता। श्रीधर विशन के पीछे-पीछे चल रहे थे। वे विशन से बहुत कुछ पूछना चाह रहे थे लेकिन यह भी जानते थे कि विशन का अपने खण्डहरों में होने का क्या कारण रहे ?

बीच के एक स्टेशन से दोपहर वाली गाड़ी पकड़ वे लोग शाम को इन्दौर पहुँचे। श्रीधर को विश्वास नहीं हो रहा था कि कल जिस शहर को सदा के लिए छोड़ गये थे वहाँ इस प्रकार और इतनी जल्दी वापस लौट आना पड़ेगा। जब श्रीधर ने बताया कि उन्हें क्यों इन्दौर छोड़ देना पड़ा था विशन पहले तो खूब हँसा उपरान्त गम्भीर हो गया। वहीं नाले पर ही विशन ने मालती दीदी से किये गये ब्याह के प्रस्ताव की भी बात बतायी। और यह भी कि दीदी कभी तैयार नहीं होगी वर्ना वह उनसे ब्याह करना चाहता है। विशन ने कोई आश्चर्य नहीं प्रकट किया कि श्रीधर को सब मालूम हो गया है कि रोजी सेक्सन का वास्तविक परिचय क्या है तथा ये लोग क्या करने जा रहे हैं। श्रीधर ने जब रोजी सक्सेना के ब्याह की बात बतायी जो कि उनके प्रिन्सीपल ने बतायी थी तो वह खूब हँसा। विशन स्वयं कई बार सोच चुका है कि श्रीधर का इस प्रकार कितने दिन चलेगा। लेकिन श्रीधर से भविष्य के लिए उसने यह वादा करवा लिया कि वे कोई ऐसी नादानी नहीं करेंगे। यदि श्रीधर इन्दौर छोड़ना ही चाहते हैं तो वह बम्बई, पूना अजमेर, आगरा दिल्ली कहीं भी प्रबन्ध करवा देगा लेकिन श्रीधर को जल्दबाजी नहीं करनी होगी।

इन्दौर पहुँचकर विशन बाबू बिल्कुल ही सहज अपने वही पुराने विशन हो गये। श्रीधर को लगा कि विशन में स्पष्ट दो व्यक्तित्व हैं। जिस रहस्यमयता को वे विशन के चारों ओर अनुभव करते थे आज उसे उन्होंने देख लिया था।

घर पहुँचकर स्वस्थ एवं सुसज्जित हो दोनों मालती दीदी के यहाँ पहुँचे। दोनों ही प्रतिश्रुत थे कि कल शाम से लेकर आज तक जो भी कुछ हुआ है उस बारे में वे कभी मुँह नहीं खोलेंगे। जिस बेला दोनों दीदी के यहाँ पहुँचे वे आगवत

बाँध रही थी । विमन और मीबर को एक साथ देखकर वे चौंकी । बैठाते हुए बोलीं

—क्यों मीबर ! अब तुम भी रात रात भर घर से गायब रहने लगे ?

—नहीं तो ?

—लो इसे मुन्नी को झूठा बनाता है । क्या कल रात तुम घर पर ही थे ?

—घर पर ? हाँ नहीं असल में दीदी ! कई दिनों दफ्तर का काम नहीं किया था न इसलिए

—तब तुम दफ्तर ही में रह गये हो न ? लछमन ! ओ लछमन !

और लछमन ने प्रवेश । विमन बाबू और मीबर बाबू को नमस्कार कर सिर झुका खड़ा हो गया ।

—क्या लछमन ! मीबर दफ्तर ही में था न ?—क्यों झूठ बोलते हो अधिक ? बोल

कल न तुम घर पर थे न दफ्तर में थे और न पुस्तक साहब के यहाँ । बेचारे नारायण बाबू तुम्हारे पीछे चक्कर काट कर आज थक गये वापस । क्या झूठ बोलती हूँ मैं ? तुम उनसे बचने के लिए नहीं छुप गये थे हो न ?

—असल में दीदी ! बात यह थी कि

—बात-बात कुछ नहीं । बेचारी बहू को खबर नहीं भेजना किस काम के लिए घर से भागे उस बारे में कुछ नहीं कहना । अरे मैं कहती हूँ तुम इस विमन के चक्कर में रहे तो भूल हो जाओगे । यह तो एक दिन फाँसी चढ़ेगा ही यह तो फाँसी पाएगा तो शहीद कहलाएगा जेल जाएगा तो नेता बन जाएगा लेकिन तुम क्या करोगे ? इसके गुन सीखोगे तो फिर अपनी शामत तुम्हारी है । इसको तुम सीखोगे तो फिर अपनी इस दीदी को आकर ब्याह का प्रस्ताव उसके सामने रखोगे किसी दिन । यह तुम लोगों ने क्या लगा रखा है ? किसी की मजाल है जो इन महाशय से पूछे कि उत्तर में जाने के लिए कह कर दक्षिण में कैसे पाये गये जनाब ? देखो भाई, मगर तुम लोगों पर कोई अधिकार तो नहीं है कि कुछ ज्यादा कह सकूँ । अधिकार तुम ही लोगों ने दिया है चाहो तो वापस ले लो लेकिन जब तक अधिकार है कहूँगी ही अगर बम-पिस्तौल ही चलाने हैं तो मैं तो बाज आयी । क्यों उस कमल की जिन्दगी बरबाद करना चाहता है नाई ? ब्याह का प्रस्ताव मुझसे करेगा और मामी को बम्बई से पत्र लिखता है कि अगले रविवार को कमल से ब्याह करेगा ।

मीबर चौंके । इतनी सारी बातें हुई पर विमन ने इस बारे में पता नहीं क्यों कुछ

भी नहीं बताया ? उन्हें किंचित बुरा सा लगा कि बिसन एक छूटी रहस्य बराबर रखना चाहते हैं। कभी इस बात की तो कभी उस बात की।

बिसन भी समझ गये कि श्रीधर को बुरा लगा है। वे श्रीधर को बताना अवश्य चाहते थे लेकिन पहले दीदी से बातें करने के बाद। बड़ी अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा भी हो सकता है।

शारदा इस बीच नाश्ता पानी ले आयी थी। मालती के चुप हो जाने से सहसा ही कमरे में अबोलापन घिर आया था जिसे हल्का करते हुए बिसन बोला

—अब टाँगेगी ही या कुछ खिलाओगी भी ?

बिसन की बात खो गयी। कोई नहीं बोला। जैसे जंगल में शब्द खो गया हो। मालती ने अबोले ही दोनों को प्लेटों में नाश्ता दिया। दोनों में से किसी का साहस नहीं हुआ कि पूछें दीदी ! आप नहीं लेंगी ? कमरे में चप्पलों की आवाज ही रह-रह कर उभर आती बाकी सब निःशब्द था। सभी को अबोलापन बड़ा भारी लग रहा था। हठात बिसन बाबू ने श्रीधर से पूछा

—क्यों श्रीधर ! तुम्हें कुछ गाना-बाना भी आता है ?

श्रीधर इस अनपेक्षित प्रश्न को समझ न पाया।

—नहीं तो।

—मुझे बंसी आती है। बंसी सीखोगे ?

—नहीं।

मालती बिसन की शरारत समझ गयी कि किसी तरह न बोलने का बोझा थोड़ा कम हो तो कुछ मार्ग बने। वह भी देखती रहीं कि कब तक यह ऐसे ही बोलता है।

बिसन बड़े जोरों पर हँसा।

—तब तो तुम साक्षात पशु हो।

और सहसा खड़े होकर बड़ी ही नाटकीय मुद्रा में हाथ जोड़कर बिसन बाबू बोले

—हे संगीतहीन पशुराज ! हम आपके दर्शन पा कृतज्ञ हुए। आप जैसे अवतारी पशु सभी युगों में संगीत के नाश होने पर उत्पन्न होते रहते हैं—त्राहिमाम हे पशुराज ! अपने चरण-खुर आगे बढ़ाइए, हम उन्हें प्रणाम करते हैं।

और मालती बड़े जोरों से हँस दी श्रीधर भी हँस दिया। मालती बोली

—बड़ा अच्छा लगता है न ? इतना बड़ा हो गया और बच्चों की तरह छिछोरपन करता है। भगवान जाने तुमसे अंग्रेज क्यों और किस तरह डरते हैं ?

—मालती हो दीदी ! खाने के दाँत दूसरे होते हैं और दिखाने के दूसरे ।
—ठीक है, लेकिन अब क्या मामला है ? क्यों उस बेचारी को परेशान किये हो ?
—किसे ?
—कमल को ।
—अरे दीदी ! वही मुझे परेशान किये है ।
—तुम ही तो राजकुमार हो न ?
—तुम क्या जानो । ठीक तभी तो तुमने पुरस्कार दिया लेकिन कमल से पूछो कि राजकुमार हूँ कि नहीं । अब दीदी एक बात है ये धीवर महाशय मतलब पंडित धीवर ठाकुर हैं न ? ये बुरा मान बैठे हैं कि मैंने इन्हें नहीं बताया ।
—ठीक ही तो माने बैठा है । क्यों बुरा मान बैठे हो ?
—शायद ।
—देखो दीदी ! ठाकुर महाशय बुरा भी किस शालीनता से माने हैं ।
—और नहीं तो क्या तुम्हारी तरह कि ऊँचा मुँह करके भगे तो पता ही नहीं । अरे धीवर ! इसकी बात का जो बुरा माने वही मूर्ख । कभी आज तक इसने मुझे कोई बात बतायी ?
—देखो दीदी झूठ बोलोगी तो पाप चढ़ेगा । पाप चढ़ेगा तो पुण्य घटेगा । पुण्य घटेगा तो क्या होता है धीवर !   पुण्य घटने पर, अरे बोलो ?
—तुम्हारा सिर ।
और मालती यह कहती उठ गयी । मालती के चले जाने पर धीवर बोले
—आखिर इतना सारा नाटक करने की क्या आवश्यकता है ?
—तुम दोनों को प्रसन्न करना ।
—क्यों ?
—इसलिए कि दीदी बहन है और धीवर भाई । और दोनों को कभी अपने कभी जगमाने कई बातें नहीं बता पाता हूँ तो ये दोनों नाराज हो जाते हैं । अतएव भगवान के नाराज होने पर लोग सत्यनारायण की कथा करवाते हैं जब कि अपने लोगों के नाराज हो जाने पर मैं नाटक करने लग जाता हूँ ।
विमल इस सारी बात को अजीब ढंग से व्यंग्यात्मकता से बोल रहा था कि धीवर को गम्भीर की हँसी आ गयी । मालती लौटी
—अच्छा अब बहुत हुआ । गरम पानी तैयार है । तुम लोग तैयार हो जाओ तो नाश्ता की चूल्हा-चौके से फुर्सत हो । तुम लोगों के मारे तो सभी पर काम बढ़ जाता है ।

बाद हुए विमन को लक्ष्य करते हुए बोलीं
—अब सब प्रबन्ध कर रही हूँ बाद में मत मुकर जाना वर्ना मेरी हँसी होगी।
—लेकिन दीदी ! प्रबन्ध क्या करता है ?
—हाँ र प्रबन्ध क्या करता है ? सुना श्रीधर ! इसकी समझ से तो कुछ प्रबन्ध करना ही नहीं है।
—मगर दीदी ! ब्याह तो कोर्ट में होगा।
—कोर्ट में हो चाहे जेल में तेरा ब्याह। एक बार बिना अग्नि की साक्षी के मैं नहीं मानने की। ब्याह न हुआ स्कूल की भर्ती हो गयी कि रजिस्टर में नाम लिखा दिया।
—मुझे तो तुम नहीं जानती बड़ी झंझट है इसमें।
—देख भाई, या तो तू ब्याह कर ले या ब्याह का प्रबन्ध कर ले।
—जैसी इच्छा।
—और जैसा तू कहेगा वही होगा। तूने जब चिट्ठी में लिख दिया कि मेडिकल स्कूल के तेरे कोई पहरी मित्र हैं उन्हीं के कमरे पर सब होगा। ठीक है ब्राह्मण वहीं पहुँच जाएगा। पहले कोर्ट हो आना उसके बाद वहीं हो जाएगा। तब तो ठीक है ?
—तो इसमें प्रबन्ध क्या करना है दीदी ?
—अच्छा हुआ भगवान ! जो मैंने तुझे दुत्कार दिया। बेचारी कमल का ऐसे मूर्ख के साथ कैसे निबाह होगा ? मूर्ख की सबसे बड़ी पहचान क्या होती है श्रीधर ! जानते हो ?
—हाँ जानता हूँ।
—क्या होती है बताओ ?
—मूर्ख न तो स्वयं कुछ सोचता है और न ही चाहता है कि दूसरे भी कुछ सोचें। तभी विमन तपाक से बोला
—नहीं आप लोगों को नहीं मालूम। मूर्ख वह होता है जिस को मूर्ख प्रमाणित कर दें कि यह असली मूर्ख है।
और तीनों हँसने लगे।

—जानती हो दीदी ! खाने के दाँत दूसरे होते हैं और बताने के दूसरे।
—ठीक है, लेकिन अब क्या सोचा है ? क्यों उस बेचारी को परेशान किये हो ?
—किसे ?
—कमल को।
—अरे दीदी ! वही मुझे परेशान किये है।
—तुम ही तो राजकुमार हो न ?
—तुम क्या जानो। ठीक तभी तो तुमने पुकार दिया लेकिन कमल से पूछो कि राजकुमार हूँ कि नहीं। अब दीदी एक बात है ये श्रीधर महाशय मतलब पंडित श्रीधर ठाकुर हैं न ? ये बुरा मान बैठे हैं कि मैंने इन्हें नहीं बताया।
—ठीक ही तो माने बैठा है। क्या बुरा मान बैठे हो ?
—शायद।
—देखो दीदी ! ठाकुर महाशय बुरा भी किस शालीनता से माने हैं।
—और नहीं तो क्या तुम्हारी तरह कि ऊँचा मुँह करके गये तो पता ही नहीं। अरे श्रीधर ! इसकी बातों का जो बुरा माने वही मूर्ख। कभी आज तक इसने मुझे कोई बात बतायी ?
—देखा दीदी झूठ बोलूँगी तो पाप चढ़ेगा। पाप चढ़ेगा तो पुण्य घटेगा। पुण्य घटेगा तो क्या होता है श्रीधर ! पुण्य घटने पर, अरे बोलो ?
—तुम्हारा सिर।
और मालती यह कहती उठ गयी। मालती के चले जाने पर श्रीधर बोले
—आखिर इतना सारा नाटक करने की क्या आवश्यकता है ?
—तुम दोनों को प्रसन्न करना।
—क्यों ?
—इसलिए कि दीदी बहन हैं और श्रीधर भाई। और दोनों को कभी जाने कभी अनजाने कई बातें नहीं बता पाता हूँ तो ये दोनों नाराज हो जाते हैं। अतएव भगवान के नाराज होने पर लोग सत्यनारायण की कथा करवाते हैं जब कि अपने लोगों के नाराज हो जाने पर मैं नाटक करने लग जाता हूँ।
विमल इस सारी बात को अजीब ढंग से रूपात्मकता से बोल रहा था कि श्रीधर को सचमुच की हँसी आ गयी। मालती लौटी
—अच्छा अब बहुत हुआ। गरम पानी तैयार है। तुम लोग तैयार हो जाओ तो शारदा को चूल्हे-चौके से फुरसत हो। तुम लोगों के मारे तो सभी का काम बढ़ जाता है।

जाते हुए बिसन को लक्ष्य करते हुए बोली

—अब सब प्रबन्ध कर रही हूँ बाद में मत मुकर जाना वर्ना मेरी हँसी होगी।

—लेकिन दीदी! प्रबन्ध क्या करना है?

—हाँ रे प्रबन्ध क्या करना है? सुना श्रीधर! इसकी समझ से तो कुछ प्रबन्ध करना ही नहीं है।

—मगर दीदी! ब्याह तो कोर्ट में होगा।

—कोर्ट में हो चाहे जेल में तेरा ब्याह। एक बार बिना अग्नि की साक्षी के मैं नहीं मानने की। ब्याह न हुआ स्कूल की भर्ती हो गयी कि रजिस्टर में नाम लिखा दिया।

—सुनो ता, तुम नहीं जानती बड़ी झमट है इसमें।

—देख भाई, या ता तू ब्याह कर ले या ब्याह का प्रबन्ध कर ले।

—जैसी इच्छा।

—और जैसा तू कहेगा वही होगा। तूने अब चिट्ठी में लिख दिया कि मल्लिका स्कूल के ठेरे कोई चौधुरी मित्र हैं उन्हीं के कमरे पर सब होगा। ठीक है, ब्राह्मण वहीं पहुँच जाएगा। पहले कोर्ट हो जाना उसके बाद वहाँ हो जाएगा। तब तो ठीक है?

—तो इसमें प्रबन्ध क्या करना है दीदी?

—अच्छा हुआ भगवान! जो मने तुझे दुत्कार दिया। बेचारी कमल का ऐसे मूर्ख के साथ कैसे निबाह होता? मूर्ख की सबसे बड़ी पहचान क्या होती है श्रीधर! जानते हो?

—हाँ जानता हूँ।

—क्या होती है बताओ?

—मूर्ख न तो स्वयं कुछ सोचता है और न ही चाहता है कि दूसरे भी कुछ सोचें।

तभी बिसन तपाक से बोला

—नहीं आप लोगों को नहीं मालूम। मूर्ख वह होता है जिसे दो मूर्ख प्रमाणित कर दें कि यह असली मूर्ख है।

और तीनों हँसने लगे।

—जानती हो दीदी ! खाने के दाँत दूसरे होते हैं और कराने के दूसरे।
—ठीक है, लेकिन अब क्या सोचा है ? क्यों उस बेचारी को परेशान किये हो ?
—किसे ?
—कमल को।
—अरे दीदी ! वही मुझे परेशान किये है।
—ऐसे ही तो राजकुमार हो न ?
—तुम क्या जानो। ठीक अभी तो तुमने दुलार दिया लेकिन कमल से पूछो कि राजकुमार हूँ कि नहीं। अब दीदी एक बात है ये श्रीधर महाशय मतलब पंडित श्रीधर ठाकुर हैं न ? ये बुरा मान बैठे हैं कि मैंने इन्हें नहीं बताया।
—ठीक ही तो माने बैठा है। क्यों बुरा मान बैठे हो ?
—शायद।
—वाह दीदी ! ठाकुर महाशय बुरा भी किस शालीनता से मानते हैं।
—और नहीं तो क्या तुम्हारी तरह कि ऊँचा मुँह करके गये तो पता ही नहीं। अरे श्रीधर ! इसकी बातों का जो बुरा माने वही मूर्ख। कभी आज तक इसने मुझे कोई बात बतायी ?
—देखो दीदी झूठ बोलोगी तो पाप चढ़ेगा। पाप चढ़ेगा तो पुण्य घटेगा। पुण्य घटेगा तो क्या होता है श्रीधर ! पुण्य घटने पर, अरे बोलो ?
—तुम्हारा सिर।
और मालती यह कहती उठ गयी। मालती के चले जाने पर श्रीधर बोले
—आखिर इतना सारा नाटक करने की क्या आवश्यकता है ?
—तुम दोनों को प्रसन्न करना।
—क्यों ?
—इसलिए कि दीदी बहन हैं और श्रीधर भाई। और दोनों को कभी जाने अनजाने कई बातें नहीं बता पाता हूँ तो ये दोनों नाराज हो जाते हैं। अतएव भगवान के नाराज होने पर लोग सत्यनारायण की कथा करवाते हैं जब कि अपने लोगों के नाराज हो जाने पर मैं नाटक करने लग जाता हूँ।
विनय इस सारी बात को अजीब ढंग से क्यात्मकता से कह रहा था कि श्रीधर को सचमुच की हँसी आ गयी। मालती लौटी
—अच्छा अब बहुत हुआ। गरम पानी तैयार है। तुम लोग तैयार हो जाओ तो शारदा को चूल्हे-चौके से फुर्सत हो। तुम लोगों के मारे तो सभी का काम पड़ जाता है।

बात हुए विधान को लक्ष्य करते हुए बोलीं
—अब सब प्रबन्ध कर रही हूँ बाद में मत मुकर जाना वर्ना मेरी हँसी होगी।
—लेकिन दीदी! प्रबन्ध क्या करना है?
—हां रे प्रबन्ध क्या करना है? सुना श्रीधर! इसकी समझ से तो कुछ प्रबन्ध करना ही नहीं है।
—मगर दीदी! ब्याह तो कोर्ट में होगा।
—कोर्ट में हो चाहे जेल में तेरा ब्याह। एक बार बिना अग्नि की साखी के मैं नहीं मानने की। ब्याह न हुआ स्कूल की भर्ती हो गयी कि रजिस्टर में नाम लिखा दिया।
—सुना सा, तुम नहीं जानती बड़ी झंझट है इसमें।
—देख भाई, या तो तू ब्याह कर ले या ब्याह का प्रबन्ध कर ले।
—जैसी इच्छा।
—और जैसा तू कहेगा वही होगा। तूने जब चिट्ठी में लिख दिया कि मडिकल स्कूल के तेरे कोई अंगूरी मित्र है उन्हीं के कमरे पर सब होगा। ठीक है, ब्राह्मण वहीं पहुँच जाएगा। पहले कोर्ट हो जाना उसके बाद वहां हो जाएगा। अब तो ठीक है?
—तो इसमें प्रबन्ध क्या करना है दीदी?
—अच्छा हुआ भगवान! जो मैंने तुझे पुत्कार दिया। बेचारी कमल का ऐसे मूर्ख के साथ कैसे निबाह होगा? मूर्ख की सबसे बड़ी पहचान क्या होती है श्रीधर! जानते हो?
—हां जानता हूँ।
—क्या होती है बताओ?
—मूर्ख न तो स्वयं कुछ सोचता है और न ही चाहता है कि दूसरे भी कुछ सोचें। तभी विधान तपाक से बोला
—नहीं आप लोगों को नहीं मालूम। मूर्ख वह होता है जिस को मूर्ख प्रमाणित कर दें कि यह असली मूर्ख है।
और तीनों हंसने लगे।

आज रविवार था।

बिशन और कमल के ब्याह का दिन।

इस ब्याह को अत्यन्त गोपनीय रखा गया था। कमल ने तथा बिशन ने काफी पहले ही पुस्तके साहब से प्रयत्न भर प्रयास किया था कि उन्हें विवाह करने दिया जाए। लेकिन पुस्तके साहब ने अपनी लड़की को ऐसा झाड़ा था कि फिर उनसे बातें करने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। बिशन ने जब देखा कि पुस्तके साहब यह विवाह कभी न होने देंगे तो एकबार सोचा अवश्य था कि पुस्तके साहब पर अन्य किसी के द्वारा जोर डलवाया जाए। लेकिन बिशन ने समझदारी ही की कि इस बारे में किसी से चर्चा नहीं की। यद्यपि लोगों में इस बारे में विशेषकर वकीलों खासी इस कांग्रेसी-राजनीति में बिशन और कमल के सम्बन्धों को लेकर काफी चर्चा थी। जो लोग पुस्तक विरोधी दल के थे वे इस फिराक में थे कि बिशन एक बार भी यदि चर्चा कर दे तो वे जान लगा देंगे और ब्याह करवा देंगे। पुस्तके साहब तब से कमल के प्रति अधिक सतर्क रहने लगे थे। संभव था कि कमल को इसलिए उन्होंने बम्बई में उसके मामाके यहाँ भेज दिया हो ताकि सामने न

रहेगी तो बात भी नहीं बढ़ेगी और पिछली बात भी आयी गयी हो जाएगी। जब इस तरह दो-तीन बरस बीत गये तो पुस्तके साहब समझे कि अब कहीं कुछ नहीं है। दूसरे लोग भी यही समझे।

सत्याग्रह के अवसर पर जब कमल कुछ दिनों के लिए आयी और उसे विपिन से घूमते-मिलते देखा तो पुस्तके साहब के कान खड़े हुए। उन्होंने कमल के लौटने पर कमल के मामा को सूचना कर दी कि वे कमल को कहीं अधिक घूमने-फिरने न दें। न ही उसे कहीं बम्बई के बाहर आने-जाने दिया जाए। कारण उन्होंने नहीं लिखा। लेकिन कमल के मामा कमल के पिता की भाँति न तो शक्की स्वभाव के ही थे और न दकियानूस ही। विलायत से बैरिस्ट्री पास किया व्यक्ति तथा स्वयं एक अंग्रेज महिला से विवाह किया था किस प्रकार इन बचनों को मानता? कभी-कभी विपिन के गायब हो जाने पर वे बम्बई अपने साले को पत्र लिखकर पूछ लेते कि कोई पीछे से कमल से मिलने तो नहीं आया था? कमल के मामा हँसकर उत्तर दे देते कि नहीं कोई ऐसी बात नहीं है। जब कभी विपिन बम्बई आता तो कमल कालेज की पिकनिक या और कुछ बहाना बनाकर विपिन से बराबर मिलती।

विपिन ने यह रविवार इसलिए चुना था कि एक सप्ताह के लिए कमल के मामा अपने किसी मुकदमे के सिलसिले में पूना जाने वाले थे साथ में उनकी पत्नी भी। यही अवसर था कि कमल बम्बई से चार-पाँच दिनों के लिए गायब हो सकती थी।

तय यही था कि शनिवार को कमल आएगी और वे दोनों दो गवाहों को लेकर सीधे कोर्ट में जाकर अपना विवाह करेंगे। प्रारम्भिक कार्यवाही पहले ही कर चुका था। उपरान्त कमल और विपिन महू में एक मित्र के यहाँ रात बिताएँगे और रविवार के दिन जौहरी के हास्टल में पंडित को बुलाकर विवाह कर लिया जाएगा। विपिन के एक अभिभावक थे पूर्ने जी। वे हरिजन कार्यालय के मंत्री तथा पुराने ईमानदार कांग्रेसी व्यक्ति थे। विपिन ने उन्हें सारी स्थिति से अवगत करा दिया था। इनके अलावा दो-एक मित्र और भी थे। ये ही लोग कोर्ट में भी गवाह बने थे और वैदिक विवाह के समय भी उपस्थित थे। मामनी की उपस्थिति को विपिन बहुत जरूरी समझते थे। इस प्रकार एक-एक करके सब लोग हास्टल में जौहरी के कमरे पर पहुँचे।

दोपहर का समय था। अधिकांश शून्य था। शहर से बाहर इस एकाकी मेडिकल हास्टल के चारों ओर निर्जन था। पुराने मिलिट्री की बैरकों जैसे इस

हास्टल में लड़के या तो शहर घूमने गये हुए थे अथवा जाते हुए जाड़े की अंतिम धूप खा रहे थे। कहीं-कहीं कैरम या ताश हो रहा था। जौहरी के एक प्रोफ़ेसर मित्र का छोटा सा बँगला खाली पड़ा था वहीं लोग एकत्र थे। सारा काम इतनी शान्ति से सम्पन्न हो रहा था कि किसी को शक तक नहीं था। सबसे बाद में एक तांगे में विपन और कमला आये। दूर मेसों में से रविवार के खाने की गंध हवा के साथ आ रही थी। लड़के तौलियें गले में लटकायें, गाते-बजाते नहाने जा रहे थे। हास्टलों में रविवार भी उत्सव ही होता है।

श्रीधर पता नहीं कैसे जौहरी को देखते ही समझ गये कि यह भी क्रान्तिकारी ही होगा। जिस शान्त निश्चिन्त भाव से वह सारी स्थिति ले रहा था तथा आचरण कर रहा था उससे यही बोध होता था कि वह व्यक्ति सहसा किसी भी विषम परिस्थिति के आ जाने पर भी ऐसा ही आचरण करेगा जैसे कि उसके बारे में सब कुछ ज्ञात था। साथ ही जौहरी ने किसी से विशेष परिचित होने की कोई चेष्टा नहीं की और न ही किसी से बोलने पर प्रदर्शित होता कि जैसे आज पहली बार मिल रहा हो।

पंडित ने विवाह समाप्त करवाया और चला गया। गुँठे भी की लाने का भार श्रीधर बाबू पर था। गुँठे भी विपन और कमला को आशीर्वाद देकर दोनों के बीच में बैठे। विवाह के बाद सूत की मालाएँ पहनायीं। मालती दीदी ने श्रीधर को एक तरफ़ बुलवाया।

—श्रीधर! ले भाई जरा मेरा यह काम तो कर दे।

—बोलो।

—ये तो बहू को पहना दे और यह विपन को।

श्रीधर ने देखा कि कमला के लिए सोने की चूड़ियाँ गले का हार कानों के लिए कर्णफूल अँगूठी बिछिया तथा मंगलसूत्र। विपन के करने के लिए सोने के बटन तथा एक अँगूठी।

—मालती दीदी! यह क्या?

—अब इससे तो समझना ही पड़ेगा तो क्या तुमसे भी बहस करनी होगी?

नहीं श्रीधर! जा तो भाई।

—तो तुम ही क्यों नहीं पहना देतीं?

—हे भगवान! तुम लोगों का क्या होता जा रहा है? मैं एक अपविता इतना पवित्र को कैसे छू सकती हूँ? देखते हो मैं बहू का दर्शन तक नहीं कर रही हूँ।

—यह सब फिजूल है दीदी !

—ऐसा भाई, उसकी जिद के सामने तो मेरी कुछ चलती ही नहीं, इसलिए आ गयी लेकिन सुन श्रीधर ! मैं अपनी सीमाएँ जानती हूँ तथा पाप-ताप भी।—अच्छा अब बहस मत कर भाई और जा तो जल्दी से मेरा काम कर दे। ब्याह के बाद बिना मंगलसूत्र के बहू को नहीं रहना चाहिए। कोई स्त्री होती तो गुरम्म पहनवा देती। अच्छा अब जाओ तो।

जैसे ही श्रीधर को इतनी सारी चीजों के साथ विमल ने देखा तो वह पहले तो चौंका और वह सम्हालने को भी हुआ लेकिन उसने पीछे खड़ी दीदी को असीम ममत्व करुणा स्नेह की आँखों से मुस्कराते तथा कुछ भी बोलने से बरजा कि विमल का साहस नहीं हुआ। वह दीदी को यहाँ इतो दर्जे पर जा सका था कि वे चुपचाप पीछे खड़ी रहेंगी और कम से कम माथ बहू का पतन न करेंगी। कमल भी एक बार चौंकी। उसने विमल की ओर देखा और आँखों में ही समझ गयी कि यह किसका भेजा हुआ है तथा जिसे अस्वीकारा नहीं जा सकता।

सबने खाया-पीया और यही तय पाया कि गुंडे जी पुस्तके साहब को जाकर इस ब्याह की सूचना देंगे तथा उन्हें मनाएँगे कि अब ब्याह हो ही गया तो अब आशीर्वाद देने में संकोच नहीं करना चाहिए। गुंडे जी का तो कहना था कि कमल उन्हीं के साथ चले लेकिन जौहरी तथा विमल ने इस बारे में विरोध किया कि सम्मति कमल को गुप्त ही रखा जाए। यदि पुस्तके साहब तैयार हो जाएँगे तो कल कमल और विमल गुंडे जी के साथ पुस्तके साहब के यहाँ चले जाएँगे।

और मालती के मना करने पर भी विमल कमल को लेकर दीदी के घर की ओर रवाना हुआ। गुंडे जी ने सीन्धे में श्रीधर को कष्ट न करने की सलाह दी। लगभग का सम्पूर्ण शिविका में मालती जाने वालों में सबसे पहली थी और सबसे बाद श्रीधर। श्रीधर का ताँगा जिस समय रवाना हुआ साँझ हो रही थी। *जौहरी उन्हीं हो निश्चिन्तता से अपने प्रोफेसर मित्र के बँगले को बन्द कर, ताला* लगा रहा था। मस्जिद हाल्टल सुनसान था। लड़के या तो शहर घूमने जा चुके थे या कहीं जा रहे थे। दूरी पर बम्बई-आगरा रोड पर मोटरें भागी जा रही थीं। सब निःशब्द था। जैसे एक घटना हुई जैसे लोग उसे नहीं होने देना चाहते थे।

पूछें की पुस्तकें साहब से मिलकर क्या खबर लाये इसकी सूचना लाने का भार श्रीधर पर था। श्रीधर जब विमल के पास पहुँचा सवेरे के दस बज रहे थे। आज के पहले भी अनेक बार श्रीधर ने कमल को देखा था लेकिन आज कमल बहुत सुन्दर लग रही थी। कमल इतनी सुन्दरी है इसकी कल्पना भी श्रीधर को नहीं थी। बस अच्छी ही सदा लगी थी कि—होगा है। और वैसे भी श्रीधर इन मामलों में कम ही समझते भी थे। झिलमिली धानी साड़ी में बड़ा सा जूड़ा बनाये कमल, कल तक की वह कमल जो कि श्रीधर की आँखों में थी आज खिड़की के पास धूप में चौकी पर बैठी महाराष्ट्री सरदार बहू लग रही थी। नाक में हीरे की नथ भी संभवतः मामली से आज मुँह-दिखाई में कमल को दी थी। श्रीधर के अन्तर में संभवतः जीवन में पहली बार यह ख्याल आया कि पूर्ण सम्पिता सुन्दर नारी   जैसे प्राप्त करने योग्य न भी हो तो भी उसका दर्शन करना परम उपलब्धि है।
विमल कमरे में नहीं था।
—विमल कहाँ गये हैं ?
धूप में बैठी कमल ने अजीब तृप्ती एवं सकरुण मुस्कान के साथ उत्तर दिया
—नहीं नहाने गये हैं। बैठिए।
श्रीधर को लगा कि कमल ने किस कोमलता से विमल का नाम न लेकर चर्चा की है।
एक ही दिन में बल्कि एक ही रात में कमल विमल के कितने निकट, कितनी अनुस्यूत कितनी तदाकार लग रही है। कल की कमल और आज की कमल में कैसा क्रान्तिकारी परिवर्तन लग रहा था जैसे कल तक वह रेखाओं में थी और रात भर किसी ने अपनी संगुम्फित कूँची से पलकें अधर, कपोल हाथ-पैर सभी को नियोजित एवम् रूपायित कर दिया था। कमल में जैसे कोई भिन्न व्यक्ति और आ समाया था जिसे प्राप्त कर वह धूप में बैठी अपने मन में देह में रोम रोम के भीतर, खूब गहरे में जाकर छुपा लेने में लगी थी। जाने क्या निधि मन और देह को मिल गयी थी कि वह अंग-अंग में खिला वन सुमन उठने को आकुल हो रही थी। वह ऐसी लग रही थी जैसे नये घर में गृह-प्रवेश के बाद पहली शाम का आभास हो। कमल ने 'बैठिए' ऐसे कहा जैसे विमल की घर की वह देहरी हो और बिना उनकी आज्ञा के प्रवेश संभव नहीं। नारी में ही संभव है कि वह प्रेम के साथ अल्पकाल में एकाकार हो सकती है, क्योंकि पुरुष की भाँति वह तर्क नहीं करती विश्वास करती है।

कुर्ते के बटन लगाते हुए विदाम ने अत्यन्त गम्भीरता से हुँकारी भरी जैसे वह सोच रहा हो ।

—आप लोग गुंठे जी के यहाँ तीन बजे पहुँच जाइएगा ।

—और तुम ?

—अब तुम्हारा-हमारा क्या साथ ? अब तो मेरा पीछा छोड़ो भाई ।

श्रीधर ने बात इस लहजे में कही कि सब हँस दिये और कमल लजा गयी ।

—देखो दीदी ! ये वही पंडित श्रीधर ठाकुर हैं जो आये थे तब ककहरा भी नहीं जानते थे और अब

—आप भूल रहे जनाब ! जब मैं आया था तब एक प्रतिष्ठित स्कूल में गणित तथा इतिहास का अध्यापक था और अब आपके सम्पर्क दोष से खादी का झोला उठाकर इन्दौर की सड़कों पर चप्पलें चटकाता रहता हूँ ।

—वाह हजरत अब तो तुम विदम के भी कान काटने लगे ?

—आपके कान कभी थे भी ? कान होते तो कुछ समझदारी की बातें सुनकर सीख गये होते । कान न कहो सींग कहो सींग !!

और सबने ठहाका लगाया । कमल बोली

—दीदी ! आज श्रीधर बाबू तो बहुत ही हाजिर-जवाब हो गये हैं ।

—आपको देखकर ।

और सब फिर हँस दिये । तब तक शारदा नाश्ता ले आयी ।

उसी रात दीदी की बैठक में वे तीनों अत्यन्त गंभीर मुद्रा में बड़ी देर तक उदास ही बैठे रहे । तीसरे पहर से लेकर अब तक घटनाएँ इतनी तेजी से घटी थीं कि किसी की भी समझ में कुछ नहीं आ रहा था । इस समय तक रात का वातावरण सवेरे के उत्फुल्ल वातावरण की अपेक्षा गहन उदासी का था ।

विदम का तभी झटका था गुंठे जी की बात सुनकर कि पुस्तके साहब ने विवाह की स्वीकृति दे दी है । जिस समय ये लोग गुंठे जी के यहाँ पहुँचे पुस्तके साहब तथा उनकी पत्नी पहले से ही वहाँ मौजूद थे और वहीं से कमल को व

लोग अपने घर से गये और विनन का खूब फटकारा गया कि उसने पुस्तके साहब की इज्जत पर जो हमला किया है उसे इसके लिए भुगतना पड़ेगा। बेचारे गुंठे जी पुस्तके साहब की यह बात समझ ही न सके। इस बीच लछमन के द्वारा श्रीधर को खबर मिली कि पुस्तके साहब लड़की भगाने के अपराध में विनन बाबू तथा श्रीधर पर वारन्ट निकलवा रहे हैं। लछमन के द्वारा यह भी मालूम हुआ कि कमल को कमरे में बन्द कर खूब पीटा जा रहा है तथा उसे बाध्य किया जा रहा है कि विनन बाबू के विपक्ष में ही बयान देगी।

मालती ने जब से यह सब कांड सुना तब से उसकी तो आँखें फटी की फटी रह गयी थीं। विनन तथा श्रीधर के सामने एकमात्र समस्या यह थी कि वारन्ट निकल जाने की स्थिति में क्या किया जा सकता है? क्योंकि पुस्तके साहब ने अपनी सारी सामाजिकता के जोर पर यह कार्य करवाया होगा। अब इस घटना को क्या-क्या रूप न दिया जाएगा। एक तो यही कि पुस्तके साहब के विरोधी गुट ने विनन के माध्यम से उन पर यह सामाजिक प्रहार किया है और पुस्तके साहब को बदनाम कर उनका राजनीतिक जीवन नष्ट करना चाहा है। दूसरे, महाराष्ट्रीय लड़की को एक अमहाराष्ट्रीय व्यक्ति ने जबरन बिवाहा। ऐसी स्थिति में पुस्तके साहब कभी भी किसी भी हालत में कमल और विनन को मिलने नहीं देंगे। यदि इसी बीच अंग्रेज सरकार वाला भी वारन्ट इसमें शामिल हो जाए तो विनन तो कहीं के नहीं रहेंगे। और इस मुकदमे के बाद क्या विनन बाबू के लिए इन्दौर में अपना राजनीतिक जीवन बनाये रखने की संभावना रह सकेगी? और मान लो कमल किसी बाध्यतावश विनन के विरुद्ध बयान दे दे तो क्या विनन के लिए फिर कुछ रह जाएगा?

तब ऐसी स्थिति में क्या यह ठीक नहीं होगा कि विनन कुछ दिनों के लिए कहीं चले जाएँ। और कमल के उस बयान की प्रतीक्षा करें जो कि वह कोर्ट में देगी। यदि बयान विनन के पक्ष में हो तो विनन को चाहिए कि तब साहसिकता से सामने आकर मुकदमा लड़े।

श्रीधर बाबू के लिए भी तो काफी गंभीर परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। वे भी अब यहाँ नहीं रह सकते। अन्त में यही तय पाया कि विनन श्रीधर को लेकर बनारस चले जाएँ। श्रीधर को भी यहाँ से जाना ही था और शायद विनन के कारण बनारस में कुछ काम-धाम मिल सके।

मालती इन सारे तर्कों और निर्णयों के प्रति उदास मौन बैठी रही। वह सुन भी रही थी तथा नहीं भी। वह इस सारे दुष्काण्ड का कारण स्वयं को मान

रही थी। बिशन को एकाध बार तो दीदी पर खिझ भी आ गयी कि यह क्या आदत कि दुनिया भर की बुराई के पीछे अपने को निमित्त मानना? लेकिन अपनी-अपनी भावना ही तो है। पहले तो वे यही कहती रहीं कि कोई बात नहीं। बिशन और श्रीधर यहीं रहकर मुकदमा लड़ें तो वो समझेंगी कि कैसे मुकदमा नहीं जीता जाता है। लेकिन आवेश के बाद वे तर्क उन्हें भी अधिक संगत लगे। जब बनारस जाने का निर्णय किया गया तो वे आँसू भीगी मशाल हो उठ गयीं।

जाते हुए उन्होंने यही सुना बिशन का

—दीदी! अब हम लोगों का इन्दौर में रुकना खतरे से खाली नहीं है।

—तो तुम क्या चाहते हो? इसी समय जाना? तो फिर जाओ भाई, मैं कौन होती हूँ रोकने वाली?

दोनों की ओर दीदी की पीठ थी फिर भी उन्होंने समझ लिया कि वे रो रही थीं।

—ठीक है श्रीधर! दीदी को मोह है लेकिन यह मजबूरी हम लोग नहीं कर सकते। इसी समय हमें चल देना चाहिए।

—लेकिन   दीदी को

—उन्हें तुम या हम कोई नहीं समझा सकते। अब उनसे अपने को कमजोर करना होगा।

—इस समय कोई ट्रेन

—वाह पंडित श्रीधर ठाकुर! कहाँ है अकल आपकी? वारण्ट वाला आदमी ट्रेन की प्रतीक्षा करेगा है न? अरे जनाब क्या पता बनारस तक पैदल जाना पड़े। अब उठो। कुछ शास्त्र का ज्ञान है? पढ़ा है कभी—चरैवेति! चरैवेति!!

श्रीधर ने देखा कि जिस दिशा में दीदी गयी थी उस दिशा में बिशन कुछ देखता रहा। उसकी अगम्य आँखें सजल हो आयीं। और फिर स्वगत ही बुदबुदा उठा

—अच्छा दीदी! विदा दो। कभी जीवित रहा तो आऊँगा ही अन्यथा अगले जन्म में तुम ही मुझे जन्म देना।

और रात के गहरे सन्नाटे में श्रीधर को तेज चलने के लिए बाध्य करता हुआ बिशन तेजी से बढ़ रहा था जैसे अनुत्तरहीन कोई प्रश्नवाचक चिह्न पूरे पृष्ठ पर चल रहा हो। कौन जानता है कि वह कैसे यहाँ आया था और कितने अनाम ढंग से जा रहा है। जब उसने एक जीवन का श्रीगणेश किया था आज उसीको प्रवाहित कर देने के लिए बाध्य होकर फिर अँधेरे में चला जा रहा था।

विजय की यह धारणा थी कि भीमर का मन किसी राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए जब कि भीमर बहुत स्पष्ट नहीं थे। व राजनीति में न भी सही लेकिन देशभक्ति अवश्य करना चाहते थे। भीमर ने इस बारे में विजय से बहस करना व्यर्थ समझा क्योंकि बनारस पहुँच कर सब वे अपना मार्ग बनाएँगे। इन्दौर भी वे गये इसलिए व लेकिन कुछ हो न सका। अजीब परिस्थितियों में फँस गये कि कभी-कभी स्वयं पर भी एकान्त में आश्चर्य होता कि क्या वे इसी सब के लिए घर छोड़ भागे थे? उनका अध्ययन गमागमा आदि सब बीच वाले कहीं गायब हो गए थे। विजय के व्यक्तित्व एवम् महानता में व इतने खो गये थे कि वे अपना कर्तव्य ही नहीं निर्धारित कर पा रहे थे। सब छह महीनों में कॉपियों से रामों के भाषण तैयार करना, इश्तिहार तैयार करना, थोड़ी बहुत प्रेस की छपाई करवाना, रात्रि मजदूर पाठशाला में पढ़ाना तथा मास्टरजी दीक्षा का सहयोगी बनकर रहना यही तो भीमर हो चले थे जब कि विजय का एक स्पष्ट सुघरा पैना व्यक्तित्व था जिसमें मन की शक्ति तथा मैत्री दोनों ही थीं। उनके चारों ओर मास्टरजी दीक्षा गला माथुर, शर्मा तथा कांग्रेस राजनीति और क्रान्तिकारी कार्यवाही वाली

थी। श्रीधर को बिसन के इस रुख से कोई ईर्ष्या द्वेष कुछ नहीं था वरन राग ही था—लेकिन श्रीधर का व्यक्तित्व इस प्रकार उपग्रह बनने के लिए तो नहीं था। चूँकि बिसन के प्रति एक सम्बन्ध बन गया था इसलिए उसे स्वयं तोड़ते तो कुछ व्यथा होती और आज जब परिस्थितिवश वे बनारस में अकेले फेंक दिये गये तो उन्हें इस अज्ञात अनाम नगर में किंचित बौखलाहट ही हुई।

आज एक महीने से काशी में वे नौकरी के लिए दौड़-धूप में लगे हैं। बिसन तो सात दिन बाद ही अपनी पार्टी के काम से लौट गया। बस परिचय के नाम पर एक अन्य क्रान्तिकारी सुधांशु राय से हल्का सा परिचय ही हो सका। सुधांशु राय ने श्रीधर को 'ब्रह्मनाल' पर एक कमरा अवश्य दिलवा दिया। इसके बाद तो वह महाशय भी जाने कहाँ अदृश्य हो गये।

नितान्त अपरिचित बनारस में श्रीधर बाबू एक सप्ताह तक तो समझ ही न सके कि यहाँ आकर उन्होंने अच्छा किया अथवा भूल की। दिन भर कमरे में पड़े रहते या फिर साँझ पड़ने पर 'दशाश्वमेध' निकल जाते। कभी मालूम होता कि 'बेनिया बाग' में कोई सभा है, वहाँ पहुँच जाते। प्रायः 'कबीरचौरा' की तरफ़ निकल जाते और काफ़ी देर बाहर कुछ पान पर खड़े-खड़े "आज' को आद्यन्त पढ़ जाते। किस प्रकार अखबार के द्वारा वहाँ के स्थान स्थानीय लोग आदि के नाम परिचित होने लगे किस प्रकार पैरों ने सड़कों के ढाल पहले मोड़ सब पहचानने शुरू किये—सब एकदम स्पष्ट था। मालवा से प्रत्येक चीज़ यहाँ की भिन्न थी। शहनाई वालों के साथ किस प्रकार औरतें गाती-बजाती वर वधू के साथ गंगा पूजन को जाती हैं किस प्रकार पहरेवाली होती है कैसे हर बनारसी "गुरु" कह जाता है—सब उनकी आँखों के सामने से गुजरता था और वे मौन देखते हुए कभी 'अहिल्या-घाट' पर या कभी 'केदार घाट' पर निकल जाते। साँझ से रात हो जाती अँधेरा घिर आता फिर भी वे बंगला वैष्णव कीर्तन सुनते बजरों में "मौज पार्टी" करते रईसों को बुर्राक कुरते-धोती तथा दुपल्ली में देखते बैठे रहते। दिन में जब कभी कुछ समझ में नहीं आता 'नागरी प्रचारिणी सभा' पहुँच जाते और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ा करते। इस सबके बीच किसी से विशेष परिचय न हो सका केवल पंडित उदयभानु मिश्र शास्त्री को छोड़कर। सब उन्हें "शास्त्रीजी" ही कहते थे।

शास्त्री जी बलिया के रहने वाले युवक थे। काशी में ही संस्कृत का अध्ययन किया था और अब एक मठ के द्वारा चलायी जाने वाली संस्कृत पाठशाला में निःशुल्क अध्यापन करते हैं तथा जीविका चलाने के लिए कचौड़ी गली के एक स्थानीय संस्कृत के बुकसेलर के लिए पानी के भाव पर पुस्तकें लिखते हैं। जब कई दिनों तक इस अज्ञात व्यक्ति को 'सभा' के पुस्तकालय में आते-जाते देखा और यह भी कि किसी से नहीं बोलता है तथा सभी के लिए अपरिचित है तो उन्हें कौतूहल हुआ कि आखिरकार यह व्यक्ति कौन है ? एक दिन शास्त्री जी ने श्रीधर बाबू को सायण की टीका पढ़ते देखा तो पास वाली कुर्सी पर बैठते हुए धीमे से बोले

—क्या आप काशी के ही हैं ?

—जी नहीं।

—तो फिर कौन जिले में घर है ? पूरब के तो नहीं लगते।

—जी नहीं उज्जैन का रहने वाला हूँ।

—वाह, कालिदासस्य उज्जयिनी। कालिदास बाणभट्ट भोज ने तो आपके प्रदेश को अमर कर दिया है। क्या है वह कण्ठहार का श्लोक मेरे ठठ नहीं पड़ा है

—कोई बात नहीं।

—हाँ क्या नाम है ? ब्राह्मण हैं न ?

—जी हाँ श्रीधर ठाकुर।

—क्या आप लोग नाम के पूर्व पंडित नहीं लगाते ? मुझे पंडित उदय भानु मिश्र शास्त्री कहते हैं। इधर बलिया का रहने वाला हूँ। आपने महामहोपाध्याय पंडित रामदीन शर्मा का नाम सुना है ?

—जी हाँ।

—वे हमारे मामा होते हैं। क्या यहाँ विश्वविद्यालय में आये हैं ?

—नहीं यों ही चला आया हूँ।

—मालूम होता है संस्कृत पर ज्ञान काफी अच्छा है। क्या आचार्य हैं ?

—ऐसे ही। घर पर ही कुछ पढ़ा-लिखा था।

—तो आजकल क्या कर रहे हैं यहाँ ? पत्रकार हैं क्या ?

—अभी तो काशी आए ज्यादा दिन नहीं हुए। प्रयास में हूँ कि कहीं कुछ हो जाए।

—तो भले आदमी बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त से क्यों नहीं मिलते ? "आज

अखबार तो जानते हैं न? सम्पादकीय विभाग में हो जाएगी। अंग्रेजी पढ़ी है?
—साधारण
—और हिन्दी?
—साहित्य तक पढ़ी है।
—बस तो ठीक है। यहाँ कहीं रहने की जगह मिली?
—हाँ 'ब्रह्मनाल' पर एक कमरा मिल गया है।
—कहाँ? किधर? घाट के पास? वहीं न जहाँ काव्यतीर्थ पंडित शिवनाथ त्रिपाठी रहते हैं?
—जी उसके भी आगे।
—बस बस ठीक है। उन त्रिपाठी जी के यहाँ तो प्रायः आना होता है हमारा।—बाबू शिव प्रसाद जी के यहाँ कोशिश करिए। अपने वहाँ क्या करते थे।
—अध्यापक था।
—अध्यापक? कौन विषय का?
—गणित और इतिहास का।
—अच्छा अच्छा। त्रिपाठी जी की गणित में भी काफी गति है। क्या 'सभा' रोज नहीं आते?
—कभी-कभी आ जाता हूँ।
—क्या यहाँ बैठिएगा या चलिएगा?
—क्या आप जा रहे हैं?
—आइए चौक तक साथ चलूँगा। मैं तो अस्सी पर रहता हूँ। जानते हैं न?
—क्या?
—अस्सी घाट नहीं जानते? किसी से पूछ लीजिएगा कि यहाँ श्री श्री ज्योतिर्मय पीठ कहाँ है। उसी गली में एक उदासी मठ है। उस मठ में ही एक कमरा मिला हुआ है। एक दम गंगा का किनारा है।

श्रीधर और शास्त्री जी बाहर आये। शास्त्री जी धोती और कुरता पहने थे। चन्दन का तिलक। बड़ी सी चुटिया सिर के पीछे झूल रही थी और नंगे पैर थे। बड़ा सुहावना वेश था। पतली मूँछ तथा भरा सा मुँह। श्रीधर को शास्त्री जी पूरे स्वभाव के लगे। कोई भी उनसे बात-चीत के बाद उन्हें अपना ही समझता।

उनकी आँखें देखने की अपेक्षा सोचने का काम करती थीं। इसलिए प्रायः भाल पर त्रिपुण्ड्र ही खिंचा रहता। लेकिन कुल मिलाकर आत्मतुष्ट ही कहा जाएगा। रास्ते भर वे यही बताते आये कि पूर्णिमा एकादशी आदि के दिन वे रुद्रपाठ चण्डीपाठ गीता आदि का पाठ करने 'अन्नपूर्णा' के मन्दिर जाते हैं तथा उससे कुछ आय हो जाती है। इसी काशी में विद्याध्ययन के लिए उन्हें क्या कुछ कष्ट न भुगतना पड़ा है। आज भी जब कभी प्रकाशक से कुछ झगड़ा हो जाता है तब उन्हें अन्नक्षेत्रों की शरण लेनी पड़ती है। उदासी मठ वालों ने उन्हें रहने की जगह दे रखी है। कमरा क्या दालान ही है। जिसे शास्त्री जी ने टाट का पर्दा टाँग कर कमरा बना लिया है। देहात में उनका पूरा परिवार है बाल बच्चे भी हैं। यहाँ जीविका का प्रबन्ध ठीक से नहीं होने के कारण परिवार ला नहीं सकते। किसी का छुआ खा नहीं सकते इसलिए हाथ से ही बनाते हैं। जिन दिनों अन्नक्षेत्रों की शरण लेनी पड़ती है उन दिनों बड़ा धर्म-संकट उत्पन्न हो जाता है लेकिन 'आपत्ति काले मर्यादा नास्ति' के शास्त्र वचन का पालन कर लेते हैं। बाद में प्रायश्चित्त स्वरूप 'पुरश्चरण' कर लेते हैं। नित्य गंगा-स्नान हो जाता है। आवश्यकताएँ अधिक हैं नहीं। व्यसन के नाम पर पान अवश्य खा लेते हैं—और काशी में तो पान को व्यसन माना ही नहीं जा सकता। हाँ कभी-कभी भाँग-बूटी जरूर हो जाती है। संस्कृत की अन्तिम परीक्षा पास हैं। वैसे साहित्य से अभिरुचि है। संस्कृत में कविताएँ तो बहुत बाल्यकाल से करते आ रहे हैं। आजकल 'भ्रमर-शतक' के ढंग पर 'सुग्रीव-शतक' लिख रहे हैं। पंडित शिवनाथ त्रिपाठी को दिखाया था—कहते थे कि छन्द एकदम निर्दोष है।

इस प्रकार शास्त्री जी आकण्ठ ब्राह्मण व्यक्ति थे। बल्कि इतने स्पष्ट कि किसी सीमा तक मूर्ख लेकिन सह्य।

शास्त्री जी ने ही उन्हें बताया कि बाबू शिवप्रसाद जी सवेरे गली में घूमने निकलते हैं उस समय अनेक गरीब विद्यार्थी सभा-सोसाइटी के चन्दे माँगने वाले विधवाएँ आदि पहुँच जाते हैं और सभी का कुछ हो ही जाता है। गुप्त जी

कांग्रेस के कोषाध्यक्ष भी हैं। मालवीय जी को बहुत मानते हैं। काशी के रईस हैं काशी-नरेश के बाद रईसों में गुप्त जी का ही नाम तथा सम्मान है।

बड़े सवेरे उठकर श्रीधर बाबू गुप्त जी की गंगा स्थित कोठी पर पहुँचे तो उस समय द्वार पर मिलने वालों की खासी भीड़ थी। काफी मोटरें तथा बग्घियाँ खड़ी थीं। कुछ लोग कानाफूसी कर रहे थे कि कोई कांग्रेसी नेता आये हैं इसीलिए इतनी भीड़ है। श्रीधर बाबू ने देखा कि एक बड़े से बगीचे में हरी खिड़कियों तथा रोगन खंभोंवाली यह कोठी वैभव को बतला रही थी। दालानों में लोगों के आने-जाने की भीड़ थी। दरबान माँगने वाले सभी लोगों को बाहर वाले काठ के फाटक के पास भगाने में लगा था

—आज मालिक किसी से नहीं मिलेंगे। देखते नहीं बड़े-बड़े सुराजी आये हैं। अरे वे अभी इलाहाबाद जा रहे हैं।—ठीक है चन्दा माँगना हो तो मनीजर साहेब से मिलना।

और इस प्रकार श्रीधरबाबू उदास ग्लानि लिये घाटों की तरफ से निकले। गर्मियाँ आ गयी थीं। धूप तेज हो गयी थी। गंगा की बालू झिलमिलाती दूर तक बिछी थी। रामनगर का किला उस पार की कछार की एकान्तिकता को भग करता धूप में गरम होता लग रहा था। फिर भी हवा में अभी ठण्डक थी। मिट्टी की पगडंडियाँ खेतों में यहाँ-वहाँ बिछी पड़ी थीं। बालू भरी नावें खींचते मल्लाह कन्धे पर डोरी खींचते किनारे पर ऊँचे-नीचे चल रहे थे। नाव में नीचे की मंजिल में से धुआँ उठ रहा था। शहर के गंदे नालों से किनारे कटे हुए थे जिनमें काई पर से फिसलता दुर्गन्धित पानी बह रहा था। 'अस्सी-घाट' पर किसी साधु-महाराज की बड़ी सी नौका खड़ी थी जिस पर धूनी धुँधुआ रही थी और भक्तजन एक सीढ़ी से आ-जा रहे थे। नाव की बड़ी सी पताका हवा में कबूतरों की तरह फड़फड़ा रही थी। 'तुलसी-घाट' उदास पड़ा था। श्रीधर बाबू 'केदार-घाट' पर आकर गंगा में पैर डाल सुस्ताने लगे। विधान की दी हुई पूँजी अब समाप्त ही सी थी। अगले चार-आठ दिनों में यदि कुछ प्रबन्ध न हुआ तो क्या होगा? इस इतने अपरिचित नगर में तब क्या होगा? क्या यह वही काशी है जिसका नाम बचपन से सुनते आ रहे थे? प्रत्येक ब्राह्मण का बालक यज्ञोपवीत संस्कार के समय यहीं काशी-अध्ययन का कहकर भागता है और मामा तब उसे रोकते हैं भोजन देकर? आज जबकि वे उसी काशी में यहाँ आते समय किसी मामा ने नहीं रोका—यहाँ चार-आठ दिन बाद क्या होगा? घाट पर नहाने वाले दो-एक आ ही जाते थे। दयालु बंगाली विधवा से लेकर गमछा पेट के

नीचे कसे जिसमें से श्यामली झलकती हुई रहती तथा गले में सोने की सिकड़ी बाल साहू तक धँस कर या तैर कर गंगा स्नान कर रहे थे। 'केदार-घाट' के एकदम ऊपर पेड़ों की घनी छाया में जाती हुई 'केदार-घाट' की गली में तरकारी-मछली खरीदती भीड़ का हल्का शोर गुनगुना रहा था। थोड़ी ही देर में रेत के बगूले उठने लगेंगे धूप में सब जलने लगेगा। अभी ही कितना तप उठा है वे उठ क्यों नहीं रहे हैं? 'केदार-घाट' की इतनी अधिक सीढ़ियों में कैसा मध्य-कालीनत्व लग रहा है जैसे इतिहास हो और बार बार चढ़ती-उतरती कुछ बंगालिनें छोटी मोटी घटनाएँ लग रही थीं। तो—शास्त्री जी ने आज अपने बुकसेलर प्रकाशक के यहाँ ले जाकर कोई अनुवाद दिलाने की बात कही है।
संभव है कोई अनुवाद मिल ही जाए।

शाम का जिस समय श्रीधर शास्त्री जी के प्रकाशक के यहाँ पहुँचे उस समय 'कचौड़ी-गली' में खूब भीड़ थी। हलवाइयों की दुकानों से पूड़ी-कचौड़ी की अजीब गन्ध उस पूरी गली में भरी हुई थी जिसमें कि सांड 'युग' सन्यासी अत्यन्त निश्चिन्तता से घूम रहे थे। गाव तकिये के सहारे एक मोटा सा व्यक्ति जामीवार बनियाइन तथा चिकन के कुरते में पलथी मारे बैठा था। जिस समय श्रीधर पहुँचे वह व्यक्ति 'बीड़ा' जमा कर अँगुली से चूना चाट रहा था। फर्शियों पर कुछ कई व्यक्ति मुनीमगीरी में व्यस्त थे। किताबों के बण्डल बाँधे जा रहे थे। पंचांग जंत्री पुराण रामायण-गीता दुर्गा-सप्तशती हनुमान-चालीसा के ढेर सामने पड़े हुए थे।
—कहिए बाबू साहेब?
पान खाये ऊँचे मुँह से सभी शब्दों को ओष्ठ्यान्त करते हुए उस मोटे व्यक्ति ने श्रीधर से पूछा।
—शास्त्री जी हैं न?
—ऐ बनवारी! तनि सासतरी जी के बुलाय द हो।
और सबरी की सीढ़ियों पर खड़े एक व्यक्ति ने कोई किताब ढूँढते हुए बिना किसी ओर देखे वहीं से चिल्लाया
—सासतरी जी! स्कन्द पुराण तो खतम हो गया मुरारी से मंगाना होगा बटमर बाबू!

और हम सारे गुल-गपाड़े में यह समझ ही में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। जब काफी देर हो गयी और बनवारी तथा मोटे व्यक्ति ने फिर कोई सुध नहीं ली तो फिर श्रीधर ने याद कराया।
—ए मास्टरी जी... अरे आप इस दाहिनी सीढ़ी से ऊपर चले जाइए सब से पीछे वाले कमरवा में पूछ लीजिएगा—अंजी कितनी ? बस ??
और अँधेरी सीढ़ियाँ चढ़कर चौकोर खास ढंग के बनारसी ठेठ-अँधेरे घर में प्रवेश किया जहाँ सीलन और लेई की मिश्रित गंध आ रही थी। किताबों की जिल्दें बाँधी जा रही थीं। कई लड़के गमछे में लपेटे बतियाते काम कर रहे थे। सबसे अँधेरे कमरे में दस नम्बर के बल्ब के प्रकाश में फर्शीमिल पर मुझे शास्त्री जी किसी संस्कृत के ग्रन्थ पर काम कर रहे थे। सामने बीड़े की पुड़िया रखी थी। चौंकते हुए बोले
—अरे आ गये ? बैठिए, आप तब तक पान खाइए, बस ये श्लोक जरा और हो जाए। अच्छा तो बनवारी ने इसीलिए पुकारा था? हम समझे—होगा कुछ।

चौकीपाटी के एक पटरे कोने पर श्रीधर भी बैठ गये। शास्त्री जी ने कुरता तथा बंडी दोनों ही उतार रखे थे। यज्ञोपवीत युक्त गौर पुष्ट देह बताती थी कि सुखी ब्राह्मण की देह है। छाती के बालों में पसीने की बूँदें अटकी हुई थीं। हाथ का पंखा वे रह-रह कर झल लिया करते होंगे। श्रीधर ने पंखा उठा लिया अपने को तथा शास्त्री जी को झलने लगे।
शायद श्लोक हो गया था। माथे का पसीना धोती से पोंछते हुए बोले
—कितना इन लोगों से कहता हूँ कि भाई, एक पंखा यहाँ भी लगवा दो पर—अरे पान खाइए न ?
—आपको तो मालूम है कि मैं पान नहीं खाता।
—अरे भाई बनारसी बनने के लिए दाँत नहीं तुड़वाना होगा। महज उन्हें रँगना होगा।

और शीशा पोंछते हुए हँसने लगे। पान खोलकर श्रीधर को दिया और दो अपने में जमाये। सुरती और चूना खाकर बंडी पहनते हुए विशिष्ट बनारसी पनवा-स्या ध्वनि में बोले
—गदाधर बाबू नीचे रहे न ?
—कौन गदाधर बाबू ?
—अरे, ओ ही जौन मोटे मोटे से हैंय। —अच्छा आइए।

और सभी में ही वे श्रीधर को लेकर नीचे उतरे। पान खाने के बाद उनकी नाक से साँस बहुत स्पष्ट सुनायी पड़ रही थी। नीचे पहुँच कर शास्त्री जी ने एक मिनिट सोचा और बहुत धीमे से कहा

—पहिले इस कमबखत से मुलाकात कराया जाय।

और एक मुनीम महाशय के सामने जाकर दोनों बैठ गये। शायद यह केशव प्रसाद ही लड़कों का हिसाब किताब देखते रह होंगे।

—केशव बाबू[1] ई पंडित श्रीधर ठाकुर हैं। हिन्दी के बड़े विद्वान हैं। चाहते रहे कि हिन्दी का कानू काम-काज मिल जाई तो ठीक रहे। हम से कहा तो हम कहिन कि केशव बाबू से हम मिलाय दई।

और केशव बाबू ने श्रीधर बाबू को घूरा और फिर पूछा

—कौनो किताब विताब लिखे हैं?

—जी नहीं।

—कहीं पढ़ाते हैं क्या?

श्रीधर बाबू उत्तर दें इसके पूर्व ही शास्त्री जी ने बात सम्हाल ली। क्योंकि वे समझ गये कि श्रीधर के बोलने से बात बिगड़ सकती है।

—अब बात ई है केशव बाबू! आप तो जानते ही हैं—कालिदास की उज्जयिनी विद्या का केन्द्र श्रीधर बाबू वहीं से आये हैं।

—अच्छा!! तो काशी के नहीं हैं?—समझ में शास्त्री जी! आजकल सारा कारोबार गजाधर बाबू ही करते हैं। अब आप तो जानते हैं बड़े मालिक बाबू महावीर प्रसाद की बात और रही।

शास्त्री जी ताड़ गये कि कड़ेमन पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने दे रहा है। पता नहीं क्यों भड़क गया। कहीं यह सुनकर तो नहीं कि श्रीधर बाबू काशी के नहीं हैं?—गजाधर बाबू से जब शास्त्री जी ने बातें कीं तो पहले तो चुप रहे, लेकिन जब थोड़ी बातें श्रीधर से कीं तो वे इस बात पर राजी हुए कि प्रूफ-रीडिंग का काम दे सकते हैं और इसलिए वे पहले दो महीने तक साठ रुपए महीने देंगे। श्रीधर बाबू के सामने कोई चारा नहीं था और उन्होंने स्वीकार कर लिया।

शास्त्री जी ने दुकान से निकल कर पानवाले की दुकान पर बताया कि चिन्ता की कोई बात नहीं। सभा में प्रूफ-रीडिंग की हिन्दी में पुस्तकें हैं वे पढ़ लें बस।

अँधेरा हो चला था। दोनों 'ब्रह्मनाल' वाली गली में पहुँचे।
शास्त्री जी को पंडित शिवनाथ त्रिपाठी काव्यतीर्थ के यहाँ जाना था जो कि कविराज भी थे। शास्त्री जी ने रोका कि आइए, शास्त्री जी के यहाँ चलें लेकिन श्रीधर बाबू इस समय बिल्कुल एकान्त चाहते थे।
गंगाजी की तरफ निकल आये। 'मणिकर्णिका' पर इस समय भी कई तरह की चिताएँ जल रही थीं। हवा में चिरांयध थी। वे 'सिंधिया-घाट' की तरफ बढ़े जहाँ बिल्कुल शान्त था। बजरों पर काशी के रईस आमोद-प्रमोद में व्यस्त थे। हण्डों की रोशनी में कहीं-कहीं मुजरा भी हो रहा था। वे जल में पैर डाल कर हल्की ठण्डक अनुभव करते अस्पष्ट सोचते रहे।

पता नहीं क्यों श्रीमरवाबू में कभी असन्तोष ऊपर उभर कर नहीं आ पाता। वे स्वयं ही कभी नहीं समझ पाते कि आखिर वे चाहते क्या हैं? जब उन्हें प्रश्न करना होता है या उत्तर देना होता है—वे बस देखते रहते हैं। कहीं किसी चीज के प्रति कोई जिज्ञासा नहीं जगती—केवल अवकाश के समय पुस्तकें पढ़ते हैं। काशी में आये उन्हें छह महीने से भी अधिक हो चले थे लेकिन जिस निर्लिप्त भाव से वे 'ब्रह्मनाल' से निकल कर 'कचौड़ी-गली' में गुम सुम में निमग्न थे उसमें आज भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। एक क्रम बन गया है कि सबेरे उठकर गंगा-स्नान कर आये। पाठ-पूजन के बाद भोजन बनाया और नौ बजे सबेरे प्रकाशक के यहाँ पहुँच गये। नीचे ही दालान में एक शीतलपाटी तथा एक पलंगिया उन्हें भी मिल गयी है। दिन भर बिना सिर उठाये प्रूफ पढ़ते रहना। उसके बाद चौक, बुलानाला होते हुए टाउनहाल के बीच से निकल कर 'सभा' में पत्र-पत्रिकाएँ, किताबें आदि पढ़ना। शास्त्रीजी का साथ प्रायः होता ही। ऐसी स्थिति में कभी उनके साथ पंडित शिवनाथ त्रिपाठी भी यहीं हो आये या 'मदौमिया' तक निकल आये या फिर गंगाजी।

पंडित शिवनाथ त्रिपाठी कविराज के साथ-साथ ब्रजभाषा के बड़े पण्डित तथा सुकवि भी थे। उनके यहाँ काशी के सभी प्रसिद्ध लेखक तक आया करते थे। वो एक बार तो बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर जी' भी आये हैं। श्रीधर बाबू ने "उद्धव-शतक" के अनेक अंश उन्हीं से सुने हैं। पंडित शिवनाथ त्रिपाठी के पिता पंडित काशीनाथ त्रिपाठी तो भारतेन्दु जी के घनिष्ट मित्रों में से रहे हैं तथा अपने समय के प्रसिद्ध आलोचक भी माने जाते थे। "पश्चिम मान-मर्दन" के नाम से उन्होंने पश्चिमी साहित्यिक सिद्धान्तों पर तुलनात्मक आलोचना की थी। जिसमें कालिदास-शेक्सपीयर की तुलना से लेकर देव-टेनीसन तक सोदाहरण आलोचना थी। सम्भवतः अपने पिता का दबंगपन पंडित शिवनाथ त्रिपाठी में भी था। वे अंग्रेजी की अपेक्षा ब्रजभाषा को अधिक सक्षम भाषा मानते थे। उनकी एक अप्रकाशित पुस्तक की उस अंतरंग बैठक में प्रायः चर्चा होती थी जिसका नाम था—राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' उर्फ हत्यारे-हिन्द'—जिसे अंग्रेज सरकार ने प्रकाशित नहीं होने दिया।

श्यामल वर्ण की दुहरी देह के पंडित शिवनाथ त्रिपाठी अपनी चौकी पर गाव तकिये के सहारे बैठे किताबों तथा धूम-अवलेहों की मिश्र गंधों से घिरे चार बीड़ा जमाये चन्दन का गोल तिलक लगाये सदा प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति थे। उनके अपने इस विशिष्ट बनारसी निवास में सन्तुष्ट। आज वे साठ वर्ष के हो रहे थे लेकिन अपने प्रण के अनुसार उन्होंने विश्वनाथ-दरबार कभी नहीं छोड़ा न गंगा का किनारा छोड़ा न 'काशिका' का अपना लहजा छोड़ा। दिन में पचासों बार "राम नाम सत्य है या "हरि बोल" सुनने पर भी जीवन के प्रति उन्हें कोई वितृष्णा नहीं हुई। उनकी खिड़की के नीचे से गुजरने वाले अधिकांश 'का काशी पंडिज्जी' कहते निकल जाते। 'पानी पीना ऽऽ के बाद दोने में खायी गयी मिठाई से लेकर 'पलवा न ऽऽ हो' तक में वे आकण्ठ काशी के नागरिक थे। वे कहा भी करते थे कि काशी का कोई नगर नहीं है यह तो जनता है। 'पंचकोसी-मुहाल' के बाहर काशी नहीं बल्कि काशी-क्षेत्र है। काशी के बाहर के हिन्दी साहित्य को वे साहित्य ही नहीं मानते थे। श्रीधर बाबू को लगा कि व्यक्ति के रूप में वे अत्यन्त सरल सीधे ब्राह्मण थे लेकिन काशी के नागरिक के रूप में वे दम्भी ही कहे जा सकते थे। वे काशी की रामनगरी से लेकर मुर्दे तक पर अभिमान करते थे क्योंकि वे काशी की परम्परा संस्कृति के प्रतीक में से है। शास्त्रीजी ने एक दिन मजाक में पूछा भी था कि पंडिज्जी ! रांड साँड सीढ़ी संन्यासी अगर ये काशी में न रहें तो ? पण्डित शिवनाथ त्रिपाठी ने बड़े ही हँसते हुए कहा कि

ए बसुआ के हटाई ? जब मुसलमान नहीं कर सकिन् मथुरा के हिन्दुन साहा रहम तब मुँह बताया क हटाई ?—बजरंग के वे बहुत शौकीन थे। पचकोसी पर उनका अपना निज का एक छोटा सा बगीचा था जो कि उन्हें कार्मागनरण ने भेंट किया था। सखियों की संध्याएँ कभी-कभी 'मौज-खाना' में बीता करतीं थीं। जब वे घर से निकलते तो पुराने खाने-करने में बनारसी मुँगनी के व्यापारी ही अधिक लगते। यह बनारस की ही विशेषता है कि किसी भी अवसर पर आप नितान्त काशी में हो उपवस्त्रहीन कम भी रह हो तो भी काशी के लोग आश्चर्य नहीं होगा बल्कि वे आप को तब भी 'पा लागीं पण्डितजी' वैसे ही कहेंगे जैसे कि बढ़िया वस्त्र पहने होने पर भी आप को कहेंगे।

अब तो प्राय: श्रीधर बाबू त्रिपाठीजी के इस बनारसी दरबार में उपस्थित रहते। त्रिपाठीजी की बहुत मर्जी ने 'हिन्दी-हितकारिणी' के नाम से एक पत्रिका की योजना बनायी थी। और शास्त्रीजी ने कह-सुनकर श्रीधर बाबू को उसका सहायक बनवा दिया था। इस प्रकार अब उन्हें नियमित रूप रात तक बैठ कर हिन्दी-सेवा करनी पड़ती थी। प्राय: काशी के प्रसिद्ध लेखकों के यहाँ कविता इत्यादि के लिए जाना पड़ता। यदि राय विभूति कृष्ण की कोठी 'पंचकोसी' पर थी तो महामहोपाध्याय अयोध्यानाथ वाजपेयी की बगीची 'सिगरा' में थी। देशभूषण सन्त ईश्वरीदीन यदि अपनी सारनाथ वाली कोठी में मिल सकते थे तो लखनौवाली काव्य के नये कवि बाबू शिवशंकर 'निर्मोही' कालबाजी के पीछे अपने पैतृक निवास में मिल सकते थे। इस प्रकार आशोकचन्द्रधर बाबू कान्ति नन्दन सहाय के लिए श्रीधर बाबू को 'मंगलभाषण' स्थित उनकी हवेली कोठी के चक्कर लगाने पड़ते। इस का फल यह हुआ कि कभी तो सबेरे सात बजे ही घर से निकल जाते और कविता लेखादि के लिए पूरी काशी नापनी पड़ती। अब वे 'कचौड़ी-गली' वाले अपने प्रकाशक के यहाँ से 'सभा' जाने के स्थान पर रागा के यहाँ पत्रिका की सामग्री के लिए निकल पड़ते। बाबू गोविन्द चन्द्र शास्त्री के 'भारत-भाषा प्रेस' में छपाई का प्रबन्ध हुआ था इसलिए 'गायघाट' जाना पड़ता और वहाँ से लौटते रात के ग्यारह-बारह से कम न बजता। राजा इन्द्र राम बिड़ला के टाउन-हाल में उस समय ग्यारह ही कुछ बज रहा होता। दिन भर की मीलियों मील की इस पैदल यात्रा अथवा रीडिंग में वे इतने थक गए होते कि किसी तरह 'बिसेसरगंज' की मंडी पार कर टाउन-हाल के सामने वाले पार्क में पहुँच कर दूब पर लेट जाते। रात की हवा में तब भी मसालों के ढेर की गंध 'बिसेसर गंज' की मंडी की अजीब तिरछी तथा स्तब्ध की गंध भारी रहती लेकिन सारी

पंडित शिवनाथ त्रिपाठी कविराज के साथ-साथ ब्रजभाषा के बड़े पण्डित तथा सुकवि भी थे। उनके यहाँ काशी के सभी प्रसिद्ध लेखक तक आया करते थे। श्री एक बार तो बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' जी भी आये हैं। श्रीधर बाबू ने 'उद्धव-शतक' के अनेक अंश उन्हीं से सुने हैं। पंडित शिवनाथ त्रिपाठी के पिता पंडित काशीनाथ त्रिपाठी तो भारतेन्दु जी के घनिष्ठ मित्रों में से रहे हैं तथा अपने समय के प्रसिद्ध आलोचक भी माने जाते थे। 'पश्चिम मान-मर्दन' के नाम से उन्होंने पश्चिमी साहित्यिक सिद्धान्तों पर तुलनात्मक आलोचना की थी। जिसमें कालिदास-शेक्सपीयर की तुलना से लेकर देव-टेनीसन तक सोदाहरण आलोचना थी। सम्भवतः अपने पिता का ब्रजपन पंडित शिवनाथ त्रिपाठी में भी था। वे अंग्रेजी की अपेक्षा ब्रजभाषा को अधिक सक्षम भाषा मानते थे। उनकी एक अप्रकाशित पुस्तक की उस अंतरंग बैठक में प्रायः चर्चा होती थी जिसका नाम था—राजा शिव प्रसाद 'सितारे-हिन्द' उर्फ 'हत्यारे-हिन्द'—जिसे अंग्रेज सरकार ने प्रकाशित नहीं होने दिया।

श्यामल वर्ण की दुहरी देह के पंडित शिवनाथ त्रिपाठी अपनी चौकी पर गाव तकिये के सहारे बैठे किताबों तथा चूर्ण-अवलेहों की भिन्न गंधों से घिरे चार बीड़ा जमाये चन्दन का गोल तिलक लगाये सदा प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति थे। उनके अपने इस विशिष्ट बनारसी निवास में सन्तुष्ट। आज वे साठ वर्ष के हो रहे थे लेकिन अपने प्रण के अनुसार उन्होंने विश्वनाथ-दरबार कभी नहीं छोड़ा न गंगा का किनारा छोड़ा न 'कालिका' का अपना मुहल्ला छोड़ा। दिन में पचासों बार 'राम नाम सत्य है' या 'हरि बोल' सुनने पर भी जीवन के प्रति उन्हें कोई वितृष्णा नहीं हुई। उनकी खिड़की के नीचे से गुजरने वाले अधिकांश 'पा लागी पंडिज्जी' कहते निकल जाते। 'पानी पीब ऽऽ' के बाद दोने में लायी गयी मिठाई से लेकर 'पनवा ले ऽऽ हो' तक में वे आकण्ठ काशी के नागरिक थे। वे कहा भी करते थे कि काशी का कोई बनता नहीं है वह तो जन्मता है। 'पक्के-मुहाल' के बाहर काशी नहीं बल्कि काशी-क्षेत्र है। काशी के बाहर के हिन्दी साहित्य को वे साहित्य ही नहीं मानते थे। श्रीधर बाबू को लगा कि व्यक्ति के रूप में वे अत्यन्त सरल सीधे ब्राह्मण थे लेकिन काशी के नागरिक के रूप में वे दम्भी ही कहे जा सकते थे। वे काशी की दालमंडी से लेकर मुड़ तक पर अभिमान करते थे क्योंकि वे काशी की परम्परा संस्कृति के प्रतीकों में से हैं। शास्त्रीजी ने एक दिन मजाक में पूछा भी था कि पंडिज्जी! रांड सांड सीढ़ी संन्यासी अगर ये काशी में न रहें तो? पंडित शिवनाथ त्रिपाठी ने बड़े ही हँसते हुए कहा कि,

ए बबुआ, क हुआई ? अब मुसलमान नाहीं कर सकिल अंग्रेजी के हिम्मत नाहीं रहल तब तुहें बताबा क हुआई ?—बकरे के वे बड़े शौकीन थे। पचकौड़ी पर उनका अपना निज का एक छोटा सा बकरा था जो कि उन्हें कार्माइकल ने भेंट किया था। गर्मियों की संध्याएँ कभी-कभी 'मौज-यानी' में बीता करतीं थीं। जब वे घर से निकलते तो बुर्राक धोती-कुरता में बनारसी सुंघनी के व्यापारी ही अधिक लगते। यह बनारस की ही विशेषता है कि किसी भी अवसर पर आप नितान्त धोती में ही उपवस्त्रहीन चले जा रहे हों तो भी लोगों को कोई आश्चर्य नहीं होगा बल्कि वे आप को तब भी 'पा लागीं पण्डिज्जी' वैसे ही कहेंगे जैसे कि बढ़िया वस्त्र पहने होने पर भी आप को कहेंगे।

अब तो प्रायः श्रीधर बाबू त्रिपाठीजी के इस बनारसी दरबार में उपस्थित रहते। त्रिपाठीजी की अंतरंग मंडली ने 'हिन्दी-हितकारिणी' के नाम से एक पत्रिका की योजना बनायी थी। और शास्त्रीजी ने कह-सुनकर श्रीधर बाबू को उसका सहायक बनवा दिया था। इस प्रकार अब उन्हें नियमतः दस पाँच तक बैठ कर हिन्दी-सेवा करनी पड़ती थी। प्रायः काशी के प्रसिद्ध लेखकों के यहाँ कविता इत्यादि के लिए जाना पड़ता। यदि राय विभूति कृष्ण की कोठी 'पंचकोसी' पर थी तो महामहोपाध्याय अयोध्यानाथ वाजपेयी की बगीची 'सिगरा' में थी। वे समूर्य लब्ध ईश्वरीदीन यदि अपनी सारनाथ वाली कोठी में मिल सकते थे तो खड़ीबोली काव्य के नये कवि बाबू शिवशंकर 'निर्मलेन्दु' कोतवाली के पीछे अपने पैतृक निवास में मिल सकते थे। इस प्रकार आचार्यप्रवर बाबू कार्तिक नन्दन सहाय के लिए श्रीधर बाबू को 'संकटमोचन' स्थित उनकी हवेली काशी के चक्कर लगाने पड़ते। इस का फल यह हुआ कि कभी तो सबेरे सात बजे ही घर से निकल जाते और कविता इत्यादि के लिए पूरी काशी नापनी पड़ती। अब वे 'कचौड़ी-गली' वाले अपने प्रकाशक के यहाँ से 'नमो' जाने के स्थान पर लोगों के यहाँ पत्रिका की सामग्री के लिए निकल पड़ते। बाबू गोकुल चन्द्र शर्मा के 'भारत-माता प्रेस' में छपाई का प्रबन्ध हुआ था इसलिए 'गायघाट' जाना पड़ता और वहाँ से लौटते रात के ग्यारह-बारह से कम न बजता। राजा पञ्चदेव राम बिड़ला के टावर-क्लाक में उस समय इतना ही कुछ बज रहा होता। दिन भर की गलियों और की इस पैदल यात्रा धूप रौंदने में वे इतने थक गये होते कि किसी तरह 'विश्वेश्वरगंज' की मंडी पार कर टाउन-हाल के सामने वाले पार्क में पहुँच कर दूब पर लेट जाते। रात की हवा में तब भी मरसा के ढेर की गंध विश्वेश्वर गंज की मंडी की अजीब तिरछी तथा गल्ले की गंध आती रहती लेकिन तारा

भरा स्निग्ध आकाश देखकर श्रीधर बाबू को दूर अपने उस देहात की रेल की छोटी लाइन के इंजिन की, तालाब की, सरों की, बच्चों की, माता-पिता की और जाने किन-किन की याद आ जाती। जाने कैसी विवशता लगती कि जैसे किसी ने जादू कर दिया था और वे बाध्य थे इस बनारस में इतनी दूर, इस प्रकार काम में खटने के लिए, नहीं बल्कि टूटने के लिए। वे अपने टूटने को क्रमगत देख पाते थे। वे अपनी मिट्टी से उखड़ी जड़ थे जो न गमलों में पनप पा रही थी और न ही अन्य स्थान में। वे देख रहे थे कि वही धूप जो कभी फूलों को जन्म देती है अब उनकी जड़ों की बारीक नसों को खोखला कर रही थी। मिट्टी के माध्यम से आने वाली धूपधूप रस होती है, रूप होती है, गंध होती है लेकिन धीमी-धीमी धूप धीमे धीमे समाप्त कर देती है। 'समाप्त' का ध्यान आते ही वे चौंक उठते कि नहीं उनके बच्चे उनके पुरुषार्थ की प्रतीक्षा में जाने कहाँ दूर मालवा में एक घर की उस छोटी खिड़की से राह देख रहे हैं। नहीं वे पुरुषार्थ को लज्जित नहीं करेंगे। और वे थकी देह को टूटे पैरों पर घसीटते बुलानाला की तरफ बढ़ते होंगे।

पत्रिका के प्रवेशांक के लिए धीमर बाबू बाबू शिव प्रसाद गुप्त के संदेश के लिए चला जा रहे थे। शास्त्रीजी ने अन्ततः उन्हें पान खाना सिखा ही दिया था। मदैसिया में अपने पानवाले की दूकान पर पान खाया और मदनपुरा की ओर बढ़े। अभी वे 'तारा-रेस्तरां' के फुटपाथ पर आ ही रहे थे कि रेस्तरां में भीतर एक कोने में टेबल पर सिर झुकाये सुधांशु राय जैसा व्यक्ति दिखलायी दिया।—लगा हाँ सुधांशु ही थे—किसी से बातें कर रहे थे। एक क्षण रुके। सोचा बुलाया जाए कि नहीं ? और वे ऊपर चढ़ गये। सुधांशु ने भी देख लिया। रेस्तरां में काफी शोर था। अधिकांश बंगाली ही थे। बनारस में अब एक बरस से अधिक हो गया था इतनी बँगला बूझने लगे थे। वे लोग राजनीति पर बहस कर रहे थे। गांधीजी की राजनीति की कड़ी आलोचना हो रही थी। विदेशी वस्त्रों की जलायी जाने वाली होलियों की व्यर्थता पर वे लोग जूझे हुए थे—'गांधी देश को नपुंसक बना रहे थे लेकिन बंगाल कभी इस भीख माँगनेवाली राजनीति को स्वीकार नहीं करेगा। बनारस में भी इन दिनों विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार की भावना पनप रही थी और इसमें अनेक बड़े लोगों का हाथ है यह धीमर बाबू

का त्रिपाठी जी के यहाँ की अंतरंग गोष्ठी में कभी-कभी सुनायी पड़ जाता था। सुधांशु उन्हें देखते ही उठा और एक तरफ ले जाकर धीमे से बोला
—हमने आपको बहुत खोजा था—एक बार आपकी बाड़ी भी गया भेंटये नहीं किया।
—हाँ सुधांशु बाबू ! बड़ी सबेरे निकल जाता हूँ।
—अच्छा अच्छा आप दो मिनिट रुकें आप से बहुत जरूरी बात करना हय।
हाँ ! !

सीनेमा के आगे बाँये हाथ वाली गली में 'बंगाली-टोले' की गलियों से होते हुए सुधांशु के साथ वे उसकी किसी मासी माँ के घर में घुसे। घर में एकदम अँधेरा था। मासी माँ ने दरवाजा खोला और सुधांशु रास्ते भर की चुप्पी यहाँ भी बनाये रख ऊपर के रास्ते की ओर बढ़ा। चौकोर सहन में सब से कम पावर का एक पीला-पीला सा बल्ब जल रहा था। ताजी छौंकी गयी माछ की गंध भरी हुई थी।
—झीने पर सम्हलकर आइएगा।—रतना ! !
और अँधेरे जीने के सिरे पर कमरे से प्रकाश आ रहा था तथा ड्योढ़ी पर एक बंगाली महिला खड़ी थी। पीछे से आते प्रकाश में महिला का मुख अस्पष्ट था।
—दुबुदा ! तोमार संगे ए
—आमार बन्धु, श्रीधर बाबू ! !
और श्रीधर बाबू आश्चर्य में आ गये कि यह तो रत्ना है। उस दिन जिसे देखा था वह कितनी अप्रतिम थी लेकिन आज इस समय कत्थई रंग की साड़ी में लम्बी धारियाँ थीं और जिसे उसने बँगला ढंग से पहन रखा था। ढीला जूड़ा उदास आँखों में श्रीधर बाबू को लगा कि यह वह रत्ना नहीं है।
—कहाँ मिल गये ये दुबुदा ?
—मैं तो यहीं तारा में था
—तो श्रीधर बाबू ! आप ही इन्हें मिल गये ?
श्रीधर बाबू ने देखा कि कमरे की खिड़कियाँ खोल दी गयी हैं। थोड़ी थोड़ी हवा आने लगी थी। पड़ोस के मकानों का शोर, किसी के बँगला-गान का मधुर कण्ठ सुनायी दे रहा था।
—असल में रत्ना जी.

—मुझे मात्र रतना ही कहिए न ? बड़ी थोड़ी ही हूँ ?

श्रीधर बाबू बहुत अप्रतिभ थे। उस रत्ना जैसा न स्वर था न हास्यप्रियता न वह मुक्तात्मा जो उस दिन मालती दीदी के यहाँ देखी थी।

—असल में रतना ! मैं जा रहा था कि 'तारा' में सुधांशु बाबू दिखलायी दिये। विपिन उस दिन परिचय करा गये थे उसके बाद ये साहब कभी दिखलायी ही नहीं दिये।

—आपका सारा कारोबार जम गया न ?

—क्या जमना था ?

—क्यों ? कहीं कुछ नौकरी नहीं मिली क्या ?

—बस ऐसे ही है। एक प्रकाशक के यहाँ थोड़ा सा काम करता हूँ उसके बाद वहाँ से एक साहित्यिक पत्रिका निकल रही है उसमें अवैतनिक सहायक हूँ। उसीके सिलसिले में तो इस समय लंका जा रहा था।

—क्यों ?

—बाबू शिव प्रसाद गुप्त का संदेश के लिए। दो चार दिन में पत्रिका निकलने वाली है न ?

—तो आप इस समय भी किसी काम से जा रहे थे ?

—क्यों ? कुछ काम है आपका ?

—आपका नहीं तुम्हारा कहिए न ?

और रतना ने जिस मोहक ढंग से यह कहा कि उन्हें याद नहीं आ रहा था कि कभी भी किसी ने भी ऐसे कहा हो। उपरान्त वह हँस दी।

—तुम अभी भी इन्दौर में उसी गर्ल्स-स्कूल में हो न ?

—क्या आपका 'लंका' जाना आवश्यक है इस समय ?

—हाँऽ है तो लेकिन क्यों ?

—फिर कब आ सकोगे ?

—कितने दिन तुम यहाँ हो ?

—क्या कह सकती हूँ ?

—विपिन के क्या हाल हैं ? उसने तो कोई खोज-खबर ही नहीं ली। तुम कब से नहीं मिली हो उससे ?

—श्रीधर बाबू ! क्या सचमुच 'लंका' जाना जरूरी है अब इस समय ?

—असल में रतना ! सवेरे उस सम्पादक का प्रेस में देखा है और इस समय आठ बजे का समय दिया था।

श्रीधर बाबू ने हड़बड़ाकर अपनी नन्ही जेबघड़ी निकाली और देखा तो पौने आठ था।

—तो कल आ सकते हैं?

—क्या … तीन चार दिनों के बाद ठीक नहीं रहेगा? पत्रिका का उद्घाटन हो जाए तो जरा निश्चिन्तता से आ सकूँगा।

—अच्छी बात है आज मंगल है न? तो

—शनिवार को पत्रिका का उद्घाटन होगा इसका मतलब हुआ कि रविवार को आ सकता हूँ।

—अच्छी बात है। रविवार को फिर कोई झंझट मत लाइएगा साथ में।—और हाँ सुनिए, यहाँ नहीं उस दिन 'सारनाथ' चला जाएगा। कभी आप वहाँ गये हैं?

—वहाँ तो नहीं लेकिन वहाँ तक ही समझ लो।

—जी ठीक घुघूरा।

और श्रीधर बाबू को यह ध्यान ही नहीं रहा कि सुधांशु राय भी इसी कमरे में हैं। सुधांशु कोने में रखी टेबल पर पीठ किये एक किताब पढ़ने में लगा हुआ था।

—हाँ भाभी जी?

—श्रीधर बाबू तुम्हें रविवार को तुम्हारे उसी 'तारा' में सवेरे दस बजे मिलेंगे।

—अच्छा।

—तो अब चलूँ न? रत्ना! तुम कुछ उदास सी क्यों रही हो?

रत्ना ने मात्र हँस दिया अपने अन्तर में खूब गहरे, बाहर जिसकी मात्र प्रतिध्वनि आयी मुस्कान में। उसने बँगला में अपने घुघूरा को आदेश दिया कि गली के मुहाने तक छोड़ आये।

बाबू शिव प्रसाद गुप्त की कोठी के लिए वे चलते हुए बारम्बार यही सोचते रहे कि रत्ना क्यों इतनी बदली हुई लग रही थी। उसने किसी बात का भी तो कोई उत्तर नहीं दिया था। क्यों वह चुप रह जाती थी? क्या बात हो सकती थी? यही सब सोचते जब गुप्त जी की कोठी पर पहुँचे तो साढ़े आठ बज रहा था। गुप्त जी टहलने निकल गये थे। उनके सक्रेटरी ने फिर भी यह सन्देशा दे दिया।

शनिवार का दिन काशी के साहित्यिक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। 'रत्नाकर जी' ने तो पत्रिका का स्वागत करते हुए कमरे में उपस्थित सज्जनों से यहाँ तक कहा था कि भारतेन्दु बाबू के बाद इस पत्रिका के द्वारा काशी के साहित्यिक जीवन में न केवल जागरण ही होगा बल्कि क्रान्ति होगी।

शनिवार की वह साहित्यिक सन्ध्या।

गर्मियाँ काफी हो गयी थीं। कई कमरों का प्रबन्ध था। राय साहब बाबू साहब कोठी वालों के आगे भिन्न-भिन्न कमरों का प्रबन्ध हुआ था। बाबू शिव प्रसाद गुप्त रत्नाकर जी राय विभूति कृष्ण महामहोपाध्याय अयोध्यानाथ वाजपेयी सम्पूर्ण मस्त स्वर्गीय बाबू कार्तिक सम्पन्न सहाय महाराज विश्वेश्वरी प्रसाद नारायण सिंह—स्टेट सीतामऊ, रईस बच्चन प्रसाद साहु नवयुवक कवि शिव शंकर "मर्मस्थ" आदि अनेक संगत रईस विद्वान कवि आदि उपस्थित थे। बड़े दिमाग चमाने पर भाँग-बूटी पान-पत्ते का प्रबन्ध था। चार-छह टहलुए नीचे ताक के बड़े बड़-पत्र लिए गोल तकियों के सहारे बैठे हुए काशी के इस मत्र मनुहार पर पंखा झल रहे थे। कुछ लोगों का सुझाव था कि मुजरे का

भी प्रसन्न हो लेकिन सन्त ईश्वरीदीन जो कि प्रसिद्ध दर्शनवेत्ता के साथ-साथ समाज-सुधारक भी थे के कारण ऐसा न हो सका। भाड़ों की नकलें भी नव युवक कवि शिवशंकर 'निर्माल्य' जो कि काशी के प्रसिद्ध खानदानी व्यक्ति के साथ-साथ स्वयं बड़े गंभीर एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे के कारण काशी के ये दोनों कलात्मक अंग सम्मिलित न किये जा सके। काशी नरेश स्वयं उपस्थित न हो सके लेकिन पत्रिका के लिए सौ रुपए की सहायता भिजवा दी। शास्त्री जी ने गीता के 'कालिदासजयन्ती कीर्तनगान' से अपना भाषण आरम्भ किया। भारतीय परम्परा में दर्शन धर्म साहित्य सबको ईश्वरोन्मुखी माना गया है इसीलिए ऐसे साहित्य का लक्ष्य यश जैसी लौकिक एवं नाशवान वस्तु कभी नहीं हो सकती थी बल्कि मोक्ष ही समस्त जीवधारियों का एवं उनके समस्त कार्यों का लक्ष्य है।

पण्डित शिवनाथ त्रिपाठी ने काशी की साहित्यिक परम्परा का वेदों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए भारतेन्दु तक उसकी अक्षुण्णता स्थापित की। अपने भाषण में वे नवयुवक-कवि श्री शिवशंकर 'निर्माल्य' की नवीन काव्य की कृतियों पर फब्तियाँ कसने में नहीं चूके क्योंकि इन कृतियों का आदि स्रोत इसाई सन्तों में था जो कि रवीन्द्र नाथ के द्वारा भारतीय सांस्कृतिक चेतना का अंग बनना चाहती है। बंगाल के साहित्य में वह क्षमता नहीं थी लेकिन काशी इस विदेशी प्रभाव का भलीभाँति समझती है तथा सक्षम है कि उसका उत्तर दे सके।

उत्सव का आरंभ भारतेन्दु बाबू एवम् रत्नाकर जी की कविताओं से हुआ था। कवि "निर्माल्य' जी ने अत्यन्त असम्पृक्त भाव से नयी भावधारा की एक कविता सुनायी। शास्त्रीजी को यह भार दिया गया था कि वे उपस्थितों को 'हिन्दी-हितकारिणी' की एक-एक प्रति भेंट करें। पेट्रोमैक्स की रोशनी में जगमगाते बजरों पर आसीन यह साहित्यिक मण्डली जब अपनी शुभ्र 'कालिका' में बोलने लगी तब डूबे हुए काशी के कलात्मक मंचों की कोई कमी नहीं अखरी। घाटों पर कहीं-कहीं प्रकाश था। साँझ को अवश्य 'दशाश्वमेध' पर कीर्तन आदि हो रहे थे। लोगों की खासी भीड़ भी थी। प्रवाहित दीपों की पंक्तियाँ भी थीं तथा गंगा में बीच धारा में ठहराये गये बजरों पर कबूतरों आदि की भीड़ भी थी। लेकिन रात के भीगने के साथ-साथ घाटों पर भी निर्जनता बढ़ती गयी थी।

अँधेरा पाख था। गर्मियों के आकाश में 'माधोराम का धरहरा' अस्पष्ट था। कई घाटों पर एकान्त जल छरछन करता प्रवाहित था। 'मणिकर्णिका' पर अवश्य चिताएँ सुलगती हुई थीं। काफी रात हो जाने पर भी कहकहे-किस्से गूँज रहे थे और अधिकांश लोग घूम रहे थे। इस सारी भीड़भाड़ में श्रीधर बाबू कहाँ थे कुछ पता ही नहीं था। संभवतः किसी ने भी उनकी शारीरिक दौड़-धूप के लिए एक धन्यवाद तक देना आवश्यक न समझा।

'दशाश्वमेध' पर लोगों की अपनी बग्घियाँ पालकियाँ शिकरमें खड़ी थीं। हाथ से खींचे जानेवाले रिक्शों का प्रचलन हो चला था। श्रीधर बाबू पर सारा खाने-पीने का प्रबन्ध तथा देख-रेख करने का संपूर्ण भार था इसीलिए कहारों के सिर पर सारे बर्तन-भाँड़े फर्श-तकिये वगैरा लदवा कर तथा त्रिपाठी जी के घर पहुँचवा कर जब वे अपने घर पहुँचे तो रात के दो बज रहे थे।

आज का दिन सवेरे छह बजे से प्रेस में आरंभ होकर रात के दो बजे तक सामान पहुँचवा कर थके-मांदे श्रीधर बाबू को पूरी तरह तोड़ गया था। पूरा बनारस उनकी पलकों में नाच रहा था। वे सोना चाहते थे लेकिन तन्द्रा में वे जैसे 'मिसरा' से 'गायघाट' और 'गायघाट' से 'लंका' चले जा रहे हैं। थके पैर जैसे उनके दिमाग में भर गये थे। जैसे वे सिर्फ चल सकते हैं। वे एक लम्बे आवेग के सामान थे जिसे कोई न होने पर स्वयं ही या कोई और बराबर आवेग दे देता है और वे चल पड़ते हैं। पैरों में थकान इतनी थी कि वे पैर पकड़ कर बैठ गये जैसे कि वे पैर अब भी चल रहे हों।

भी प्रयत्न हुआ लेकिन सन्त ईश्वरीदीन जो कि प्रसिद्ध धर्मवेत्ता के साथ-साथ समाज-सुधारक भी थे के कारण ऐसा न हो सका। भाड़ों की नकलें भी नव युवक कवि शिवशंकर 'निर्मोही' जो कि काशी के प्रसिद्ध शानवाली व्यक्ति के साथ-साथ स्वयं बड़े अमीर एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे के कारण काशी के ये दोनों कलात्मक अंग सम्मिलित न किये जा सके। काशी नरेश स्वयं उपस्थित न हो सके लेकिन पत्रिका के लिए सौ रुपए की सहायता भिजवा दी। शास्त्री जी ने गीता के 'काशिराजश्च वीर्यवान्' से अपना भाषण आरम्भ किया। भारतीय परम्परा में दर्शन धर्म साहित्य सबको ईश्वरोन्मुखी माना गया है इसीलिए इस साहित्य का लक्ष्य यश जैसी लौकिक एवं नाशवान वस्तु कभी नहीं हो सकती थी बल्कि मात्र ही समस्त जीवधारियों का एवं उनके समस्त कार्यों का लक्ष्य है।

पंडित शिवनाथ त्रिपाठी ने काशी की साहित्यिक परम्परा का वेदों से सम्बन्ध स्थापित करते हुए भारतेन्दु तक उसकी अक्षुण्णता स्थापित की। अपने भाषण में वे नवयुवक कवि श्री शिवशंकर 'निर्मोही' की नवीन काव्य की कृतियों पर फब्तियाँ कसने में नहीं चूके क्योंकि इन कृतियों का आदि स्रोत ईसाई मन्त्रों में था जो कि रवीन्द्र नाथ के द्वारा जातीय सांस्कृतिक चेतना का अंग बनना चाहती है। बंगाल के साहित्य में यह क्षमता नहीं थी लेकिन काशी इस विरोधी प्रभाव को भलीभाँति समझती है तथा सक्षम है कि उसका उत्तर दे सके।

उत्सव का आरंभ भारतेन्दु बाबू एवम् रत्नाकर जी की कविताओं से हुआ था। कवि 'निर्मोही' जी ने अस्पष्ट असम्पृक्त भाव से नयी भावधारा की एक कविता सुनायी। शास्त्रीजी को यह भार दिया गया था कि वे उपस्थितों को 'हिन्दी-हितकारिणी' की एक-एक प्रति भेंट करें। पेट्रोमेक्स की रोशनी में जगमगाते बजरा पर आसीन यह साहित्यिक मण्डली जब अपनी गुड़ 'कालिका' में डोलने लगी तब छूते हुए काशी के कलात्मक अंगों की कोई कमी नहीं अखरी। घाटों पर कहीं-कहीं प्रकाश था। भोज की अवश्य 'दशाश्वमेध' पर कीर्तन आदि हो रहे थ। घाटों की खासी भीड़ भी थी। प्रवाहित दीपों की पंक्तियाँ भी थीं तथा गंगा में बीच धारा में ठहराये गये बजरों पर कबूतरों आदि की भीड़ भी थी। लेकिन रात के भीगन के साथ-साथ घाटों पर भी निर्जनता बढ़ती गयी थी।

अँधेरा घना था। गर्मियों के आकाश में आकाशगंगा का धरहरा अस्पष्ट था। कई घाटों पर एकान्त जल छरछर करता प्रवाहित था। 'मणिकर्णिका' पर अवश्य चिताएँ सुलगती हुई थीं। काफी रात हो जाने पर भी कहकहे-किस्से गूँज रहे थे और अधिकांश लोग घूम रहे थे। इस सारी भीड़भाड़ में श्रीधर बाबू कहाँ थे कुछ पता ही नहीं था। संभवतः किसी ने भी उनकी शारीरिक दौड़-धूप के लिए एक धन्यवाद तक देना आवश्यक न समझा।

'दशाश्वमेध' पर लोगों की अपनी बग्घियाँ पालकियाँ जिनमें आयी थीं। हाथ से खींचे जानेवाले रिक्शों का प्रचलन हो चला था। श्रीधर बाबू पर सारा खाने-पीने का प्रबन्ध तथा देख-रेख करने का संभवतः भार था इसीलिए कहारों के सिर पर सारे बर्तन-भाँडे फर्श-तकिये वगैरा लदवा कर तथा त्रिपाठी जी के घर पहुँचवा कर जब वे अपने घर पहुँचे तो रात के दो बज रहे थे।

आज का दिन सवेरे छह बजे से प्रेस में आरम्भ होकर रात के दो बजे तक सामान पहुँचवा कर थके-माँदे श्रीधर बाबू को पूरी तरह तोड़ गया था। पूरा बनारस उनकी पलकों में नाच रहा था। वे सोना चाहते थे लेकिन तन्द्रा में वे जैसे 'सिगरा' से 'गायघाट' और 'गायघाट' से 'लंका' चले जा रहे हैं। थके पैर जैसे उनके दिमाग में भर गये थे। जैसे वे सिर्फ चल सकते हैं। वे एक ऐसे आवेग के मातहत थे जिसे कोई न होने पर स्वयं ही या कोई और बराबर आदेश दे देता है और वे चल पड़ते हैं। पैरों में थकान इतनी थी कि वे पैर पकड़ कर बैठ गये जैसे कि वे पैर अब भी चल रहे हों।

वह एकदम टूट रही थी। आज रात में अनेक बार नींद टूटी और कई बार "राम नाम सत्य है" "हरि बोल" की आवाजें सुनीं। फिर भी नियमानुसार वे उठे और सारा काम-काज पूरा करके साढ़े नौ बजे के घर से निकले। बाजार में आज दिन शुरू होने का कुछ भय ही नहीं था। जिधर से पालकियाँ बग्घियाँ आ जा रही थीं। रईस लोग तथा उनके परिवार के लोग या तो गंगा-स्नान करने जा रहे थे या लौट रहे थे।

जब वे ताज-रेस्तराँ पहुँचे सुधांशु राय तब नहीं थे। बैठे-बैठे जब काफी देर हो गयी तो पान खाने के लिए उठे। तभी हाँफते हुए सुधांशु राय आये और एकदम दरवाजे की आड़ में खड़े हो गये। श्रीधर बाबू की समझ में तुरन्त आ गया कि क्रान्तिकारी महाशय के साथ कुछ घटना घटी है। सुधांशु राय ने लगभग श्रीधर बाबू को बाँहों से घसीटते हुए रेस्तराँ के पीछे के दरवाजे पर ले जाकर कहा

—श्रीधर बाबू! हाम तो चलना नहीं पाएगा आप कुछ-कुछ समझ गिया होगा
हय न? अच्छा रोगनाशी बाबू की औरता पुल पर बाँये हाथ एक ठो नीम

हुए वहाँ भीजेगा। उसको बोल देना कि हेम या नहीं आयेगा। होम भी अच्छा आपको लगे लेकिन—अच्छा तो आप जाएँ। वो ओमाने रास्ता देखता होगा।

और श्रीधर बाबू बाहर निकले। काशी में इतने दिनों से रह रहे थे लेकिन एकाध बार किसी के साथ मड़ुवाडीह के अलावा कभी कोई सवारी नहीं की थी। आज चूँकि देरी हो रही थी इसलिए हाथ-रिक्शा किया और वरुणा के पुल की ओर चले। बरसों बाद किसी सवारी पर चढ़ कर निश्चिन्त मन से बिना किसी काम की झंझट या आपाधापी के सड़क के दोनों ओर के मकानों लोगों को देखते जाना—इसमें भी एक बड़ा अजीब सुख होता है। वे सोचने लगे कि बग्घियों में तथा मोटरों में बैठकर कितना ऊँचा-ऊँचा सा और कैसा-कैसा सा लगता होगा? बड़ा अच्छा लग रहा था जैसे खूब साफ सुराही का पानी पीने को मिल गया हो। धूप चढ़ने लगी थी। धूप के बगूले गोल-गोल यहाँ-वहाँ घमने लगे थे। 'क्वीन्स कालेज' के आगे तो बड़ा उजाड़ सा था। लम्बी सूनी सड़क की कोलतार पर धूप गरम पानी सी लहराने लगी थी। टीलों पर खड़े मुकाहों खिलौने बनानेवाले कुम्हारों के छप्पर भूरे-भूरे से तपने लगे थे। कभी किसी मकान के सामने एकाध उदास साइनबोर्ड किसी मौड़ उस्ताद का दिख जाता कि 'बनारस के असली उस्ताद मास्टर... मौ— का मकान इसी गली में है। श्रीधर बाबू पुल पर पहुँचते ही बाँयें हाथ पर नीम खोजने लगे। दिन की प्रारंभिक लू में लिपटी रत्ना पीठ टिकाये बैठी थी। बिना कुछ विभय बोले-चाले रत्ना भी रिक्शा में आ गयी और कचहरी की ओर रिक्शा बढ़ गया।

सिर से पैर तक सफेद साड़ी-ब्लाउज में रत्ना अतिरिक्त लगती लग रही थी। दिन में उसे देखने का संभवतः यह पहला अवसर था क्योंकि उस दिन इन्दौर में वर्षा के यहाँ जो देखा था तो एक तो वह बहुत दूर से देखा था दूसरे रत्ना से अधिक वह रोगी शेषमन का ही स्वरूप था। ताम्र-गेहुएँ वर्ण की रत्ना को उसके स्वास्थ्य ने सुन्दर बना रखा था। बंगाली मातृमुखी सौम्य था उसका। मालवी बीरी के घर यही मुख निश्चिन्त लगा था। लेकिन आज चिन्ता ने मुख को गंभीर के साथ-साथ आयु का बड़प्पन भी दे दिया था। अनेक बार

हमारे अपने ही देखे हुए व्यक्ति मुख कभी छोटे तो कभी बड़े लगने लगते हैं। और यह भी कि प्रत्येक मुख यद्यपि बोलता है लेकिन हमारे लिए नहीं। जब हम एक मुख को बोलता सुन लेते हैं आँखों से तो फिर और कुछ सुनने को मन ही नहीं करता। ठीक ऐसा ही रत्ना-मुख बोल रहा था और वे सुन रहे थे। कब गाजिक पैनी की वह कचहरी निकल गयी पता नहीं चला और अब तो उनका रिक्शा बनारस के रईसों की बगीचियों के बीच से चला जा रहा था। कालभार की सड़क पीछे छूट गयी थी। धूल भरी सड़क पर रिक्शावाला दौड़ता जा रहा था। वह पसीने से लथपथ हो रहा था। जिस समय वे लोग सारनाथ पहुँचे। दोपहर हो गयी थी। रिक्शेवाले को वहीं सड़क पर छोड़ वे लोग 'स्तूप' की ओर निकल गये। सिर पर सूर्य आ गया था इसलिए कोई छाया नहीं थी। 'मूलगन्ध कुटी-विहार' की नींव पर मजदूर लोग काम कर रहे थे। छायातप लग रहा था। वे लोग 'अशोक-स्तम्भ' की तरफ निकल आये और एक प्राचीन तोरण द्वार के स्तम्भ की छाया में बैठ गये। लू अवश्य थी लेकिन चारों ओर के हरियाले लानों के कारण उष्णता कम थी।

—मनोरम स्थान है।

दूर दूर तक देखते हुए धीवर बाबू बोले।

—हाँ जब 'मूलगन्ध-कुटी-विहार' बन जाएगा तब और अच्छा हो जाएगा।

—तुम भी कई दिनों बाद आयी होगी यहाँ?

—नहीं तो मैं तो हमेशा ही आती रहती हूँ यहाँ। क्रान्तिकारियों के छिपने के लिए भला इससे अच्छी जगह और क्या हो सकती है?

—क्या?

और रत्ना ने देखा कि धीवर बाबू आश्चर्य में आँखें फैलाये विचित्र डरे-से लग रहे थे।

—क्या आप डर गये?

—नहीं सोचने लगा।

और वे सचमुच डरे नहीं थे बल्कि वहीं खो गये थे।

रत्ना ने समझाने में भूल की थी। दूर अमराई में किसी कोयल का स्वर सुनायी पड़ रहा था जैसे दोपहर बोल रही हो।

—क्या सोचने लगे धीवर बाबू?

—यही कि वह कौन सी बात हो सकती है जिसे सुनाने के लिए तुम मुझे इतनी दूर लायी हो।

—अच्छा बताइए, क्या बात हो सकती है ?
धाम तथा गर्मी में तपकर रतना अधिक आरक्त हो उठी थी। बाबा की भवों में शायद पसीना था।
—विवाह की बात हो सकती है, 'मालवा-हाउस' वाली हो सकती है—
—और. ?
—और ऐसी ही कुछ क्रान्तिकारी संबंधी बात हो सकती है।
—क्या क्रान्तिकारी बातें करने के लिए आपको बुलाऊँगी ?
—नहीं रतना ! इतना बड़ा न तो व्यक्तित्व है मेरा और न पुरुषत्व ही।
—लगता है आप स्वयं को कोस रहे हैं।
—मैं तो अपने को कुछ भी नहीं कर पाता। कभी-कभी तो यह भी नहीं अनुभव हो पाता कि मैं हूँ और तब मुझे क्या करना चाहिए ? खैर, यह बताओ क्या बात थी ?
—लगता है बात सुनकर लौट जाने के लिए आकुल हैं।
—नहीं मेरी कोई उपादेयता नहीं है—कहीं भी और कभी भी।
श्रीधर को तो बोल गये लेकिन स्वयं ही लगा कि आज यह उन्हें क्या हो गया ? ऐसा तो वे कभी नहीं बोलते थे। रतना एक बार उन्हें और फिर दूर देखते हुए बोली
—लगता है आपका मालवा से इधर कोई सम्पर्क नहीं रहा।
—हाँऽऽ।
—क्यों ?
—क्यों क्या ? बस नहीं रहा और क्या ? जब बना था तब क्यों नहीं था तब भला न रहने पर क्यों का क्या प्रश्न ?
—आपको मालूम है कि किशन बाबू नहीं रहे।
—मालूम तो नहीं था लेकिन आश्चर्य नहीं हुआ।
—क्यों ?
—इसलिए कि इतना कैंसर न तो कोई प्रारम्भ ही कर सकता है और न सहन ही।
—आपको छोड़कर जब वे वापस इन्दौर पहुँचे तब तक कमल न पुलिस के साहब के दबाव में आकर झूठा बयान मजिस्ट्रेट के सामने दे दिया था कि किशन बाबू ने तथा श्रीधर बाबू के दबाव में आकर यह विवाह किया था। आप दोनों के नाम तो वारण्ट यहाँ जौहरी के नाम भी वारन्ट निकलवा दिया।

बहुत गंभीर थी। खून काफी से ज्यादा जा चुका था। सवेरा होने के पूर्व ही विमल ने आँखें मूँद ली। लक्ष्मण और जौहरी ने मिलकर शवदाह का प्रबन्ध किया और सवेरा होते-होते विमल का कहीं नाम निशान तक नहीं रहा।

मैं अपने हास्टल में यथावत सवेरे कमरे में पायी गयी। पुलिस कान्स्टेबल बड़ी सवेरे हास्टल पहुँचे थे कि रोजी सेक्सेना कहाँ है? हास्टल की मैट्रन जब उन्हें लेकर मेरे कमरे पर आयी मैं सोयी हुई थी। लेकिन मैं समझ गयी कि यह बात दो-एक दिन ही पुलिस को भुलावे में डाल सकती थी। इससे अधिक नहीं। म उसके बाद दूसरे दिन कमरे में ही रही। मैं जानती थी कि आज रात को कभी भी मेरे कमरे में उपस्थिति को परखा जाएगा और यही हुआ। इस बीच मैं जाने की सारी तैयारी कर चुकी थी। कागजों के अलावा और कुछ लेना ही क्या था? जाने के पूर्व मैं दीदी से मिलना चाहती थी। स्कूल के बाद जब मैं वहाँ पहुँची वे अपने कमरे में चुपचाप बैठी थीं। शारदा और लक्ष्मण से मालूम हुआ कि वे कल से निराहार हैं। मेरे पास समय नहीं था कि मैं समझाती। मैं उनका दुःख समझ रही थी लेकिन इससे क्या? उनके पास दुःख पर सोचने का समय था जबकि मेरे पास नहीं। लक्ष्मण से ही मालूम हुआ कि वे दो एक-दिन में चारों-धाम की यात्रा पर जा रही हैं शारदा और लक्ष्मण को लेकर।

मैंने उनके चरण छुए। वे फटी आँखों से बस देखती रहीं। ओठों में ही जाने क्या बुदबुदायीं और रोने लगीं। मैं बहुत कड़े मन से वहाँ से निकली। जौहरी भागकर नागपुर चला गया और श्रीधर बाबू! आज आठ दिन हुए जाने कहाँ-कहाँ पुलिस को झाँसा देती बनारस पहुँची हूँ।

जब रत्ना ने 'श्रीधर बाबू' कहा तब श्रीधर बाबू को भी भान हुआ कि अरे ये ही वे जो सुन रहे थे जिन्हें सुनाया जा रहा था और सुनाने वाली रत्ना थी। सुनते-सुनते श्रीधर बाबू जैसे स्वयं वहीं नहीं रह गये थे। ठीक अपनी आदत के अनुसार कि जब वे कुछ करते हैं या सुनते हैं तब बिल्कुल अनासक्त विरक्त बने बस कर रहे होते या सुन रहे होते हैं। जैसे उनसे कोई संबंध नहीं है। शायद इसीलिए उन्हें किसी बात का दुःख नहीं होता या व्यक्त नहीं हो

पाता। अनेक बार ऐसी स्थिति होती है कि कोई भी आक्षेप कर सकता है अपमान अनुभव कर सकता है। लेकिन वे हैं कि बस फटी आँखों से देखते रहते हैं—निर्भाव से। उस समय उनकी आँखें आपको नहीं आपका छोर कर दूर कहीं होती हैं। और यही श्रीधर बाबू का अवचेतन पलायन है जहाँ उन्हें न दुःख होता है न अपमान होता है न परिताप होता—बस वे केवल उन सबको एकान्त में भोगते हैं वैसे ही जैसे कि नारी अपने में पुरुष के सहवास को भोगती है।

श्रीधर बाबू ने चौंक कर अस्पष्ट गहरी साँस ली। उन्होंने अपनी उसी परिचित धँसी आँखों से रत्ना को देखा जो पथरी आँखियों को देख रही थीं।

—क्या कहूँ रत्ना! विनय को मालती दीदी को तुमको? एक और था दूसरी करुणा है और तुम

रत्ना ने इस बीच श्रीधर बाबू की ओर देखना शुरू कर दिया था।

—और तुम जिज्ञासित!! —रत्ना! तुम लोग कैसा होते हो। कोई मन नहीं सकता तुम लोगों की तरह। हम लोग तो अपने ही को लेकर यहाँ-वहाँ जाने क्या-क्या करते रहते हैं।

रत्ना बड़े ध्यान से इस व्यक्ति को देखने लगी जो अपने मोटे शीशे आँखें झपका कर ऐसे बोल रहा था मानो बड़े दर्द व कष्ट के साथ बोल रहा हो।

—रत्ना! पता नहीं तुम्हें देखकर बोलने को मन करता है। बड़ा अजीब सा लगता है कि जैसे बरसों से नहीं बोला हूँ। बचपन में कभी बोलता था इन्दु दीदी के सामने—उसके बाद उसके बाद जाने कितने युग हो गये अजीब सा हुआ कि बोलना ही छूट गया। शायद कभी बोलने की आवश्यकता भी तो नहीं हुई। देखो न अभी तो बोलना ही नहीं आता। बस चलना आता है। तुम्हारा बनारस एक सिरे से दूसरे सिरे तक पचासों बार नाप चुका हूँगा लेकिन बोलना नहीं हुआ?—और रत्ना! कैसा अजीब सा लगता है न कि सामने वाले को जब आप से भी अधिक बोलना है तब आप भला क्या बोलेंगे? इसलिए जब मैं प्रेस में होता हूँ प्रूफ-रीडिंग करता हूँ भला बताओ स्वयं को बोलने का अवसर ही कब आता है? लेकिन पता नहीं तुमको देखकर लगा कि कुछ बोला जाए। लेकिन अब सोच रहा हूँ कि क्या बोला जाए? अभी तुमने कितना अच्छा बोलकर समझाया। विनय के प्रति श्रद्धा हुई मालती दीदी के लिए अजीब तरह से मन घुमड़ा। समय की विवशता दयनीयता समझ में आयी। चौहद्दी का मौन समझ में आया। तुम समर्थ। तुम जैसे लोगों को देखकर विश्वास नहीं होता रत्ना!

—श्रीधर बाबू ! मालती दीदी तथा विपिन बाबू से आपके बारे में काफी कुछ जानती हूँ। कई बार तब भी सोचा कि पूछूँ कि आप घर से क्यों चले आये?

—तब समझता था कि घर में मेरी कोई विशेष उपादेयता नहीं है शायद किसी बड़ी सीमा में कुछ सम्भव हो। लेकिन अब

और नीचे का ओठ दाब कुछ क्षण रत्ना की ओर देख वे फिर मुंडेर में देखने लगे। धूप ढल चुकी थी। गरम-भूरा वातावरण अब कुछ ठण्डाने लगा था।

—लेकिन अब क्या ?

—कितना छोटा होता है व्यक्ति रत्ना ! कि मकड़ी के जाले की भांति अपने ही चारों ओर सब कुछ को देखना चाहता है। तुम लोगों को देखकर कभी-कभी लालच लगता रहा है। बड़ा अच्छा लगता था कि विपिन है तुम हो। जीवन किसी महत्व के लिए सौंप कर जी रहे हो। जब तक जिया जाएगा, जी लिया जाएगा अन्यथा कर्म तो अजर-अमर बनकर रहेगा ही। सच रत्ना! तुम लोगों को देखता हूँ तो बड़ी श्रद्धा उत्पन्न होती है कि देखो कैसे जीवट के लोग हैं आग से खेलते हैं। कितना बड़ा ध्येय है इन लोगों के सामने। हम लोगों से तो अपना परिवार भी नहीं चलता और भाग खड़े होते हैं। कैसे-कैसे लोगों से जीविका के लिए समझौता करना पड़ता है। उसके बाद भी तो रत्ना ! विपिन नहीं रहे ?

—श्रीधर बाबू ! आप यहाँ क्या करते हैं ?

—बताया तो कि कुछ लोग एक बड़ा काम कर रहे हैं उसी बड़े काम में मुझे भी छोटा-मोटा काम मिल ही गया है। कुछ प्रूफ-रीडिंग हो जाती है। उसी प्रकाशक के लिए अनुवाद भी कर रहा हूँ।

—उसी 'चैतन्य-वचनामृत' का ?

—हाँऽ, हो जाए तब है।

—क्यों ? आप इतने हताश भाव से क्यों कह रहे हैं कि हो जाए तब है ?

—इसलिए कि कभी-कभी मन करता है कि इन सब कामों से बड़ी है माँ की पुकार, देश की पुकार। एक आवाज बड़ी सी सम्मिलित गूँज सुनायी पड़ती है।

—तो क्या आप राजनीति में जाना चाहते हैं ?

—क्यों ? साधारण रहकर भी तो राजनीति में योग दिया जा सकता है ?

—लेकिन आप इन्दौर में देख तो चुके कि राजनीति आपका क्षेत्र नहीं है।

—क्षेत्र-अक्षेत्र की बात साधारण लोगों के लिए थोड़े ही है रत्ना ! हम तो

माध्यम है। अच्छा है कि किसी शुभ काम के निमित्त बनें। भीड़ में पहुँचकर साहस आ जाता है रत्ना! तुम लोगों की भाँति ऐकान्तिक साहस के लिए बड़ा पुण्य चाहिए।

—तो आप गांधी जी की राजनीति में विश्वास करना चाहते हैं?

—मैंने तो एक बात कही। टूटे हुए पत्ते को आँधी में भी सड़ना है और गंगा में भी।

—मैं यह नहीं समझ पा रही हूँ कि आपको कौन सी चीज कचोटे हुए है?

—किसी चीज के कचोटे जाने का उतना महत्त्व नहीं जितना कि उसके प्रभाव का। क्या अब चला जाए। हम अपनी स्थितियों एवं मिट्टी से लाख विद्रोह करें लेकिन ऊपर उठना नहीं हो पाता। खैर, छोड़ो तुम कहोगी कि यह बड़ा नियतिवादी निराशावादी व्यक्ति है। अच्छा यह बताओ यहाँ कितने दिन हो? क्या ये तुम्हारी मौसी-माँ हैं?

श्रीधर बाबू ने देखा कि रत्ना अत्यन्त उदास हो आयी थी। उसकी आँखें हल्की छलछला आयी थीं।

—अरे? बड़ी पागल हो तुम? क्या मैंने कुछ ऐसा वैसा कह दिया?

और रत्ना ने वैसी ही आँखों से अस्वीकार वाला यह बड़ा सा सिर हिला दिया। धूप सोना हो गयी थी।

—छोटा सा सुख छोटा सा सौभाग्य छाँगी की छाँह—कैसे याद आते हैं इस बड़े से पूरे जीवन में। इस बौद्धकालीन तोरणद्वार के स्तम्भ का सार्वजनिक एतिहासिक महत्त्व है। व्यक्ति के लिए भी कई बार ये चीजें महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। एक आँधियों भरी दोपहरी तपती हवा उसमें तोरणद्वार के इस स्तम्भ के साथ टिका तुम्हारा यह मुख रत्ना! ये सुख ये सुख बहुत अच्छे होते हैं न? और.

रत्ना को आगे बढ़ गये श्रीधर बाबू के पीछे हो लेना पड़ा। कैसा टूटा टूटा सा बोलने वाला यह व्यक्ति—अस्पष्ट, लेकिन ईमानदार, सीधा चुप। जाने कब फिर—पास आते हुए बोली

—आपने फिर नहीं पूछा कि मैं कब तक हूँ यहाँ?

—बताना होगा तो अवश्य बताओगी। अच्छा बताओ?

सामने के उस स्तूप पर पीली-नीली पताका हवा में लहरा रही थी।

—दो-चार आठ दिन तो हूँ। उस रात जिन्हें आपने देखा था न? वो मेरी मौसी माँ ही हैं। सुधांशु हमारी पार्टी का है दूर का भाई भी है।

रिक्शेवाला एक अशोक के नीचे सो रहा था।

—तो आप घर तो आएँगे न ?

—क्या मुझे यहाँ छोड़कर जाना चाहती हो ?

—मेरा बस चले तो मैं कभी भी

और रत्ना ने अपनी जीभ काट ली। श्रीधर बाबू ने किंचित भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया। सामने की सड़क पर छायादार गाछों से होती हुई अंतिम धूप बड़ी तिरस्करिणीवत बिछी थी।

रास्ते भर कोई नहीं बोला। जब उसी वरुणा के पुल पर पहुँचे तो श्रीधर बाबू वहीं उतर गये। अँधेरा हो गया था। एक बार उन्होंने रत्ना को देखा भी जो कुछ भी सुनने को उत्सुक सी लगी लेकिन श्रीधर बाबू वैसे ही अबोले देखने लगे। रिक्शा चला गया।

दूसरे दिन जब श्रीधर बाबू प्रकाशक के यहाँ से निकले तो देखा कि कोठ वाली के सामने बड़ी भीड़ जमा है। एक इक्के पर कोई कांग्रेसी नवयुवक गांधीजी का बिल्ला जैकेट में लगाये भोंपू से कुछ एलान कर रहा था। शायद कल 'बेनिया-बाग' में शाम को कोई सार्वजनिक मीटिंग की सूचना थी। लोगों में बड़ी उत्तेजना थी कि कल विदेशी कपड़ों के बहिष्कार पर सभा होगी। सभा में जब पहुँचे तो देखा कि शास्त्री जी उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे। मालूम कि पंडित जी बहुत नाराज हो रहे थे कि पत्रिका की बाकी प्रतियाँ अभी तक प्रेस से नहीं लायी गयीं। पण्डित जी के पास बहुत से स्थानीय तथा बाहर के पत्र हैं। पत्रिका जल्द भेजी जानी चाहिए थी। कल आपके डेरे पर भी आदमी भेजा गया था लेकिन पता नहीं चला। शायद पण्डित जी के सम्पादकीय में कुछ भूल रह गयी थी और वे बड़े नाराज थे। श्रीधर बाबू किंचित हँस दिये। श्रीधर बाबू मन ही मन पण्डित शिवनाथ त्रिपाठी को पहचान गये थे कि यह व्यक्ति आत्म प्रशंसा का कितना भूखा है। जिस व्यक्ति ने उस दिन मीटिंग में और उसके बाद एक शब्द भी प्रशंसा का न कहा हो उसके निकट वैसे ही काम का अर्थ नहीं

हो सकता। श्रीधर बाबू शास्त्री जी को वहीं छोड़ कर 'गायघाट' पहुँचे और सारी प्रतियाँ इक्के पर लदवा कर पंडित जी के घर पहुँचे। पंडित जी कुछ कहना अवश्य चाहते थे लेकिन श्रीधर बाबू की मुद्रा देख के भी टाल गये। रात बारह बजे तक बैठ कर पैम्फ्लेट बनाये पते लिखे और दूसरे दिन डाक से भेजने तथा स्थानीय बाँटे जाने वाली प्रतियाँ तैयार कर वे घर लौटे।

सवेरे मात्र स्नान-ध्यान कर ही वे निकल पड़े और दस बजे काफी से अधिक प्रतियाँ बाँट आये क्योंकि शाम को उन्हें 'बेनियाबाग' की मीटिंग में जाना था। दोपहर में काम करते हुए दो-एक बार भूख सी लगी थी लेकिन पान खा लिया गया और फिर काम में लगे रहे।

शाम को जब वे 'बेनियाबाग' पहुँचे तो मैदान लोगों से खचाखच भरा हुआ था। बीच में कांग्रेसी तिरंगा फहरा रहा था। धूप और गर्मी काफी थी उस पर इतनी भीड़। 'वन्देमातरम' के गायन के बाद सभा आरम्भ हुई। सभापति बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त थे। दो-एक वक्ता शुरू में बोल गये तब तक भीड़ में शोर हुआ कि 'मालवीय जी महाराज आ गये'—और सब ने देखा कि गौर वर्ण के अत्यन्त प्रभावशाली एक व्यक्ति ने उपस्थित हो कर सबको प्रणाम किया। सिर से पैर तक धवल खादी की भूषा चन्दन का भाल तिलक तथा साफा और दुपट्टा। भीड़ ने बड़ी जोर से नारे लगाने शुरू किये—

—वन्दे मातरम ।।

—भारत माता की जय ।।

—*महात्मा गाँधी की जय* ।।

—पंडित मदन मोहन मालवीय की जय ।।

और मालवीय जी महाराज ने बोलना शुरू किया। देश की स्वतंत्रता अंग्रेजों के शासन आदि पर बोलते हुए बताया कि गाँधी बाबा ने निरस्त्र रहकर भी अंग्रेजों को चुनौती देने का यह जो नया रास्ता बताया है वह है विदेशी माल का बहिष्कार। जिस प्रकार जर्मन अपने देश का माल खरीदता है स्वयं अंग्रेज इंगलैंड

के माल के अलावा दूसरा माल नहीं खरीदेगा चाहे सस्ता ही क्यों न हो तब हम भारतीयों को भी चाहिए कि अपने ही देश का माल खरीदें। सबसे ज्यादा जो माल बाहर से आता है वह है—कपड़ा। विदेशी कपड़े का व्यवहार करना छोड़ देना चाहिए। देश का कपड़ा पहनने से देश के कारीगरों को रोजी-रोटी मिलेगी। देश का पैसा देश में ही रहेगा। ऐसी हालत में हमारी आर्थिक स्थिति सुधरेगी। आप देखते ही हैं कि इंगलैंड कितना छोटा सा देश है वह अपना माल सस्ते में बनाकर महँगे में बेच कर मुनाफा कमाता है और अंग्रेज इस प्रकार शासन किये हुए हैं। यदि हम उनकी चीजों का बहिष्कार करेंगे तो उनके देश की मिलें कल-कारखाने बन्द हो जाएँगे। अगर उनका उद्योग फेल हो जाएगा तो वहाँ के लोग अंग्रेज सत्ता को नीति बदलने के लिए बाध्य करेंगे।

अभी भाषण चल ही रहा था कि पुलिस के दस्तों ने घुस कर लाठी चार्ज कर दिया। लोग भागने लगे। नारे यहाँ-वहाँ टुकड़ों में सुनायी देने लगे जैसे चिड़ियाँ उड़ रही हों। पुलिस की सीटियाँ चारों तरफ सुनायी देने लगीं। पुलिस ने धर पकड़ शुरू कर दी। लाग पकड़-पकड़ कर ट्रकों पर, लारियों पर लाद जाने लगे। श्रीधर बाबू मालवीय जी को पास से देखने के लिए भीड़ में धक्का खाते बढ़ रहे थे। तभी पुलिस की एक लाठी उनके बायें कंधे पर पड़ी। वे तिलमिला गये। तब उन्हें भान हुआ। मंच पर मालवीय जी को घेर कर पुलिस खड़ी थी। बड़े जोर का धक्का आया और वे गिर पड़े। देखते-देखते सारा मैदान खाली हो गया। पता नहीं कौन उन्हें घसीट कर बाग की दीवार के पास बनी एक गुमटी तक ले आया। उन्हें याद आया कि आज वे निराहार थे। लाठी कसकर बाँह में लगी थी। मैदान एकदम खाली पड़ा था। बाँस का मंच भी टूटा पड़ा था। शाम की हवा में लोगों के फटे वस्त्रों की चिंदियाँ कागज के टुकड़े आवारा उड़ रहे थे।

—बहुत चोट आयी भगत जी ?

और श्रीधर बाबू ने देखा कि रामदाने के लड्डू बेचने वाले उस व्यक्ति ने पता नहीं क्या सोचकर दो लड्डू दिये।

—खाओ तो !

और किसी तरह लड्डू खाकर पानी पिया और बाँह थाम के उठे। चौक तक आते-आते हाथ में बड़ी पीड़ा होने लगी थी। एक छोटे से क्लीनिक में जाकर दिखाया। हड्डी पर चोट थी लेकिन टूटी नहीं थी। लगाने और सेंकने की दवा लेकर श्रीधर बाबू घर लौटे।

तीन दिन में जाकर हाथ ठीक हुआ। शास्त्री जी ने सचमुच मैत्री निभायी। एक रात को वे श्रीधर बाबू के ही पास रह गये और सेक करते रहे। शास्त्री जी स्वयं बड़े प्रताड़ित व्यक्ति थे। आज भी उनकी स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था लेकिन चूँकि वे शिवनाथ-दरबार के लोगों पर निर्भर नहीं करते थे इसलिए लोग उनके साथ बराबरी का व्यवहार करते थे दूसरे शास्त्री जी ने काशी में बरसों तक भाड़ झोंकने के बाद बैठकबाजी सीख ली थी कि किस प्रकार बात में से बात पैदा की जाती है। इसका नतीजा यह हुआ कि आज शास्त्री जी की पहुँच क्या मालवीय जी महाराज क्या गुप्त जी क्या पंडित जी सभी के दरबार में है। लेकिन शास्त्रीजी यह भी जानते हैं कि जिस दिन इनकी कृपा भी उठी उसी दिन पाँसा पलटा। शास्त्रीजी ने बड़े दर्द से सुनाया कि गवर्नमेंट संस्कृत कालेज में एक्स्ट्रा जगह खाली। हमने भी अर्जी दी थी। महामहोपाध्याय वाजपेयी जी के हाथ में रहा कि कौन हो। महामहोपाध्याय जी पर साल श्रीमद्भागवत पर टीका लिखी। श्रीधर बाबू! पाँच महीने दिन रात एक करके हमने उसे ठीक किया। भाषा की कम और भावों की जितनी ही गलतियाँ रही सब ठीक किये हम और

जब नौकरी की बात आयी तो पंडित शिवनाथ त्रिपाठी के साले वहाँ हो गये। अरे भाई सब हाथी के दाँत हैं।"

रात भर जाने क्या-क्या बातें करते रहे। इधर वर्ष में भी श्रीधर बाबू ने प्रकाशक के यहाँ जाना नहीं छोड़ा। जब हाथ कुछ ठीक हुआ तो शाम को न 'सभा' गये और न ही पंडित जी के यहाँ। आँखें क्यों उन्हीं ऊपर आने लगी थीं। वे 'दशाश्वमेध' निकल आये। पहले तो जाकर एकान्त में बैठ गये। गंगा में काफी चहल-पहल थी। लोग माथों में तैर कर रहे थे। गमछा कमर से बाँधे सोने की सकड़ी गले में हिलाते कुछ गुरु, उस्ताद साथ भाँग-बूटी पीस-छान रहे थे। अहिल्या-घाट पर भजनियों का कीर्तन हो रहा था। कभी इधर से कभी उधर से पूजन आरती के शंख घड़ियाल सुनायी पड़ जाते। मछलियाँ पानी की सतह पर तेज-तेज उछली चक्कर काट रही थीं। उस पार बालू का भूरा विस्तार फैला हुआ था। पुल पर कोई ट्रेन मुगलसराय से आ रही थी। साँझ जब होने लगती है तो बस भीतर तक होती जाती है। गंगा के बस में जैसे अँधेरा छुपा हुआ प्रतीक्षा ही कर रहा था कि अभी वह घाटों पर आ जाएगा और फिर अरने भैंसे सा बम घूम-घूम कर फैल जाएगा। तभी एक साधु ने बड़ी जोर से "बम शंकर" पुकारा।
—बच्चा! तेरे मस्तिष्क का रेखा बोलती है कि मनोरथ जल्द ही पूरन होगा
दिया है यहीं पाव भर पूरी बच्चा!
—आगे जाओ बाबा!
—कैसा कलिकाल आ गया है।
तभी एक साँड़ फुँफकारता ऊपर से निकला। बाबा जी बाल-बाल बच गये और वे तेज कदम बढ़ाते बढ़ गये। कोई नव विवाहित दम्पति गंगा-पूजन के लिए आया जा रहा था। शहनाई और घड़ियाल बोल रहे थे। दुल्हन को आदमी ने गोदी में उठा रखा था। औरतें गाती हुई घाट से नीचे उतर रही थीं। कई भिखारी, जो एक पवित्र जन नामों को घेरे हुए थे। पान-फूल वाले दीप-वाले भी सौदा लिये चुप पड़े रहे थे। घाट की बुर्जी पर कोई युवा 'निपोटा' दम दबा लगा रहा था। दो चार पतंगें यहाँ-वहाँ आकाश में उड़ रही थीं। न शान्ति थी न कोलाहल ही। अजीब घुटा घुटा सा लग रहा था। वे 'अहिल्या घाट' की तरफ बढ़े। घाटवालों ने अपने खोमचों में खूब भारी गुलाब की पखुरियाँ सजायी हुई थीं। कीर्तन वहीं जोरों पर चल रहा था। कोई वैष्णव मौढ़ीय साधु दोनों हाथों को नृत्य की धुन में ऊपर उठाये 'श्यामरि तारा नामि मधुगन विरज मुरारि' गा रहा था। मृदंग तबा बाँसी पर मगन हो रही थी और घाट की सीढ़ियों तक

बैठा भक्त समुदाय तन्मय विमुग्ध होकर सुन रहा था। श्रोताओं में अधिकतर वृद्धा बंगालिनें थीं लेकिन कुछ अन्य पुरुष भी वहाँ थे। श्रीधर बाबू को वे सरत बाबू की नायिकाएँ लगीं। उन्हें लगा कि यह कितनी विभिन्न काशी है—बंगीय काशी!! यहाँ कीर्तन है अप्रतिम सुख है समाज प्रताड़ित विधवाएँ हैं अवकाश प्राप्त बंगाली बुद्धिजीवी हैं क्रान्तिकारी हैं और पता नहीं काठ ईंटों तथा पत्थरदार टूटी खिड़कियों वाले इन बंगाली मकानों में जाने कौन-कौन होगा। सभी संकीर्ण बंगालियों ने अपने को कितना पृथक कर लिया है। कितने पृथक हैं ये फिर भी इन सीढ़ियों पर बैठ हुए यह वैष्णव-कीर्तन मृदंग की थापें तथा बाँसी का बाकापता करुन-स्वर जाने कहाँ जाने किन काल्पनिक राधा-कृष्ण मधुबन-वृन्दावन में ले जाता है। जैसे पौराणिक इतिहास के पृष्ठों पर राधा के नूपुर मन्द-मन्द बज रहे हैं और वे प्रत्येक के मनकुण्डा में गूँज उठते हैं। राधा और कृष्ण नारी और पुरुष देश हीन कालहीन जातिहीन दो व्यक्तित्व तदाकार होने के लिए आकुल—और प्रत्येक हृदय में यह रंग-मिलन अनुभव होता है—फिर भी हाय रे, ये कैसा वियोग है कि तादात्म्य नहीं हो पाता। अनन्त दीवारें खड़ी हो जाती हैं। भगवान और भगवती के बीच भी यह अभेद्य दीवार है जिसे न भक्ति से न ज्ञान से न कीर्तन से न पूजा-अर्चना से कोई भी न तोड़ सका। सब आ गये यह विरह गाथा लेकिन आज की इस कीर्तन संध्या में भी हृदय आकुल ही रहा पिपासित ही। वे जाने कहाँ बह गये थे। चेत हुआ तो देखा कि एक वृद्धा बंगालिन उनके पास खड़ी थी।

—की आपनी श्रीधर बाबू आसेन ?

—जी हाँ! मैं श्रीधर ही हूँ।

और उस धुँधलके में पहचाना कि यह तो रंजना की मासीमाँ ही हैं।

—अरे मासीमाँ!

हठात् ही श्रीधर बाबू के मुँह से यह सम्बोधन निकला था।

—आरे बाबा कोई रोजना क ता आज चार दीन से भीषण ताप रे बाबा। मो बाबा जे कौनो के पाठा क श्रीधर बाबू को बालाना मांगता। मो दादू का ता पाताई नेई। तुम आमार चिठा पा लिया ?

—नहीं।

—होम उसी को देखा जो तुम आई जन हय अथवा कानू पूछर जन।

—क्या आप घर जा रही हैं ?

—तुम जायेगा तो होम जाएगा सकता।

सफेद साड़ी में एकस्वस्था मासीमाँ हाथ में पीतल का कमण्डलु लिये आगे-आ
चल रही थीं। घाट चढ़ते ही सामने की गली में घुस गयीं। दो एक मोड़ के बा
ही घर आ गया। गलियों में रात अपेक्षाकृत अधिक थी। मासीमाँ ने दरवाज
बजाया तो किसी ने डोरी से नीचे वाले खाना अवरोध ऊपर से ही हटाया।
लोग भीतर पहुँचे।

उस दिन और आज में कोई अन्तर नहीं था। घर में नीरव एकान्त था। पत्थर के खंभों पर शांति जैसे टँगी हुई थी। श्रीधर बाबू जीना चढ़ते ऊपर पहुँचे। रतना के कमरे में अंधकार था।

—मासीमाँ ?

—नहीं मैं श्रीधर।

—अरे, आप ?

रतना के बिस्तरे के पास ही नीचे का दरवाजा खोलने वाली रस्सी झूल रही थी।

—हाँ मासीमाँ नीचे हैं। स्विच कहाँ है ?

—ओऽऽ, दरवाजे के पास।

और अँधेरा कमरा सहसा चौंक उठा। जैसे सोते में किसी ने चुम्बन लिया हो। रतना पलँग पर उठने की कोशिश करती रही। श्रीधर ने उसे बरज दिया। टेबल के साथ वाली कुर्सी लेकर पास ही बैठ गया।

—तो— ?

—तुम बीमार हो गयी हैं न ?

श्रीधर के कहने की नकल में रतना बोली और दोनों हँस दिये।

—अच्छा तो तुम नकल करना भी जानती हो ?

—जनाब नकल करते हुए मैट्रिक में एक बार पकड़ी गयी थी।

र दोनों फिर हँस दिये।

बीमार कैसे हो गयीं ?

बीमार कम होता है कोई ?

—मतलब

—मतलब बीमार कैसे हुई ?

और इस बार श्रीधर खूब ही जोरों से हँसा। सम्भवतः बरसों बाद नहीं बल्कि जीवन में पहली बार इतनी जोरों से हँसा। रत्ना अजीब दृष्टि के साथ हँसते श्रीधर बाबू को देख रही थी जैसे वह बालिका हो एकदम निश्छल निर्दोष।

—आप चाय तो पीते हैं न ?

—कभी पीता था विराम के कारण।

—बिना किसी के कारण अब नहीं पीते हैं न ?

—किसे इतना अवकाश है रत्ना ?

—माधीमाँ ! श्रीधर बाबू चाय पियेंगे।

रत्ना ने बीच पुकारते हुए कहा। माधीमाँ ने वहीं से 'अच्छा' कहा।

—क्या तुम भी चाय पिलाओगी ? मैं तो चाय खाऊँगा।

दोनों फिर हँस दिये।

—बुखार क्यों हो आया ?

—आप ही पूछिए इससे।

—कैसे पूछूँ ?

पता नहीं कैसी सरलता से श्रीधर बाबू ने अजाने ही पूछा कि रत्ना भीग उठी।

—यह भी नहीं मालूम ? अरे माथा छूकर पूछिए, फौरन बताएगा।

और श्रीधर बाबू ने माथा छूकर किंचित शैतानी से पूछा

—अच्छा भाई, अब बतला तो कैसे हो आये तुम ?

—उस दिन सारनाथ में लू के साथ मैं आया था। इस महिला को देखकर मैं रुक गया इसने मेरी उपेक्षा की थी और यह तुमसे बातें कर रही थी इस लिए मैं इसे हो आया।

बड़े अजीब ढंग से मुँह बनाकर रत्ना बोल रही थी और हँस पड़ी।

—अच्छा मजाक छोड़ो तुम्हें तो लू लग गयी उस दिन। आम का पना खाया था ?

—जी हाँ साहब इतनी दवाइयाँ पी गयी हूँ कि अब डाक्टरी की बातें सुनते ही मार बैठने की तबियत होती है।

—तो मुझे ही मार दो यहीं से।

—हे भगवान ! भला आपको मारूँगी तो नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।

—तुम तो काफी नरक भगी रहने में ही।

—अच्छा ये भाभीजी आपको कहाँ मिल गयीं ?
—यहीं घाट पर । कीर्तन सुन रहा था तभी मुझे पहचान कर आ गयीं ।
—क्या आप रोज कीर्तन सुनने आते हैं ?
—नहीं आज—बस मन बड़ा वैसा हो रहा था सोचा घाट पर ही चलूँ ।
—लेकिन आपने तो दो-एक दिन के बाद आने के लिए कहा था ।
—हाँ असल में मैं भी अस्वस्थ था इस बीच ।
—हे भगवान ! क्या हुआ था ? और बताया नहीं अभी तक ?
—कुछ खास नहीं वैसे ही ।
—फिर भी ।
—वो उस दिन 'बेनियाबाग' वाली मीटिंग में चला गया था ।
—वहाँ तो सुना लाठी-चार्ज हो गया था ।
—हाँ दाहिने कंधे पर थोड़ी सी चोट आ गयी थी ।
—पुलिस की लाठी की ? देखूँ ?
—अरे नहीं सरला ! अब तो सब ठीक हो गया ।
—अरे वाह, दिखाओ दिखाओ ।
और उसने कुरते के बटन खुलवाकर चोट वाली जगह देखी । चोट तो नहीं रह गयी थी लेकिन हल्का निशान शेष था ।
—तो राजनीति का प्रसाद मिल गया न ?—भाभीजी !
भाभीजी को पुकारा । "लिये आयी"—उत्तर मिला ।
—आ रही होंगी ऐसी क्या जल्दी है ?
तब तक भाभीजी चाय ले आयीं । बँगला में उन्होंने भाभीजी को बताया कि श्रीधर बाबू के हाथ में पीड़ा है । थोड़ा सा तेल गरमा कर ला दें तो मल दिया जाएगा । भाभीजी ने जब सुना तो उन्होंने भी चोट देखी और वे नीचे चली गयीं । श्रीधर बाबू को इतनी चिन्ता बड़ी असुविधाजनक लग रही थी । चाय और दवा-दारू में काफी देर हो गयी । चलने को हुए कि सरला ने आग्रह किया कि खाना खाकर जाना होगा । जब श्रीधर आनाकानी करने लगे तो वह बोली
—मैं जानती हूँ आप क्या खाते हैं और क्या नहीं । आज खिलाकर आपकी कच्ची नहीं छोड़ूँगी ।
शायद उस रात बरसों बाद उन्हें बहुत अच्छा लगा । कम पावर का पीला-पीला सा बल्ब और लोनोने रंग की दीवारें, उस पर काफी ऊँची छत काफी भली लग रही

थी। दीवार पर रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द दुर्गा के साधारण से चित्र थे। इसके अतिरिक्त एकाध अल्मारी पलंग टेबल कुर्सी के अलावा कोई सामान नहीं। कमरा खासा बड़ा था। संभवतः दो कमरे और थे। ऊपर-नीचे मिलाकर छह कमरे होंगे जो अधिकांश बन्द थे जिनमें ताले पड़े हुए थे। ऊपर-नीचे वीरान सा लग रहा था, जैसे तालाब सूख जाने पर उसका पेटा दरारदार गहराई के साथ उभर आता है और उस विस्तृत नहरेपन में दो एक आदमी ही हों तो रात का भयावनापन कैसा-कैसा सा लगने लगता है—बस वैसा ही यहाँ लग रहा था। खास बनारसी घरों में हमेशा ऐसा ही लगता है कि आप उनमें डूब गये हैं—निःशब्द!!

—बड़ा घुटा-घुटा सा लग रहा है न आइए छत पर चलें। जाने कब गयी थी ऊपर।

और वे ऊपर छत पर निकल आये। आस पास ऊँचे-नीचे मकानों से दूर तक का विस्तार भरा हुआ था। कई तरह का शोर दूर-दूर तक यकमक रूप में आ रहा था। छत पर एक चौकी थी जिस पर रचना बैठ गयी। श्रीधर बाबू मुंडेर से पीठ टिका खड़े रहे। बड़ा सा काला आकाश तारक खचित चँदोवे सा खिंचा था। दूर मंदिर की पूजा-आरती का स्वर सुनायी दे रहा था।

—आपके मन में कोई जिज्ञासा नहीं उठती श्रीधर बाबू ?

—कैसी जिज्ञासा ?

—यही कि मैं कौन हूँ क्या हूँ क्यों हूँ ?

—होती है रचना! लेकिन पता नहीं पूछना नहीं हो पाता है। लगता है पूछना जल्दबाजी होती है। जब कोई बताता है तो लगता है जैसे बात पक गयी है। पूछने को तो आप किसी से भी राह चलते पूछना चाहेंगे कि कहिए साहब ? लेकिन बतलाने में विश्वास होता है।

—लेकिन महाशय जी मैं बतलाना चाहती हूँ लेकिन आप पूछेंगे नहीं तो बतला नहीं पाऊँगी।

—इसका मतलब तो यही हुआ कि अभी बात पकी नहीं। रचना! सामनेवाले पर विश्वास हो तो ऐसा कभी नहीं हो सकता कि हम अपना हाहाकार न कह पाएँ।

—अच्छा बाबा! मैं ही हार माने लेती हूँ बस न पूछिए।

धीवर बाबू ऐसे हँसे जैसे जीत गये हों।

—अच्छा बताओ तुम हार मान लोगी तो एक बड़ा भारी उद्देश्य विफल हो जाएगा।

—कौन सा उद्देश्य विफल हो जाएगा ?

—अपना व्यक्तिगत नहीं वरन वह उद्देश्य जिसके लिए तुम्हारे जैसे अनेक अपने प्राणों का सौदा किये जाने कहाँ-कहाँ मड़ रहे हैं।

—ओऽऽ !! धीवर बाबू ! यह मकान मेरे पिता ने बनवाया था। कलकत्ता हाईकोर्ट में वे जज थे। उनकी सात सन्तानों में मैं ही एकमात्र शेष हूँ। सरकारी नौकरी से अवकाश ले वे बनारस में ही रहने लगे थे। इसी घर में उनकी सन्तानें पत्नी तथा अन्त में स्वयं की मृत्यु हुई। अन्तिम दिनों में घर सम्हालने के लिए इन विधवा मासीमाँ को ढाका से बुलवा गया था। मैं उस समय पाँच वर्ष की थी। मैं देख रही थी कि आप इतने बड़े मकान में इतने अधिक बन्द कमरे देख कुछ सोच रहे हैं। जाने किस माया में पिता ने इतना सारा फर्नीचर, बर्तन कपड़े चीजें एकत्र कीं। सारे कमरे सामान से भरे पड़े हैं, पर कोई मोलता नहीं है धीवरबाबू ! जब मैं बच्ची थी स्कूल जाती थी तभी से सिवाय मासीमाँ के यह घर, यह छत—सब अजीब एकाकी वीराने पन में डूबे लगते। नींद में प्राय: चौंक-चौंक पड़ती थी। चीना चढ़त हुए कमरे में घूमते अपने ही छोटे-छोटे पैरों की आवाज पीछा करती डराती होती। यहीं इसी मुँडेर पर खड़ी घंटों शाम को पत्रयों के दाँव-पेंच देखती रहती। कभी एकाध पतंग इस छत पर भी आ गयी थी। कितने मुली मन स महीनों सहेजे रखी। जाने क्यों संबन्धी भी हमारे घर नहीं आते और न ही मासीमाँ या मैं कहीं जाते। बहुत हुआ दशाश्वमेध कीर्तन सुनने चली गया। बचपन में तो मासीमाँ नित्य छ जाती थीं लेकिन बड़ी हो गयी तो बस कहीं नहीं गयी। स्कूल के बाद लिखना-पढ़ना या छत पर टहलते रहना। उसके बाद सुमू दा बनारस आये। दूर क ममेरे भाई लगते हैं। ये भी बहुत कम बोलने वाले गंभीर व्यक्ति निकले। कुछ दिन तो साथ रह कठिन पता नहीं मासीमाँ से कुछ ज्यादा पटी नहीं इसलिए अलग रहने लगे लेकिन रोज आते। जाने कहाँ-कहाँ क क्रान्तिकारियों की कहानियाँ सुनाते। रोमांच हो जाता। सुमू दा की बातें सुनते म जान कहाँ खो जाती। उस बरस बी० ए० में थी। एक दिन मुझे कालेज के दरवाजे पर ही सुमू दा मिले कहा एक साधु महाराज आये हैं परिचय करा दूँ तुम्हारा। इसी बंगाली टोले में एक मकान में हम पहुँचे।

भीतर बाबू ! वहाँ आठ-दस क्रान्तिकारी बैठे हुए थे। बुधुवा ने बाद में बताया कि साधू-बाबू की बात झूठ थी। और इस प्रकार मैं क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आयी।

—और आज तुम क्रान्तिकारी हो।

—निश्चय ।।

बातें अनायास ही बीच में टूट गयीं। मासीमाँ ने नीचे से पुकारा भी था। वे लोग नीचे उतर आये।

लौटने में काफी देर हो गयी थी उन्हें। चलते समय पूछना चाहते ही रहे कि कब मिलोगी? लेकिन जाने क्यों अपनी ओर से उत्सुकता प्रकट करना संगत नहीं लगा।

इस बीच श्रीधर बाबू ने "चैतन्य-चरितामृत" के अनुवाद का कार्य फिर ज़ोर शोर से शुरू कर दिया था। वे दो एक बार रत्ना के घर भी गये लेकिन मामीमाँ से पता चला कि वह कलकत्ता गयी हुई है किसी काम से। श्रीधर बाबू इस 'काम' शब्द को भलीभाँति जानते थे। पूरे देश में असहयोग की आँधी ज़ोरों पर चलने लगी थी। श्रीधर बाबू कुछ भी निर्णय नहीं कर पाते थे कि वे क्या करें? वे किसी अखबार के सम्पर्क में आना चाहते थे ताकि अपने को विचारों को व्यवस्थित एवं विकसित कर सकें। रोज़ शाम को यहाँ-वहाँ सभाएँ होतीं। गरम-गरम भाषण दिये जाते। विनय रत्ना आदि के क्रान्तिकारी दल के प्रति उन्हें सम्मान लगता लेकिन वे अपनी सीमाएँ एवं शक्ति जानते थे। गांधी जी की राजनीति समझने की वे चेष्टा करते और अनेक बार मत्था ठोकते। 'रौलट एक्ट' के विरुद्ध पूरे देश में सत्याग्रह की बातें हो रही थीं कि अमृतसर में जलियाँवाला हत्याकाण्ड घटित हो गया था। सारे देश में जैसे तूफ़ान आया हुआ था। अब तो सवेरे-शाम सभाएँ, जुलूस मीटिंगें होने लगीं। श्रीधर बाबू ने जाकर कौंसिल में नाम लिखा लिया और उसका भी काम करने लगे। जिस दिन जलियाँवाला काण्ड

को लेकर बनारस में सभा हुई उस दिन श्रीधर बाबू ने देखा कि लाखों की संख्या में जनता उपस्थित थी। सरकार की तरफ से भी कम तैयारियाँ नहीं थीं। पुलिस के अतिरिक्त आवश्यकता के लिए फौज भी तैयार थी। कितने ही जोशीले भाषण हुए। जब जनरल डायर के खिलाफ बोला जा रहा था तभी अंग्रेज सुपरिंटेण्डेंट ने आकर सभा भंग करने का हुक्म दिया। उसके बाद लाठी चार्ज होते ही भीड़ तितर-बितर होकर भागी। नेताओं को पकड़ लिया गया और चार सौ व्यक्तियों को पुलिस की लारियों में भर कर विभिन्न दिशाओं में बनारस से बीस बीस मील दूर ले जाकर जंगल में छोड़ दिया गया।

अँधेरे में रास्ता खोजते-भटकते श्रीधर बाबू दो बजे रात घर पहुँचे थे। लेकिन पता नहीं क्यों उस रात उन्हें बड़ा अच्छा लगा था। इतनी थकान के बाद भी वे उत्साह अनुभव कर रहे थे। बिस्तरे पर पड़े-पड़े आने वाले असहयोग के बारे में सोचने लगे और तय किया कि वे खुलकर हिस्सा लेंगे। एक साथ ही उन पर काम का बोझ पड़ गया था। प्रकाशक के यहाँ जाते पंडितजी की पत्रिका का काम रहता अनुवाद का ही उस पर कांग्रेस आफिस को जब मालूम हुआ कि वह पहले भी यही काम कर चुके हैं तो उन पर कांग्रेस दफ्तर का भी काम आ गया। इस बीच महीनों 'सभा' नहीं जा पा रहे थे। लिखने-पढ़ने में खासा व्यक्ति कम आ गया था।

एक दिन रात के ग्यारह बज रहे होंगे श्रीधर बाबू अपने दफ्तर में बैठे काम कर रहे थे। लोगों में आगामी असहयोग आंदोलन को लेकर बहस छिड़ी हुई थी। तभी एक वालंटीयर ने उन्हें बताया कि शिकरम में कोई महिला आयी है और बुला रही है। श्रीधर बाबू हठात् चौंक कि—महिला? इतनी रात में और शिकरम में?
वह रतना थी। सहसा रतना को देखकर एकबार तो वे चौंके तथा सहमे भी कि कोई देख लेगा तो क्या होगा? वे जल्दी से जाकर कागज-पत्र सहेज कर लौटे और रतना के साथ शिकरम में बैठ गये। शिकरम दशाश्वमेध की ओर चल दी।

बाट एकदम निर्जन थे। चार छह दिन पूर्व पहली बरसात हुई ही थी लेकिन इस समय मेघ झुके हुए थे। चन्द्रमा बादलों में कहीं डूबा हुआ था। एक बुर्जी पर पहुँच कर थोड़ी देर तक तो वे लोग खड़े-खड़े गंगा देखते रहे उपरान्त बैठ गये।

—कहाँ चली गयी थीं तुम ?

—कलकत्ते।

—झूठ।

—मासीमाँ ने नहीं बताया ?

—उनके बताने से क्या हुआ ? क्या पार्टी के काम से गयी थीं ?

उत्तर में किंचित निर्दोष मुसकराते हुए रतना ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

—कब आयीं ?

—अभी चली ही आ रही हूँ।

—अभी ? तो क्या घर नहीं गयीं ?

—जाना भी नहीं है।

—क्या मतलब ?

—आपको तो सीधे वाक्यों का भी अर्थ नहीं आता। पता नहीं क्या खाक पढ़ाते रहे होंगे।

—तभी तो मास्टरी छोड़ दी।

और दोनों हँस दिये।

—देखो रतना।

और रतना ने देखा कि भीष्म बाबू अत्यन्त गंभीरता से गंगा की ओर देखते हुए उससे कुछ कहना चाह रहे हैं।

—क्या ?

—इस तरह मारे-मारे घूमने से क्या होगा ? देखो बुरा मत मानना। मैं कई दिनों से कहना चाहता रहा हूँ। आज भी पता नहीं कह पाऊँ कि नहीं क्योंकि जिस बात के लिए बरजना चाहता हूँ वह उद्देश्य अपने में पवित्र है लेकिन

—लेकिन क्या ?

—लेकिन विश्वास नहीं होता कि दो चार बमों के धमाकों दो-चार हत्याओं से इस अंग्रेज शासन-तन्त्र का तख्ता उलट सकता है।

—भीष्म बाबू ! इसमें बहस की कोई सम्भावना नहीं है। मैं जानती थी कि आप एक दिन कांग्रेस में शामिल होंगे जब कि मैं यह भी जानती हूँ कि आप किसी

भी प्रकार की राजनीति के लिए नहीं बने हैं। इसलिए कि आप में विवेक है, आवेग नहीं। आपको संभव है कभी 'आन्दोलन' नाम से ही वितृष्णा हो जाए।

—मुझे बड़ा आश्चर्य है कि मैं अपने बारे में कितना भ्रामक प्रभाव देता हूँ।

—कायर का न ?

और रतना हँस दी। वह फिर बोली

—आप सचित्त हैं अपने बारे में। अच्छा छोड़िए, मुझे थोड़ी ही देर में मुगलसराय पहुँचना है। मैं आपको इसलिए यहाँ तक लायी हूँ कि मुझे इसी समय पचास रुपये चाहिए तथा यह भी कि क्या आप मेरे साथ इक्के से मुगलसराय तक चल सकेंगे ? क्योंकि मैं यहाँ से ट्रेन नहीं पकड़ सकती।

—अच्छा चला जाए।

और फिर दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। श्रीधर बाबू और रतना घाट-घाट बढ़नाम पहुँचे। रुपये लेकर रतना के साथ नाव से राजघाट पहुँच और वहाँ से इक्का किया। रास्ते में खूब बारिश हुई। दोनों ही काफी भीग गये। मुगलसराय स्टेशन के पहले ही बरसते पानी में रतना उतरी। श्रीधर बाबू न चाहा कि उसे स्टेशन तक छोड़ आएँ लेकिन वह नहीं मानी। श्रीधर बाबू ने देखा कि रतना ने उन्हें बड़े सतृष्ण मैकट्य से एक क्षण को देखा और वह तेज बौछार वाली वृष्टि में भीगती बढ़ गयी।

इक्केवाला कहीं कुछ पूछ न बैठे इसलिए उसे वापस चलने को कहा। पानी और तेज हो गया था। इक्केवाले ने अब बड़बड़ाना शुरू कर दिया था लेकिन वे बूँदों में भीगते रतना के बारे में जाने क्या-क्या सोच रहे थे। उन्हें रतना की यह बात सही लग रही थी कि वे अपने बारे में संदिग्ध हैं। संभवतः इसीलिए उनकी प्राप्ति भी नगण्य ही है।

इसके बाद महीनों रतना का कुछ पता न चला। दो एक बार गये भी पूछने। बेचारी मामी-माँ को ही जब कुछ नहीं मालूम था तब भला वे क्या बतलातीं? लेकिन वे दुखी थीं और रतना के इस प्रकार घर से गायब होते रहने का सारा दोष वे सुधांशु पर डालती थीं।

इस बीच उन्हें यह अनुभव होता जा रहा था कि कांग्रेस में आगे बढ़ने के लिए व्यक्ति की सामाजिक स्थिति अच्छी होनी चाहिए। जो बात पहले विमल कहा करता था उसे वे उसका आवेश अधिक मानते थे। यहाँ आकर उस कथन की वास्तविकता का अनुभव कर रहे थे। अब आये दिन बड़े नेताओं के भाषण तैयार करने पड़ते थे और उस समय उन्हें महान आश्चर्य होता था कि उनके ही विचार नेताओं के द्वारा सुनकर जनता में जागरण आ रहा था। असहयोग बिलकुल सिर पर आ गया था। देश के सामने गांधीजी ने एक करोड़ सदस्य की कामना रखी थी। लोग धड़ल्ले से कांग्रेस के सदस्य बनने लगे थे। आये दिन विदेशी कपड़ा की होलियाँ जलतीं। और वह दिन भी आ गया जब कोतवाली के सामने चौक में विदेशी कपड़ों का ढेर लग गया और 'वन्दे

मातरम्' 'भारत-माता की जय' 'गांधीजी की जय' कहकर होली जलायी गयी। बड़ी विराट सभा हुई। जीवन में पहली बार श्रीधर बाबू ने भी बोलने का साहस किया लेकिन उन्हें स्वयं लगा कि उनका गला सूखने लगा था। हाथ पैरों में कैसा ठण्डा पसीना आ गया था। वे भाषण तो क्या बोल भी न सके। अजीब ग्लानि मन पर बनी रही। उन्हें विश्वास हो गया कि कभी भी वक्ता नहीं हो सकते। उस दिन सभी को आशा थी कि गिरफ्तारियाँ होंगी लेकिन आश्चर्य कि कहीं कुछ नहीं हुआ। दो-तीन दिन तक बड़ी विराट सभाएँ होती रहीं। सबेरे स प्रभातफेरियाँ निकलतीं। सामूहिक चरखा कातने का काम होता। दिन-दिन भर चन्दा एकत्र करने जाया जाता। लोगों में अति उत्साह था। जाने किन-किन और कैसी-कैसी महिलाओं ने अपने रेशमी-विलायती वस्त्र जलाने के लिए दे दिये थे तथा खादी पहनने का व्रत लिया था। साथ ही अपने जेवर तक दिये दे रही थीं। ऐसा लग रहा था कि देश कटिबद्ध है इस विदेशी जुए को उतार फेंक देने के लिए कि एक दिन सहसा सबने सुना कि चौरी-चौरा में कुछ सत्याग्रहियों द्वारा पुलिस के कुछ जवान मारे गये तथा थाना लूट लिया गया। इस पर गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन को ही वापस ले लिया—क्योंकि अहिंसा हो गयी थी। किसी की समझ में यह तर्क नहीं आया और सारा विराट जन-आन्दोलन जो कि इतनी तीव्रगति से चल रहा था अचानक रोक दिये जाने के कारण लोगों को अन्दर तक तोड़ गया। उसके बाद तो अंग्रेजी दमनचक्र का बोलबाला आरम्भ हुआ। जब तक आन्दोलन चलता रहा सरकार चुप रही लेकिन आन्दोलन के बन्द होते ही लोग जेलों में ठूँसे जाने लगे। तलाशियाँ धर-पकड़ मार-पीट इतने जोरों पर होने लगीं कि लगा कि पूरा देश ही जैसे एक बड़ा भारी जेलखाना हो गया है। हजारों की संख्या में लोग पकड़े गये। दूर-दूर के संबंधियों तक को परेशान किया जाने लगा। अखबार, प्रेस दफ्तर सब पर ताले डाल दिये गये। लोगों की जायदाद घर सबको सरकार कब्जे में करने लगी। सभा-जुलूस सब पर धाराएँ लग गयीं और देखते देखते असहयोग के आन्दोलन में ज्वार बना देश श्मशान हो गया।

कुछ पर मुकदमे चले बहुत से नजरबंदी में सड़ने लगे। श्रीधर भी पकड़े जा कर तीन वर्ष के लिए जेल भेज दिये गये। उनके मकान मालिक ने उनका सामान उठाकर सड़क पर डाल दिया और उसने कान पकड़े कि भविष्य में वह किसी भी गुरुजी का मकान किराये पर नहीं उठायेगा।

श्रीधर बाबू को घर से गये तीन बरस हो गये थे। उनके जाने का दुःख सरो की देह हड्डियों में समा गया था और वह दिन-रात गलती जा रही थी। पिता अपने तीनों बेटों की करनी देखकर एकदम मूक हो गये थे। बड़े बेटे श्रीमोहन ने उन्हें कस्बे में मुँह दिखाने के योग्य नहीं रखा था। अलग मकान बनवाकर वह जिस बेमुरौवती से एक लकड़ी के दो टुकड़े करके अलग हुआ था उससे जो सदमा उन्हें हुआ था उसे उनकी पत्नी भी समझ नहीं पा सकती। जिधर जाते लोग यही पूछते—क्यों कीर्तनियाजी ! श्रीमोहन जुदा अलग हो गया ?—और वे बिना 'जय श्रीकृष्ण' कहे ही बढ़ जाते। उन्हें मन्दिर के काम में भी अब विशेष रुचि नहीं रहने लगी थी। पट खुले तो वे "सूर सागर" लाकर मजीरे ठनकाते पद गाने लगते। अनेक बार तो हारमोनियम बाजा भी गड़बड़ा जाता कि कीर्तनिया जी अभी इस 'रास' में गा रहे थे और अभी कहाँ भाग गये ? "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" या "भक्तमाल" से कथा या पाठ सुनाकर ऐसे भागते जैसे चोरी की हो। न पहले शृंगार में रुचि रही न अन्नकूट में। अपरस में नहाना अब वे टालने लगे क्योंकि झारी में पानी भरते हाथ

काँपने लगता या शृंगार का दर्पण दिखाते थे जाने क्या सोचते रहते। 'सेवा' में किसी तरह की भूल न हो इसलिए बहुत हुआ पान-फूल की सेवा कभी कर दी और बस। अब वे घंटों अपने मित्र वासुदेव की दुकान पर बैठे रहते और जाने क्या-क्या सोचते रहते। भीतर पर क्रोध आता कि आप तो जाने कहाँ जाकर बैठा है और उनको माफ़ किये है। इस प्रकार बहू-बच्चों को छोड़ वे तीर्थ यात्रा भी करने नहीं जा सकते थे। जीवन भर इन लोगों को पाला-पोसा कि बुढ़ापे में कुछ काम आएँगे। काम आना तो दूर रहा उल्टे जंजाल गले में। रहे तीसर साहब तो उनकी शादी क्या हुई कि बस उसके बाद से तो अपनी महारानी को लेकर जो चलते बने सो आज मुँह दिखाते हैं। उनकी बला से माता-पिता ज़िन्दा हैं या मर गये। वे गये उनकी पत्नी गयी ससुराल वाले गये और बहू माड़ा-डाक्टरी गयी। यह सारे का सारा जंजाल गले में न होता तो मज़े से चारोंधाम की यात्रा करते और फिर हरिद्वार में रहते। गंगा-स्नान होता तथा भगवान-भजन किया जाता। जीवन भर तो इसका-उसका कर, यही तो किया। सोचा था कि परलोक की तैयारी करेंगे गंगा किनारे बैठ कर। लेकिन भाग्य में तो बदा था यह जंजाल। सुना है सिरस्तेदार साहब की महरानीजी का अभी पेट नहीं भरा है। और वह इस घर में से भी अपना हिस्सा चाहती है। पता नहीं वह किस दिन का बदला निकालना चाहती है। कान्ता का भी टीम बालाबाला उसके ससुराल भेज दिया ज़रा भी ख्याल नहीं आया कि हम लोगों से भी पूछ लें। —गरी की हालत तो शालिग्राम वैद्य जी कह रहे थे कि ठीक नहीं हो रही है। क्या किया जाए? उस पर बहू और सास मिलकर दोनों कहती हैं कि गुनवंती के अब हाथ पीले कर दिये जाने चाहिए। लेकिन कहाँ? और फिर पैसा? लड़के वाले तो वर-खानदान का नाम सुनकर कुछ तो मुँह फैलाएँगे ही।

जबकि माँ के लिए परिस्थितियाँ वह जादूगर (हवा) बन गयी थी जिसने *'दीवार दीवार' सुनते पर भी घर की खिड़की खुला दी थी और उस अँधेरे* में अब केवल वे माता फर्नी बैठी रह सकती थी। जिस घर में कभी फानूस जलते थे आज वहाँ दीवार पर कालिख छोड़ती हुई एकमात्र चिमनी जलती है। जब वे बहू बनकर आयी थीं तब उनकी मामूली पालकी से नीचे पाँव नहीं धरती

थीं और ससुरजी के हाथ रानी विक्टोरिया के कलदार रुपये गिनते थकने पड़ जाते थे। दरवाजे पर गाड़ियों में मनों गल्ला आता था और कोठों में अनाज भरा जाता था लेकिन आज दीवारें गिरने की प्रतीक्षा में झुकी पड़ रही हैं। बाड़े में ताजे दुहन दूध की गंध से सारा मुहल्ला महकता था। आज वहाँ बछड़े का एक सूखा खूँटा तक नहीं था। जिन बच्चों पर आस लगायी थी कि घर की लक्ष्मी एक बार फिर प्रसन्न होंगी लेकिन ऐसी लक्ष्मियाँ आयीं कि अपने मायके तो भर दिये लेकिन ससुराल में बत्ती बुझा दी। दूसरों को क्या दोष दिया जाए? जब अपना ही सिक्का खोटा हो तो परायी को कोसने से लाभ? बेचारी इस सरस्वती के ऐसे फूटे भाग निकले कि विधवा के भी क्या फूटेंगे। सुनीता तो दो तीन साल और रोकी जा सकती है लेकिन इस गुनी का क्या हो? इसके बराबर की कन्या का ब्याह हो गया—काम तो कह ही है। हाथ पकड़ा जाने है जीभ चाहे ही। अब 'इसम' कहो तो ये भी बेचारे क्या करें? इस ज़माने में सवेरे-शाम महँगाई है, बाजार का सौदा-सुलफ है, उस पर गुनी के लिए वर की खोज। कहो तो कहेंगे कि पैसा है? बिना पैसे के लड़का भी मिलने से रहा। अरे जहाँ तक जेवर वगैरह का सवाल है तो उसकी तो चिन्ता नहीं। अभी उतना जेवर है जो गुनी के लिए बहुत है। सुनीता के समय देखा जाएगा। क्या तब तक श्रीधर लौटेगा नहीं? और फिर जो काम सामने हो उसकी चिन्ता होनी चाहिए कि आगे का फिकर?

लेकिन इन सबमें गुना क्या कहे? अपनी जिन्दगी का छिन्न-भिन्न समापन होना यह घुट-घुट कर बस देख ही तो सकती है? अनेक बार यह सोचती है कि काश वह लड़का होती तो किसी काम आती। तब संभव था कि वह ताऊजी तथा डाक्टर काकाजी को बता देती कि वे लोग अभी इतने असमर्थ नहीं हैं जितना कि वे समझते हैं। सुशीला जब बार-बार अम्मा को भी बात-बात के लिए परेशान करती है तब वह एकान्त में उसे समझाती है कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए, लेकिन वैसे वह कुछ नहीं समझ पाती है। देवदत्त भी दिन-भर घूम रहा है। यदि उसकी आगे बातें बनायी जायें तो किसी उस लायक हो जायें। स्कूल का कह कर वह दिन-दिन भर तालाब में नहाया करता है। मुसलमान लड़कों के साथ पतंगें उड़ाया करता है। जाने कितनी ही

गंदी-गंदी गालियाँ देना सीख गया है और एक दिन तो कह रहा था कि—दीदी! यह बीड़ी का धुआँ पेट में ले जा सकता है। और फिर नाक से निकाल भी सकता है।—कितना उसे समझाया था धमकाया था कि उसे घर से निकाल दिया जाएगा जाति बाहर कर दिया जाएगा लेकिन गुनी यह भी जानती है कि इस तरह खिसकती ईंटों को रोक कर क्या दीवार बनाये रखी जा सकती है? लेकिन आखिरकार बाबा ऐसे कहाँ चले गये? क्यों चले गये? अगर मान लो यहाँ नहीं आना चाहते हैं तो भले ही किसी और को साथ में न ले जाएँ कम से कम जिजी को तो ले ही जाएँ। ठीक से दवा-दारू न होने से दिन प्रतिदिन वे मुरझाती जा रही हैं। बेचारे बापू जितना कर सकते हैं करते ही हैं। आज नहीं तो कल वह चली ही जाएगी। माँ बूढ़ी हो गयी हैं जिजी को ही तो घर का सारा काम करना पड़ेगा। सुशीला कमज़ोर है। जिजी को काम करने से और तकलीफ होगी। और यह हो नहीं सकता कि वह मन ब्याही रहकर जिजी की माँ की बापू की और भाई-बहिन की सेवा कर सके। वह जानती है कि जिस दिन वह जाएगी उस दिन दूसरी किसी शहतीर में इतनी ताकत न होगी जो इस झुकती चकती छत को थामे रहे। बाकी की अधिकांश शहतीरें जीर्ण हो गयी थीं। और सुशीला भी कोई शहतीर थी? रहा देवव्रत—वह एक तो अनेआइन्द घर की गंभीरता को समझता नहीं है और उसके समझने की उम्र तक क्या पता घर की छत रहे भी कि नहीं। अनेक बार आत्महत्या करने का मन करता है। वह रोज बापू-माँ माँ-जिजी की बातचीत चोरी चोरी सुनती है—घर के बारे में दान-दहेज के मामले में जेवर कपड़ों के बारे में। माँ कहती है कि उनका जेवर गुनी के काम आ जाएगा और जिजी का सुशीला का। गुनी के दान-दहेज का भी प्रबन्ध हो ही जाएगा और सुशीला के समय न होगा तो यह घर गिरवी रख दिया जाएगा। जैसे ये दोनों बहनें मरने के लिए ही तो बनी हैं कि बिना यहाँ से कुछ का माल लेकर ब्याहना नहीं हो सकतीं। लेकिन इन दो शादियों के बाद क्या होगा? ताईजी तो इस घर के तीन हिस्से करवाने की बात करती फिरती हैं। ऐसी हालत में क्या होगा? यदि बाबा इन सबके बाद भी नहीं आये तो बापू माँ जिजी और देवव्रत कहाँ रहेंगे? देवव्रत की पढ़ाई का क्या होगा? जिजी की दवा-दारू कैसे चलेगी? और अनेक बार सन्ध्याकी खिड़की से आती मदमाती चाँदनी में सामने की—बावड़ी अपने काले पत्थरों में अजीब तरह से पुकारती लगती। लगता जैसे वह उनकी बड़ी-बड़ी एकान्त सीढ़ियों पर चोरी-चोरी से उतर रही है। सामने

बावड़ी की अकेली मेहराब में अँधेरे का आबनूस जैसे काला-काला गूँज रहा है जिसे और कोई नहीं सुन रहा है। और वह नीचे उतरती आ रही है उतरती आ रही है। उसी अँधेरे आबनूस में चादर में लिपटी जिजी कराह रही है। सुशीला आँख फाड़े बाल फैलाये चीख रही है और देवव्रत मुसलमान आवारा लड़कों के साथ बीड़ी पी रहा है।—और, गुनी चौंक पड़ती तो होती कि वह क्या सोच रही है। तभी जिजी की खाँसी सुनायी पड़ जाती। कितनी ही बार गुनी आत्महत्या के ऐसे दुःस्वप्न देखती होती। कभी घर की दीवारें चारों ओर से धीरे-धीरे पास सरकती लगतीं और वह जोरों से दोनों हाथों से गला दबा आँखें मूँद कर आशा करती कि अब दीवारें उसे कुचल डालेंगी अब वह चीख उठेगी—और तभी नींद में बड़बड़ाते गालियाँ बकते देवव्रत सुनायी पड़ जाता।

लेकिन सदा न किसी से कुछ कह सकती थी और न रो ही सकती थी। सासूजी के लिए ससुर जी की उपस्थिति अपने आप में सम्पूर्ण थी। जहाँ दो बेटों ने बाँध दिया वहाँ तीसरा भी सही। बड़ी बहू की दुश्मनी सासूजी और ससुर जी से उतनी बड़ी ही है जितनी कि उससे। उसके बच्चे क्या वे दाने-दाने से मुँहताज करना चाहती है? बड़नगर में लड़का तय किया गुनी के लिए तो महारानी ने यहीं से पत्र लिखकर अपने भाई को बड़नगर भेजकर बात तुड़वा दी। उस पर लांछन लगाया कि पत्नी चरित्रहीन थी इसीलिए तो पति बिना कुछ बताये घर छोड़ कर चला गया है।—लेकिन ठीक ही तो है जब कोई कुछ बताये नहीं तो दुनिया और क्या समझेगी? कोई उसमें दोष देखा होगा तभी तो घर से गये तीन बरस हो गये और एक चिट्ठी तक नहीं डाली। 'उनकी' तरफ से तो घरवाले जैसे सब मर गये हैं न? अरे झगड़ा स्कूलवालों से हुआ था कि घरवालों से? स्कूल छोड़ा था कि घरवालों को? कभी नहीं ध्यान आया कि बच्चों का क्या होगा? बापू-माँ का क्या हुआ होगा? अपने भाई भाभी के सारे लच्छन तो पता ही थे कुछ तो सोचा होता कि पीछे से क्या होगा? जब अपने आदमी का ही सहारा उठ जाए तो फिर कैसे किसे दोष दिया जाए? भगवान उठा भी तो नहीं लेता। कैसी सांसत कर रखी है। उस पर हाथ में छिल छिल कर घुट रही हूँ—पता नहीं कब तक यह दुर्दशा होनी है। बच्चों का कहीं ठिकाना ही नहीं लग रहा है। कभी सोचा था कि वह भी बच्चों पर

हाथ उठा सकती है ? यूँ तो कहने को कमजोरी में हाथ नहीं उठता हड्डियाँ निकल आयी हैं लेकिन सुशीला देवव्रत को मारते समय जाने कहाँ से शक्ति आ जाती है ? उसके बाद कितना फूट फूट कर रो उठती है वह। पिता ने कैसी शिक्षा दी थी कि बच्चों को कभी नहीं मारना चाहिए। जब तक 'वे' थे उसने बच्चों को कभी आँख तक नहीं दिखायी थी लेकिन अब गुनी को छोड़कर दोनों जिद्दी हो गये हैं। वह जानती है कि देवव्रत आवारा हो रहा है लेकिन क्या कर सकती है ? अभी कल तो बापू को तड़ाक से जवाब दे दिया था कि—हाँ मैं पतंग उड़ाता हूँ तालाब किनारे, किसी को क्या ?—और उसने पास में रखा गिलास ही फेंक कर मारा था। यदि गिलास लग जाता तो क्या देवव्रत का सिर न फट जाता ? तब क्या होता ? लेकिन वह क्या करे ? एक ही लड़का आवारा निकल गया तो वह क्या करेगी ? किसके सहारे जियेगी ? इस घर का क्या होगा ? घर के सारे लोगों का तब क्या होगा ? लड़कियाँ तो अपने-अपने घर चली जाएँगी तब इन वृद्ध बापू-माँ को इस जीर्ण घर को रोगिणी जिजी को कौन सम्हालेगा ? क्या कहेंगे 'वे' जब लौटकर देखेंगे कि उनकी एकमात्र थाती को भी वह बचा नहीं पायी। क्या वे अपनी सुशी की विवशता को कभी समझ-बूझ सकेंगे ? कभी पहले भी समझी थी ? क्या इस कमी वे समझ सकते हैं ? घर के बाहर 'वे' निराश्रित थे इसीलिए परिवार नहीं ले गये तो क्या सुशी यहाँ बहुत सुरक्षित थी जो बच्चों की साज-सम्हाल कर पाती ? उनकी विवशता को बच्चों में एकमात्र गुनी ही समझती है क्योंकि वह भी तो अब नारी हो गयी है। उसका बस चले तो वह यहाँ से कभी न जाए लेकिन धनहीन नारी अपने पेट में नाव टिका लेगी लेकिन श्रीमन्त माता-पिता भी लड़की को अपने घर अधिक नहीं टिका सकते क्योंकि नारी की एकमात्र गति पुरुष में ही है।

रात जब श्रीनाथ ठाकुर घर लौटे तो पत्नी ने एक चिट्ठी दी। रात को इतने कम प्रकाश में वे पढ़ नहीं सकते थे। पत्नी ने दोपहर ही में पढ़वा ली थी। बताया कि इन्दौर वाले वकील मोतीलाल जी रावल की चिट्ठी है। उनको इस

घर का सम्बन्ध मंजूर है। अगले पौष में ही कोई चला आए और लड़के को तिलक कर आवे। लेन-देन की कोई बात नहीं। आप अपनी बेटी को देंगे ही और फिर आपका घर जाति में कितना जाना-माना है। आखिरकार पंडित सिद्धनाथ ठाकुर का खानदान है जिनकी हुण्डियाँ चलती थीं। लड़का बी० ए० कर रहा है। लोग चाहेंगे तो आपका दामाद बैरिस्टरी भी कर लेगा। और फिर कौशलिया जी तो उनके बाल-मित्र हैं।

चिट्ठी की बातें सुनकर पंडित श्रीनाथ ठाकुर फिर पास बेंचई पर बैठ गये। वे मोतीलाल रावत को बचपन से जानते हैं। किस प्रकार इस अनाथ से व्यक्ति ने चालीस बरस में अर्जीनवीसी से वकालत हासिल की। आज वह इन्दौर का नामांकित वकील समझा जाता है। बड़ा सा बंगला मोटर घोड़ागाड़ी क्या नहीं कर लिया उसने ? वे उसकी पैसे की भूख को समझ रहे थे कि किस प्रकार चालाकी से उसने पैसे की बात चलायी थी।

जब से श्रीमोहन का परिवार अलग हुआ था तब से घर ऐसे सिमट आया था। रसोईघर भी हटकर ओसार के पास वाली कोठरी में आ गया था। एक तरह से घर का उधर का हिस्सा एकदम ही बन्द पड़ा था। पिता श्रीनाथ ठाकुर ने हाथ-मुँह धोया और रसोईघर के सामने ही ओसारे में लगे पीढ़े पर भोजन करना आरम्भ किया। घर में कोई भी श्रीधर बाबू की चर्चा करने से कतराता था। पीतल के डिब्बे में से मुन्नी के हाथ की रोटियाँ और भाजी पत्नी रखती जा रही थी। पत्नी जानती है कि बिना दोनों जून दाल-भात के पति का काम नहीं चलता है इसलिए कभी ताजे दाल भात न हुए तो सबेर के ही दाल-भात रखे रहते थे।

—तो फिर क्या सोचा आपने ?

—अर सोचने का सवाल ही नहीं है यह तो। सोचना तो रावत जी महाराज को है।

—तो इन्दौर तो जाना ही पड़ेगा।

—और किसे भेजूँ ?

—तो अब सोचा अगहन तो हो ही गया। पौष में वे लोग तिलक करना चाहते हैं और फागुन में ब्याह। दिन ही कितने हैं ?

—तो तुम क्या चाहती हो कि इसी समय थाली पर से उठ जाऊँ और चल पड़ूँ ? लाओ लोटा-डोर ला दो।

—या कम दिमाग गये थे ? इनसे तो बात ही करना मुश्किल है। जाने दो मैंने क्या

करना है ? अपनी गरज होगी तो बीस बखत बिना न्योते दौड़ के भी जाओगे। और पत्नी ने रोटियों का डिब्बा बन्द कर, रखे हुए दाल-भात परम। अपनी तांबे की बंटी से श्रीनाथ ठाकुर ने पानी गटकाया और फिर बोले

—कह दिया भाई कि चला जाऊँगा। तुम तो हर बात में जीन लिये तैयार खड़ी रहती हो लेकिन कभी यह भी सोचा है कि लड़के को आगे पढ़ाने का जो खर्च माँगा जा रहा है उसका क्या होगा ?

—तो फारवर्ड में तो कोई लड़का मिल नहीं जाएगा। इतना पढ़ा-लिखा है तो खर्च भी वैसा ही करना होगा।

—ठीक है यह तो मैं भी समझ रहा हूँ लेकिन चार-पाँच हजार रुपया आएगा कहाँ से ?

—मैं कहती हूँ कि पहले बात तो कर आओ। बात हो जाए तब देखेंगे। जब वे अपने मुँह से संख्या नहीं बता रहे हैं तो हमें क्या पड़ी है कि संख्या कहलवाएँ ? रुपया न चाहिए उन्हें ? ठीक है हम अपनी लड़की को जितनी हैसियत होगी उतना दे देंगे।

—लेकिन वो तो पिताजी के जमाने की हुण्डियों की बात कर रहे हैं।

—तो आप भी कह दीजिएगा कि न अब पुराने लोग रहे और न हुण्डियाँ रहीं। और फिर खुद उन्होंने ही अपनी लड़की को कितना दिया है ? उनकी लड़की हमारे ही घर में तो आयी है ? जयनारायन मामा जी के सबसे छोटे साले करुणाशंकर को ब्याही है। क्या दिया है खुद ने ? राई के बराबर नाक में कील दी है। सोना सूँघ सा बस ऐसी चूड़ियाँ दी हैं और सोने के झोल के कनफूल। मेरे सामने वकील जी जान मारें तो गिना दूँ कि करुणाशंकर को कितनी थालियाँ-लोटे दिये हैं ? देते तो छाती फटती है तो फिर माँगते लाज नहीं आती ?

और अन्त में यही तय पाया कि पति-पत्नी दोनों ही इन्दौर जाएँगे और गये भी। जीवन में पहली बार पत्नी ने दबंगी से काम लिया और न सिर्फ बात ही पक्की कर आयीं बल्कि लड़के को तिलक भी निकाल आयीं। पत्नी ने बातें कुछ इस ढंग से कीं कि रुपये-पैसे की बात पर दोनों ही तरफ से हाँ-हाँ होती रही लेकिन तय कुछ नहीं हुआ। मोतीलाल रावल महाशय ने पंडित श्रीनाथ ठाकुर

का प्रतिष्ठित घर देखा और उस पर श्रीमोहन ठाकुर रिश्तेदार भी। अब अपनी लड़की चम्पा के ब्याह में नकद रुपया, ज़मीन-जायदाद, बाग-बगीचा दिये तो न सही रुतबा, साया तो मिलेगा ही। जब कि हम लोगों ने भावी दामाद बालकृष्ण रावल को देखा जो कि एक दिन बड़ा वकील बन जाएगा। श्रीमोहन की पत्नी सावित्री का जैसे ही यह खबर लगी कि गुनी का ब्याह इतने अच्छे घर में तय हो रहा है तो वह भुनभुना उठी लेकिन पति ने डाँट दिया। क्योंकि श्रीमोहन को पता था कि मानीलाल जी वकील पिता के बाल-मित्र हैं इसलिए पत्नी का इस बारे में कुछ भी कहने-सुनने के लिए बिलकुल बरज दिया।

तिलक तो कर आये लेकिन अब चिन्ता थी कि सारा ब्याह दान-दहेज का सब कुल मिलाकर सात-आठ हजार का खर्च है कैसे क्या हो? न सही तो कम से कम बीस तोला तो चढ़ेगा ही। कपड़े-लत्तों पर पाँच-सात सौ से कम क्या लगेगा? बारात की तो रसोई तो देनी ही होगी। न सही चार मिठाइयाँ तो तीन से कम क्या रखी जाएँगी? आये-गये देना-लेना पास-पड़ोस सब मिलाकर पाँच सात हजार आदमियों का भोजन। बरात में न सही तो पचास आदमी तो आएँगे ही। बाजे गाजे हैं शामियाने बाजे हैं। हाँ और क्या पाँच-सात हजार में भी हो जाए तो गनीमत है।

पुराने ब्याह-शादी वाले बहीखाते निकाले गये। पिछले सौ बरस में किसकी शादी पर कितना खर्च हुआ इसका ब्यौरा पंडित श्रीनाथ ठाकुर के प्रपिता के जमाने से लिखा जाता रहा है। बहीखाते निकाले गये और देखा गया कि कब कितनी चीनी आयी घी आया चावल आये। अब पति-पत्नी मिलकर रात में सूची बनाते। चीजों की लिस्ट और सब लिखी जाती। कितनी साटन आएगी कितनी वायल कितना रेशमी कपड़ा चाहिए, कितना सूती।

और पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने एक बहीखाते में—

—श्री गणेशाय नमः।

—महाप्रभु सदा प्रसन्न।

—द्वारकाधीश की जय—लिखकर पुष्पवती के ब्याह का श्रीगणेश किया।

सब हुआ। बुआ-मौसियाँ तक आयीं लेकिन कसम खाने के लिए भी सावित्री ने एक बार झाँका तक नहीं। श्रीमोहन ठाकुर अवश्य दो-एक बार, और लगता है

वह भी पत्नी को बिना बताये संभवतः कचहरी से सीधे आये। पता नहीं क्या सोच कर कान्ता को अवश्य बुला भेजा और वही पूरे ब्याह में काकीमाँ और माँ का हाथ बँटाती रही। महीनों से बन्द पड़ा घर झाड़ा-पोंछा गया। पता नहीं क्या सोच कर माँ और बापू ने भी खोलकर गुनवंती के ब्याह का प्रबन्ध किया। बाड़े में हफ्ता तक बड़ा सा शामियाना तना रहा। शहनाई वाले नफीरी-नगाड़े वाले दिन भर बजाया करते। दीवारों पर नयी चित्रकारी की गयी। सभी को लगा कि पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने जितनी शान और उत्साह से अपने बड़े बेटे श्रीमोहन की शादी की थी लगभग वैसी ही तैयारियाँ इस बार भी हुईं। सावित्री तक खबरें पहुँचती और वह कहने में नहीं चूकती कि—बहना इसीलिए तो अलग होना पड़ा। कमा-कमा कर खोपर इनका टूटता था और घर दूसरे भरते थे। कान्ता के ब्याह में चाँदी की कील तक देते नहीं बनी। मैं तो जानती थी कि ये लोग मेरी जग-हँसाई करवाएँगे इसीलिए मायके का सहारा लेना पड़ा था।

और वे ही 'शुभचिन्तक' पड़ोसिनें बड़े उदारभाव से रास्ते में नमक मिर्च का पुट लगाकर शरो के सिरहाने बैठ धर्मयात्रा की भाँति परमार्थभाव से परोस देती सुनी जाती। ब्याह के दिनों में ऐसे 'परोपकारी-जीव' न हों तो बरसों तक स्मृतियाँ कैसे रहें? लेकिन शरो अत्यन्त उदास भाव से एक ही करवट लेटी तमाम ब्याह के शोर-शराबे में एक ही बात सोचती कि यदि 'वे' आज होते तो—क्या अपनी गुनी को इतने शृंगार में देख पुलकित न हो जाते? देखो तो कैसी निखर आयी है गुनी? दिन भर कठूटये (भाजन बनाने वाला बरतन) में रहने वाली गुनी—बेसन की पीठी से नहा करके कैसे कंचन हो गयी है? लगता है अपने घर जाकर थोड़ी-सी सुख-सुविधा में खूब निखर जाएगी। कोई भला पहचान सकता है इसे? मेरे सिरहाने दिन-दिन भर बैठी अपनी ही कोख जन्मी बेटी के रूप को जब मैं ही नहीं देख सकी थी तो भला दूसरे की क्या बात? कैसे ओंठ हैं भींच जाने कितनी बातें ओंठों में गिरी-गिरी पड़ रही हैं। पहले नहीं तो उसके आँसू आँखों से फूट निकले। बापू और माँ का ऋण तो वह किसी भी जन्म में नहीं उतार पाएगी कैसे देवता से सास-ससुर पाये हैं उसने। देवता तो वे भी हैं, लेकिन दूर देश के।

कितना शरो ने चाहा कि उठकर वह भी बेटी के ब्याह में खूब काम करे। चारों ओर काम में व्यस्त औरतों को आते-जाते देखती तो उसका कितना मन होता कि वह भी जाए और देखे कि क्या क्या बन रहा है? कितना-कितना मन

रहा है ? कान्ता को जब वह भण्डारे से सामान देते देखती तो कितना अच्छा समझा कि सर्वा कितनी तेजी से बड़ी लगने लगी है। पूड़ियाँ छानने की मिठाइयों की गंध ही गय उसकी नाक के पास मँडराती होती। कभी गनी का के बाहर शहनाया जा रहा है—गीत हो रहे हैं तो फूलमालाएँ आ रही हैं। दोने-पत्तावली वाला गट्ठर ला रहा है। आज ग्रह-शान्ति हो रही है तो कल घट की स्थापना हो रही है। आज यदि वे होते तो क्या उनके साथ 'ग्रह-शान्ति' करवाने में वह नहीं बैठती? विवाह के समय जैसे पल्लू बाँधे गये थे वैसे ही इस बार बाँधे जाते। 'ग्रह-शान्ति' के समय वह नीचे गयी थी। सासूजी और ससुर जी कैसे अच्छे लग रहे थे न पल्लू बाँधे ? इन बच्चों ने तो पूरा घर सिर पर उठा लिया है। हवन से घर कैसा गमक रहा है ? वह ज्यादा देर बैठ भी तो नहीं सकती नहीं तो और कुछ नहीं तो तरकारियाँ ही कटवा देती। लेकिन देखो न कि इस सारी व्यस्तता में भी कान्ता काकी माँ का पथ्य अपने हाथ से तैयार करना नहीं भूलती। कितनी प्रसन्न है वह। कैसे दौड़ दौड़ कर सारा घर सम्हाले हुए है। क्या मजाल जो कोई चीज इधर की उधर हो जाए। बाहर जितने पान जाएँगे कत्था चूना सुपारी सब हिसाब से दे दिया जाता है। चाँदी के वर्क कोई लाख माँगे वह तब तक नहीं दे सकती जब तक कि मिठाइयाँ बनकर उसके कब्जे में नहीं आ जातीं। मजाल क्या जो परोस की पत्तलों में गड़बड़ी हो जाए। गुनी के साथ तो वह ऐसे बातनी है जैसे उससे बहुत बड़ी हो। वह नहाकर कौन सी साड़ी पहनेगी इसका निर्णय कान्ता के अलावा और कोई नहीं कर सकता था। उसके ब्याह में कैसी साड़ियाँ दी जानी चाहिए इस पर वह बापू तक से लड़ गयी थी और सबको उसका कहा मानना पड़ा था। जिस कोठार में दहेज का सारा सामान रखा गया है उसकी चाभी तो उसने अपने मंगलसूत्र में बाँध रखी है। क्या मजाल जो मक्खी भी फटक सके उसमें।

लेकिन सरो का साहस नहीं पड़ा सासू माँ से यह पूछने का कि यह इतना सारा प्रबन्ध कहाँ से हो रहा है ? अगर कहीं से लेकर किया जा रहा है तो इस सबकी क्या आवश्यकता थी ? माना कि बापू और माँ के मन में यह बात तो नहीं है कि उनके हाथ से पहली बार पोती की शादी हो रही है इसलिए इतना का मलाल हो गया है लेकिन तो उसकी गुनी किसी से हेठी नहीं रहेगी न ? कान्ता का ब्याह भी यदि यहीं से होता तो वह भी जी जान से काम करती। कान्ता के लिए उसके मन कोई दुराव कभी था ही नहीं। भगवान ने ऐसा बहनों को अच्छे घर दिये। लेकिन क्या मामीजी कभी एक बार भी नहीं आ सकती थी ?

बारे पराये लोगों के पूछ-पूछ कर मुँह सूख रहे हैं लेकिन इन महारानीजी को पता नहीं किस बात का इतना गम्भीर है ?

आज ही तो बारात आने वाली है ? लोगों की किचकिच में सुनायी भी तो नहीं पड़ता। इन लड़कों से पूछो कि कितनी देर है बारात आने में तो बस मामत फिरसे और कोई जवाब नहीं देंगे। गोरस के लगन हैं न ? यहाँ बाड़े में मण्डप बनाया गया है ? ठीक भी तो है, कल सबेरे चँवरी (भाँवर) भी यहीं होगी और क्या यहाँ इतनी जगह भी नहीं है ?
लगन के समय कान्ता नहीं मानी और एक गाव तकिये के सहारे से बाकर सरो को बैठाल ही दिया। दूल्हा तो खूब सुन्दर है। जो पोशाक 'इनको' सौरों से मिली थी वही तो मुन्नी के दूल्हा को पहनने को दी गयी है। वैसे ही श्लोक बोले जा रहे हैं। कान्ता मुन्नी की बामें कैसे उसके कान में कुछ-कुछ बोलती जा रही है। पुरोहित की कोई सुन भी रहा है ?
—गायत्री सावधान !!
—ठीक-समय सावधान !!
—मंगलगानी सावधान !!
—वर-वधू सावधान !!

और बाजेवाले मंगलाचार के लिए स्त्रियाँ एकदम तैयार हैं। जैसे ही 'अन्तर-पट' हटाया जाएगा और पुरोहित—'चौबीस घड़ी सावधान' कहेगा तथा वर-वधू के हाथ मिलाएगा कि बाजे गायन सब एकदम गा उठेंगे। मौनों की चावल की वर्षा होने लगेगी और मुन्नी उसकी बेटी दूसरे की हो जाएगी। लो और 'चौबीस घड़ी सावधान' हो गया। कुछ भी तो अब सुनायी नहीं दे रहा है। चारों ओर से औरतों-आदमियों की भीड़ के मारे कुछ दिखायी भी तो नहीं पड़ रहा है। चलो अच्छा हुआ सौरों से पिता जी माता जी भी आ गये। बात रह गयी सबकी वर्ना जाने क्या-क्या कहा जाता।

भूमा धर्मशाला (गुजराती ब्राह्मणों के सार्वजनिक भोजन का स्थान) में

खूब अच्छा प्रबन्ध था ? चार पंगत (पंक्तियाँ अथवा बार) पड़ीं तब कहीं जाकर सब भोजन कर सके। कितना चाहती रही वह कि जाती और देखती कि उसकी बेटी के ब्याह में कैसा प्रबन्ध था धर्मशाला में। वह अपने बिस्तरे पर लेटी-लेटी सोचती रही कि सब लोगों ने उन बड़ी तांबे की कोठियों से अपने अपने लोटों से पैर धोये होंगे। कैसे रंगोली (रंगावली) के दोनों ओर बैठे होंगे। अगरबत्तियाँ जल रही होंगी। पत्तलें परस जाने पर बापू ने चाँदी के कटोरे में घुले केसर-चन्दन में सोने की पेन से लोगों के माथों पर तिलक लगाया होगा। पान पर सुपारी और दक्षिणा रखी होगी उसके बाद हाथ जोड़ कर कैसे 'नमः पार्वतीपते हर हर महादेव' कहा होगा और पूरी धर्मशाला ने भी यही कह कर भोजन आरंभ किया होगा। दूल्हे के लिए अलग से प्रबन्ध किया होगा और कितनी दक्षिणा माँगी गयी होगी देनी पड़ी होगी। कान्ता अभी-अभी कह रही थी कि एक हजार एक की दक्षिणा माँगी 'जमाई जी ने और कैसे तब सोरों वाले नाना जी ने बात सम्हाल ली और एक सौ एक जब दिया गया तब भोजन आरंभ हुआ।

एकान्त भी था सरो अपनी माँ को देख कर खूब रोयी। बरसों से माँ-बेटी नहीं मिली थीं। दोनों ने बातों से जी हल्का किया। सरो की माँ धर्मशाला नहीं गयीं। सासू माँ ने भी देखा कि यही मौका है जब बहू अपनी माँ से बातें कर सकती है और वे स्वयं धर्मशाला चली गयीं।

रात जब कान्ता और मामूमाँ लौटीं तो बारह बज रहा था। कान्ता ने ही बताया कि उसकी जिजी लगन में जरूर थी लेकिन धर्मशाला में नहीं आयी। दिन भर की धूप कान्ता का अपने पास बैठाए कर उसके शरीर पर हाथ फेरते उन्हें बड़ा सुख मिल रहा था। गुनी इस बीच लौट आयी थी। कपड़े बदल वह भी ऊपर

अरे पराये लोगों के पूछ-पूछ कर मुँह सूख रहे हैं लेकिन इन महारानीजी को पता नहीं किस बात का इतना मलाल है ?

आज ही तो बारात आने वाली है ? लोगों की किचकिच में सुनायी भी तो नहीं पड़ता। इन लड़कों से पूछो कि कितनी देर है बारात आने में तो बस भागते फिरेंगे और कोई जवाब नहीं देंगे। गोरज के लगन हैं न ? यहाँ बाड़े में मण्डप बनाया गया है ? ठीक भी तो है कल सवेरे चँवरी (भाँवर) भी यहीं होगी और क्या यहाँ इतनी जगह भी कहाँ है ?
लगन के समय कान्ता नहीं मानी और एक पाव तकिये के सहारे से लाकर सरो को बैठाल ही दिया। दूल्हा तो खूब सुन्दर है। जो पोशाक 'इनको' सौरों से मिली थी वही तो गुनी के दूल्हा को पहनने को दी गयी है। वैसे ही श्लोक बोले जा रहे हैं। कान्ता गुनी को पाये कैसे उसके कान में कुछ-कुछ बोलती जा रही है। पुरोहित की कोई सुन भी रहा है ?
—बाजन्त्री सावधान !!
—ढोल-नगारा सावधान !!
—मंगलगानी सावधान !!
—वर-वधू सावधान !!

और बाजेवाले भनभनाहट के लिए स्त्रियाँ एकदम तैयार हैं। जैसे ही 'अन्तर-पट' हटाया जाएगा और पुरोहित—'चौबीस घड़ी सावधान' कहता तथा वर-वधू के हाथ मिलाएगा कि बाजे गायन सब एकदम गा उठेंगे। खीलों की चावल की वर्षा होने लगेगी और गुनी उसकी बेटी दूसरे की हो जाएगी। लो और 'चौबीस घड़ी सावधान' हो गया। कुछ भी तो अब सुनायी नहीं दे रहा है। चारों ओर से औरतों-आदमियों की भीड़ के मारे कुछ दिखायी भी तो नहीं पड़ रहा है। चलो अच्छा हुआ सौरों से पिता जी माता जी भी आ गये। बात रह गयी सबकी वर्ना जाने क्या-क्या कहा जाता।

सुना धर्मशाला (गुजराती ब्राह्मणों के सार्वजनिक भोजन का स्थान) में

खूब अच्छा प्रबन्ध था ? चार पंगत (पंक्तियाँ अथवा बार) पड़ीं तब कहीं जाकर सब भोजन कर सके। कितना चाहती रही वह कि जाती और देखती कि उसकी बेटी के ब्याह में कैसा प्रबन्ध था धर्मशाला में। वह अपने बिस्तरे पर लेटी-लेटी सोचती रही कि अब लोगों ने उन बड़ी ताँबे की कोठियों से अपने अपने लोटों से पैर धोये होंगे। कैसे चौगोजी (रंगावली) के दोनों ओर बैठे होंगे। अगरबत्तियाँ जल रही होंगी। पत्तलें परस जाने पर बापू ने चाँदी के कटोरे में घुले केसर चन्दन में सोने की चेन से लोगों के माथों पर तिलक लगाया होगा। पान पर सुपारी और दक्षिणा रखी होगी उसके बाद हाथ जोड़ कर कैसे 'नमः पार्वतीपते हर हर महादेव' कहा होगा और पूरी धर्मशाला ने भी यही कह कर भोजन आरम्भ किया होगा। दूल्हे के लिए अलग से प्रबन्ध किया होगा और जितनी दक्षिणा माँगी गयी होगी देनी पड़ी होगी। शान्ता अभी-अभी कह रही थी कि एक हजार एक की दक्षिणा माँगी 'जमाई जी' ने और कैसे तब सौरों वाले मामा जी ने बात सम्हाल ली और एक सौ एक जब दिया गया तब भोजन आरंभ हुआ।

एकान्त भी था सरो अपनी माँ को देख कर खूब रोयी। बरसों से माँ-बेटी नहीं मिली थीं। दोनों ने बातों से जी हल्का किया। सरो की माँ धर्मशाला नहीं गयीं। सासू माँ ने भी देखा कि यही मौका है जब बहू अपनी माँ से बातें कर सकती है और वे स्वयं धर्मशाला चली गयीं।

रात जब शान्ता और सासू माँ लौटीं तो बारह बज रहा था। शान्ता ने ही बताया कि उसकी जिठानी लगन में जरूर थीं लेकिन धर्मशाला में नहीं आयीं। दिन भर की थकी शान्ता को अपने पास बैठाल कर उसके शरीर पर हाथ फेरने उन्हें बड़ा सुख मिल रहा था। गुनी इस बीच लौट आयी थी। कपड़े बदल वह भी ऊपर

आयी। नानी जी ने उसे अपने से सटा लिया। कान्ता सरो से ऐसा कतरा रही थी और गुनी नानी जी से।

ब्याह हो गया।

सभी ने कहा कि गुनी को 'दान-दायजा' खूब मिला। घर के बीस तोले सोने के अलावा ननिहाल की तरफ से पाँच तोले सोने का हार मिला। कान्ता ने अपनी तरफ से (बिना अपने माता-पिता को बताये) पाँच तोले की चूड़ियाँ जमाईजी के लिए सोने के बटन दो-दो जोड़ कपड़े दोनों के लिए दिये। कन्यादान के समय सावित्री आयी थी और तोले भर के कान के फूल दिये। नकद रुपया करीब ढाई हजार के हुआ। बड़े-छोटे पीतल-चाँदी के बर्तन दिये गये। कई जोड़े रेशमी-सूती कपड़े दिये गये। लड़के के पिता मोतीलाल रावल ने दिखाया तो यही कि उन्हें सन्तोष हुआ लेकिन सावित्री ही कहती पायी गयी कि रावल जी कह रहे थे कि वे ठगा गये इतना तो वे किसी गामाठ के घर बरात लेकर जाते तो भी पा जाते। अब तुम जानो बहना! कि वकील साहब तो समझे थे कि कान्ता को जितना मिला उतना नहीं तो आधा मिलेगा ही।

न सही बाग-बगीचा तो दस-पाँच हजार नकद और सौ-डेढ़ सौ तोला सोना तो मिलना ही।—अब भला बताओ कहाँ कान्ता और कहाँ गुनी? अरे बड़े घर में बेटी ब्याह देने से ही क्या होता है? जब लड़की दो बर्तन लेकर ससुराल जाएगी तो लोग मायने (इज्जत) में पूछेंगे नहीं कि लड़का तो बालिस्टर लोर्येगे और लड़की—नकटी-बूची देंगे है न? अरे, अपनी बराबरी के साथ ब्याह-शादी करने से निभ जाता है। देखना गुनी की सास को मैं जानती हूँ ग्यास उज्जैन के भागसीपुरे के मुच्छड़ी लालों के घर की बेटी है—डकार तक नहीं लेगी और कंठ तक पानी से भुलका-भुलका कर जान न ले ले तो मेरा नाम बदल देना।—अरे कान्ता के लिए कैसे गिड़गिड़ाये थे नहीं रावलजी लेकिन बहना! हमारे बापूजी ने तो सुनकर कान पर हाथ धरा कि ना बाबा ऐसे जल्लादों के यहाँ लड़की देने से तो भला है किसी कसाई को दे दें। अरी फूलकुँवर! क्या बताएँ दिखाने का हमें जनम से कर्णफूल भी देने पड़े। यह जो पूरा दान-दायजा तुम्हारे सिरस्तेदार साहब ने दिया था सब थोड़े ही समझने कि यह सब हमने किया। क्या करें गाली बहन! मुझसे तो घर खानदान की इज्जत नायक मिट्टी देखी न जाए। पूरा अट्ठारह तोला सोना निकाल कर दिया तब जाकर कहीं कन्यादान में यह चमक आ पायी।

और उन्हीं परमार्थप्रिय शुभेच्छुक बहनों ने सरो को बता देना अपना पुनीत कर्तव्य

समझा और सावित्री का आत्मसन्तोष का उद्देश्य पूरा हुआ। लेकिन मलाल यह रह हो गयी कि किसी ने इतने सुनने पर भी कोई टीका-टिप्पणी नहीं की। मात्र कान्ता गुस्सा हुई यह सूचना मिलने पर सावित्री देवी अन्दर में डर गयीं।

सब लोग पुनी को छोड़ने स्टेशन गये हैं। दो-एक महरिया के बाकी सब लोग गये हुए हैं। कान्ता और मामूली का सरो ने जबरन भेजा। वह काफी देर तक छतवाली खिड़की को आधा बन्द कर आड़ से देखती रही कि कैसे पुनी की पालकी कहारों ने उठायी जिसमें दुल्हा-दुल्हन साथ बैठे हुए थे। बराती सब पहले ही जा चुके थे। कान्ता जिस समय पुनी को चढ़ा रही थी सरो ने घूँघट में सिसकती पुनी को फिर भी समझ ही लिया कि वह रो रही है। जब तक मेरी (गली) में पालकी दिखती रही सरो की आँखें पीछा करती रहीं और उपरान्त सरो फूट फूट कर रो उठी।

बिस्तरे पर टूटी ऐसे ही पड़ी रही। जाने क्या-क्या आँखों के सामने आता रहा। पुनी कभी पालने में सोयी लगती है। कैसे वह मिट्टी खाया करती थी। अपने बाबा के पास कोई किताब लेकर कैसे चुपचाप बनी रहती थी और वे भी कितना मानते थे। एक बार अपने बाबा की नकल उतार रही थी और वे स्कूल से आ गये थे। पुनी झेंप गयी थी लेकिन उन्होंने उसे नकल करने के लिए कहा और सब कितने हँसे थे? पुनी को बरसों तक मामूली लड़कों के कपड़े पहना कर अपने साथ मन्दिर जी ले जाया करती थी। कभी उसे याद नहीं कि उसे कोई चीज मिली हो और भाई-बहिन को छोड़कर खायी हो उसने। पुनी तो बिल्कुल उन्हें पर पड़ी है। धीरे-धीरे कैसे शान्त गम्भीर होती चली गयी। बड़े होने पर सब के लिए कितना ममत्व था उसमें। कभी किसी ने उसे जोरों से बोलना नहीं सुना होगा। जाने कहाँ से इतनी सुशील हो गयी थी अपने आप। कभी उसके बचपन की आहट तक नहीं आती। अपनी जिज्जी की बीमारी के बाद से तो पूरा घर सम्हाल लिया था। उसकी पढ़ाई छूट गयी लेकिन एक बार भी कभी जिद नहीं की कि नहीं वह आगे पढ़ेगी। कैसे चुपचाप सारी वस्तुस्थिति समझ गयी।

गुनी तो जैसे घर की पलकें थी कि जिसका झपना तक मालूम नहीं होता था—और आज वही सोने सी बेटी पराओं के घर चली गयी। अब जब कभी वार त्योहार होगा और आएगी भी तो एक अतिथि के रूप में।

सरो का कलेजा मुँह को आने लगा।

जैसे गुनी रोती हुई उससे लिपट गयी थी। बोल नहीं फूटा पड़ रहा था। उसकी आँखें मौन सब बता गया कि जिजी! अपना ध्यान रखना। बाबा की प्रतीक्षा गुनी तो इस घर में कर नहीं सकी लेकिन जिजी को करनी है। जैसे वह आँसुओं वाली आँखों से घर की एक-एक वस्तु को अपने अन्तर में पी ले गयी।

सरो ने अपने से अलग करते समय अनुभव किया कि गुनी को वास्तव में तो आज अपने पेट से अलग किया। तभी तो नारी का जन्म दोबार होता है वही वास्तव में द्विज होती है न कि ब्राह्मण। नारी के इस रूप को द्विजत्व को अन्य नहीं समझ सकता। पुरुष तो मात्र फेन है जड़हीन। दम्भ चाहे जितना वह भर ले—स्वामित्व का नारायणत्व का परमपद का लेकिन नारी के समकक्ष वह नगण्य है। इसीलिए भोग और उसका दुःख भी नारी का ही भाग है। पुरुष शिला पर की बूँद है। जब कि नारी वह बूँद जिस पर गिरा है।

गुनी क्या चली गयी सारा घर रिता गया था। लगता था कि जैसे उसने घर तथा परिवार के लोगों को बहुत कुछ भर रखा था। महीनों ब्याह की चर्चा अनेक तरह से होती रही। कहीं न कहीं पंडित श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी को सन्तोष था कि उन लोगों के हाथों से गोमती का जो ब्याह सम्पन्न हुआ था वह कुल की मर्यादा के अनुरूप ही हुआ था। दोनों को ही लगा कि इस ब्याह के द्वारा श्रीमोहन तथा उनकी भाग्यवान पत्नी को करारा जवाब दिया जा सका था। यद्यपि इसमें वे दोनों बिल्कुल ही खाली हो गये थे। उन्हें अब केवल

सुशीला की और चिन्ता थी बाकी तो बेवकूफ लड़का था। दोनों एकान्त में बैठे भीतर की चर्चा करते कि कहो कैसा निर्मोही निकला कि न पत्र न कोज-खबर। बेचारी बहू का क्या हाल हो गया इसके पीछे। रोग तो जैसे पाँव तोड़ कर बैठ गया है जाने का नाम ही नहीं लेता है। गुनी के ब्याह के बाद से तो सरो और भी बीमार रहने लगी थी। खाँसी का दौरा पड़ते ही घंटों खाँसा करती है जैसे मुँह के रास्ते अन्दर का सब कुछ निकल आना चाहता है। गुनी तो सब कुछ समझती थी इसलिए सरो के सारे बर्तन छुआछूत सबकी वही देखभाल करती भी थी। सुशीला अभी इतना समझती भी नहीं थी और स्कूल जाती थी। बेचारी माँ को घर भर के कपड़े तथा भोजन आदि का सारा काम सम्हालना पड़ता था। सुशीला हाथ बँटाती थी फिर भी माँ पर बोझ आ ही गया था। सरो कभी-कभी तो किसी का कहना सुने बग़ैर कपड़े धोने बैठ जाती। खारा पानी पहले तो गुनी ही लाती थी लेकिन अब मीठे पानी के साथ-साथ खारा पानी भी मोल का ही मरवाया जाने लगा। तीसरे पहर जब सारा काम निपट जाता तो माँ सरो के पास आ बैठतीं, कभी 'भागवतजी' पढ़ी जाती या 'सूर-सागर' के पद ही माँ गुनगुना कर सुनाती जातीं और सरो उनके अर्थ करती जाती। किसी दिन सीना पिराना किया जाता या फिर कोई बात ही निकल पड़ती। सरो अनेक बार पूछने को होती कि आखिरकार गुनी के ब्याह का धन आया कहाँ से? लेकिन सरो को लगता कि ऐसा पूछ कर कहीं वह सासूमाँ का अपमान तो नहीं कर देगी? क्योंकि उसे पूरा विश्वास था कि कर्ज तो नहीं ही लिया गया था। तब यह पैसा कहाँ से आया? घर में जमा-पूँजी यदि थी तो वह क्या उसे नहीं मालूम? और वह अपने ही तर्क-वितर्क में उलझ जाती तथा चुप बनी सासूमाँ की बातें सुनती।

गुनी जब से गयी तब से सिवाय एक पत्र के कोई नहीं आया जो कि उसके ससुर ने बापू के नाम भेजा था कि वे लोग सकुशल घर पहुँच गये हैं। गुनी के पत्र की आशा ही नहीं की जा सकती थी लेकिन उसके ससुर को छह माह बाद भी तो कोई और पत्र भेजना चाहिए था? और फिर यहाँ से जो पत्र गया उसका भी कोई जवाब नहीं। श्रावण में माना था कि ब्याह के तुरन्त बाद कई कारणों से नहीं भेजा तो राखी पर तो गुनी को वे लोग भेजेंगे ही लेकिन उसकी सास ने नहीं आने दिया। देखें दशहरे-दिवाली पर भी भेजते हैं कि नहीं। कैसा बर्ताव है

थे लोग कि गुनी को सावनी भेजी गयी तो उसका भी कोई जवाब नहीं आया। पता नहीं बेचारी गुनी का क्या हाल है? अब कैसी लगती है? पहले से वह भर गयी होगी न? बस यही चिन्ता है कि उसकी सास जरा तेज स्वभाव की है। वैसे गुनी तो बिल्कुल गऊ है जितना पानी पिलाओगे उतना ही पिएगी। अपनी ओर से तो कभी कोई शिकायत का मौका नहीं देगी। लेकिन देखो क्या होता है?

और एक दिन नारायण बाबू ने बताया कि पिछले दिनों इन्दौर गये थे तो रावल जी के यहाँ भी गये थे। गुनी मिली थी। कुछ बीमार सी लगी थी। क्या इस बारे में कोई पत्र आया था? गुनी से उन्होंने पूछा तो वह तो बस उदास फीकी हँसती रही और बोली कुछ नहीं काका जी! थकी हूँ इसलिए ऐसा रूप लगा होगा आपको—नहीं लेकिन उन्हें लगा कि गुनी झूठ बोल रही है। शायद इसलिए भी कि उसकी सास वहीं बैठी हुई थी। जब उन्होंने पूछा कि कब आओगी? तो उसकी सास ने जो गोल-मोल कहा उससे तो नहीं लगता कि वे निकट भविष्य में उसे भेजेंगे।

नारायण बाबू की बात सुन माँ तो सन्न रह गयीं। गनीमत हुई सरो ने सारी बातें नहीं सुनीं। उन्हें पहले ही खटका था कि गुनी की ससुराल से कोई चिट्ठी पत्री खोज-खबर कुछ भी नहीं थी। उसकी सास के बारे में वे अजीब-अजीब बातें इन दिनों सुन चुकी थीं कि अपनी देवरानी को उसने कसाई से भी अधिक निर्ममता से मारा था। बेचारी से पानी भरवाने से लेकर खाना बनवाना घर का सारा पीसना-कूटना कपड़े धुलाना आदि करवाती थी और वह मरते मर गयी लेकिन उसे मैके नहीं जाने दिया गया। कहीं यह जल्लाद गुनी के साथ तो ऐसा ही नहीं करने वाली है?—और यह सोचकर वे काँप गयीं। अजीब उद्विग्नता थी कि किसे इन्दौर भेजा जाए और गुनी का हालचाल लावे। अब इनसे अगर कहा जाएगा तो घबरा जाएँगे और उदास होकर गुमसुम हो जाएँगे। घर में दूसरा कोई और है नहीं। श्रीमोहन जाएगा ही क्यों? और वह सावित्री महारानी जाने ही क्यों देगी?

रात जब पति लौटे तो सारी बातें उन्हें सुनायीं जो नारायण बाबू सुना गये थे। वे भी सुनकर सन्नाटे में आ गये। रात भर पति-पत्नी करवटें बदलते रहे लेकिन नींद न आयी। सवेरा होते ही पहला काम किया कि गुनी के ससुर को पत्र लिखा और पूछा कि ब्याह के बाद लड़की घर नहीं आयी है सब उससे मिलना चाहते हैं वे बताएँ कि कब उसे लिवाने आएँ।

सरो को बातों की आहट अवश्य मिल गयी लेकिन अनेक कामिनियों की जैसे वह दब जाती है वैसे ही वह खून का घूँट पीकर इस बारे में कुछ भी पूछना टाल गयी। प्राण क्यों अमंगल ही घटते हुए लगता कि जैसे गुनी कहीं दूर किसी अँधेरे कोने में खड़े रो रही है। वह विह्वल हो जाती सासूमाँ से पूछने को कि गुनी की ससुराल से कोई चिट्ठी-पत्री आयी? गुनी के हालचाल कुछ मालूम हुए? लेकिन वह सूनी आँखों से पुरानी तस्वीरों में बने मकड़ी के जालों को हवा में हिलता देखती रहती। वह अब भाग्य से हार मान चुकी थी। कोई ऐसा नहीं था जिसके कंधे पर सिर रख या जिसे अपने से सटा कर रो सके ताकि वह हल्की हो जाए। वह जानती थी कि जिस दिन भी वह सासूमाँ के सामने कमजोर होकर बात करेगी सासूमाँ का कलेजा फट जाएगा। क्योंकि सासूमाँ गुनी को उससे कहीं अधिक प्यार करती हैं। गुनी उसके लिए तो मूक मन ही थी लेकिन सासूमाँ के लिए तो वह प्राण थी। और वह भी ऐसे मूलधन का कि जो अब जाने कहाँ है?

सबको बड़ा आश्चर्य हुआ जिस दिन गुनी के ससुर का पत्र आया कि पंडित दीनानाथ ठाकुर ने उन लोगों के साथ बड़ा धोखा किया। ब्याह में दस हजार रुपया और सौ तोले सोने के देने की बात थी। क्योंकि उसी पैसे से तो बालकृष्ण को बैरिस्टरी के लिए विलायत भेजा जाना था। और इस बात का इकरारनामा हो चुका था और जाति के पाँच आदमी भी गवाह हैं। वे गुनी को तभी भेजेंगे जबकि इकरारनामे की शर्तें पूरी होंगी। उन्हें क्या मालूम था कि उनके एकमात्र लड़के का विवाह इतना साधारण किया जाएगा। यदि तीन महीने में बाकी का रुपया और सोना नहीं मिला तो वे अपने लड़के की दूसरी शादी कर देते।

इतनी बड़ी बात भला घर में किससे छिपी रह सकती थी? पंडित दीनानाथ ठाकुर को तो जैसे लकवा मार गया। सास और बहू दोनों जड़ हो गयीं। दो दिन किसीने कुछ खाया ही नहीं। सुशीला और बचपन के लिए कुछ बन गया। इस

दो दिनों में सरो तो जैसे हड्डियाँ भर रह गयी थी। कौन किसे और क्या सान्त्वना देता ? तीसरे दिन बड़े सवेरे पंडित श्रीनाथ ठाकुर नारायण बाबू से परामर्श करने छावनी गये। पंडित श्रीनाथ ठाकुर का कहना था कि उन भाण्डारों को रुपया और सोना कहीं से प्रबन्ध कर दिये जाएँ ताकि गुनी पर कोई सौत न आ जाए। लेकिन नारायण बाबू का कहना था कि इस बात का क्या प्रमाण कि वे इतने से ही चुप हो जाएँगे ? आज यह झूठ बोल रहे हैं तो कल दूसरी झूठ भी बोल सकते हैं। रावल जी पैसे के लिए संसार का कोई भी पाप कर सकते हैं। नारायण बाबू ने आश्वासन दिया कि दो-एक दिन में ही वे इन्दौर जाएँगे और पता लगाकर आएँगे। नारायण बाबू रावल जी से मिलें यही तय हुआ।

वैसे श्रीमोहन को सावित्री ने कानों-कान खबर नहीं होने दी थी और गुनी की सास तक यह खबर पहुँचा दी गयी थी कि वे ठगा गये। अगर थोड़ा और टालें तो आज भी उन्हें दस हजार गुनी के घरवालों से मिल सकता है। भला जाति में बालकृष्ण के बराबर कौन पढ़ा है ? उसका सम्बन्ध तो दस हजार क्या कितने ही हजार का आज हो सकता है। उधर सावित्री ने इन्दौर में अपनी बहन को लिखा कि क्यों नहीं वह अपनी बड़ी लड़की के लिए बालकृष्ण की माँ को तैयार करती ? गुनी से ज्यादा पढ़ी लिखी भी है लड़का भी बैरिस्टर हो ही जाएगा दो-एक हजार ले-देकर बात पक्की कर लो। भगवान ने चाहा तो गुनी या तो अपने घर लौट जाएगी नहीं तो उसकी सास कई रास्ते जानती है कि कैसे रास्ते का काँटा दूर किया जाता है। और मान लो अगर यह सब कुछ नहीं हुआ तो हमारी लड़की को सब बता ही दिया जाएगा कि सौत के साथ क्या किया जाना चाहिए।

नारायण बाबू अपना सा मुँह लिए लौट आये। रावलजी ने एक बाहर के

व्यक्ति से घरेलू मामला में बातें करने से साफ इन्कार कर दिया बल्कि इस बार गुनी को उनसे मिलने भी नहीं दिया गया। लेकिन अड़ोस-पड़ोस से वे यही मालूम कर सके कि रावलजी की बहू की रोज पिटाई होती है। और यह बात उनके यहाँ का धोबी, दूधवाला, बर्तनवाली सब जानते हैं कि बहू को खम्भे से बाँध कर या खाट से बाँधकर मारा जाता है और वह कोठरी में बन्द पड़ी रहती है। दो-एक महाराजिनों से तो जब देखा नहीं गया तो वे काम छोड़-छाड़कर चली गयीं। रोज बहू का ठेठ मार कर जला देने की धमकी दी जाती है कि क्यों नहीं वह अपने घर से बाकी के रुपये और सोना मँगवाती है? उसे बार-बार कहा जाता है कि उसकी माँ चरित्रहीन थी तभी तो उसका बाप घर छोड़कर भाग गया है। उनको धोखा दिया गया और एक चरित्रहीन की लड़की उनके घर में आ गयी है।

नारायण बाबू ने लौटकर यही पूछा कि क्या गुनी की कोई चिट्ठी विट्ठी आयी? और जब मालूम हुआ कि नहीं आयी तो उन्होंने यही सलाह दी कि ज्यादा अच्छा हो कि वे लोग जल्द ही गुनी को कुछ दिनों के लिए जाकर लिवा लाएँ। इसके अलावा न अपने अपमान की और न ही छाओं से सुनी बातों की कोई चर्चा की। लेकिन जाने कैसे लोग नारायण बाबू की मन्तर तक पढ़ ले गये। यही तय पाया कि बापू और माँ दोनों ही जाएँ और गुनी को लिवा ले आएँ।

रावल जी पहले तो गुनी को मिलने भी नहीं देना चाहते थे लेकिन दो दिनों की बहस के बाद गुनी को मिलने दिया गया। बापू और माँ दोनों ही गुनी को देखकर रो उठे। उन्होंने रावल जी और उनकी पत्नी की चिरौरियाँ कीं कि उनकी लड़की को कुछ दिनों के लिए भेज दिया जाए लेकिन वे तैयार न हुए। अन्त में जब पंडित दीनाथ ठाकुर ने रावलजी के पैरों पर पगड़ी रख दी तो इस बात पर गुनी को भेजा गया कि वह तभी इस घर में आ सकेगी जबकि बाकी की रकम तथा सोना साथ लाएगी और रावल जी एक महीने तक ही प्रतीक्षा करेंगे वर्ना वे बालकृष्ण की दूसरी शादी कर देंगे और गुनी इस घर की तब बहू नहीं मानी जाएगी।

अत्यन्त पराजित होकर बापू और माँ पैरों से पगड़ी तथा अपनी गुनी को लेकर घर लौटे। रास्ते भर वे सोचते रहे कि ऐसी गुनी को देख मरो का क्या हाल होगा? अभी कुछ ही महीनों पहले जिस गुनी को खाने से लादकर डोली पर बिठाकर लक्ष्मीरूपा बनाकर उनके ससुराल भेजा था आज वह अपने घर परित्यक्ता रूप में दोनों पैरों से लँगड़ी बनी देह पर मार के अनगिनत चिह्न लिये अर्ध-विक्षिप्त सी लौट कर आ रही थी।

सरो देखेगी तो उसका क्या हाल होगा ?

जब कि गुनी पागल बनी नहीं साथ रही थी कि ससुराल की अनन्त यातना के बाद भी वह जी रही थी। न भूख न मार, न गालियाँ न लांछन कुछ भी तो उसे तोड़ न सके थे। वह स्वीकृता ही कब हुई थी जो आज परित्यक्ता हो गयी ? वह तो वृक्ष का एक कम न थी जो टूट जाने की संभावना में चिपोरी गयी थी बस !!

नारायण बाबू, माँ और सरो की राय थी कि गुनी का अब किसी भी मूल्य पर वापस उन जाजवालों के यहाँ नहीं भेजा जाए। पंडित श्रीनाथ ठाकुर को अपनी पगड़ी उतार कर रायजी के चरणों में रखना काफी अखर गया था लेकिन क्या करते ? बेटी का प्रश्न था। गुनी को वापस न भेजने का अर्थ था कि एक तो हमेशा के लिए वह फिर वहाँ लौटकर नहीं जा सकती। दूसरे जो उसके ब्याह में इतना सारा खर्च किया गया था वह बेकार ही गया। रास्ता कुछ दूसरा दिख नहीं रहा था। वे जानते थे कि जब खाने से मोंढ़ी गुनी की यह हालत कर सकते हैं तो चाहे गंगा सोना लादकर अब साथ कर दिया जाए तो भी लंगड़ी बहू को वे अब स्वीकार नहीं करेंगे।

न तो इधर से ही और न उधर से ही गुनी को बिदाने-भेजने की कोई बात हुई और सबने सुना कि आते बैसाख में बड़ी बहू सावित्री की बहन की लड़की से बालकृष्ण का विवाह होने जा रहा है। पंडित श्रीनाथ ठाकुर को स्पष्ट हो गया कि गुनी की दुरवस्था का एक मात्र कारण उनकी बड़ी बहू ही है और उन्हें अपने बेटे बहू से अत्यन्त घृणा हो गयी।

और सबने यह भी सुना कि सावित्री ने अपनी भांजी के ब्याह में अपनी बहन को कानी कौड़ी भी ज्यादा नहीं देने दी तथा भरे ब्याह में सबके सामने रायजी की उमर इज्जत ले ली कि लड़का तो छिनकर है तथा यह भी कि रायजी की पत्नी ने अपनी देवरानी को डुबा दिया तथा अपनी पहली बहू को। इसलिए पंचों के सामने सफाई कर दी कि लड़की वालों को अब कुछ नहीं लेना-देना है। इसके अलावा उनकी लड़की पर यदि कोई आँच आयी तो ठीक न होगा। रायजी और उनकी पत्नी की हिम्मत नहीं हुई कि सावित्री देवी की किसी बात का उत्तर देते और नतीजा यह हुआ कि रायजी ने अपने लड़के से यही कहा कि वह बहू को लेकर विलायत बैरिस्टरी के लिए चला जाए।

इसके बाद गुनी के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता था। अब तो जो कुछ और जितना कष्ट था उसे सिवाय रेंग-रेंगकर पार करने के चारा ही क्या था? सिवाय स्वयं के उस ओर कोई बना या बसा नहीं करता था। सरो के लिए आज भी वह सब से लाड़ली गुनी थी। माँ ने परिस्थितियों से समझौता कर लिया था कि अब उन्हें दो की सेवा करनी है। बापू के लिए ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं था—गुनी यदि अलग हुई थी तो उसमें उनकी ही अव्यावहारिकता थी इसलिए वे जीवन भर अब और अपनी गुनी को लांछित न होने देंगे।

सरो की अन्तिम अब यही कामना थी कि या तो स्वयं न रहे या गुनी न रहे। क्योंकि वह गुनी को अलग अपमानित परित्यक्ता लांछित उपेक्षित नहीं देख सकती। क्योंकि जिसे चलना सिखाया आज वही विवश रेंग रही थी। वह गुनी को रेंगते देख दीवार से सिर फोड़ लेती कि हे भगवान! किस पाप का दण्ड है यह?

गुनी सब की प्रतिक्रिया अपने बाबा वाले कमरे की खिड़की के पास बिस्तर पर लेटी समझ रही थी। इसीलिए उसने अपने को सबसे काट लिया था। उन दिनों कहीं महीनों हो जाते थे बोले। सारी बातों का उत्तर वह फटी-फटी आँखों के अवाक्पन से दिया करती थी। किसी में साहस नहीं था कि उसके मौन को तुड़वाता। यदि उसने व्रत कर रखा है तो कोई यह पूछने का दुस्साहस नहीं करता था कि वह कब तक व्रत करेगी। कब खाएगी? पंडित दीनानाथ ठाकुर, जो कभी ऊपर नहीं आते थे अब वे कभी-कभी आकर गुनी के पास बैठ जाते और कथा-वार्ता सुनाया करते। गुनी वैसी ही फटी आँखों से सुनती। वे पूछते भी कि कैसी तबियत है? खाना क्यों नहीं खाती? तो वह मात्र मुँह फेर लेती और बापू तब उठ जाते।

पूरे परिवार में एक अजीब तरह की घुटन समा गयी थी। सब अपने-अपने ढंग से या तो बीमार, या वृद्ध हो गये थे या रोगी हो गये थे या उपेक्षित थे।

केवल सुशीला और देवव्रत बढ़ रहे थे। सुशीला बढ़ते हुए बड़ी हो रही थी और देवव्रत तेजी से घर वालों की उपेक्षा करते हुए निर्द्वन्द्व बड़ा हो रहा था। न वह घर में बसा रहा था और न ही स्कूल में। वह जिस रास्ते पर जा रहा था वहाँ से हटाने की क्षमता अब किसी में नहीं थी इसलिए वह कब आया और कब गया यह जान सकना कठिन था।

और एक दिन श्रीमोहन आया। माँ अँगनाई पर बैठी 'सूर-सागर' पढ़ रही थी। अभी दिया-बत्ती नहीं हुई थी। श्रीमोहन बरस-छह महीने में आ जाया करता था लेकिन इस बार तो गुनी के ब्याह के बाद एक बार और आया था और इस बात को भी डेढ़ बरस हो रहा था। माता-पिता दोनों ने ही मान लिया था कि श्रीमोहन अब उनके बेटे से अधिक अपनी पत्नी का पति है।

माँ ने दरवाजे के गलियारे में आहट सुनी और सिर उठाया तो देखा कि श्रीमोहन खड़ा है। सहसा कुछ समझ में नहीं आया कि आज वह कैसे भूल पड़ा? आकर वह भी अँगनाई पर ही बैठ गया। सुशीला किसी काम से रानीपुर से बाहर निकली तो दादाजी को देख उल्टे पैरों रानीपुर में लौट गयी। माँ ने किताब बन्द की उसे सिर से छुआया और रख दी। फिर चश्मा निकाल उसके घर में रखा। यह सब करते-करते बराबर सोच रही थीं कि आज किस मतलब से आया है?

—माँ! आज इतने बरस हुए कभी तुम छावनीवाले घर नहीं आयीं?

माँ इस अतिरिक्त स्नेह का कारण नहीं समझ पायीं।

—अपने घर आने के लिए कोई बुलाता थोड़े ही है ?
—अपना घर समझतीं तो तुम एक बार भी न आतीं ? तभी तो तुम्हारी बहू ने तुम्हें बुला भेजा है।
—बहू को इधर के परिवार वालों की सहसा चिन्ता कैसे हुई ?
—तुम तो माँ ! उसे हमेशा गलत समझती हो।
—देख भाई, अपनी घरवाली की वकालत क्यों कर रहा है यह बात जाने दे। इन सब ढोंग-धतूरों में क्या रखा है ?
श्रीमोहन फीका पड़ गया। माँ इतनी कड़ी हो गयी हैं उसे यह नहीं मालूम था।
—तुम भी कमाल ही करती हो क्या मैं हमेशा काम होने पर ही आता हूँ ?
—हमेशा तो भैया तू आता नहीं और सच कहूँ तो हमें उसकी कोई चाह भी नहीं। 'इनके' हाथ-पाँव ठाकुरजी बनाये रखें तो हमें किसीका मुँह जोहने की कोई जरूरत नहीं।
—यही आदत है तुम्हारी माँ ! कि तुम कभी भी हम लोगों को अपना नहीं मानतीं।
—हाँ रे बड़े गाढ़े समय में तुम लोगों ने घर वालों का साथ दिया है न कि तुम लोगों को हम अपना नहीं मानते।
—तुम लोगों ने तो कभी हम लोगों से कुछ कहा नहीं।
—तो क्या तू आज यही सब कहने आया है रे ?
—मैं तो असल में कई दिनों से सोचता रहा कि चलूँ मिल आऊँ।
माँ को श्रीमोहन का यह चिकनियापन कभी पसन्द नहीं था क्योंकि वे जानती थीं कि इसी तरह की बातें बनाकर यह अपने स्वार्थ की बातें किया करता है।
—मैंने तो माँ ! रामरत्नी को बड़ा फटकारा।
—देख भाई दिखाई करने की कोई जरूरत नहीं है। हमें मालूम है कि तू क्या है। तूने क्या कहा होगा यह सब बताने की आवश्यकता नहीं है। मैं जानती हूँ कि हम लोग तेरे लिए मर चुके हैं। हमें न तो इस बात की कोई शिकायत ही है तुमसे और न किसी बात की अपेक्षा ही। सबका अपना-अपना भाग्य होता है। तुम लोग जहाँ हो सुख से रहो। हम जैसे हैं हमें रहने दो। सहानुभूति दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं।
—जैसी तुम्हारी मर्जी माँ ! मैं तो श्रीवल्लभ की चिट्ठी की बात करने आया था।
—क्या खटपट हुई है अब तुम दोनों में फिर ?

—दुनिया में कोई कुछ कहे तुम्हारे खिलाफ तो मैं ही दोषी ठहरूँगा।

—क्या लिखा है चोखा-मास्टर ने चिट्ठी में ?

—अब तुम और बापू पढ़ लो।

—तब तो बाप-बेटे के बीच की कोई बात होगी। ठीक है। चिट्ठी चाहो तो रख जाओ और मिल लेना कल-परसों उनसे !

—माँ ! तुम इतनी कठोर हो गयी हो मेरे लिए ?

—क्या तुम्हें घर पहुँचने में देरी नहीं हो रही है ? कचहरी से ही न सीधा आ रहा है ?

—मेरी बात तुम फिर टाल गयीं।

—कचहरी में थक गया होगा। कुछ खा के तो पानी पी लेना।

और वे उठ गयीं। विशेष तो कुछ था नहीं। मिष्ठान्नी के ठोंग थे। वे ही ठोंग और पानी ले आयीं और उस व्यस्त बनी रहीं जिसमें कि श्री मोहन अधिक बातें न कर सकें। उन्हें अपने से ही वितृष्णा हो रही थी कि कैसे उनकी कोख से ऐसा पुत्र जन्मा ? लेकिन पुत्र था इसे कैसे अस्वीकारतीं ? वे ऊपर से कठोर थीं लेकिन तीन-तीन बेटों में से सामने तो एकमात्र यही दिख रहा था और वे हड्डियों तक में भीग उठीं। वे अपनी इसी कमजोरी को छुपाने के लिए छोटे-मोटे कामों की आड़ लेती फिर रही थीं। इसी पुत्र ने उन्हें तिरस्कृत किया था। अपनी पत्नी के सामने अपमानित किया था। उनकी बात पर लात मार कर अलग हुआ था। परिवार पर इतनी मुसीबतें आयीं लेकिन भूलकर भी कभी इसने नहीं झाँका बल्कि इसकी बहू ने गुनी का जीवन नरक कर दिया था। इसी की बहू के कारण उसके पति को एक बालक के पैरों पर पगड़ी रखनी पड़ी थी और यह उनका पुत्र होते भी सब चुपचाप देखता रहा सुनता रहा। खून नहीं खौल उठा ? यहाँ राटियों के लाले पड़े हुए हैं और इस रिश्वत से फुर्सत नहीं। दूसरा कोई होता तो वे धक्के मार कर बाहर कर देतीं लेकिन अपने ही जाये को क्या कहें ? तभी तो कहते हैं कि सन्तान के सामने ही हार मानी पड़ती है।

—अच्छा माँ ! यह चिट्ठी छोड़े जा रहा हूँ। कल शाम आऊँगा।

—सच भाई, शाम आने से कोई फायदा नहीं।

—मैं जानता हूँ माँ ! आखिरकार वे मेरे भी पिता हैं।

—सोचती तो मैं यही हूँ।

श्रीमोहन को माँ की इस बेरुखी पर ताप आ गया। वे जब कभी झुकने की चेष्टा करते रहे हैं तभी माँ ने ऐसा ही रुख अपनाया।

लेकिन माँ मां जानती रही हैं कि यह बेटा अपने किसी स्वार्थ के समय ही झुकने आता है। इसलिए इसका झुकना क्या अर्थ रखता है ?

माँ ने मनीषा से किसी दीवार से नीचे उतरवायीं और चश्मा लगा उन्होंने श्रीवल्लभ की चिट्ठी पढ़ी। वे भाव-विह्वल हो गयीं। अपने पैरों के नीचे से धरती खिसकती सी लगी। उन्हें लगा कि उनका रक्त-मांस ही उनसे विद्रोह करना चाहता है। वे विवश हो फूट-फूट कर रो उठीं। मनीषा ने माँ को रोते देखा तो वह दौड़ी गयी और किसी को खबर दे आयी। वह कराहती उठीं और किसी तरह मनीषा के कंधे का सहारा लेकर नीचे आयीं जहाँ कि बैठक पर सब बरामदे में बैठी थीं। सब को लग रहा था कि परिवार के लोग मानो उन्हें अपने से काट फेंकना चाहते हैं। वे सब बड़े सख्त हो गये थे जिनमें हृदय की धौंकनी भी सिरायें कोई भी स्पन्द रक्त नहीं देते और वे बाध्य थे कि सड़ते हुए मृत बन जायें ताकि आसानी से काट फेंके जा सकें।

सहसा सरो की समझ में नहीं आया कि वह सासूमाँ को क्या समझाए ? क्योंकि वही वह स्वयं को इस सारे दुर्भाग्य का कारण मानती है। जब कि सासूमाँ स्वयं का दावी गिनती है वर्ना जब वे बहू बनकर आयी थीं तो सभी ने उनके सौभाग्य से ईर्ष्या की थी कि इतने सम्पन्न ठाकुरघर में वे ब्याही गयी थीं। और आज देखते देखते ठाकुरघर की सम्पन्नता दो नालियों में बहकर चली गयी है तथा सूने स्थान में न केवल कीचड़ ही रह गयी थी बल्कि घिनौनी दुर्गन्ध आने लगी थी।

—किसकी चिट्ठी है सासूमाँ ?

—तुम्हारे देवर की।

—क्या लिखा है ?

—यह न पूछो बहू ! पूछो कि तुम्हारी जेठानीजी ने उससे क्या लिखवाया है।

—आखिर सुनूँ भी तो।

और माँ ने चिट्ठी पढ़नी शुरू की।

—लिखता है कि बापू ! अब आप लोग बूढ़े हुए। मैं वहाँ रहता नहीं। बड़े दादा अलग छावनी में रहते हैं। मँझले दादा का पता नहीं। पीछे से क्या न हो जाए। अच्छा हो कि अपने हाथ से ही आप तीनों का मकान में हिस्सा कर दें तथा जमा-पूँजी का भी साफ-साफ हिसाब आपके सामने ही हो जाए वर्ना पीछे से

उस मुँह इस तरह की बातें हों यह ठीक नहीं। सबके बाल-बच्चे हैं। आपको तो किसी के बच्चों में फ़र्क नहीं करना चाहिए। गुनी के ब्याह में आपने खर्च किया जाहिर है कि वह मंझले दादा की कमाई में से तो हुआ नहीं है। कहीं न कहीं घर की इस जमा-पूँजी के खर्च के बारे में हमें भी जानकारी होनी चाहिए थी। पता नहीं हम लोग इतना खर्च कर सकते भी थे कि नहीं? हम लोग तो आपसे दूर हैं इसलिए बहुत सारी बातें नहीं जान पाते हैं। मंझले दादा के परिवार को भी उनका हिस्सा मिल जाए तो वे लोग अपना खर्च उसमें से चलाएँ। हम लोगों के हिस्से में इतने आदमियों पर खर्च करना कहाँ तक ठीक है? बहुत सारा तो यों ही हाथ से निकल गया है रहा-सहा ही मिल जाए तो गनीमत है। और बापू! आप और माँ का खर्च ही क्या है? आखिर भी से आपका खर्च चलता ही है। न हो कभी बड़े दादा के पास रहें कभी यहाँ चले आएँ। आपके आशीर्वाद से ही हम लोग आज इस योग्य तो हैं ही कि अपने माता-पिता की सेवा कर सकें—आपका श्रीवल्लभ।

इस बार चिट्ठी सुनाकर वे विचलित नहीं हुईं बल्कि उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। गुस्से में उनके नथुने फूल उठे। उन्होंने सरो की ओर देखा जो एकदम निर्जीव सी फटी आँखों से जाने कहाँ कहीं नहीं देखती सी घूर रही थी। चिमनी का निर्जीव आलोक उसकी कनपटी के पास की उभरी नस के काँपतेपन को उभार रहा था। सरो जैसे साँस लेती लाश लग रही थी।

तभी बाहर की खट बोली। पंडित श्रीनाथ ठाकुर एक खास ढंग से कदम चलते थे और अन्दर आने के पूर्व एक खास ढंग से खाँसा करते थे ताकि बहू बेटियों के सामने वे सहसा न पहुँच जाएँ, पता नहीं वे लोग कैसी बैठी हों कैसी हों। मर्यादा बनी रहे इसके लिए स्वयं को मर्यादित होना पड़ता है। सरो को चेत हुआ और अनायास उसका हाथ घूँघट के लिए उठा और जाने किस अज्ञात स्फूर्ति से वह उठी तथा ससुर के आने के पूर्व ही जीने की तरफ बढ़ी। तभी उसने देखा कि जीने के ऊपर दरवाजे के पास बैठी विजयराये अजीब पगली सी अधखुली आँखों में घुनी बैठी हुई थी। सरो को लग गया कि सारा पत्र इसने भी सुन लिया है।

जाती हुई बहू को आज बीच आया देख ससुर ने सारी मर्यादा के साथ पूछा—लगता है बहू की तबियत पहले से ठीक है।

जीने पर पीठ किये सरो एक क्षण को रुकी अवश्य लेकिन कमजोरी में पैर काँप रहे थे और वह दीवार थामे जीना चढ़ते चली गयी। दालान में पहुँच

। सुनीता पत्नी तथा थोड़ी देर पहले बहू—सबको देखा तो उनका माथा
का कि ये सब क्यों एकत्रित थे ? तभी सुनीता ने जीने पर पहुँच कर कहा
-दीदी ! चलो अपने बिस्तरे पर चलो ।

और पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने अँधेरे जीने के ऊपर दरवाजे के बाहर देखा कि
ी की छाया दिख रही थी । इसका मतलब हुआ कि उनको छोड़ और सब अभी
भी मौजूद थे । चिमनी भी अपने स्थान पर न होकर अँगनाई पर रखी हुई थी
ौर उसके पास कोई पत्र पड़ा हुआ था । उन्हें लगा कि जरूर ही गुनी की ससु
ाल से कोई पत्र आया है । पूरे तन-बदन में आग लग गयी । आँखों के सामने
ाने क्या-क्या झिलमा-झिलना नाच उठा । जीवन में वे कभी विचलित नहीं हुए थे
ने जितने कि श्रीधर के जाने के बाद से हुए थे । बचपन में अपने पिता की
कमात्र सन्तान होने के कारण किस राजसी ढंग से उनका लालन-पालन हुआ
ा । उनके पिता अत्यन्त दबंग व्यक्ति थे और पूरे नब्बे बरस जिये भी थे । पंडित
ीनाथ ठाकुर पैंतालिस बरस के थे जब पिता का स्वर्गवास हुआ था । जीवन भर
िता की छत्रछाया में रहने के कारण उनकी सारी संभावनाएँ नष्ट हो गयी थीं ।
ाने-बजाने का शौक था इसलिए थोड़ा बहुत पूजन कर आये और फिर दोस्तों
ी मण्डली में पहुँच गये तो रात को ग्यारह-बारह के पहले आने की आवश्यकता
ी नहीं थी । दिन भर भाँग पीना, गाना-बजाना और ताश फेंटना, कभी कहीं
ैठ करने चले गये तो कभी कहीं सैर को निकल गये । जब बहुत तबियत चल
ाती तो उज्जैन तक हो आते थे तथा कानों पर जाकर गाना सुन आते थे । इसका
ातीजा यह हुआ कि जीवन पर उनका नियन्त्रण न रहा । परिवार में उनके पुत्रों
ं भी अपने पिता का स्थान अतिरिक्त ही माना । जब पिता न रहे तो इतने
दिनों बाद सारे सूत्रों को अपने हाथ में पकड़े रहने का गुरुमन्त्र नहीं मालूम था
इसलिए—"हरि-इच्छा" कहकर वे कछुए की भाँति अपने पंजे सिकोड़ अँगनाई
पर बैठ जाते । इस पिता को श्रीमोहन खूब समझता था ।

पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने अँगरखा और पगड़ी उतारी मलिन पत्नी के पायर
का भीत को पूछकर ताड़ने का साहस उन्हें नहीं हो रहा था । उन्होंने यहाँ-वहाँ
घूमकर, हाथ-मुँह धोकर घर में फिर आये अँधेरे को कुछ कम किया ताकि कुछ
रास्ता दिखलायी दे । लगता था जैसे अँधेरा चक्कों में चारों ओर जमाया गया था ।

पत्नी ने उठकर पति का भोजन परसा। पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने दाहिनी अंजुली में जल लेकर थाली के चारों ओर 'ब्रह्मार्पण' किया। तीन ग्रास निकाले और फिर तीन ग्रास चुग कर थोड़ा जल आचमन से पीकर हाथ जोड़ भोजन शुरू किया। अजीब मौन व्याप्त था कि उन्हें अपने ही कौर चबाने की आवाज 'गस्स-गस्स' सुनायी दे रही थी तथा बारंबार पत्नी की गहरी निश्वास। ढिबरी के आलोक में पत्नी के गले में पड़ी 'ब्रह्म-संबंध' वाली तुलसी की कण्ठी रह-रह कर उठती-गिरती दिखती। पत्नी का हाथ डिब्बे में से रोटियाँ लाकर उनकी थाली में अबोले रख जाता। बरसों से वे इस हाथ से परिचित हैं। कभी इसी को थाम कर लाये थे। तब यह कितना गोरा गोल भरा-भरा सा था। तब चूड़ियाँ कैसी सुहाती थीं इसमें। अपने गले के चारों ओर भी ये ही हाथ कसे मीठे-मीठे से अनुभव किये हैं। उपरान्त कैसे धीरे-धीरे इनकी गोराई कम हुई, गोलाई में कैसे झुर्रियाँ आयीं। रंगीन चूड़ियाँ भी उतरते यौवन के साथ-साथ उतरती चली गयीं गले को घेर कर रहनेवाले हाथ कैसे क्रमशः दूर होते-होते अब उनके चारों ओर एक दूरी बनाये हुए रहते हैं। चाहे सब कम हो गया था इन वर्षों में लेकिन मिठास संभवतः बढ़ी ही थी।

कई बार इच्छा हुई कि पत्नीमुख को इस मंद मीठे आलोक में देखें तो। अनेक बार हिम्मत करने के बाद जो देखा तो पत्नीमुख दीप के सोनाभ आलोक में जाने कितने वर्ष पूर्व का वही प्रियामुख हो गया। वे एक क्षण को विभोर हो व्याकुल हो गये। पत्नी का हाथ हठात् थाम लिया। वे भी समझ न गयीं कि यह तो वह रसिक पति है जो बुर्राक धोती पहनता था पान चबाता था इत्र-फुलेल की गंध में स्वयं डूबा रहता था तथा उन्हें भी जाने कैसे-कैसे मथित कर देता था। जिसकी आँखों के लाल डोरे कभी कम ही नहीं होते थे और वे कितनी निहाल हो जाती थीं।

दोनों मुसकुरा दिये। बरसों बाद दोनों पति-पत्नी की भाँति एक दूसरे को देख रहे थे। दोनों की आँखें जोर जोर से चमकने लगी थीं। दोनों अपनी-अपनी देहों से निकल कर एक दूसरे में अनुस्यूत हो जाने के लिए आकुल थे। पेठ आते ही दोनों का लगा कि अरे, जितना अँधेरा वे समझ रहे थे उतना नहीं था। एक दीप ही कितना आलोक देता है ढेर सार अँधेरे में?

संघर्ष पर भी पति के प्रति आज वे वैसी ही रागवती थीं जैसी कि कभी थीं। उनका साहस नहीं हो रहा था कि अनायास आ राग की यह रात जाने कहाँ से जाने कितने वर्षों को चीरकर भूली-भटकी चली आयी है उस श्रीवत्सम

के पत्र की बात बताकर तोड़ दें। वे सोच रही थीं कि क्या फिर कभी वे लोग वैसे ही युवा पति-पत्नी नहीं हो सकते ? कैसे जल्दी सब बीत गया न ? जैसे वे किसी प्रपात के ऊपर खड़ी थीं कि पैर तक भीगे नहीं और मनों पानी टूट टूटकर घब्द करता हुआ जाने कहाँ चला गया ? देखनेवाला ने सराहा कि हाय देखा तो कैसे निर्मल जल में वे लोग खड़े स्नात हैं। लेकिन कहाँ ? वे तो तरसती ही रह गयीं। संभव होता तो अपने रेशमी आँचल की सलज्जी गाँठ बना उसमें अपने पति और उन दिनों को बाँध ऐसे एकान्त में चली जातीं कि बस। उन दिनों को पति को कहीं नहीं जाने देतीं। चल गये उन दिनों की हँस-ठोलियाँ जाने कहाँ उन जन्मों के साथ-साथ चली गयी हैं। जल चला गया था और वे दोनों सूखी साम पर खिचीं दो वृद्ध रेखाओं से रह गये थे।

—किसका पत्र था ?

पत्नी जैसे नींद से चौंकी। उनकी युवा कामनाभरी वाली आत्मा वापस वृद्ध देह में लौट आयी। बोलीं

—सांझ श्रीमोहन आया था यह पत्र लेकर।

—लेकिन पत्र किसका है ? जो पूछता हूँ उसका तो जवाब देती नहीं हो और फलाँ आया था फलाँ दे गया है। आया होगा श्रीमोहन।

पता नहीं पति क्यों झल्ला गये।

—श्रीवल्लभ का पत्र है।

—क्या चाहता है वह ?

पत्नी ने अत्यन्त रूखे ढंग से चिमनी लाकर रख दी। उनके पूजावाले 'ग्वासे' (पूजा का वह बस्ता जिसमें सन्ध्या आचमनी आदि रहती है) में से चश्मा लाकर दे दिया। मतलब कि आप पढ़ सकते हैं।

चिट्ठी पढ़कर पति के चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। वातावरण में फिर तनाव आ गया। जब पति को इस इतनी बड़ी बात पर कुछ नहीं कहना तो पत्नी को ही ऐसी क्या गरज पड़ी थी कि वे अपने को जलाएँ ?

दिया बढ़ा दिया गया।

चारों ओर एक बार तो सहसा अँधेरा बढ़ा लेकिन अपने-अपने ढंग से जागते पति-पत्नी दोनों को अँधेरा घुसता सा लगा। काफी देर तक जब नींद नहीं आयी और दोनों को लगा कि वे साथ जाग रहे हैं तो पति ने पूछा

—क्या सो गयीं ?

—नहीं तो।

में कितना कुछ बल्कि सब कुछ बदल गया था। अब वे पुलिस सरकार सब की आँखों में एक खतरनाक क्रान्तिकारी थे।

तो रतना ने उन्हें भी सरकार की आँखों में क्रान्तिकारी बना दिया था। लेकिन अब क्या होगा?

वही जो होता है। मुखबिर बनाये जाने की कोशिश होगी मार होगी मुकदमा चलेगा सजा होगी। उसके बाद जेल चक्कियाँ कोड़े—जाने कितने दिनों तक के लिए। लेकिन क्या रतना को कभी मालूम हो सकेगा कि श्रीधर बाबू ने उसके काम के लिए जेल भुगती? कहीं वह यह तो नहीं सोच लेगी कि उन्हें ठीक तरह से पहुँचाना नहीं आया?

पुलिस ने उन्हें मुखबिर बनाने की भरसक चेष्टा की। पुलिस उन्हें जान चुकी थी कि श्रीधर बाबू स्थानीय कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता भी हैं तथा असहयोग में जेल हो आये हैं। श्रीधर बाबू ने जिस तरह से हर बात के लिए अभिज्ञता प्रकट की थी उससे पुलिस वालों का पूरा विश्वास हो गया कि यह व्यक्ति खासा घुटा हुआ है। मारपीट के बाद भी जब उन्होंने कुछ स्वीकार नहीं किया कि वे किन-किन लोगों के साथ काम करते हैं तो उनसे उस आदमी का ही नाम जानना चाहा जिसे वे बम देने के लिए रामनगर गये थे। अन्त में पुलिस हार गयी। इस बीच काफी जोरों से क्रान्तिकारियों की धर-पकड़ हो रही थी। पूरा उत्तर भारत इस समय क्रान्तकारियों की पिस्तौलों और बमों से गूँज रहा था। अंग्रेजी शासक उनसे आतान्त थे। सभी क्रान्तिकारी किसी न किसी हत्या आक्रमण लूटपाट के सिलसिले में लाये जा रहे थे। रेल लूटना तो आये दिन की बात होती जा रही थी। रोज किसी न किसी अंग्रेज शासक की हत्या की जा रही थी। पुलिस श्रीधर के सारे सम्बन्धों की खोज में लगी हुई थी और अन्त में उसे पता लग गया कि विद्यन नामक क्रान्तिकारी जो कि इन्दौर

के 'मालवा-हाउस' षड्यन्त्र में मारा गया था उसके साथ एक लड़की थी और एक व्यक्ति और था। विनन के साथ वाला वह व्यक्ति यह श्रीधर बाबू ही थे। इन दोनों पर लड़की भगाने तथा उसके साथ विनन का ब्याह करवाने के संबंध में भी वारण्ट निकले थे। इस प्रकार श्रीधर बाबू का क्रान्तिकारी आन्दोलन से बहुत गहरा सम्बन्ध है इस बात की स्थापना पुलिस कर ले गयी। रोजी सेक्सन नामक लड़की का पता तो पुलिस को बहुत पहले ही लग गया था कि वह लड़की क्रान्तिकारी थी तथा बंगाली थी और वह भी बनारस की। हो सकता है कि श्रीधर बाबू उसी लड़की के साथ मिलकर काम कर रहे हों।

एक दिन उन्होंने हवालात की सीखचों में से देखा कि रत्ना सचीन सुधांशु तथा चार-पाँच व्यक्ति गिरफ्तार होकर थाने लाये गये हैं। पुलिस ने फिर उन्हें खूब परेशान किया मारा भी ताकि वे यह मंजूर कर लें कि इन पकड़े हुए क्रान्तिकारियों से उनका सम्बन्ध है। उन्हें बताया गया कि ठाकुर छत्रदीप नारायण सिंह तथा भण्डार का चौकीदार मुरारी इस बात के गवाह हैं कि सुधांशु राय से उनका सम्बन्ध है तथा रत्ना के घर वे आते-जाते रहे हैं। पुलिस उनसे कबूलवाना चाहती थी कि क्या रत्ना ही रोजी सेक्सन है?

इन लोगों का मुकदमा छह महीने चला। पुलिस ने अन्त तक श्रीधर बाबू को बाकी के कैदियों से नहीं मिलने दिया ताकि वे कमजोर पड़ जाएँ और कुछ बातें मंजूर कर लें। रत्ना ने पहले दिन जब श्रीधर बाबू को कोतवाली में देखा तो वह उदास हो गयी। इसलिए नहीं कि कहीं श्रीधर बाबू पुलिस को कुछ बता न दें बल्कि इसलिए कि वे व्यर्थ ही इसमें पकड़े गये। बहुत दिनों तक सोचती रही कि किस प्रकार उन्हें बचाया जा सकता है लेकिन कोई तरकीब नहीं दिखलायी दे रही थी क्योंकि पुलिस ने रंगे हाथों पकड़ा था तथा उसे यह भी मालूम हो गया कि ठाकुर छत्रदीप नारायण सिंह चाहते थे कि किसी प्रकार श्रीधर पूरी तरह खतरनाक क्रान्तिकारी सिद्ध हो जाए और या तो फाँसी पा जाएँ या फिर कालापानी तो उनके रास्ते का यह काँटा दूर हो। जिस दिन मुकदमे का फैसला होना था अदालत में खासी भीड़ थी। श्रीधर बाबू ने देखा कि रत्ना के मुख पर अजीब सन्तोष तथा खुशी थी। उन्होंने उसकी आँखों में स्पष्ट पढ़ा कि उसे अत्यन्त सुख था कि श्रीधर बाबू उसकी कठिन परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए। उन लोगों पर एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट की हत्या का आरोप था। क्रान्तिकारियों में से ही फणीन्द्र नाथ नामक एक व्यक्ति मुखबिर हो गया था और उसके बयान से ही सारी बात मालूम हुई कि रत्ना

में बंगाल बिहार और उत्तर प्रदेश में कुल मिलाकर चार हत्याएँ कीं और यही इस दल की भूमिका है। सुधांशु राय शचीन घोषाल भी मजिस्ट्रेट की हत्या में शामिल थे। पुलिस के कहने से फणीन्द्र राय ने श्रीधर बाबू को बहुत पुराना क्रान्तिकारी बताया। पुलिस के द्वारा श्रीधर बाबू को फँसाने में ठाकुर सकल दीप नारायण सिंह का बड़ा हाथ था। और इस प्रकार रत्ना सुधांशु राय तथा शचीन को फाँसी की सजा हुई। बाकी के चार साथियों में दो को आजीवन कालापानी तथा शेष दो को बारह-बारह वर्ष का सपरिश्रम कारावास। श्रीधर बाबू को सिवाय फणीन्द्र के और किसी ने भी अपने दल में मानने से इन्कार किया था लेकिन चूँकि पुलिस ने उन्हें बम के साथ पकड़ा था तथा क्रान्तिकारियों से सम्पर्क की बात स्थापित हुई थी तथा 'मालवा-हाउस' के षड्‌यन्त्र का भी शक था इसलिए दस वर्ष का सपरिश्रम कारावास मिला।

जिस समय रत्ना को प्राणदण्ड सुनाया गया वह निश्चिन्त बैठी हुई थी। श्रीधर बाबू एक क्षण को काँप उठे थे। उन्होंने देखा कि कहीं वह अत्यन्त आत्मस्थ होकर मुसकरा रही थी। लेकिन जब उन्हें सजा सुनायी गयी तो रत्ना किंचित उदास हो गयी थी। रत्ना ने कैसी जल भरी उदास मोहक आँखों से उनकी ओर देखा था। श्रीधर बाबू भीग उठे। रत्ना सचमुच उनके अन्तर में प्रविष्ट हो चुकी थी। उनका दिल धड़कने लगा कि क्या अब वे कभी भी रत्ना को नहीं देख पाएँगे? क्या उस रात अनजाने ही उसके हाथ का स्पर्श अपने गालों पर अनुभव किया था—क्या वही भर था? क्या अच्छा न होता कि उन्हें भी प्राणदण्ड मिल जाता?

और उन्होंने सुना कि रत्ना गोंडा भेज दी गयी है और वहीं उसे एक माह बाद फाँसी दी जाएगी। सुधांशु और शचीन को नैनी भेज दिया गया। केवल वे ही बनारस जेल में रहे।

फागुन बीत चुका था। चैत्र के आरंभिक दिन थे। रात के गहरे सन्नाटे में दूर कहीं फाग और ढपली के स्वर सुनायी पड़ जाते। बेल की बीच वाली नीम नंगी हो गयी थी। ढेर सारी पत्तियाँ पीली-पीली मैदान में बिछी हुई थीं। नंगी डालों के पीछे आकाश सहमा-सहमा सा छितरा हुआ था। श्रीधर बाबू अपनी कोठरी में बन्द चक्की पीस रहे थे। अभी सवेरा था। चक्की चलाते हुए सोच रहे थे कि आज बल्कि इस समय रत्ना को फाँसी दी जा चुकी होगी। अवश्य ही उसके मुख पर कोई घबराहट नहीं आयी होगी। एक वीर की भाँति वह फन्दे तक पहुँची होगी। एक क्षण को जाने कौन-कौन आँखों के सामने से गुजर गये होंगे। जिस दिन वह अलग हो रही थी कैसे बोल रही थी,

—श्रीधर बाबू! तो सब समाप्त हो गया न?

—रत्ना! मेरी ओर से तो आरंभ ही है अभी।

—तो कभी याद करिएगा?

—गगन से पूछो।

और कैसे वह देखती ही रह गयी थी जैसे पहली बार देखना सीख रही

हों। उसने तब हाथ बढ़ाया था। कैसा मुलायम हाथ था। विश्वास नहीं हुआ कि कभी यह हाथ भी किसी पर उठ सकता है। कैसा पवित्र किन्तु संकल्पित था। श्रीधर बाबू के मन में कितना चिरा कि एक बार रतना के उस हाथ को चूम लें लेकिन लगा कि कहीं वह अपवित्र न हो जाए। कैसे धीमे से कानों में कह गयी
—तुमि आमार स्वामी !!
और फिर उसने मुड़कर नहीं देखा। पुलिस के बीच घिरी वह चली गयी लेकिन उन्हें कितना विवश कर गयी। कह कर वह समाप्त हो गयी लेकिन सुनकर वे असमाप्त। रतना तीन शब्दों में जाने कितना भिस गयी कि अब वे जीवन भर सोचते रहेंगे कि वह किस अपात्र को क्या कह गयी ?

आज विवश बने चक्की पीस रहे हैं और जो उन्हें सर्वस्व मानने पर आयी थी इस समय जाने कहाँ कहाँ
और श्रीधर बाबू सिसक उठे। हाय वे कैसे अभागे रहे कि जिसके सम्पर्क में आये वही या तो चिर दुखी हो गया या न रहा।
और तभी वार्डर ने कोठरी के सीखचों पर डंडा मारते हुए कहा
—ए बाबू ! सोता है क्या ?

बाहर नीम पीले पत्तों को समेट रहा था। कल यही नीम कोंपला जाएगा। निमौलियाँ आ जाएँगी। सरते दिन टूट करते धूप उठाते सब कुछ रता जाएँगे। एक सरो है जिसे यही नहीं मालूम होगा कि वे कहाँ हैं। दूसरे रतना हुई थी तो उन्हें नहीं मालूम कि वह कहाँ है ?
लम्बे दस वर्ष। जेल से छूटने पर वे पैंतालीस वर्ष के प्रौढ़ होंगे। इस बीच

जिसका कुछ न घट जायगा यहाँ और बाहर। तब तक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। रतना तब मात्र स्मृति होगी। दस वर्ष पुरानी। कौन मिलेगा तब बाहर? रतना कैसे सहसा आयी और चली गयी। क्या वे कभी सोच सकते हैं कि कभी कोई इतने चुपके से किसी के जीवन में इतने साहसिक एकान्त विश्वास के साथ सर्वस्व सौंप कर असम्पृक्त बना अकेले जा सकता है? जैसे यह कर्तव्य समझती थी इसे भी। कैसे हँस कर कहा करती थी

—श्रीधर बाबू! बहुत जल्द जाना है यहाँ से लेकिन अपने 'स्वामी' को बिना बताये जाना पड़े ऐसा नहीं चाहती। उन्हें अवश्य बताकर जाऊँगी।

—कौन है वह भाग्यवान?

—पता नहीं कि वे भाग्यवान हैं कि नहीं पर 'स्वामी' जरूर हैं मेरे।

—तो विवाह क्यों नहीं कर लेती उनसे?

—आप मेरे 'स्वामी' की विवशता कभी नहीं बूझ पाएँगे। वे विवश हैं और मैं उन्हें अवश नहीं करना चाहती। इसलिए जिस क्षण उन्हें पहली बार 'स्वामी' कहूँगी फिर उन्हें नहीं देखूँगी ताकि वे मेरे सामने विवश न दिखें। भला मैं अपने 'स्वामी' को विवश देख सकती हूँ?

और उस दिन क्या पता था कि सचमुच उसके 'स्वामी' वे ही थे। और मालूम भी होता तो क्या कर सकते थे? सचमुच वह उन्हें समझ सकी थी। वे बुदबुदा उठे

—रतना! तुम किस अपात्र को कमजोर व्यक्ति को अपना 'स्वामी' बताकर चली गयीं जो किसी भी भाँति तुम्हारे योग्य नहीं। न वैसा मनोबल ही न वैसा संकल्प ही जो कि तुम्हारे 'स्वामी' के लिए स्वयं उनकी धारणा थी। वे तो मात्र परिस्थितियों के एक कमजोर पुतले हैं जो कि अँधेरे से अँधेरे तक यात्रा किया करने वाले हजारों—लाखों साधारण कमजोरों में से एक हैं। जो इतिहास में व्यक्ति भी नहीं बनते न उनकी कोई सत्ता होती है वे केवल संख्या होते हैं। तुम तो अद्वितीया थीं। तुम्हारा पथ सम्पूर्ण का था फिर यह क्या हो गया था तुम्हें? उन्हें तुमसे प्रेम हो सकता था लेकिन तुम्हें तो मोह था रतना! तुमने श्रीधर बाबू को 'स्वामी' कहकर परमात्र क्यों न लिया? अजाने ही वे सार्थक हो गये। एक संख्या को सत्ता देकर तुम कहाँ चली गयीं? तुमने इस गोप पथ को भीड़ पथों का असंख्य संख्या में क्यों नहीं मिल जाने दिया? क्या इसीलिए उस रात जीने से उतरते

हुए कहा था कि जाना होगा तो वही जाएगी क्योंकि वह उनका जाना नहीं देख सकती ? वे तो जाएँ ही ।

दस बरस । चक्की की घर्र-घर्र । ये पापरी दीवारें, दूर पेड़ के एक पीले झरे पत्ते भी ।

दुःख भी जब रोज का जीवन बन जाता है तब उसका अस्तित्व नष्ट हो जाता है। तब व्यक्तियों की कि ऐसी मनोदशा हो जाती है कि छोटे-मोटे कष्ट राम-राम तो जैसे अनिवार्य मान लिये जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को तब तक किसी बात पर आश्चर्य नहीं होता जब तक कि कुछ बहुत बड़ी दुःख की बात न हो जाए। और जब सहते-सहते व्यक्ति की यह मनोवृत्ति हो जाती है तब उसे फिर कोई दुःख नहीं व्यापता—संभवतः बड़े से बड़ा दुःख भी।

इसलिए ठाकुर-परिवार को चिन्ताएँ हो सकती थीं लेकिन दुःख नहीं। दुःखों की पराकाष्ठा के बाद दुःख नहीं होते। न पंडित श्रीनाथ ठाकुर, न उनकी पत्नी न मदन और न सुमति किसी को भी किसी से कोई आशा नहीं थी। सबके दुःख कुछ हो नहीं रहे थे दुःखों में रस-बस गए थे। केवल गुणीता और देवव्रत इन दुःखानुभवों से भिन्न बढ़ रहे थे।

पुनी के ब्याह को सात-आठ बरस बीत चुके थे। अम्मीता हुए भी चार-पाँच बरस हो गये थे। ठाकुर-परिवार की इस प्रमुख शाखा के पास कुछ का वैभव नहीं नहीं रह गया था। वे सब जीर्ण हो गये थे। जिस मकान की छाया

में वे सामाजिक काम से बचे हुए थे उसकी एक ओर की दीवार इतनी चर गयी थी कि कुछ न किया गया तो इस चौमासे में चलकर ही बैठ जाएगी। घर के भूगोल में काफी कुछ परिवर्तन हो गया था। पंडित श्रीनाथ ठाकुर की जो बैठक थी उसे किराये पर उठा दिया गया था और उसमें सुनार की एक दुकान खुल गयी थी। ठीक उसी तरह दूसरी तरफ एक कोठरी थी जिसमें जाने क्या-क्या कूड़ा-करकट भरा हुआ था और जो कि दरवाजे के गलियारे में खुलता था। उसमें भी बाहर की तरफ जो दालान पड़ता था उसे आधा घेर कर एक दर्जी को उठा दिया गया था। इस प्रकार पूरा परिवार ऊपर के दो कमरों दालान रसोईघर तथा एक कोठरी में सीमित हो गया था। गल्लेवाले की दुकान के ठीक ऊपर तथा सरो के कमरों के ठीक सामने बरामदे से एक कमरा और था जिसे एक विधवा मास्टरनी को उठा दिया था तथा उस मास्टरनी के लिए बाहर के बाहर ही एक जीना भी बनवा दिया गया था। इस प्रकार ठाकुर परिवार ने चार किरायेदारों को अधिकांश घर किराये पर उठा दिया था ताकि पूरे घर को किराये पर उठने से जितने दिन रोका जा सके रोकें।

रोनेवाली आँखों से डर नहीं लगता बल्कि खुश्क सहमी आँखों के पथरापन को देख लगता है कि ये आँखें स्वयं खुश्क हो गयी हैं। ठाकुर-परिवार भी ठीक वहीं हो गया था। कोई किसी से ज्यादा बोलता ही नहीं था। सबको देख ऐसे ही लगता कि यदि भूल कर भी इन्हें छेड़ दिया तो या तो ये लोग काट खाएँगे या चीख पड़ेंगे या इनकी खुश्क पानी मात्र कठोर पाषाणीदृष्टि आपको आपकी हड्डियों तक को बस घूरने लगेगी और आपको भी अपने जैसा बना लेगी।

लेकिन यह तो परिवार की सामूहिकता थी। व्यक्ति अभी अपनी-अपनी जगह बस ही कमजोर, खुश्क पाने रोते सुबकते हँसते थे। सुशीला ही जाने कहाँ से और कैसे चलती दोपहरी में खुली गुलमोहर सी रँगी पड़ रही थी। उस मग्न से शिशु तक भावमती देख किसी का साहस नहीं होता कि कुछ भी कहकर या करकर इस समस्त रंगमय खिलते फूल का मलिन कर दें। सरो तो आश्चर्य में मौन हो जाती कि सुशीला जाने किस अन्तस के सुख में सुखी अपने ओठों में जैसे बीड़ा दाबे हुए है। सुशीला अपनी देह में ही नहीं बल्कि इस घर में नहीं समा पा रही थी। सब डरते कि सुशीला की यह बाढ़ घर की ये चार-दीवारें नहीं सह पातीं और एक दिन पगड़ी सिर पर धर पंडित श्रीनाथ ठाकुर किसी का भाड़ा माँगकर जो गये तो तीन दिन बाद सुशीला के लिए

लड़का तय कर के ही लौटे। पंडित श्रीनाथ ठाकुर को विश्वास नहीं था कि वे इतनी जल्दी लड़का पा जाएँगे। गुनी के बाद से उन्होंने कान पकड़े थे कि इन इन्दौर-उज्जैन वाले शहरियों को सुशीला नहीं ब्याहेंगे। पैसा देकर दूसरी लड़की को भी अपंग बनवाने की कामना अब उनकी नहीं थी।

आम में टिकोरे आ गए थे। फगुना सूख चुकी थी। छोटी-छोटी नदियों का भी पानी सूखने लगा था। नाले तो बहुत पहले ही प्यासे-प्यासे से लगने लगते हैं। सुशीला का ब्याह बैसाख में ही करना है यह सुनकर माँ और सरो दोनों चौंकीं कि कैसे क्या होगा? घर में न दालें हैं न गेहूँ न बड़ियाँ हैं न अचार। ब्याह का सिलसिला तो महीनों पहले से ही शुरू हो जाता है। भला यह भी कोई बात हुई कि आपने कहा कि भाई ब्याह होगा और बस हो होगा।

सब यह भी जानते थे कि यही माँ जो इस समय कह रही हैं कि एक महीने के अन्दर कैसे क्या होगा न यह न वह—वही देखते रहना इस कोठरी में से चीनी का बोरा निकाल लाएँगी और उस बक्स में से ब्याह के सारे कपड़े। और तब उनकी चमकती आँखों में यह भाव होगा कि—कहिए, तुम लोग कहते हो कि सासूमाँ तो इधर से कतरब्योंत करती हैं तो उधर से कपड़ा बचा लेती हैं। तो भाई कौन अपने लिए करती हूँ? तुम्हारी ही चीजें वक्त पर ला धर देती हूँ कि भाई, इस दिन के लिए ही चोरी की थी सूम बनी थी।

लेकिन माँ स्वयं जानती थीं कि इस बार उतना कुछ घर में से नहीं निकाल पाएँगी यद्यपि गुनी के ब्याह के दूसरे बरस से क्या चीनी गुड़ अचार पापड़ बड़ियाँ कपड़े सब चीजें रोज एक-एक करके जमा करती जाती थीं। क्योंकि वे जानती थीं कि इन मर्दों को औरतों की राय की कतरब्योंत बुरी जरूर लगती है पर वक्त पर जब वही औरत ढेर सारा निकालकर सामने रख देती है तो फिर कुछ भी बोलने की हिम्मत तो नहीं होती बस हँसते हुए कहेंगे कि—अरे मैं तो पहले ही जानता था कि आधीरात को कहा तो पूरी जाति को मोहन

भोग और घेवर की रसोई दे दी जाए और बाहर से हलवाई का एक दाना भी लाना पड़ जाए तो नाम बदल देना ।

बड़े मजाक का घर है न ? अरे जानते हैं न कि बरयात्री को खिलाओगे तो बीस-पचीस सेर चीनी तो कहीं गयी नहीं । हाँ और क्या ?? औरत तो गाँठ में पैसा छिपाये हुए है । उखाड़ लो न उसके दाँत सौ-पचास निकल आएँगे ।

और बहू भी जानती है कि मरद का ऐसा सोचना गलत भी नहीं होता । लेकिन भाई ऐसा कहना नहीं चाहिए । सोचा करें अपने मन में । अरे इन मरदों की बड़ी ओछी निगाह होती है । न छुपाओ तो ये आप जिसे देख दें उसमें छेद पड़ जाए ।

ठाकुर-परिवार में एक बार फिर रोज के जीवनक्रम में व्यतिक्रम आया । शादी देहात में जरूर हो रही थी पर लड़का सुशील था । जमींदारी ज्यादा नहीं थी लेकिन लड़केवालों के लिए ठाकुर-परिवार में ब्याह करना ही बड़ी बात थी । सुशीला के इस ब्याह में माँ ने जैसे अपने को पूरी तरह झाड़ डाला और आशा से अधिक ही देन-लेन का प्रबन्ध किया गया । सरो कहती ही रह गयी

—सासूमाँ ! ये मेरे गहने क्या होंगे ? ये कपड़े क्या होंगे ? इन्हें निकाले देती हूँ ।

—बहू ! जब तक मैं हूँ तब तक तो तुम लोगों को चिन्ता करनी नहीं है । जिस दिन नहीं रहूँगी उस दिन तुम भी अपना घर सम्हाल लेना ।

—सासूमाँ ! यों न कहो । मुझ अभागन को सीने से लगाकर इतना दुख तो सगी माँ भी नहीं सहती ।

और सास-बहू गंगा-जमुना हो गयीं । कौन किसे समझाता ?

तभी नीचे देवव्रत ने पूछा

—माँ ये शहनाईवाले आये हैं । पूछते हैं कब से बजाना है ।

रात-रात भर जाग कर सास-बहू ने मिलकर पूरा घर सीया । बहुत पुचकार

कर माँ ने देवव्रत को राजी कर लिया और घर की पुताई हो गयी। फिर वही नीड़ लाल सगे-सम्बन्धी अर्जित सम्पत्ति की तरह एक-एक करके आने लगे। सुशीला पर हल्दी चढ़ी और औरतें घेर कर गाने लगीं—

बरेली के बजार में झुमका गिरा री !!
सास मेरी ढूँढे
ननद मोरी ढूँढे
बारे बलमा ढूँढे री !!
बरेली के बजार में झुमका गिरा री।

रात को आँगन में चौक पूरा जाता। सुशीला का शृंगार कर औरतें घेर कर बैठ जातीं और गीत शुरू हो जाता—

न पकड़ो हाथ मनमोहन
कलाई टूट जाएगी !!
कलाई टूट जाएगी
जवाहर की चढ़ी चूड़ी
हमारी टूट जाएगी !!
न पकड़ो हाथ मनमोहन
कलाई टूट जाएगी !

और नीची पलकों में सुशीला घूँटों में गड़ी पड़ती। माँ चिल्लातीं कि यह तुम लड़कियों ने क्या नयी फैशन के रामजनियों के से गीत गाने शुरू किये हैं। लेकिन बालों में फूल और नयी काट के जम्पर पहने लड़कियों को भला क्या चिन्ता कि कौनसा गीत क्या है? फिर छिड़ उठता—

मैया गये कलकत्ता हमें लाये हरमुनिया !!

और तभी पड़ोस में किसी के यहाँ से आये ग्रामोफ़ोन पर देवव्रत रेकार्ड चढ़ा देता—

मना बोली चिरैया को बाज लिये जाए।
मैना बोली चिरैया को !!

और ढेर सी कटोरियाँ खनक उठतीं
खिल खिल खिल खिल।

इस धूम में जाने किस आशंका के कारण सरो नहीं सम्मिलित हुयी। [illegible] में मना किया था फिर भी घर की लिपाई-पुताई में वह ऐसी टूट गयी कि बैठ

नहीं जाती थी। वह अपने कमरे में ही पड़ी-पड़ी सुनती रहती कि देवव्रत ने फिर रिकार्ड चढ़ाया है —

बंगाली बाबू आएँ तो बड़ा मजा होवे !!
मंदिर बनवावें
शिवाला बनवावें
और हमको बँगला—हो
बंगाली बाबू आवें तो बड़ा मजा होवे !!

मुन्नी इस सब में असमंजस अवस्था में भौजी सुशीला के लिए मंगलकामना करती वहीं कमरे में बैठी दरवाजे बजती शहनाई सुनती होती या फिर कोई रेकार्ड में 'शिवमस्तु सर्वमंगल' होता या कोई गीत—

सजनवा तेरी जोड़ी चने के खेत में !!
सजन को ले गया
बरात का नाई
हो सजनवा तेरी जोड़ी चने के खेत में !!

और लड़कियों के पेट में हँसते-हँसते बल पड़ जाते। सहसा बापू या माँ के डाँट देने पर 'बरात का नाई' पर ही रिकार्ड झट से बन्द कर दिया जाता।

वही शोर, खाने की गंध रेशमी कपड़ों की ससर-ससर! जनवासे के लिए चीजें भेजी जा रही हैं। 'ॐ स्वाहा" 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा"—हाँ हवन हो रहा है।

—वधू को लाइए साहब!

—साऽव धाऽन !!

—ढोल नगाड़ा साऽवधान !!

—बाजन्त्री साऽवधान !!

—मंगलगानी साऽवधान !!

—वर-वधू साऽवधान!

और बाजे बज उठे।

—हाँ पालकी कहाँ है साहब?

—मुहूर्त टल रहा है कौनैनिया जी! विदा कराइए अब!

और बैन्ड—नें पेंऽनें

—'फक-फक धुएँ की गाड़ी उड़ाय लिये जाए !!

इस बार सुशीला के विवाह में सरो के माता-पिता आये तो उन्होंने देखा कि देवव्रत पर कोई अनुशासन नहीं है अतएव वह आवारा होता जा रहा है। उसकी पढ़ाई भी लगभग नहीं ही हो रही थी। सरो से उन लोगों ने कहा कि वे देवव्रत को ले जाएँगे क्योंकि उनके रहने से दोनों का मन भी बहला रहेगा दूसरे उसकी पढ़ाई भी हो सकेगी। सरो अपने माता-पिता की अकेली सन्तान थी इसलिए जानती थी कि देवव्रत के जाने से उन्हें बुढ़ापे में कुछ सहारा रहेगा। लेकिन वह यह भी जानती थी कि सासूमाँ-बापू ही इस बारे में कोई अन्तिम बात कह सकते थे।

जब सुशीला ब्याह कर चली गयी तो सरो के पिता ने देवव्रत के बड़े पिता से बातें की। पंडित श्रीनाथ ठाकुर स्वयं कई बार देवव्रत के लक्षणों को देखकर मन में कसमसाया करते थे। वे जानते थे कि दो-चार बरस यदि देवव्रत इसी तरह से और रहा तो वह बिलकुल धूल हो जाएगा। साथ ही यह भी भाव था कि न सही भीतर तो उसका लड़का तो जाता है। ... से कुछ हा-हुआ आए तो घर पर सम्मान होगा। पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने अपनी पत्नी

से परामर्श किया तो पहले तो वे तैयार नहीं हुईं कि लड़का इतनी दूर सौरों चला जाए। डर से मान लो यहाँ किसी को कुछ हो-हुआ जाए तो बेचारा लड़का मुँह देखने को भी तरस कर रह जाएगा। लेकिन वे भी सहमत थीं कि यहाँ इसकी पढ़ाई-लिखाई तो ठीक नहीं हो रही है, उल्टे बिगड़ रहा है।

देवव्रत अपने नाना-नानी के साथ जाएगा यह तय हुआ। सरो अवश्य चाहती थी बल्कि बहुत पहले ही वह अपने माता-पिता को लिखना भी चाहती थी कि देवव्रत को सौरों बुला लो। अब यह तय हो गया कि देवव्रत जाएगा तो पता नहीं कैसे सहसा वह ठण्डे पसीने से भीग उठी।

गुनी का होना न होना बराबर ही था। सुशीला तो अगस्या गयी ही और अब देवव्रत भी जा रहा है। इस इतने बड़े परिवार वाले घर में कमल चार व्यक्ति ही भोगने को रह गये। बृद्ध सास-ससुर, लँगड़ी पुत्री और रोगिणी माता। पता नहीं अब इन चारों में से कब कौन किस परिस्थिति में रहता है जाता है। जल की खोज में जैसे और गहरे खुदाई हो रही हो। केवल दीवारें नहीं दिखती हैं। ऊंची गर्दन करने पर, दूर ऊपर आकाश का टुकड़ा कैसे छोटा सा नीला नक्षत्र लगता है—सुन्दर!! और आप नीचे उतर रहे हैं, नीचे उतर रहे हैं। एक सीमा पर जाकर वह नीला नक्षत्र सूराख हो जाएगा और देखती आँखें देखते हुए अन्धी हो जाएँगी। न नक्षत्र होगा न सूराख। आँखों में दीवारें बहुत पहले ही मिल जाएँगी। आकाश का नीला नक्षत्र जाने कहाँ रह जाएगा। और जल आपके पैरों को छूने लगेगा। पर बेकार। पैरों ने जिसे अनुभव किया वह आँखों को अंधा कर गया।

बस यही सरो को लगने लगा। पति का नीला नक्षत्र—सुन्दर!! और देवव्रत जल बनने जा रहा है। पति और पुत्र के बीच अधर में लटकी सरो कहाँ होगी क्या करेगी–कुछ समझ नहीं पा रही थी।

गुनी के ब्याह में भी माता-पिता ने सरो को खूब समझाया था कि वह सौरों चली चले। कुछ दिनों दवा-दारू हो जाएगी हवा बदल जाएगी उसके बाद लौट आना। लेकिन वह कभी नहीं मान सकी थी। गुनी को ले जाने के लिए भी उन लोगों ने जिद की थी लेकिन सरो गुनी को लेकर ऐसे रो दी कि उनका फिर साहस नहीं हुआ कि कुछ कहते।

देवव्रत को तब भेजने के लिए सरो को तयार होना पड़ा। वह चाहती भी थी कि मालवा की अपेक्षा यू॰ पी॰ में उसे अधिक शैक्षिक वातावरण मिलेगा। संभव है कि आज का आवारा देवव्रत कल अपने नाना-नानी के प्रयास

से एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति बन जाए। ठीक है, वह जाए। यहाँ तो अब वे ही रह गये जिनकी कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं रह गयी है। जो अब अपने अन्त की प्रतीक्षा में या तो वृद्ध हैं या रोगी हैं या उपेक्षित।

और सुशीला की विदाई के तीन दिन बाद देवव्रत सीहोर के लिए विदा हुआ। गुनी ने देवव्रत के लिए अपना एकमात्र बक्सा दिया जिसमें सरो ने उसके पाजामे स्कूल का हाफशर्ट कमीजें और एक किताबें सजा दीं। माँ ने रास्ते के लिए सुशीला के ब्याह के बचे लड्डू, नमकीन आदि रख दिये।

जिस समय देवव्रत बापू, माँ, सरो और गुनी के पैर छूकर जाने लगा तब हठात् ऐसी ज़ोरों से रो पड़े जैसे वे रोते हुए पुतले हों। गुनी ने उसके बालों में तेल लगाया था, कंघी की थी। सरो ने गमछे (अँगोछा) का कोना भिगोकर उसके मुँह को खूब रगड़ा था और देवव्रत ऊँची ऊँची में सी हाफपैंट और एक ऊदे रंग के कोट में ऐसा लग रहा था जैसे वह खूब ऊँचा हो गया है। टाँगें कैसी सारस की-सी लग रही थीं जब कि अभी वह तेरह बरस का था।

से परामर्श किया तो पहले तो वे तैयार नहीं हुईं कि लड़का इतनी दूर सौरों चला जाए। कल से मान लो यहाँ किसी को कुछ हो-हवा जाए तो बेचारा लड़का मुँह देखने को भी तरस कर रह जाएगा। लेकिन वे भी सहमत थीं कि यहाँ इसकी पढ़ाई-लिखाई तो ठीक नहीं हो रही है उल्टे बिगड़ रहा है।

देवव्रत अपने नाना-नानी के साथ जाएगा यह तय हुआ। सरो अवश्य चाहती थी बल्कि बहुत पहले ही वह अपने माता-पिता का लिखना भी चाहती थी कि वसन्त को सौरों बुला लो। जब यह तय हो गया कि देवव्रत जाएगा तो पता नहीं कैसे सहसा वह ठण्डे पसीने से भीग उठी।

गुनी का होना न होना बराबर ही था। सुशीला तो अगत्या गयी ही और अब देवव्रत भी जा रहा है। इस इतने बड़े परिवार वाले घर में केवल चार व्यक्ति ही भोगने को रह गये। वृद्ध सास-ससुर, लँगड़ी पुत्री और रोगिणी माता। पता नहीं अब इन चारों में से कब कौन किस परिस्थिति में रहता है जाता है। जल की थाह में जैसे और गहरे खुदाई हो रही हो। केवल दीवारें खड़ी दिखती हैं। ऊपर गर्दन करने पर, दूर ऊपर आकाश का टुकड़ा जैसे छोटा सा नीला नक्षत्र लगता है—ऊऽऽर!! और आप नीचे उतर रहे हैं नीचे उतर रहे हैं। एक सीमा पर आकर वह नीला नक्षत्र सूराख हो जाएगा और देखती आँखें देखते हुए अन्धी हो जाएँगी। न नक्षत्र होगा न सूराख। आँखों में दीवारें बहुत पहले ही मिल जाएँगी। आकाश का नीला नक्षत्र जाने कहाँ रह जाएगा। और जल आपके पैरों को छूने लगेगा। पर बेकार। पैरों में जिसे अनुभव किया वह आँखों को अंधा कर गया।

बस यही सरो को लगने लगा। पति का नीला नक्षत्र—ऊऽऽर!! और देवव्रत जल बनने आ रहा है। पति और पुत्र के बीच अधर में अटकी सरो कहाँ थमी क्या करेगी—कुछ समझ नहीं पा रही थी।
गुनी के ब्याह में भी माता-पिता ने सरो को खूब समझाया था कि वह सौरों चली चले। कुछ दिनों हवा-पानी हो जाएगी हवा बदल जाएगी उसके बाद लौट आना। लेकिन वह कभी नहीं मान सकी थी। गुनी को ले जाने के लिए भी इन लोगों ने ज़िद की थी लेकिन सरो गुनी को लेकर ऐसा रो दी कि उनका फिर साहस नहीं हुआ कि कुछ कहें।

देवव्रत को तब भेजने के लिए सरो को तैयार होना पड़ा। वह चाहती भी थी कि मालवा की अपेक्षा यू० पी० में उसे अधिक धार्मिक वातावरण मिलेगा। संभव है कि बाद का आचरण देवव्रत तब अपने नाना-नानी के प्रभाव

से एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति बन जाए। ठीक है वह जाए। वहाँ तो सब वे ही रह गये जिनकी कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं रह गयी है। जो सब अपने अन्त की प्रतीक्षा में या तो वृद्ध हैं या रोगी हैं या उपेक्षित।

और सुशीला की विदाई के तीन दिन बाद देवव्रत मोरों के लिए विदा हुआ। पत्नी ने देवव्रत के लिए अपना एकमात्र बक्सा दिया जिसमें गुप्त ने उसके पजामे स्कूल का हाफशर्ट, कमीजें या एक किताबें जमा दीं। माँ ने रास्ते के लिए सुशीला के ब्याह के बचे लड्डू, नमकीन बांध रख दिए।

जिस समय देवव्रत बाबू माँ सरो और पुनी के पैर छूकर जाने लगा सब इतना ऐसी बातों से रो पड़े जैसे वे दूर हुए पुत्र हों। गुप्त ने उसके बालों में तेल लगाया था कभी की माँ। सरो ने रूमाल (मंगाकर) का कुरता निकालकर उसके मुँह को पोंछ दिया था और बराबर ओस-ओसी में भी हल्के झरते उसके रंग के कोट में ऐसा लग रहा था जैसे वह पूरा जवान हो गया है। इतनी सामने भीगी-सी खड़ी थीं जब कि अभी वह तरुण बच्चा था।

फिर सुख और लक्ष्मी जाते देर नहीं लगती । दुःख असंख्यमुखी होता है लेकिन सुख के तो गिनती के ही रास्ते होते हैं । सुख और सफलता के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने को ही देखे । अन्य कोई भी व्यक्ति हो मार्ग की बाधा होता है । आरंभ में बहुत व्यक्ति बाधा होते हैं इसलिए सफलताकामी कुछ को अपने पक्ष में कर अनेकों को पथ से हटाता है । उसके बाद उन कुछ को हटाने के लिए दो-एक को चुनना होता है और अन्त में उन दो-एक को भी वह 'वीतरागी' जैसे ही निर्मम होकर मार्ग से बीन कर फेंक देता है जैसे वेश्या करती है । श्रीमोहन ठाकुर ने श्रीवल्लभ ठाकुर को पारिवारिक बाधाओं के लिए चुना था और अगम्या लोगों ने मान नहीं सुना कि पता नहीं कब और किन उधार रुपयों की नालिश श्रीमोहन ने श्रीवल्लभ पर कर दी और फलस्वरूप श्रीवल्लभ ने भाई के हाथ-पैर पकड़कर इसी शर्त पर गला छुड़ाया कि पैतृक मकान के अपने हिस्से को श्रीमोहन के हाथ बेच दिया । श्रीवल्लभ अल्पायु तो बहुत पर उसे अपनी ससुराल से ही काफी सम्पत्ति मिली थी इस लिए वह चुप हो गया । दोनों भाइयों में आपस में लेन-देन चलता था लेकिन

श्रीवल्लभ का ख्याल था कि जो रुपये लिये गये हैं वह उस मुआफी की जमीन की तरफ के हैं जो कि उनके हिस्से में आती तथा जिसे श्रीमोहन ने दाब रखा था। बड़े पिता शिवनाथ ठाकुर के नाम की वह जमीन का पट्टा किस तरह श्रीमोहन ने चालाकी से अपने नाम करवा लिया था तथा कानोंकान किसी को खबर तक नहीं होने दी—यह सबके लिए रहस्य ही रहा। और इस प्रकार श्रीमोहन जब रास्ते के अन्तिम काँटे को भी दूर कर ले गया तब पैतृक मकान को एक मारवाड़ी सेठ को बेच दिया जो कि ऊनों का व्यापार करता था। श्रीमोहन बाबू ने छावनी में उन पैसों से कई पुराने बँगले जो कि अंग्रेज-छावनी के समय के थे खरीद लिये। यहाँ की जलवायु क्षय के रोगियों के लिए बहुत ही लाभप्रद थी इसलिए राज्य की तरफ से यहाँ एक सेनीटोरियम बनने वाला था। श्रीमोहन जानते थे कि तब इस क्षेत्र का विकास होगा लोग आएँगे उन्हें जगह की आवश्यकता होगी और वे तब कसकर किराया वसूल सकेंगे।

श्रीमोहन वाले हिस्से को पूरी तरह गिराया जा रहा था और वहाँ मारवाड़ी सेठ अपनी तिमंजिली कोठी बनवाने की तैयारियाँ कर रहा था। रोज खिड़की के पास खड़ी माँ देखती कि किस प्रकार ठाकुर-परिवार की कचहरी गिरी पूजाघर गिरा कमरे गिरे। छतहीन कमरों के ताक दिखते जिनमें क्या-क्या रखा जाता था वह सब आँखों के सामने नाच उठता। कैसी मजबूत दीवारें थीं कि मजदूर दिन-दिन भर छैनी लिये धूल उड़ाते गिराते फिर भी आधी दीवार तक नहीं गिर पाती थी। बड़े ससुर शिवनाथ ठाकुर की बैठक में चित्रकारी थी और अब वे सब चित्र छतहीन दीवारों में धूल भरे कैसे विवश निरीह-से रहे थे। क्या बड़े ससुर के जमाने में किसी का साहस हो सकता था जो चित्रकारी को छू सकता था? और आज ठाकुर-परिवार की वह [illegible] श्रीमोहन के हाथों धूल-धूसरित होकर धराशायी हो रही थी। कैसी शीशम की काली चिकनी छतें थीं। सब टूटी धरनियाँ भी गिरायी जा रही थीं। इस सबको अर्जित करने में जाने कितनी पीढ़ियों का रक्त-पसीना एक हुआ था और आज

वही सम्पत्ति कौरवों के बीच द्रौपदी सी असहाय लग रही थी। किसको दोष दिया जाता? पंडित श्रीनाथ ठाकुर ने यदि परिवार की बागडोर सशक्त हाथों से सम्हाली होती तो आज पैतृकता धूल बनकर इस समय न उड़ती होती। अपने ही पूर्वजों का पुरुषार्थ कभी अपने का ही श्रीमंडित न कर धूलमंडित भी कर सकता है यही तो हम कभी-कभी क्या प्रायः नहीं समझ पाते। झरोखाकर या रोशनदान होकर कभी-कभी खिड़की बन्द कर दी जाती लेकिन इससे उड़ती धूल से स्वयं भले ही बचा जा सकता था किन्तु धूल होते पैतृक-पुरुषार्थ को कैसे बचाया जा सकता था? जब अपना ही एक अंश, दूसरे अंशों को खाने पर आ जाए तब किसी बाहरी आपदा या शत्रु की आवश्यकता नहीं होती।

और ठाकुर-परिवार के खण्डहरों पर मारवाड़ी सेठ की नींवें पड़ीं। दीवारें उठीं। दीवारों ने चौखटों को सम्हाला। चौपलेवाली खिड़कियों ने अपने माथों पर दीवारें उठा लीं। और ठाकुर-परिवार की दीमकी शहतीरों तथा छतों पर सेठ ने अपनी कोठी की मंजिलें खड़ी कीं। अरे यह क्या? यह तो खिड़की की तरफ एक बड़ी सी दीवार उठने लगी है? तो क्या अब उधर कभी देखना न हो सकेगा? जिस खिड़की से इस घर की सास-बहुओं ने जाने कितने ससुर, जेठ देवर, ब्याह-शादी देखे थे आज उस खिड़की के सामने ताजी दीवार हमेशा हमेशा के लिए खड़ी कर दी गयी है जिसमें से ताजी ईंटों और पलस्तर की गंध आ रही थी। अब उसमें से बड़ा धुँधला-धुँधला सा मात्र प्रकाश आएगा धूप नहीं आयेगी। ठाकुर-परिवार के इस खिड़की भाग को अंधा कर दिया गया था। जो खिड़की घर के प्रत्येक सुख-दुख राग-विराग हँसी-आँसू सब में, सब के लिए साक्षी थी अब वह वैसी नहीं रह गयी। कमरे के बर्तन कपड़े भांडों के मुख अब कभी धूप में आलोकित नहीं दिखेंगे। पहले ही घर में कौन प्रकाश था? अँधेरा बड़ा ही। धूप चाहे कैसे ही छोटे माध्यम से क्यों न आये प्रज्वलित लगती है। विश्वास होता है कि कहीं बाहर ढेर सा आलोक है आओ–देखो कैसी धूप है कैसा विस्तृत नीला आकाश है उन्मुक्त जाता है। लेकिन अब खिड़की की राह से दूसरे के घर की यह दीवार दिन-रात झाँकती रहेगी। हर बार आँखें इस दीवार से टकरा कर आने में ही सिमट उठेंगी। श्रीमोहन जैसे उन्हें ही बेध गया हो।

कुछ दिनों बाद सुनी हुई बात सच निकली कि इस दीवार के उस तरफ मारवाड़ी सेठ का ऊँटों का अस्तबल है। दिन-दिन भर ऊँटों की 'बलबल' तथा लीद की दुर्गंध। दिन भर ऊँटसवारों की विचित्र आवाजें। रात हो जाने पर ये कोई घटना याने आवाजें कुछ नहीं होतीं। नियमतः पंडित सीताराम ठाकुर की बैठक की आवाज वैसी ही रात में बोलती होती और 'विष्णुसहस्रनाम' का जोर जोर से पाठ सुनायी पड़ता। प्रायः सीता दोनों जून का खाना सबेरे ही बना लेती। केवल सरो के पथ्य के लिए ही शाम को चूल्हा जलता। सचमुच विलक्षण सरी शान्ति थी जैसे सब ने संघर्ष और आकांक्षा छोड़कर परिस्थितियों से समझौता कर लिया था। पालीवाली चोखिम या ऐसे ही कुछ व्यक्तियों को छोड़कर कभी कोई बाहरी व्यक्ति नहीं आता था और न ये ही कहीं जाते थे। हाँ, बहुत हुआ तो कभी नारायण बाबू अकेले या परिवार के साथ मिलने चले आते। दूसरा जो व्यक्ति आ सकता था वह था वेंकट मजूमदार लेकिन उसका तबादला हुए बरसों हो गये थे। हाँ, खबरें अवश्य आ जाती थीं। खबरें कैसे आती हैं यह कोई नहीं कह सकता। आप लोग राजा परीक्षित बन कर रह लें लेकिन खबरों के तक्षक आ ही जाते हैं। सुनी की मौत ने अपनी सास को इतना परेशान किया कि वे बहू के माथे पर कलंक का टीका लगाने के लिए कुएँ में कूद कर डूब मरीं। [illegible] परिवार का इस मामले में पुलिस से पिंड छुड़ाने में हजारों रुपये खर्च करने पड़े। सुना कि जेल में अरुण मधुर की बड़ी बुरी हालत कर दी गयी है। वह मानसिक क्षीण अब घर के पीछे के दालान में खाटी के एक टुकड़े पर पड़ा रहता तथा "पार्वती" "पार्वती" चिल्लाता रहता है और बहू के डर के मारे किसी की दखल नहीं। बा उस कष्ट से है। सुनी का पति मरा न ही घर का रहा था। सब और नरक हालत में है। सिवाय सूप की दाल के पानी के और सूखी रोटी के टुकड़े के और कुछ हजम होता ही नहीं है। भाग्य दया-दान भी गयी है लेकिन कोई काम-धन्धा ही नहीं रहा। मेरा और माँ का यह पुनर्वार सम्बन्ध भी नहीं हुआ लेकिन—अच्छे का अच्छा और बुरे का बुरा—इस प्रति उनकी आस्था बनी थी। सुनी के निकट कोई आशंका थी ही नहीं इसलिए न आस्था रहने का प्रश्न था न सरोकार आज का। शान्त व इसलिए मन लिया। जो जनता सब कुछ सहती है सो क्या उन पर सोचती है? विचारती है? उसका चिन्ह भी तो उसके लिए कर मात्र व्यापार ही था। सुन लिया बस। अब वह सात दिन रिता के पुनर्वास की बिलायतों को पढ़ा करती है। इन दिनों पर अब तक यात्रा साहब का आना रस्सी का आम हो गयी है तो सोचती है कि ये कौन हैं? क्या ये नहीं हैं जिनकी वाणी तानाशाह

लाब के किनारे है ? बाबा का इनसे क्या संबंध था । बाबा ने तो कभी इसकी
र्चा नहीं की लेकिन बाबा ने दूसरी कौन सी चर्चा की, कि शिकायत होती
क यह चर्चा छोड़ दी ?

ता नहीं इस घर को यहाँ के लोगों को किस बात की प्रतीक्षा थी लेकिन ऐसी
तीक्षा तो जीवन भर सभी को सभी परिस्थितियों में किसी न किसी की रहती
ी है । पंडित श्रीनाथ ठाकुर और उनकी पत्नी का अपने खोये पुत्र की सरो को
पने 'राम' की प्रतीक्षा थी जिसने उन्हें सीता बनने का भी सौभाग्य न दिया बल्कि
ममस्वी परित्यक्ता बना गये । मुन्नी को बाबा की प्रतीक्षा के साथ-साथ किस
ीज की प्रतीक्षा हो सकती थी कौन कह सकता है ? लेकिन थी सबकी अम
तीक्षा ही । किसी के पास किसी को समझाने के लिए, पूछने के लिए न शब्द
े न सहानुभूति । एक अव्यक्त सहृदयता थी जो उन्हें अंतिम रूप से टूटने बिख
ने से बचाये थी । दुख ने उन्हें निकटता दी थी । वो दुखी नहीं थे बल्कि सुखी
ें वे अपनी-अपनी दिशाओं में दूर चले गये थे । चार दिशाओं से केवल एक ही
यक्ति की मौन प्रतीक्षा थी । कभी-कभी बाहर की खबरें छपाक सी मक्खी सी
ूब कर उनकी शांति को भग कर जाती लेकिन वे खबरें तथा उनके वाहक दोनों
ी अवाक बन मुँह लटका लेते जब देखते कि ये श्रोता न केवल धृतराष्ट्र और
ांधारी ही हैं बल्कि जैसे उनके कानों में पिघला सीसा भरा हुआ है । सुनने पर
न आश्चर्य न क्षोभ कुछ भी तो नहीं होता । जो होता है वह इतना अप्रत्याशित
व्यक्तिगत होता है कि उसे कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती और न कहा ही जा
सकता है ।

मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। तीन दिन से मेघाच्छन्न था। जब से धीवर बाबू को मालूम हुआ कि वे छूटने वाले हैं, वे सोच नहीं पाते थे कि अब क्या करना होगा। पिछले दस वर्ष तक सरकार ने उन्हें जेल चक्की आदि का ऐसा काम दे दिया था कि सोचने की आवश्यकता ही समाप्त हो गयी थी। वे चूंकि आदर्श कैदी थे इसलिए उन्हें अतिरिक्त दण्ड नहीं भुगतना पड़ा। केवल उन दिनों को छोड़ कर जबकि जेल में सभी कैदियों ने और खासकर क्रान्तिकारियों ने राजनीतिक कैदियों की सुविधा के लिए भूख हड़ताल की थी। यतीन्द्र दास के बाद सबसे लम्बा अनशन करने वालों में धीवर बाबू भी थे और इसमें हमेशा के लिए उनकी अंतड़ियां खराब हो गयीं। आरंभ में अवश्य उनके साथ सख्ती बरती गयी थी जिसमें वे हमेशा के लिए स्वास्थ्य खो बैठे। गनीमत यही हुई कि कोई अंग-भंग नहीं हुआ।

जिस समय वे जेल से बाहर आये सवेरे के दस बज रहे थे। इतनी मूसला

सारे रास्ते में कोई रिक्शा भी नहीं दिख रहा था। उनके सामने पहला प्रश्न था कि वे अब कहाँ जाएँ? क्या करें? जेल जाते समय शास्त्रीजी से कह दिया था कि वे सामान अपने घर ले जाएँ। दस वर्ष तक बनारस में रहते हुए भी जैसे बनारस में नहीं थे। किसी तरह भीगते हुए वे शहर की ओर बढ़े। एक इमली के पेड़ के नीचे एक रिक्शा दिखा लेकिन इसमें तो साइकिल थी। तो क्या साइकिल रिक्शा बन गये थे? और वे अब रिक्शा में शास्त्री जी के घर की ओर रवाना हो गये।

रविवार था इसलिए शास्त्रीजी घर पर ही मिल गये। पहले तो वे चौंके। मन में कदाचित आशंकित हुए कि यदि श्रीधर बाबू को पुलिस उनके घर में देख ले तो पता नहीं वे किस मुसीबत में फँस जाएँ। शास्त्रीजी काशी की 'पंडित-सभा' के सदस्य थे और जो कि राजभक्तों की संस्था थी। भला राजनीतिक लोगों से उन्हें क्या लेना-देना? लेकिन स्पष्टतः वे कुछ भी न कह सके। भोजनोपरान्त शास्त्रीजी ने श्रीधर बाबू का कार्यक्रम जानना चाहा कि अब वे क्या करेंगे? क्योंकि 'हिन्दी-हितकारिणी' को बन्द हुए तो बरसों हो गये थे। कांग्रेस में वे अब जा भी नहीं सकते थे और मान लो जाएँ तो ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह का अब बहुत बोलबाला था। कांग्रेस अंग्रेजों के साथ समझौता करके कुछ प्रान्तों में मन्त्रिमंडल बनाने वाली थी। ठाकुर सकलदीप नारायण सिंह मन्त्री बनने के सपने देख रहे थे। भला इतना प्रभावशाली व्यक्ति विरोधी हो तो कोई कैसे कांग्रेसी राजनीति में टिक सकता था? सिवाय कहीं नौकरी तलाशने के और कोई रास्ता शेष नहीं था।

इस बीच विश्व की राजनीति में बड़ा परिवर्तन हो गया था। जर्मनी का हिटलर आये दिन यूरोप के राष्ट्रों को युद्ध की धमकियाँ दे रहा था। देश में हिन्दू-मुसलिम तनाव काफी बढ़ गया था। आये दिन कहीं न कहीं दंगे हो जाते थे। बनारस में थोड़े दिन पहले दंगा हुआ था इसलिए काफी तनाव था। श्रीधर बाबू के मन में रह-रहकर एक ही बात घुमड़ती थी कि काश वे किसी तरह साप्ताहिक निकाल पाते तो वे अपने सारे विचारों को पूर्ण रूप दे पाते। लेकिन साप्ताहिक किस प्रकार निकाला जा सकता था? शास्त्रीजी के प्रयत्न से 'अस्सी' पर उन्हें गंगा किनारे एक मठ में रहने की जगह मिल गयी। काशी में रहते उन्हें ग्यारह वर्ष होने आये थे लेकिन लगता था कि जैसे पहला दिन हो और कामकाज तलाशना है।

रों ओर जल ही जल था। खूब ही वृष्टि हो रही थी। गंगा में बाढ़ का मटमैला ... खूब हो आया था। दिन भर अपनी खिड़की से पड़े-पड़े नावें देखते रहते। ...नियों से भरी नावों में स्त्रियाँ गीत गाती गुजरती होतीं। गंगा का पाट मीलों ... गया था। उस पार की हरियाली और पेड़ पेन्सिल-रेखा से हो गये थे जिनके ... मेघपूर्ण आकाश धुआँ-धुआँ सा बरसता सा छाया हुआ था। पेट का रोग ... गया था। मठा और खिचड़ी खाकर रह जाते। मठ के दूसरे हिस्से में साधु ...ग और भाग से धार करते अष्ट संस्कृत में 'शिमोक' पढ़ा करते। दिन भर तमाखू ... गंध या फिर कसरत करते हुए "हुँम-हुँम" सुनायी पड़ता। उनकी काठ की ... चप्पियाँ दिन भर पथरीले फर्श पर "खटाक" "खटाक" बोलतीं पूरी मठ में ... सी सुनायी पड़तीं। कभी बाबा रामानन्द बाबा सकलानन्द पर बिगड़ रहे ... तो कभी किसी पर। दिन भर उन लोगों की मयली लँगोटियाँ खम्भों में बँधी ... लटकी होतीं। सिवाय खाने-पान-पीने के मठ में और क्या होता है यह श्रीधर ... बाबू को नहीं मालूम। श्रीधर बाबू का कमरा बाला कमरा मिला हुआ था। पत्थर ... की ही दीवार, जिनमें गवाक्षों जैसी दो खिड़कियाँ। चौकी-पाटी पर श्रीधर ... बाबू पड़े रहते। पढ़ने भी सामान कुछ था ही नहीं। जो था वह गत दस वर्षों में गान्धीजी की सभा के बावजूद भी नष्ट हो गया। लेकिन पूरे मठ के इस पथ-रीले कमरे में दिन-रात पड़े रहने पर उन्हें लगता कि जैसे वे अभी भी कारा-गार में हैं। पीछेवाली खिड़की से पश्चिम ओर से आती गंगा रामनगर का किला तथा उस पार की ओर का आकाश स्पष्ट दिखायी पड़ता। दूर-दूर तक विस्तृत ... बस्तियाँ बगारें, बाजार सब दिखे दिखने। खिड़की के नीचे से मल्लाहों ... लोगों की आवाजें या बातचीत का टुकड़ा उन तक ऊपर तक भी आ जाता। गंगा में बाढ़ बढ़ने की पूरी सम्भावना थी। कभी-कभी तो बाढ़ नीचे के बाजारों में घुस आती है। क्या अराम जैसा लगता होगा न?

बाद एक महीना का दौरपुर से बाद भी व सामाजिक विचारों का ... मामला नहीं नहीं बन पा रहे थे। कितने ही महीना गम्भीर विचार के गर्तों में मिले। सब

कहते कि विचार बड़ा अच्छा है देश को राष्ट्रीय पत्रों की बड़ी आवश्यकता भी है लेकिन जैसे ही उन्हें मालूम होता कि वे दण्डभोगी क्रान्तिकारी रहे हैं तो उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगती। रात को मठ में पहुँच लालटेन की रोशनी में रात रात भर बैठे अनुवाद किया करते। कई बार मन करता कि वे सरो को एक पत्र लिखें लेकिन पिछले बीस वर्षों में वे ऐसे ही प्रत्येक बार साहस कर पत्र लिखते रहे हैं और अधूरे ही ल्फाफिया फाड़ देते रहे हैं। जब वे अपनी ही दृष्टि में असफल व्यक्ति रहे हैं तब भला सरो क्या सोचेगी ? प्रत्येक दिन हमारे स्पर्श के संकोच के कारण संबंधों से दूर करता जाता है। हम यह भूल जाते हैं कि किसी दिन तो यह संकोच तोड़ना ही होता है तब क्यों नहीं आज ही बल्कि अभी ही तोड़ दिया जाए ? लेकिन ऐसा होता तो नहीं है न ? और हम जाने कितने समय के व्यवधान के पार खड़े सामने वाले को विश्वास दिलाना चाहते होते हैं कि नहीं हमारे मन में तो कोई पर भाव नहीं था।

और एक दिन—

दिन के बाद दिन—

और असंख्य दिन हमारे चारों ओर फैल जाते हैं। श्रीधर बाबू चाहते थे कि सरो या इन्दु दीदी या मालती दीदी को किसी को पुकार लें। बाधा रखना ही होगी। लेकिन रात के उस गहरे सन्नाटे में गंगा के प्रवाह का अजीब सा स्वर, लालटेन की जलती बत्ती का धीमा-धीमा मौन स्वर और अपनी ही गहरी साँस की आवाज से वे चौंक उठते। कहीं तो सरो, इन्दु दीदी या मालती दीदी नहीं है। ख्याल आता कि क्या पता सरो पर कितनी और कैसी-कैसी विपत्तियाँ आयी होंगी और चिमनी के आलोक में रात्रि के गहरे ऐसे ही सन्नाटे में क्या उसने नहीं पुकारा होगा ? जब कि उसकी पुकार एक वास्तविक सहारे के लिए हो सकती थी। माना कि आज भी यदि वे पत्र लिख कर सरो को पुकारें तो वह अपने पति का नाम लज्जित रोगी पराजित, अपरूप देखने पर भी अपने में समेट लेगी लेकिन तब उनका क्या मुँह रह जाएगा ? और लालटेन बुझा पीठ में चुभती चौंकियाती पर धोती का तकिया बना लेटे हुए सोने की चेष्टा करते। नींद प्रायः उनके लिए सफलता की तरह अप्राप्य ही होती।

आज वे बहुत प्रसन्न हैं। इसीको तो तिल की ओट पहाड़ कहा जाता है। आज वे "नागरी प्रचारिणी सभा" से जैसे ही निकले सोचा कि चलो "भारत-माता प्रेस" से "हिन्दी हितकारिणी" के वे अंक ले लें जो उनके जेल जाने के बाद निकले। मनन हुआ था उनकी पूरी लिस्ट बनवा ली जाएगी। वे पत्रिका के अंक पंडित जी से नहीं माँगना चाहते थे। पंडित जी ने उनके जेल से आने के बाद कोई ऐसा व्यवहार नहीं किया जिसमें यह लगता कि वे कभी उनके इतने निकट भी रहे हैं। बड़ा ही ठंडा-ठंडा सा व्यवहार था। जिसका स्पष्ट अर्थ था कि वे क्रान्तिकारियों से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहते।

वे जैसे ही गायघाट पहुँचे प्रेस के मालिक बाबू रामनन्दन गुप्ता अपनी उसी परिचित ढंग से मेजों पर झुके हुए कुछ प्रूफ वगैरह पढ़ रहे थे। प्रेस में जहाँ पहले आठ-दस आदमी काम करते थे अब वहाँ एक कम्पोजिटर और एक लड़का सा ही दिखायी दिया। दरवाजे पर मटमैली सी फटी चिक पड़ी थी।

—रामनन्दन बाबू !

—कौन ?

टेबल-लैम्प जलाये प्रूफ में डूबे रामलोचन बाबू की मूँछें अब खिचड़ी हो गयी थीं। उन्होंने उसी तरह डूबे हुए फिर कहा
—चले आइए अन्दर।

धीरज बाबू उनके सामने जाकर खड़े हो गये। बड़ी गंदी हालत थी टेबल की। बरसों से प्लास्टिक-पेपर नहीं बदला गया था जिस पर कि जाने कितनों ने नाम फोन नम्बर, अवकाश के समय बनायी गयी चित्रकला सब पर धूल ही धूल थी। बाबा आदम के जमाने का वही कलमदान बिना स्याही के वैसा ही लग रहा था जैसा कि आज से दस-ग्यारह वर्ष पूर्व जब वे यहाँ आया करते थे। एक कुर्सी जिसकी कि बेंत बैठने की जगह से टूटी हुई थी सामने रखी थी। रामलोचन बाबू ने आगन्तुक की ओर देखने की आवश्यकता नहीं समझी और बोले
—बैठ जाइए साहब।

धीरज बाबू बैठ गये। कुछ देर प्रतीक्षा के बाद रामलोचन बाबू ने पहले बत्ती बुझायी फिर चश्मा उतारा और उन्हें घूर कर बोले
—कहिए क्या छपवाना है आपको?
—जी आपने मुझे नहीं पहचाना रामलोचन बाबू! मैं
रामलोचन बाबू ने अपनी कुर्सी पर दोनों पैर उठाकर टेबल पर आगे झुक कर देखा और बोले
—कौन धीरज बाबू?
—जी हाँ।
—कहाँ थे जनाब आप?
—जेल चला गया था न?
—वो तो हमको सब मालूम है। लीजिए, पान खाइए। लेकिन आपके तो एकदम ही बाल सफेद हो गये। बहुत बीमार रहे क्या?
—अब आप तो जानते ही हैं कि जेल में
—अरे हाँ साहब! जेल कोई ससुराल थोड़े है कि बिस्तर उठाया और चल दिये। अरे हाँ भाई, "हिन्दी-हितकारिणी" तो बैठ गयी।
—जी हाँ।
—असल में आपके जाने के बाद त्रिपाठी जी का साला उसमें काम करता रहा। आपको कुछ मालूम हुआ?
—क्या? मुझे कुछ नहीं मालूम।
—अरे वाह गुरु! अरे वो कौन उनका साला रहा न? हमारे छह महीने का

पैसवा त्रिपाठी जी से लेइ के भाग गया रहा अपने देहात। त्रिपाठी जी कहिन के ऊ कहता रहा कि हम रामसेवावन बाबू को पैसा अपने हाथों से दिया। अरे श्रीधर बाबू! इस पर जो झगड़ा हुआ कि कोर्ट-कचहरी हो जाता लेकिन लाख बीच-बचाव किये तब हमको पैसा मिला। सुना हमारे यहाँ से पत्रिका गयी तो फिर दो महीने ही 'पावगी-प्रेस' में छपी लेकिन ठप्प हो गयी। अरे, आप जितना दौड़ते-धूपते रहे कौन सरका करेगा इतना? कहिए, आप आजकल क्या कर रहे हैं? अरे हाँ कैसे आये थे?

—यों ही चला आया था सोचा आपसे मिले बहुत बरस हो गये। यदि पत्रिका की कुछ प्रतियाँ हों तो ले लूँ।

—अरे साहब! अब उस पत्रिका की प्रतियाँ? किसी साहु की दूकान में पुड़ियाँ बाँधने के काम आ रही होंगी।

और अजीब सन्तोष के साथ वे हँसे। श्रीधर बाबू उठने को हुए कि रामसेवावन बाबू बोले

—अरे बैठिए बैठिए। ऐसी क्या जल्दी है। कब आये जेल से?

—काफी महीने हो गये।

—अच्छा?? तो अब फिर राजनीति

—मैं तो पहले भी राजनीति में कुछ खास था ही नहीं बस वैसे ही।

—उस पर दो-दो बार जेल जाना पड़ा? वाह श्रीधर बाबू! निरे सीधे आदमी रहे। अच्छा यह बताइए क्या कर रहे हैं आजकल?

—यही थोड़ा-बहुत अनुवाद कर लिया करता हूँ।

—बस?? क्यों नहीं आप पत्रकारी में चले जाते?

—इतना आसान है क्या?

—हाँ ऽऽ भाई, आसान तो नहीं है। "आज" में ही कुछ जुगाड़ लगाइए न?

—हाँ ऽऽ देखिए।

—वो ऽऽ आप तो एक बार कोई साप्ताहिक निकालने वाले थे।

श्रीधर बाबू बड़ा फीका-फीका सा हँस दिये। रामसेवावन बाबू कुछ हतप्रभ हो गये।

—आप हँसे क्यों?

—रामसेवावन बाबू! साप्ताहिक के लिए दो-तीन हजार रुपया तो शुरू में चाहिए ही। और वह रुपया कहाँ से आये?

—यह तो बात है ठीक वहीं आपने लड़ाई सि— पर आ गयी है। जान बँधी-

कैसी अफवाहें फैल रही हैं कि चीजों के दाम बढ़ेंगे। लड़ाई हुई तो बाहर से चीजें आना बन्द हो जाएँगी। और आजकल बाजार में बड़ी मन्दी आ गयी है।

—क्या आपने आदमी कम कर दिये अपने यहाँ ?

—क्या करें धीवर बाबू ! इतनी पूँजी नहीं कि बड़ी मशीनें लगा सकें। बड़ी और अच्छी मशीनें नहीं होने से काम मिलने में परेशानी हो गयी है। अब बस एक ही कम्पोजिटर रखा है। जाब-वर्क आता ही कितना है ? बहुत हुआ शादी-ब्याह के कार्ड छाप दिये। किसी की रसीदें था गयीं बस। भला इतने से काम पर आठ आदमियों को कोई कैसे रख सकता है ? असल में हम दिनों सोच रहा था कि कोई कहानी की मासिक पत्रिका निकाली जाए। कहिए, आपका क्या विचार है ?

—साहित्यिक पत्रिका की बड़ी आवश्यकता है।

—साहित्यिक पत्रिका का चलना तो कठिन ही है। वैसे कहानी की पत्रिका की बड़ी आवश्यकता है।

—अच्छा है आप जरूर निकालें।

—निकालना इतना आसान काम नहीं है धीवर बाबू ! पचास झंझटें हैं। आप तो जानते ही हैं कि विश्वासपात्र आदमी का मिलना कठिन है। अकेला आदमी क्या-क्या करे ? अच्छा,यह बताइए कि साप्ताहिक निकाला जा सकता है ?

—क्यों नहीं निकाला जा सकता है।

—मैंने यह नहीं पूछा। मैं यह पूछ रहा हूँ कि चल जाएगा ?

—जैसे आप यह नहीं कह सकते कि मासिक चल जाएगा वैसे ही मैं साप्ताहिक के चल जाने के बारे में क्या कह सकता हूँ ?

—लेकिन धीवर बाबू ! मैं समझता हूँ कि हिन्दी में आज कोई साप्ताहिक नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा का हो   निर्भीक हो तो जनता अवश्य पढ़ेगी।

—तो फिर आप यही निकालिए।

—एक तो भाई, पैसों का प्रश्न है दूसरे आप जैसा कोई विश्वासपात्र मिल जाए तो काम बने। आप जैसा ही कोई कर्मठ हो कि जो सारी दौड़-धूप कर सके। अब आप जानते ही हैं कि मुझसे कभी दौड़धूप हुई नहीं। और जो पत्र को अपना पत्र समझ। वर्ना उसमें की पूँजी लागत से भी हाथ धोना पड़े। है मेहनत का काम जरूर लेकिन एक बार चल निकला तो फिर मजे की बात है, क्यों ठीक कह रहा हूँ न धीवर बाबू ?

—हाँ ठीक ही है ।
—मैं कहता हूँ श्रीधर बाबू ! आप स्वयं क्यों नहीं सोचते इस बारे में ? अरे, जैसे मेरा यह पत्र होगा वैसे आपका पत्र होगा ।
—सोचिए, सोच कर बताऊँगा ।
—अच्छा । आइएगा फिर कभी ।

रास्ते भर वे प्रसन्न थे । साथ ही सोच भी रहे थे कि यदि रामलोचन बाबू तैयार हो गये तो बरसों की उनकी इच्छा पूरी होगी । यद्यपि रामलोचन बाबू शुरू से ही इस तरह से बातें करते रहे हैं कि जिसमें वह उनसे कुछ माँग न कर सकें । वे उनकी सारी बातें समझ रहे थे लेकिन वे इस समय चुप रहना चाहते थे क्योंकि उन्हें अपने परिश्रम पर विश्वास था ।
वे सीधे शास्त्रीजी के यहाँ पहुँचे । उन्हें सारी बातें बतायीं । उनका मत था कि यह रामलोचन जरूरी पूर्ण है । देखभाल की सारी बातें तय कर लेना वर्ना बाद में परेशान करेगा । श्रीधर बाबू शास्त्रीजी के यहाँ से अपनी किताबों में से "संगमन" की योजना बनाने का प्रारूप सोचने में लगे ।

देर रात तक बैठकर "संगमन" की योजना का रूप स्वरूप गढ़ते रहे । कितने पृष्ठ होंगे कौन-कौन से स्तम्भ होंगे आदि बातें पूरी करते काफी रात हो गयी और वे जब चौकी-खाटी पर लेटे तो रात में कभी आगे का डर होने लगा ।

छह महीनों की दौड़-धूप के बाद आज 'गंगनाद' का प्रवेशांक प्रकाशित हो गया। जितने उत्साह से उन्होंने अपने पहले सम्पादकीय में "अंग्रेजों को चेतावनी" शीर्षक के अन्तर्गत काफी खरी-खोटी सुनायी थी। रामखेलावन बाबू को उस दिन का सम्पादकीय ही पसन्द नहीं आया। वे उसे उग्र मानते थे और उनके बार-बार कहने पर श्रीधर बाबू ने काफी नरम कर दिया था फिर भी श्रीधर बाबू एक साथ गांधी जी, आजाद, भगतसिंह, जलियांवाला बाग, असहयोग दांडी-यात्रा सबके ऐतिहासिक चित्रों का दिखाना नहीं चूके।

रामखेलावन बाबू को आश्चर्य हुआ कि "गंगनाद" की लोकप्रियता उसके प्रकाशित होते ही पूरे बनारस में फैल गयी। उन्हें लगा कि जैसे वे बनारस की सड़कों पर पेट्रोल का जलता डिब्बा लिये दौड़ रहे हैं। अब तो 'भारत-माता' प्रेस के साथ चक्कर काटने लगे। श्रीधर बाबू ने जितने उत्साह से "गंगनाद" की प्रति अपने पिता के नाम, नारायण बाबू, गाडोलिया हेडमास्टर के नाम, श्रीकान्त ठाकुर के नाम, प्रसेन मजूमदार के नाम तथा दो चार जगहों पर और भेजी। उस रात वे उत्साह तथा सफलता के आवेग में सो न सके। रात भर सोचते रहे कि अब

"समवाय" की प्रति बाबू को मिलती तो पहले तो कुछ समझ नहीं पाएँगे लेकिन जब अपने पुत्र का नाम देखेंगे तो कितनी प्रसन्नता होगी। माँ प्रसन्नता से भर उठेंगी। सरो क्या सोचेगी? अब तो वह भी चालीस बरस की हो गयी होगी। वे अपनी गीतापाठ पर पड़े-पड़े देखते रहे कि "समवाय" के सम्पादकीय को सरो पढ़ रही है। कैसे उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठी हैं। मेरा कैसे तेज सब माँग सभी एकबार, दुबारा, तिबारा देख पढ़ रही है। उन्हें लगा कि बस अब थोड़ी ही दिनों की देरी है कि एक दिन वे सहसा अपने घर जाएँगे। सबको कितना आश्चर्य होगा। उसके बाद वे सरो का बच्चा का और सोमर हुआ तो बाबू-माँ को भी बनारस ले जाएँगे। पता नहीं इन वर्षों में घर वालों ने उनके के बारे में उनके बारे में क्या-क्या सोच डाला होगा। दादा श्रीमोहन ने तथा भाभी ने इस मामले की अग्नि को कभी कम न होने दिया होगा। वे अब जल्द ही घर पर सितंबर और पहली बार अपने बारे में घर कोई सूचना देंगे। आगमन मात्र से सचमुच ही प्रसन्नता होगी। दमन भी दूर हो जाएगा। अब लोगों को लगेगा कि श्रीधर ने क्यों घर छोड़ा था। अब वे इस पत्र के द्वारा धीरे धीरे प्रभाव डाल सकने की स्थिति में होंगे। मास के पहले वे इस मामले में बिल्कुल साफ थे कि रामनरेशावन बाबू उन्हें पूरी तरह पढ़ा कर कुछ भी प्रतिक्रिया में नहीं देना चाहेंगे। ठीक है यदि यह उनका अधिकार हो बने रहेंगे तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी कि "समवाय" के लिए लिख सकने उनको ही चलना पड़ रहा है।

श्रीधर बाबू को सवेरे से शाम फिर उदास थी या दम मारने की भी फुर्सत नहीं होती। उस नगर में सारा अखबार वे ही लिखते थे। क्योंकि रामनरेशावन बाबू श्रीधर बाबू के वतन के अतिरिक्त तब भी पैसा किसी भी चीज के लिए खर्च नहीं चाहते थे। रामनरेशावन बाबू यहीं पर समझ गये थे कि यदि वे चाहें तो घर जाकर ताल ठोंक सकते हैं और फिर भी "समवाय" निकलता रहेगा क्योंकि श्रीधर बाबू के लिए यह अनिवार्यता थी। यह भी जानता था कि कथा-

पोजीटर तथा मशीनें यों ही भारी पड़ रही थीं। काम कुछ था ही नहीं। जभी इसी बहाने प्रेस का नाम होगा और अब वे बाहरी जाब-वर्क ला सकेंगे। उतनी ही तनख्वाह में तथा एक ही कम्पोजीटर से यदि पत्र निकल सकता था तो भला उन्हें क्या आपत्ति हो सकती थी? एक कम्पोजीटर के कारण श्रीधर बाबू को हर सप्ताह दो-तीन रातें भी प्रेस में बितानी पड़ती। वे अब आये दिन रामसेलावन बाबू से कहने लगे कि एक आदमी से काम नहीं चलेगा। अभी श्रीधर बाबू का वाक्य भी पूरा न होता कि रामसेलावन अखबारी कागज की महँगाई, टाइप की कठिनाई, स्याही की तंगी आदि का रोना लेकर बैठ जाते।

—श्रीधर बाबू! प्रेस में काम करने वाले को सब काम आने चाहिए।

—जी।

श्रीधर बाबू ने 'जी' कुछ इस तरह कहा कि रामसेलावन बाबू का साहस नहीं हुआ कि कुछ कहें। जब कि वे कहना चाह रहे थे कि क्यों नहीं फुर्सत के समय वे कम्पोजीटर का हाथ बँटा दिया करते? लेकिन चुप रह गये क्योंकि "शंखनाद" चल निकला था। खासी बिक्री होने लगी थी। अब उसमें विज्ञापन भी आने लगे। दो-एक बार पुलिस जाँच-पड़ताल कर गयी थी लेकिन पत्र पर इन सब बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। एक प्रकार से शुरू दिन से ही दोनों का अलिखित मन ही मन यह समझौता सा था कि पत्र की सामग्री आदि के बारे में रामसेलावन बाबू का विशेष हाथ नहीं होगा और पत्र के आर्थिक पक्ष के बारे में श्रीधर बाबू की कोई जिम्मेदारी न होगी।

इस बीच ठाकुर सत्यदीप नारायण सिंह ने दो-एक आदमियों के द्वारा रामसेलावन पर जोर डाला कि वे श्रीधर बाबू को हटा दें। क्योंकि "शंखनाद" को निकलते हुए एक बरस हो गया था और ठाकुर साहब इतने बड़े अस्त्र को अपने विरोधी के हाथों में नहीं देख सकते थे। बनारस में उन दिनों हिन्दू-मुसलिम काफी तनाव था। 'शंखनाद' आये दिन चेतावनी दे रहा था कि नगर के कुछ राजनीतिक व्यक्ति इस तनाव को बनाये रखने में सहयोग दे रहे हैं। गनीमत यही थी कि

श्रीधर बाबू ने किसी का नाम नहीं लिया था लेकिन उनका संकेत ठीक जगह जाकर निशाने पर बैठा।

बनारस उन दिनों अफवाहों पर चल रहा था, मैं भी रहा था। और एक शाम सबने सुना कि मदनपुरा में किसी हिन्दू जुलाहे पर किसी ने छुरे से वार किया। और बनारस की सारी दुकानें, सारे बाजार, सारे वाहन एकदम ठप्प हो गये। पूरे शहर को जैसे साँप सूँघ गया। कल "अवकाश" को निकलना था और श्रीधर बाबू रात भर प्रेस में काम करते रहे। वैसे भी शहर में कर्फ्यू लगा था, कैसे निकलते? करीब पाँच बज रहा होगा कि वे प्रेस से बाहर निकले और गली से होकर सड़क की ओर बढ़े। पूरी सड़क पर सन्नाटा छाया था। जाड़े की इतनी भोर में खूब कुहरा था। बिजली-टावर की बत्ती कुहरे में डूबी थी। वे चले जा रहे थे कि कुछ पैरों की आहट उन्हें सुनायी दी। उन्हें पता नहीं क्यों कुछ शक हुआ और वे लपक कर एक दुकान पर पड़ी भट्ठी के पीछे छुप गये। तभी उन्हें वहीं शहर-भण्डार वाले मुरारी की आवाज सुनायी दी।

—क्यों बे बेचू! कहाँ गया वह? साला आज प्रेस में रहा मालूम होता है।

—अरे गुरू मैंने उसे अभी अभी प्रेस से निकलते देखा और तुम्हें खबर देने गया।

—नहीं बे, वो इस कर्फ्यू में नहीं निकलेगा। ठीक से देखा था?

—अरे अब उस श्रीधर को नहीं पहचानूँगा? ठाकुर साहब के एक-एक दुश्मन को पहचानता हूँ।

और तभी पुलिस की तेज सीटी दूर सुनायी दी।

श्रीधर बाबू उस जाड़े में काँप उठे। उन्होंने वहीं छुपे अनुभव किया कि उनके पीछे ठाकुर मदन वीर नारायण सिंह ने गुण्डे छोड़ रखे हैं। मौका भी अच्छा चुना था कि बात दब जाएगी कि दंगे में किसी ने मार दिया। एक क्षण को था उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वे पसीने से भीग उठे।

कुछ देर बाद वे वापस प्रेस में लौट आये। कुर्सी पर बैठ टेबल पर सिर रख कर सोचते हुए अपने में खोये रहे।

बाहर भोर फूटने को था।

दिन भर प्रेस में काम था ही और रात में कर्फ्यू लग जाता। इसके 'गामघाट' से 'मस्सी' काफी दूर पड़ता था इसलिए वे दंगे के दिनों में प्रेस लगे। करीब सात दिनों तक दंगे का प्रभाव रहा। उस दिन ठाकुर र नारायण सिंह के गुप्तों से वह विस्थित अवश्य हो गये लेकिन भय म कांग्रेसी मन्त्रिमंडल बनने की बात लगभग निश्चित हो चुकी थी कि त विश्वयुद्ध की घोषणा जर्मनी ने कर दी। दंगे युद्ध मंत्रिमंडल बनने की आदि ने मिलकर छात्रों पर जीवन पर अजीब प्रतिक्रिया कर दी। के द्वारा श्रीधर बाबू दंगों के सामाजिक तथा राजनीतिक कारणों पर प्रका कांग्रेस को उसके अपने अवसरवादी तत्त्वों से सावधान करवाया जाता र शासन को इस बात की चेतावनी दी जाती कि यह द्वितीय विश्वयुद्ध अपनी समस्या है इसे भारत पर यहाँ की जनता पर, तथा आर्थिक नहीं लादा जाए। भारत की ओर से यदि अंग्रेज कुछ भी जिम्मेदा उसकी पूर्ति का भार भारत अपने सिर पर नहीं लेगा।

रोज उनके पास दूर-दूर से चिट्ठियाँ आतीं। जिलों के समाचार होते धमकियाँ होतीं और एक दिन अपने ही कस्बे की मुहर वाली चिट्ठी अजीब उत्साह के साथ खोलने लगे। जाने किस रामचन्द्र तिवारी का खासा बड़ा पत्र था कि वह उनका विद्यार्थी रह चुका है और आजम में काम करता है। 'सपनाम' में कस्बे की खबरें छपनी चाहिए। और वह समय-समय पर खबरें भेजा करेगा। पत्र के साथ ही स्थानीय पुलि की बदली की माँग करते हुए एक खबर भेजी गयी थी। अब आये के समाचार आते। बीस-बाइस वर्ष पूर्व के नाम पढ़ने को मिलते लेकि क्यों बड़ी आत्मीयता लगती। खबर होती कि मोहन सिंह ने बदचलनी अपनी पत्नी की नाक काट ली। हालाँकि इस तरह की खबरों में आत्म अब करने की क्या बात हो सकती थी? लेकिन कभी-कभी तो घंटे कुर्सी पर बैठे हुए सोचते रहते। पर, सभी लोगों के चेहरे, धूप त तो और चिड़ियों की चहचहाहट तक सुन पड़ती। तालाब के पास का स्वामी' के कैथकों की गंध नाक में अनुभव होने लगती। जैसे अभी-अभी के उजाड़ आगे आगे में दर दास उन्हें पुकार रही थी। सरा के मीरे चैन फर्श पर या कुर्सियों पर जाए देखे हों ये लगता है कि पता भी आवाज है।

ऐसे ही समय रामगोपाल बाबू उन्हें चौंका देत

—श्रीधर बाबू ! पता नहीं आप क्यों ठाकुर सकल दीप नारायण सिंह जैसे बड़े नेता के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं ?

—क्यों क्या हुआ ?

—क्या नहीं हुआ ? आपने तो कलम उठायी और लिख दिया। लीजिए पढ़िए क्या लिखा है आपने कि पंडित गोविन्दवल्लभ पंत अपना मंत्रिमंडल पहली बार बनाने जा रहे हैं। भारत के अतीत में कभी मंत्रिमंडल बनते रहे हों लेकिन निकट विगत में कभी ऐसा नहीं हुआ इसलिए हमारे राष्ट्रीय जीवन में यह महान घटना पहली बार होने जा रही है। पंत जी चुनाव करते समय, व्यक्तियों की सामाजिकता के स्थान पर सेवाओं का ध्यान रखें। आप जमींदार हो सकते हैं बड़े धनी हो सकते हैं लेकिन वे ही बड़े देशसेवक भी हैं इसकी पूरी जाँच पड़ताल की जानी चाहिए। क्योंकि अवसरवादियों को यदि इस पहले मौके पर ही घुसने का मौका मिल गया तो जनता का कांग्रेस पर से विश्वास उठ जाएगा। स्वाधीनता के संघर्ष में करोड़ों लोग जो प्राण निछावर करने पर आतुर हैं उनकी आस्था उठ जाएगी।—यह सब क्या है ?

—तो आपके ठाकुर साहब यह क्यों मानते हैं कि यह उन पर ही लिखा गया है।

—वाह जनाब ! आप दिन-रात उनके पीछे हाथ धोकर पड़े रहें उनके मुँह से संगीत का और छिनवा दें तो भी वे चुप नहीं माने हैं न ?

—तो क्या वे मंत्री नहीं बनाये जा रहे हैं।

—जी नहीं।

—रामसेवक बाबू ! आपको इसकी प्रसन्नता होनी चाहिए।

—किस बात की ? क्या इस बात की कि ठाकुर साहब जल्द ही यह पत्र और प्रेस दोनों ही बन्द करवा देंगे ?

—भला यह कैसे हो सकता है ?

—कैसे नहीं हो सकता है ? उनके भाई ठाकुर मधुसूदन सिंह डी॰ आई॰ जी॰ पुलिस हैं। किसी भी धारा में आपके साथ जनाब ! सभी इस पत्र और इस प्रेस सबको बन्द कर सकते हैं।

—तब तो हमारी नैतिक विजय होगी। यह सिद्ध हो जाएगा कि ये जमींदार लोग पूँजीपति जनता के बल पर नहीं सरकार के बल पर बने हुए हैं।

—अरे आपकी नैतिक विजय जाए भाड़ में। रोटियों के लाले पड़ जाएँगे हमारे आपके। और आपको क्या ? ढूँढ़ना तो मैं न ? सा बारा हमारी तो किसी

से लड़ाई नहीं है। 'लोकनाद" मैंने नौकरी करने के लिए नहीं निकाला है साहब!

—मैं आपका मतलब नहीं समझा।

—मतलब साफ है श्रीधर बाबू! मैं ठाकुर साहब को नाराज कर अपने प्रेस में ताला नहीं डलवाना चाहता। आप क्रान्तिकारी हैं जानते हुए भी मैंने आपके साथ सहानुभूति बरती है। यह आप सोच लीजिए कि 'लोकनाद' किसीका विरोध नहीं करेगा।

श्रीधर बाबू को गुस्सा तो बहुत आया कि वे अभी सब फेंक-फांक कर चल दें लेकिन जाने क्या सोच कर चुप हो गये शायद एक कारण यह भी रहा हो कि छह महीने का वेतन रामधनावन बाबू अपने कब्जे में किये रहते थे।

श्रीधर बाबू का ख्याल था कि उन्हें 'शंखनाद' छोड़ देना पड़ेगा लेकिन वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि रामसनेहावन बाबू आये दिन जो इस तरह की घुड़कियाँ दिया करते थे उसमें उनके अनेक उद्देश्य पूरे होते थे। एक तो यही कि कहीं श्रीधर बाबू अपने बारे में ही कुछ न कहें। दूसरे, श्रीधर बाबू नये आदमी बढ़ाने की माँग न करें। तीसरे यह कि श्रीधर बाबू हमेशा फरमाबरदार बन कर रहें। चौथे यह कि ऐसे घुड़कते रहने से श्रीधर बाबू थोड़े दिन ठाकुर सरफराज नारायण सिंह के बारे में चुप रहेंगे और उन्हें समय-समय पर ठाकुर साहब से पैसा ऐंठने का सिलसिला रहेगा। रामसनेहावन बाबू ठाकुर साहब की सारी पोलपट्टी जानते थे। किस प्रकार ठाकुर साहब अपनी जमींदारी में जोर जुलुम करवाते रहते हैं किस प्रकार घूस खाते रहते हैं किस प्रकार शराबी कबाबी आदमी हैं तथा दुश्चरित्र भी। श्रीधर बाबू जब इस से बाहर होने लगते तो एक बड़ी रकम ठाकुर साहब से लेकर वे श्रीधर बाबू का मुँह बन्द कर देते। ठाकुर साहब ने कई बार श्रीधर बाबू को निकाल देने के लिए कहा था पर मुँह ही कह दिया कि—सर साहब उन्होंने भी "शंखनाद" में पैसा लगाया है मेरे

हिस्सेदार हूँ, कैसे निकाल सकता हूँ?—लेकिन असली बात यह थी कि इतने कम वेतन में इतनी मेहनत वाला दूसरा आदमी नहीं मिल सकता था। दिल में जानते थे कि आदमी विद्वान के साथ-साथ धारदार कलम रखता है। 'शंखनाद' की सारी लोकप्रियता श्रीधर बाबू के कारण थी और यह बात रामसेखावन बाबू खूब अच्छी तरह समझते थे। बस श्रीधर बाबू की बेलाग बातों, टिप्पणियों एवम् सम्पादकीयों से कभी कानूनन कोई कठिनाई आ सकती थी और उन्हें यही एकमात्र बात सताती थी। लेकिन श्रीधर बाबू को अपने पंजे में दाब रखने के लिए हमेशा वह लोगों से यही प्रचार करते कि श्रीधर बाबू क्रान्तिकारी हैं। ताकि जरूरत होने पर वे कहीं दूसरी जगह काम न कर सकें।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जब अंग्रेजों ने भारत को भी घसीटा तो कांग्रेस ने इसका विरोध किया। कांग्रेस के इस विरोध को 'शंखनाद' ने समझौतावादी विरोध कहा क्योंकि कांग्रेस मूलतः वकीलों, जमींदारों तथा बड़े लोगों की संस्था है। इन वर्गों को क्या मालूम कि किस प्रकार मार-जबरदस्ती करके देश के सारे अच्छे नवजवान रेजीमेन्ट बनाकर यूरोप की इस लड़ाई में ईंधन की भाँति झोंक देने के लिए भेजे जा रहे हैं। अंग्रेजों ने इस देश की जनता का विश्वास पूरी तरह खो दिया है इसलिए वे अब इस देश के शासक नहीं हैं। देश में इस समय आग लगी हुई थी। इस प्रश्न पर कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया था और बम्बई में जोरों पर कांग्रेस-अधिवेशन की तैयारियाँ हो रही थीं। पूरे राष्ट्रीय जीवन में अजीब भगदड़ मची हुई थी। देश की आँखें गाँधीजी पर लगी थीं। अपने पाँच अगस्त के अंक में "शंखनाद" ने देश के नेताओं से अपील की थी कि वे अंग्रेजों के साथ किसी भी तरह का यदि सहयोग करते हैं तो वह देश व जनता के साथ गद्दारी होगी क्योंकि अंग्रेजों के साथ सहयोग का अर्थ होगा इन साम्राज्यवादियों के युद्ध में अपने देश के नौजवानों को झोंकना। और ९ अगस्त की सबेरे रेडियो पर जैसे ही समाचार आया कि बम्बई में "भारत-छोड़ो" का नारा दिया गया और सारे नेता एक साथ पकड़ लिये गये, पूरे देश में तहलका मच गया। "शंखनाद" कार्यालय में बैठे हुए वे और रामनारायण बाबू दोनों ही रेडियो सुन रहे थे। थोड़ी देर में उन्हें वायुमण्डल में अजीब शोर सुनायी पड़ने लगा। श्रीधर बाबू यह जानने के लिए कि भीड़ में लोगों की क्या प्रतिक्रिया

हुए लिखा नजर आये। रास्ते भर लोगों की भीड़ सड़क पर आग और जल में डूबी घूम रही थी। अभी वे मुसलाबाद ही पहुँचे होंगे कि कोतवाली की तरफ से पुलिस की लारियों की दौड़ चारों तरफ के लिए शुरू हुई। चौक तक पहुँचते-पहुँचते तक तो आदमियों की भीड़ के मारे रास्ता नहीं मिलता था। रिक्शे से उतर पान खाया और जिस समय चौक पहुँचे भीड़ सारे जमाती एकत्र हो रही थी!!

—भारत-छोड़ो!!

—भारत-माता की जय!!

—नहीं रखना नहीं रखना
सरकार जालिम नहीं रखना!!
नहीं रखना नहीं रखना
यह बूढ़ा बन्दर नहीं रखना!!

—इन्कलाब-जिन्दाबाद!!

—महात्मा गाँधी की जय!!

अनन्त जनसमुद्र बढ़ रहा था। दिशाहीन। असंख्य स्वरों की आवाज घुटी-घुटी सी उठ रही थी। लाखों नर-नारी बच्चे-बूढ़े स्कूली छात्र व्यापारी ठेलेवाले—जन ऐतिहासिक अभिव्यक्ति की महान शक्ति-जनता—धोती में पायजामे में कुर्ते में कमीज में नंगे सिर, टोपियों में पान खाये सिगरेट पीते—दम साधे गुस्से में मुट्ठियाँ तान बढ़ रही थीं। कहाँ किधर, कौन जानता था? और की कोतवाली के सामने पुलिस की टुकड़ियाँ तैयार खड़ी थीं। असंख्य सिरों के बीच राष्ट्रीय तिरंगा धीमे-धीमे चल रहा था। लोगों के गान गाये जा रहे थे—

—भारत-छोड़ो!!

—दूर हटो ऐ दुनिया वालो
हिन्दुस्तान हमारा है!!

—भारत-माता की जय!!

पुलिस की सीटियाँ। जन समुद्र का गीत भरा कण्ठ। सागर की तरह उफने लहर मारते। नेतृत्वहीन ऐतिहासिक जन। दिशाहीन संगीत।

—भारत-माता की जय!!

और देखते-देखते गिरफ्तारियाँ। लाठी चार्ज। भीड़। भाग-दौड़। राष्ट्रीय झण्डा।

—हिन्दुस्तान हमारा है।

—भारत-छोड़ो !!

—भारत माता की जय !!

—महात्मा गांधी की जय !!

—इन्कलाब जिन्दाबाद !!

पूरा देश देखते-देखते एक बड़ा सा कारागार बन गया। हजारों आदमी प्रतिदिन गिरफ्तार होने लगे। जैसे जैसे गिरफ्तारी हुयी, आन्दोलन की ज्वाला कम ही जैसे अधिक धधकती होती। इतना बड़ा ज्वार हो जाएगा यह किसी को कल्पना नहीं थी। गाँव-गाँव तक आन्दोलन की चिनगारी फैल गयी थी। यद्यपि कोई नेता इस महान आवेग को परिचालित नहीं कर रहा था लेकिन लगता था कि जिस ढंग से यह व्यापक हो रहा था वह इस बात का प्रमाण था कि यह आन्दोलन पूर्व नियोजित था। कोने-कोने से असंख्य नवयुवक अपने प्राणों का होम करने के लिए स्कूलों कालेजों से बाहर निकल आये और इस ऐतिहासिक ज्वार में समर्पित हो गये। लगा कि जैसे देश मुक्त होने के लिए कटिबद्ध है। बड़े व्यापक पैमाने पर सरकारी इमारतों थानों का लूटा जाना तथा जलाया जाना चला। थाने रेल तार डाक घर नष्ट किये जाने लगे। सन ४२ का यह आन्दोलन आकस्मिक हिंसा तथा संयमी अहिंसात्मक सत्याग्रह दोनों के एकीकरण का सम्मिलित स्वरूप था। सभी सत्ता के धीरे हमला के लिए उमड़ गये। यह आन्दोलन मध्य वर्ग के आक्रोश की अभि

व्यक्ति था तथा मध्यवर्ग ही उसका नेतृत्व कर रहा था। इतने बड़े ज्वार को मुट्ठी भर पुलिस या फौज से रोकना कठिन था। एक हिलोर उठती और एक जिला मुक्त उगता। और इस प्रकार आन्दोलन अनन्त लहरों में हिलोरें ले रहा था। बलिया बिहार में एक प्रकार से अंग्रेजी सत्ता का प्रभुत्व नष्ट हो गया था। दमन गिरफ्तारियों व शासक वर्ग मध्य वर्ग एवम निम्न मध्य वर्ग की इस ऐतिहासिक अभिव्यक्ति को कुचल देने पर तुला हुआ था। राजनीति कांग्रेस के हाथों से निकल कर जनता के हाथों में आ गयी थी और इसलिए अंग्रेज सत्ता कांप उठी थी। शासक वर्ग को यह भलीभांति विदित हो चुका था कि इस देश का केवल उच्च वर्ग ही ऐसा है जिससे समझौता किया जा सकता है और 'क्रिप्स-मिशन' आदि पहले भी ही लौट गये थे अब उन्हें कौन सा नया रूप दिया जाए, यही शासकों के सामने प्रश्न था। अंग्रेज सरकार इस देश से डर गयी थी लेकिन चौकसी नेता उसे अपने निकट करें।

जीवन में संभवतः कभी इतना उत्साह चकित विश्वास जीवर बाबू को नहीं अनुभव हुआ जितना कि इन दिनों हो रहा था। वे पूरे बनारस में कार्यों के भाव के बीच घूमते हुए अपार हर्षित अनुभव कर रहे थे। उन्हें लगा कि अंग्रेजों का अविजय शासन-तन्त्र सदा के लिए भरभरा कर टूट पड़ना चाह रहा है। और जिस समय वे तीसरे प्रहर 'संसार' के कार्यालय पहुँचे तो गली में ही पानवाले ने बताया कि जीवर बाबू उधर न जाइए प्रेस में ताला लग गया है पुलिस बैठी हुई है। भागिए, पुलिस आपकी तलाश में है। एक क्षण तो समझ न सके कि क्या करें? क्योंकि प्रेस पर ताला लग जाने का अर्थ हुआ जैसे किसी ने मुंह सी दिया हो।

तो अब उन्हें क्या करना चाहिए?

क्या दूसरों की भांति गिरफ्तार होकर जेल चले जाएं या फिर—गांधीजी की यह बात मानें कि जेल में गिरफ्तार होकर निष्क्रिय हो जाने से कहीं अच्छा है कि बाहर रह कर काम करें।

लेकिन कौन सा काम?

क्या गांधीजी ने उसी काम की ओर संकेत किया है जो देश का नवयुवक कर रहा है? पुलों का तोड़ा जाना तारों का काटा जाना थानों का जलाया जाना? —क्या गांधीजी का मौन—फिर अहिंसा? वे अस्पष्ट थे।

वे धूँधीमार के एक बुर्ज में बैठे हुए सोच रहे थे कि क्या करें ? यदि गिरफ्तारी से आजादी आती है तो गाँधी प्रतीक रूप में जेल जा चुके थे। देश के शीर्षस्थ नेता आगाखाँ महल में कैद थे। और, क्या आज सारा देश कारागार नहीं है ? उन्हें बाहर रह कर ही काम करना चाहिए।

लेकिन कौन सा काम ?

जो इतिहास की माँग है वह काम ? चाहे वह लूट हो पुल तोड़ना हो थाने जलाना हो ? उन्हें सबको इतिहास में समर्पित होना है। 'पंचनामा' तो अब नहीं निकाला जा सकता। यदि गुप्त भाग रह कर काम किया जाएगा तो सरकार उन्हें फौरन गिरफ्तार करेगी। मुकदमे का नाटक करेगी। उनके सथों के लिए, तथाकथित क्रान्तिकारी होने के नाते उन्हें बड़ी से बड़ी सजा मिलेगी क्योंकि सरकार के विरुद्ध काफी कठोर लिखा गया था। इसलिए ज्यादा अच्छा होगा कि जो मध्य वर्ग की जीवनी शक्ति इस महान आन्दोलन को छोटे-छोटे रूप में संचालित करके महान हो रही है उसी में सम्मिलित हुआ जाए।

जिस तेजी से ज्वार उठा दमन उससे भी तेजी से बढ़ा। सरकार यह बात जान चुकी थी कि इस सबके पीछे कोई व्यवस्थित नियोजित केन्द्रित शक्ति नहीं थी इसलिए इसमें आवेग होते हुए भी दीर्घकाल तक चल सकने की क्षमता नहीं थी। सरकार ने अत्यन्त निर्मम होकर सभी संदिग्ध व्यक्तियों को जेलों में ठूँस दिया। सम्भवतः इतनी संख्या में गिरफ्तारियाँ किसी भी देश में किसी भी आन्दोलन में नहीं हुई होंगी। सम्भवतः इसी का नतीजा हुआ कि आन्दोलन एक पुच्छल तारे की भाँति उगा, दिपा चमका और फिर अंधकार उसे खा सकने में सफल हुआ। यद्यपि अंधकार ने दीन तथा अपने सभी सुमन दिए। अंधकार को उस पुच्छल को मुक्त करना पड़ा लेकिन धूमकेतु का स्वरूप बदल चुका था।

यहाँ से वहाँ श्रीधर बाबू मारे-मारे घूम रहे थे। देश के सारे मध्यवर्ग में विद्रोह कर रखा था। पुल उड़ाये जा रहे थे। रेल की पटरियाँ उखाड़ी जा रही थीं। थाने जलाये जा रहे थे। सरकारी शब्दों में "पूर्ण अराजकता" फैल गयी थी। वे नवयुवक तो थे नहीं जो बिना किसी आस्था के भी विश्वास के साथ यह सब कार्य करते। उनके सामने क्रान्ति का 'आज' न होकर, जीवन का कटु 'कल' उपस्थित हो जाता। कल जब ज्वार-जल भाटा बन जाएगा तब क्या होगा? सरकार इस क्रांति को दमन करने में लगी थी। पूरे पूरे गाँवों पर, मुहल्लों पर, कुनबों पर सामूहिक-कर वसूल कर रही थी। युद्ध की महँगाई यों ही लोगों को मारे डाल रही थी उस पर अंग्रेजी राज ने इस नृशंस दमन से साधारण जन जीवन को झकझोर डाला। पूरा देश अंग्रेजों को विद्रोही लग रहा था। श्रीधर बाबू बनारस लौट आये। 'अस्सी' वाले अपने मठ पर मालूम हुआ कि पुलिस उनका सारा सामान उठा कर ले गयी। मठ में छुप कर रहने का सवाल ही नहीं था। छह महीने बलिया गाज़ीपुर रह कर लौटने के बाद भी बनारस जोखिम जस था। उन्होंने दो एक बार तलाश करवाया कि रामलोचन बाबू और 'जागरण' का ही कुछ पता चले। 'जागरण' आफिस और प्रेस पर तो ताला पड़ा हुआ था तथा रामलोचन बाबू को 'जागरण' के प्रकाशक होने के नाते दो साल की सजा तथा दो हजार रुपया जुर्माना हुआ था। श्रीधर बाबू के सामने सवाल था कि वे अब क्या करें? जिस प्रेस वाले के यहाँ जाते कि कुछ काम मिल जाए दूसरे दिन वही प्रेस वाला कहने के बाद भी अहाते में घुसने के साथ ही बोल पड़ता कि नहीं साहब आप जैसों के लिए हमारे यहाँ कोई काम नहीं है। असल में हुआ यह था कि पुलिस वालों ने इस तरह के सारे कामों के पीछे अपने जासूस लगा रखे थे ताकि उन्हें कहीं काम न मिल सके। श्रीधर बाबू मकान बदलते बदलते भी परेशान हो गये थे। मकान वाले तक घर देने में आनाकानी करते कि नहीं बाबू जी पुलिस हमें परेशान करेगी। बिना नौकरी और बिना मकान के रहना असम्भव हो रहा था। [illegible] ग्रहण करीब एक बरस हो रहा था। आज इसके यहाँ जा लिया तो कल उसके यहाँ जा लिया। लेकिन कब तक ऐसा चलता? रात-बेरात यहाँ-वहाँ जा लिये। अन्तिम पेट न रोगी। भला इतनी आयु में कब तक ऐसे चल सकता था।

आज-कल वे विश्वनाथ गली में एक मारवाड़ी पाठशाला के पीछे वाले कमरे में दिन रात बन्द रह कर अनुवाद करने में लगे हुए थे। जिस तरह से श्रीधर बाबू ने नौकरियों की यहाँ-वहाँ पूछ-ताछ की थी उससे पुलिस को सुराग मिल गया था कि इसी शहर में हैं। जहाँ-जहाँ भी पुलिस का पता चलता कि यहाँ रहते हैं या रहते थे या यहाँ नौकरी खोजने आये थे—पुलिस तलाश कर आती। आय दिन मकान बदलते घूमते श्रीधर बाबू खासे परेशान हो चुके थे। अगत्या उन्हें इस गली में पीछे वाला यह कमरा मिला। कमरा क्या था एक दम काल-कोठरी थी। दिन में भी अँधेरा रहता। नीचे शिवाला था और बायीं तरफ पाठशाला लगा करती थी। जब काफ़ी रात हो जाती तो वे थोड़ा टहलने निकलते। महीनों हो गये थे उन्मुक्त होकर घूमने को। जब घूमने निकलते तो अधिकांश दुकानें बन्द हो गयी रहतीं। 'विश्वनाथ गली' के मुहाने पर दो-चार हलवाइयों की दुकानें उस समय भी खुली होतीं। 'दशाश्वमेध' वाली सड़क पर साँड़ जुगाली करते या तो टहलते होते या फिर नन्दी मुद्रा में "भुग्ग" लगाये बैठे होते। 'दशाश्वमेध' घाट सुनसान होता। दिन में जो सड़क-बाज़ार आदमियों से भरे रहते हैं तब सब निकट लगता है लेकिन इतनी रात में निर्जन होने तो कैसा फैला सा ऊँचा-ऊँचा सा लगता। अनेक बार तो मोह हो आता कि चलें ज़रा इन्दु के घर की तरफ जाकर देखा जाए। कितनी बार मन में आता कि क्या इन्दु दीदी से कभी यहाँ ऐसे ही भेंट हो सकती है ? जाने कब व यहाँ काशीवास किया करती थीं। क्या पता अब वे कहाँ होंगी ?

ऐसे ही विगत के प्रति मोह में डूबे थोड़ी देर तक घाटों पर बैठे ठण्डी ठण्डी हवा में खोये रहते। कैसे सारा जीवन बिना कुछ अर्जन या प्राप्ति के बीत गया ? इन्दु दीदी से लेकर सन ४२ के आन्दोलन तक कैसे जीवन में कौन कौन सी स्थितियाँ आयीं। वे क्या करते तो क्या हो सकता था। और क्या किया तो क्या हो गये—सब समूचा जीवन अनुगत आँखों के आगे घूम जाता। अपने घर-परिवार के प्रति जो उपेक्षा या निर्ममता अपनी उम्र में कभी क्षमा नहीं कर पाते थे। क्या घर वाले सरो भी बाबू कभी सोच सकेंगे कि श्रीधर जीवन भर विवश ही रहे वर्ना उनके मन में कितना प्यार ममत्व सब सबके प्रति रहा है ? भला अपनी विवशता को वे कैसे बाँटेंगे ? और कब तक ? वे तो जीवन भर अक्षम ही बने रहे।

कभी-कभी वे सवेरे वाली विश्वनाथजी की आरती में पहुँच जाते और वहीं बैठे रहते। प्रायः वहीं बैठकर गायत्री का पुरश्चरण किया करते। गिनती के ही भक्त उस समय वहाँ होते। बड़े-बड़े चाँदी के घड़ों में पात्रों में गंगाजल लाया जाता और विश्वनाथ जी का अभिषेक किया जाता। दो-एक बार जब वे गये तो देखा कि कोई साठ वर्ष की एक महिला नौकरानी के साथ नित्य आरती के समय आती है तथा पुजारी लोग— "रानी साब अब आप पूजन कर लें" कहकर अन्दर मन्दिर में ले जाते और रुद्रपाठ के साथ वे सांगोपांग पूजन करतीं। देखने में गौर वर्ण की वृद्धा लगने वाली यह महिला पुजारियों को ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देकर तुरन्त चली जाती। मंदिर के गोपुर पर ही पालकी होती और वह उसमें बैठकर चली जाती। लगता था कि जैसे महिला बहुत बड़े घर की स्त्री थी। बंगाली वह हो नहीं सकती थी। जिस तरह मलमल के धवल परिवेश में होती उससे यही पता चलता था कि विधवा है। रंग नेपालियों जैसा साफ़ था लेकिन नाक-नक्शा उत्तर भारत का न लग कर दक्षिण भारत के अधिक निकट का लगता।

पता नहीं किसलिए अब वे नित्य मंदिर जाने लगे। उस महिला ने भी दो-एक बार श्रीधर बाबू को देखा अवश्य। सम्भवतः जिज्ञासा से देखने वाले इस व्यक्ति को दृष्ट हारकर ही वितृष्णा के भाव से उन्होंने देखा। एक दिन जिस समय वे पूजन करती रही थीं श्रीधर बाबू भी पास ही में खड़े उस समय पुजारियों के साथ मन में बुदबुदाते हुए दुहरा रहे थे—

—अप्रमाना लोकः किमथव बलस्तापि जगतः-

कि तभी महिला ने अपनी नौकरानी से बिल्वपत्र लेते हुए कुछ कहा। श्रीधर बाबू चौंके कि वह तो मराठी थी। तो यह महिला महाराष्ट्रीय है? पूजन समाप्त हुआ। पालकी चली गयी। देर तक सोचते रहे कि यह महिला कौन है? किसी बड़े घर की है। काशी में अनेक महाराष्ट्रीय परिवार रहते हैं। इस महिला को देखकर अत्यन्त शान्ति होती है मन में।

दो-चार दिन वे सवेरे की पूजा में न जा सके। अनुष्ठान करते रात में काफ़ी देर हो जाती। दूसरे, रात भर पेट में दर्द हुआ करता। पैसों की कमी थी इसलिए अनुष्ठान जल्द पूरा करना था। आज भी जब वे पहुँचे तो पालकी 'पक्के-मुहाल' की

तरफ लौटी आ रही थी। कुछ देर हो गयी थी। इसलिए जल्दी से परिक्रमा लगा गोपुर की साँकल को माथों से छुला के बाहर निकल ही रहे थे कि किसी ने पुकारा

—जरा सुनिए पंडितजी !

श्रीधर बाबू लौटे। बोले

—कहिए।

—आपको रुद्रपाठ आता है ?

—जी हाँ आता तो है। क्यों क्या बात है ?

बात करने वाला पुजारी था बाबा

—असल में कल शिवरात्रि है न कल सौ रुद्रपाठियों की आवश्यकता है।

—लेकिन मैं इस प्रकार का पूजावृत्ति वाला ब्राह्मण नहीं हूँ।

—कौनू बात नहीं। बात दरअसल ई है कि उ जौन सबेरे रानी साहिब आयी हैं न कल शिवरात्रि के दिन सौ ब्राह्मणों का भोजन दान दक्षिणा देना चाहती हैं।

—कहाँ की रानी हैं ?

—सुनते हैं पूना की हैं।

—पूना की ? क्या नाम है।

—अब नाम तो नाहीं मालूम हमका।

—क्या बहुत दिनों से हैं यहाँ ?

—नाहीं बीच-बीच में आती रहती हैं। इस बार तो काफी बरसों बाद आयी हैं।

श्रीधर बाबू के सामने जैसे बिजली कौंध गयी। क्या यह संभव था कि ये इन्दू दीदी ही हों ? संभवतः चालीस बरस पूर्व जिसे देखा था क्या यह वही दीदी हो सकती हैं ?

दूसरे दिन विश्वनाथ जी के प्रांगण में ब्राह्मण बैठे रुद्रपाठ कर रहे थे। श्रीधर बाबू एक तरफ बैठे बराबर पहचानने की चेष्टा कर रहे थे। मंदिर में आज अपेक्षाकृत ज्यादा भीड़ थी। संगमरमर के फर्श पर जड़े रुपयों पर सैकड़ों आदमियों के पैर—आते हुए, जाते हुए परिक्रमा करते हुए फिर रहे थे। बड़ा घंटा झनझना रहा था। आरती के समय विराट घंटियाँ घनघनाती घूमती होंगी और सम्पूर्ण शिव-स्तुति होगी। श्रीधर बाबू ने लगा कि एक बार काल में ध्यानस्थ वही महिमा बैठी हुई थी। आज वे उस पहचानने की पूरी चेष्टा कर रहे थे। वे आश्वस्त होते जा रहे थे कि यह उनकी इन्दू दीदी ही है। पाठ समाप्त हुआ। मंदिर के

बाहर सामने एक प्रांगण में खीर-पूड़ी का प्रबंध था। ब्रह्मभोज के उपरान्त दान दक्षिणा दी गयी। सारा लेने-देने का काम एक पुरुष कर रहा था जो निश्चय ही महाराष्ट्रीय था। श्रीधर बाबू बहुत देर तक सोचते रहे कि किस प्रकार पूछें कि आप कौन हैं? इस प्रश्न पर वे क्या सोच सकती हैं? मान लो दीदी न हुईं तो? और तब तक सब लोग जा चुके थे। प्रांगण में केवल श्रीधर बाबू को खड़े देखकर उस महिला ने उस पुरुष से मराठी में कुछ कहा और उस पुरुष ने पूछा,

—पंडितजी! आपको दक्षिणा आदि तो मिल गयी न?

श्रीधर बाबू ने प्रश्न सुना ही नहीं वे उस महिला को ही घूरने में लगे थे। वे थोड़े आगे बढ़े और एकदम सामने बढ़ आये। वह महिला कुछ चौंकी। सकपकायी सी और किंचित असुविधा अनुभव करते हुए उस पुरुष की ओर देखने लगी। वह पुरुष कुछ बोलने को ही था कि वे बोले

—क्या मैं जान सकता हूँ कि आप कौन हैं?

—जी?

—क्या आप ?

—आप किसे चाहते हैं?

यह प्रश्न इस बार उस पुरुष ने किया। श्रीधर बाबू ने फिर उसी तरह पूछा,

—क्या आप इन्दु दीदी हैं?

वह महिला एकदम ऐसी हो गयी जैसे हरसिंगार का गाछ हो। हवा का ऐसा झोंका आया कि निःशब्द सारे फूल मौन चू पड़े। वे अपने में सिमटने लगीं जैसे अतीत बन ही तो जाएँगी। वह सचमुच ही इन्दु दीदी थीं।

—कौन श्रीधर?

—हाँ दीदी!

दोनों उच्छ्वसित हो गये। दोनों विद्युतवेग से विगत में लौटे जा रहे थे।

वे ठठेरी गली चले जा रहे थे। गणपति मन्दिर के पास कहीं इन्दु दीदी की हवेली है। मन में यही विचार आ रहा था कि क्या इन्दु दीदी भी इस बीच काशी में

रही थी ? क्या यह अच्छा न होता कि बहुत पूर्व ही मालूम हो गया होता कि दीदी यहीं पर हैं ? तो   तो क्या होता ? और पूछते हुए वे हवेली के सामने पहुँचे । बड़ा सा मध्ययुगीन दरवाजा खुला हुआ था जिसके ठीक सामने झँझरीदार दीवार थी । लोगबाग आ-जा रहे थे । वे पसोपेश में थे कि किस नाम से पूछें तभी वही व्यक्ति दिखायी दिया जो कि मौत के समय दीदी के पास खड़ा था । महाराष्ट्रीय उच्चारण में हिन्दी बोल रहा था

—आइए, भीतर ही चले आइए । मातुश्री आप ही की प्रतीक्षा कर रही हैं ।

और वह व्यक्ति भीतर लिवा ले चला । झँझरी वाली दीवार के बायीं तरफ द्वार रास्ता था और सामने प्रशस्त चिकने पत्थरों का आँगन । जिसके तीनों ओर खंभों वाला बरामदा । बरामदे से सटे ढेर सारे कमरे थे । अधिकांश बन्द थे । दो-एक खुले हुए थे । एक बड़े से कमरे में चाँदनी गाव-तकिये आदि लगे थे । छोटी मेजों पर दो-एक मुनीम लोग काम कर रहे थे । फानूस और पंखे लाल कपड़ों में लिपटे हुए थे । आँगन के ठीक ऊपर लोहे का बड़ा सा   जंगला यहाँ से वहाँ तक तना था अत्यन्त वैभव का अनुभव हो रहा था । व्यक्ति उन्हें लेकर सामने वाले जीने से ऊपर लिवा ले गया । ऊपर भी वैसा ही   चौकोर बरामदा तथा कमरे । सब कुछ प्रशस्त खुला तथा धूप-भरा लग रहा था । एक बड़े कमरे में व्यक्ति ने बिठा दिया और बोला

—आप बैठिए मैं मातुश्री को खबर दे आऊँ ।

कई धार्मिक चित्र लगे थे । कुछ तैलचित्र भी थे । पुराने ढंग का सोफा सेट पड़ा था । सामने कोने में एक दीवान था जिस पर बाघम्बर बिछा था । कमरे में एकदम निस्तब्ध शान्ति थी । लकड़ी की छत तेल के कारण चमक रही थी । वह व्यक्ति लौट आया और बोला

—मातुश्री ने आपको वहीं अपने कमरे में ही बुलाया है । चलिए ।

और वे लोग फिर कमरों की भूल-भुलैया में होकर चलने लगे । बरामदे से सटे आँगन में नीचे रेलिंग पर धूप का आभास होता । नीचे लोग आ-जा रहे थे । इतनी बार इस मकान में घूमना पड़ा कि दिग्भ्रम हो गया । वे अब एक कमरे में पहुँचे जो अपेक्षाकृत अत्यन्त शान्त था । कमरे में से धूप-दीप की गंध आ रही थी । भगवान का विशाल सिंहासन बना था जिस पर शिवलिंग स्थापित था । गंगाजी की ताजी मिट्टी लगी हुई थी इससे स्पष्ट था कि पार्थिव की पूजा होती होगी । एक छोटी सी चौकी पर बाघम्बर यहाँ भी बिछा था । इससे स्पष्ट था कि जहाँ भी दीदी जाकर बैठती हैं वहीं बाघम्बर ही बिछता है । वहीं दिव्य शान्ति थी ।

इस कमरे से सटा एक प्रशस्त बारजा था। व्यक्ति उन्हें उधर ही ले गया। पर्दा हटाकर जैसे ही वे लोग बारजे में पहुँचे एक सुन्दर सी चौकी पर अत्यन्त प्रसन्न सादे परिवेश में दीदी बैठी थीं उस व्यक्ति से बोलीं
—अता काही काम नाहीं आहे। तुम्ही जाऊ शकता।
और व्यक्ति शिष्टतापूर्वक विनम्रित होकर धीवर बाबू को छोड़कर चला गया।
—धीवर!
और धीवर ने देखा कि सच ही यह तो उसी की दीदी है। देह और आयु अवश्य ढल गयी है लेकिन वे पुरानी आँखें आज भी वैसी ही बालिका-सुलभ थीं। धीवर बाबू तब भी खड़े थे। दीदी उन्हें इस तरह देख रही थीं जैसे जितने दिनों नहीं देखा था उसकी पूर्ति कर लें। जाने कितना स्नेह जिज्ञासा आश्चर्य सब छलक रहा था।
—तुम बिल्कुल वैसे ही हो धीवर!
—क्यों ?
—और क्या कहा नहीं जाएगा तो बैठोगे भी नहीं।
और धीवर सामने रखी कुर्सी पर बैठ गये। बारजे से गंगाजी दिख रही थीं। नेपाली मंदिर का शिखर दूरी पर दिख रहा था। बीच धार सी नावें बँधी हिल रही थी।
—तुम्हें जितना स्वस्थ होना चाहिए उतने नहीं हो क्या बीमार हो ?
—नहीं तो।
—आँखों के नीचे झुर्रियाँ आ गयीं अभी से।
—झुर्रियाँ कब तक नहीं आएँगी दीदी ?
—अभी उमर ही कितनी हुई होगी ? कितना तुमसे मिलना चाहती थी धीवर! कितने दिन हो गये न ?
—हाँ और क्या लगभग चालीस वर्ष।
—पूरी आयु। काशी में तुम कैसे ?
—चला आया।
—मैंने कई बार तुम्हें देखा विश्वनाथ जी के मन्दिर में। सच कहूँ तो एक बार जब तुम रूठते थे तो बड़ा बुरा लगता था। लेकिन देखो न   अपने गोमी छोटे भाई को कैसे पाया ? भगवान ने कैसा मिलाया। इस बार मैं पाँच बरस के बाद आ रही हूँ काशी जी। अरे हाँ यह बताओ बहू कहाँ है ? कितने बच्चे हैं ? यहाँ कब से हो ? घर पर कौन-कौन है ?

—यहाँ तो अकेला ही हूँ। घर पर सभी कोई हैं। लगता है न कि विजन में तुम कितनी दूर चले गये हैं।
—लगता है जीवन में खूब देखा-सुना है कि विजन इतनी दूर लगता है, है न?
—क्यों दीदी! आपको नहीं लगता?
—कुछ खास तो नहीं। बचपन में तुम्हारे साथ का विजन न हो तो सच मानो कम नहीं लगता है कि नाममात्र का ब्याह हुआ। इसके बाद तो कम विरह ही हुई। सब तीस-पैंतीस बरस पता नहीं श्रीधर! उतार-चढ़ाव में जाने कहाँ बीत गये।
—गौरी! पता नहीं आज आज कैसा-कैसा लग रहा है। क्या नाममात्र काम आपको भी नहीं लगता?
—केवल लगने भर से ही कोई चीज हो थोड़े ही जाती है? काशी में तुम क्या करते हो?
—कुछ खास नहीं।
—कुछ खास नहीं?
—हाँ और क्या?
—तुम्हें देखकर लगता नहीं कि तुम विशेष बदल गए।
—तो क्या आप बदल गयी हैं?
—यह आज-कल क्या लगा रखा है तुमने?
दोनों सन्तुष्ट मुसकरा रहे थे।

एक दिन—दूसरा दिन।
उसके बाद—अनेक दिन।
इन्दु दीदी और श्रीधर घर-आँगन की बातों की अनन्त गुफ़्तगू में। जानने वाले भी कि जो स्वीकार गया है वह ऐसा खींच कर चला गया है कि कभी नहीं लौटाया जा सकता। इन्दु अपने पति के साथ अधिक नहीं रह पायी। जो भी था,

पायी वह ऐसा नहीं हुआ कि जिसे नारी जब पा जाती है तो प्रायः जीवन भर बाँधे रहती है । ब्याह के दूसरे दिन ही वह समझ गयी कि उसे विधवा होना ही है । ब्याह का छल दो बरस से अधिक नहीं चला श्रीधर !—और फिर उसके बाद सामन्ती मर्दों की अपनी नीचताएँ जोड़-तोड़ उठा-पटक ताड़न-प्रहार ! ! क्या करोगे सुनकर उसे ? सब बीत गया रे अब उसका स्मरण क्या करना ? बाला साहब ने आत्महत्या कर ली । वामन ने एक प्रकार से बाला साहब से विद्रोह कर रखा था । सब छिन्न-भिन्न हो गया श्रीधर ! अपने शाप म जितना ही कम करना चाहती थी उतना ही बोझ बढ़ता जाता था । साल में चार महीने ही काशी में रह पाती और बाकी आठ महीने उतनी बड़ी जमींदारी की सम्हाल करनी होती थी । सुना वामन एक दिन अपनी बन्दूक साफ कर रहा था कहते हैं भरी थी । जाने कैसे घोड़ा दबा और देखते-देखते गोली कनपटी में लगी और तुरन्त उसका प्राणान्त हो गया । मेरे तो हाथ ही उड़ गये । वामन को उसकी विलायती पत्नी से एक लड़का है—आनन्द । पहले तो वह आनन्द को देने के लिए राजी ही नहीं थी । वह उसे अपने साथ ले जाना चाहती थी । बड़ी मुश्किल से वह मानी । मेरे पास भी कोई बाल-बच्चा नहीं था । उस आनन्द को मैंने भी अपना उत्तराधिकारी बना दिया । अपने कस्बे की सारी जायदाद बेच दी श्रीधर ! यह काठी बाग सब बेच दिये । बेचारा आनन्द पूना और यहाँ की दो-दो जायदादें कैसे सम्हाल पाता न ? आनन्द एकदम अपनी माँ पर पड़ा है अंग्रेज लगता है एकदम । तुमने तो खैर देखा ही नहीं है उसे । अब तो वह तीस बरस को होने आया । पिछले बरस उसका ब्याह कर दिया और इस बार सारी लिखा-पढ़ी उसके नाम अन्तिम रूप से कर आयी हूँ । यह घर असल में पैंतीस बरस पहले खरीदा था । इसे भी बेचना चाहती हूँ और जल्द ही उत्तरकाशी या कहीं ऐसी ही शान्त जगह में जाना चाहती हूँ । अरे जब भगवान ने ही दुनिया की झंझटों से मुक्त रखा तब भला कितने दिन सधूँगी ? आनन्द की बहू को सब समझा आयी हूँ और उन लोगों से हमेशा के लिए विदा ले आयी हूँ । दो-एक महीने में यह काठी बिक जाए तो थोड़ा-बहुत पैसा लेकर मैं चली जाऊँ । जिज्जी जा जाने है न ? भला श्रीधर बाबू क्या कहते ? जिसने संसार न होते हुए भी सांसारिकता निबाही भला उससे क्या कहते कि वह अब जीवन के उत्तरकाल में मोह त्याग कर हिमालय की शरण न जाए ? दीदी से इतना कुछ छला गये कि उन्हें मूढ़ बोलना ही कहा जायगा । काशी तो वे कुछ समय से ही है । बाकी सब ठीक ही है । बहुत जल्द वे घर जाने वाले हैं । जाने क्यों अपनी कथा सुनाते उन्हें हिचक हुई इसलिए

अधिकांश मूक ही रहा। एक तो दीदी को दुःख होता। मान लो दीदी सब सुनकर कुछ कहने-सुनने पर माती या किसी बात के लिए उद्यत हो जातीं तो क्या होता ? जीवन भर जब किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया तब भला ऐसी ममतामयी दीदी को सुनाकर किसी बात के लिए बाध्य करना न होता ? दीदी ने अनेक बार कहा पूछा कि श्रीधर ! अपनी दीदी से कुछ छुपा तो नहीं रहा है ? लेकिन श्रीधर बाबू ने इतने सहज भाव से हर बार आश्वस्त किया कि दीदी चुप रह गयी। जाने क्या-क्या मन में होता रहा कि एक बार चीख पड़ें कि दीदी ! तुम्हारा श्रीधर सम्पूर्ण पराजित व्यक्ति रहा। अनिर्णय जेल और प्रयाग इसी में सारा जीवन खो दिया। तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे इस श्रीधर ने सत्र बीस-बाइस वर्षों में एक बार भी घर पत्र नहीं लिखा तो फिर सोचने का प्रश्न ही क्या। लेकिन पूछा कि किस लिए ? क्या अर्जित किया ? किस महत् की उपलब्धि की ? एकदम मूक है दीदी ! उस दिन ट्रेन में पूज्यमाताओं वाले चित्र को देखते हुए तुम्हें जो विदा दी थी और तब जितना एकाकी निरवलंबित था आज भी वैसा ही हूँ। बल्कि उससे भी कहीं अधिक। तब टूटा हुआ नहीं था लेकिन आज
लेकिन श्रीधर बाबू ने न ओठों से न मुद्रा से किसी के भी द्वारा दीदी पर कुछ भी अभिव्यक्त न होने दिया।

अब वे दीदी के कामों से उनकी ही हवेली में रहने लगे थे। तभी दीदी को मालूम हुआ कि यह तो पेट का भयंकर रोगी है। परमिंदो निपट आ रही थी और वे जन्द से जल्द सब कुछ हिसाब-किताब पूरा कर बद्रीनाथ जाने की तैयारी में थीं। दो माह तक दीदी ने श्रीधर बाबू की कारी दवा-दारू करवायी। यद्यपि कुछ भी लाभ नहीं हुआ था लेकिन कहीं दीदी के जाने पर इसका प्रभाव न गिरे इसलिए वे स्वस्थ होने का बहाना किए हुए थे।
हवेली बेच दी गयी थी। रुपया-पैसा सब आनन्द राय के नाम पर कर अपनी एक नौकरानी का सफर के हथियार की तैयारी करने में लगी थी। उस दिन सबेरे से बड़ी चहल-पहल थी। दीदी ने आनन्द के बहुत आग्रह करने पर उस हथियार

में डुबाया था। दीदी अब हमेशा के लिए संसार से विरक्त संबंधहीन होकर जा रही थी। स्टेशन पर ट्रेन में जब दीदी चढ़ गयी तो बाकी

—श्रीधर ! मैं जानती हूँ तुमने मुझसे सब कुछ झूठ कहा है।

—हाँ झूठ ही कई बार सच से अधिक रुचिकर होता है।

—तुम सोचते थे कि मैं कुछ करके तुम्हें तुम्हारे पुरुषार्थ का अपमानित करती ?

श्रीधर बाबू हँस दिये।

—मैं भी जानता था कि तुम जानती हो कि मैं झूठ बोल रहा हूँ।

—श्रीधर ! मैं यह तो नहीं जानती कि तुम क्यों और कब से काशी में हो लेकिन अच्छा हो कि घर लौट जाओ। अपनी मिट्टी अपनी मिट्टी होती है—रोगा माटी मामामाटी। अपना परिवार, अपना रक्त-मांस चाहे कैसा ही हो श्रीधर ! उससे घिरे होने से बड़ा सुख और कोई नहीं। कुल कदम्ब होता है रे !

—तो फिर तुम कहाँ जा रही हो दीदी ?

—जब अपना रक्त-मांस का परिवार न हो तो व्यक्ति को विश्व के निमग्न के महापरिवार में समर्पित हो जाना चाहिए।

और खिड़की से कुछ दूर अस्पष्ट करुणामय दीदीमुख सारे परिवेश में दिखता रहा जो महापरिवार में समर्पित होने के लिए हिमालय की ओर जा रहा था। वह मुख स्वयं की नियति को तो संबंधहीनता में बना गया। लेकिन सामने वाले का रक्तमांस के कदम्ब की छाया के नीचे लौट जाने को कह गया।

एक धूमकेतु की भाँति इन्दु दीदी आयीं और चली गयीं। विश्वास नहीं हुआ कि वे फिर मिलीं। ट्रेन पर छोड़ आने के बाद अपने कमरे में पड़े-पड़े सोचने लगा कि दीदी के मुख पर विराग कितना स्पष्ट था। जब मन में संबंधहीनता हो वैराग्य हो तो मुख कितना निस्पृह एकान्त तारे सा शान्त लगता है। आप जैसे किसी उर्मिहीन झील में झाँक रहे हों। जल अथाहतर में जल केवल जल। कामनाहीन मनुष्य आकाश बन जाता है। भला ऐसी आकाश—दीदी को भीतर क्या सुझाव? क्या सुझाकर यह नहीं लगता कि वे उनकी महानता नाप रहे हैं? चाहे दीदी ऐसा न भी सोचतीं लेकिन उन्हें कितना लगता कि वे बिना किसी की सहायता के अपना भरण-पोषण तक नहीं कर सकते। दीदी उन्हें कितना बूझती है कि वह झूठ बोल रहे हैं इस जानते हुए भी चुप हो जाती रहीं। अच्छा हुआ न? किसी का स्वत्व नहीं छीना जाना चाहिए।

मनीष अब वे सम्पूर्ण रूप से मानो निरवलम्बित अनुभव कर रहे थे। जब तक धर्म पर विश्वास था वे धीम-धाम वर्षों तक जूझते रह सपना रचते रहे। लेकिन अब तो मन टूट गया था। बीमार रहने का अनवरत अनशन करने पर

भी जब प्रकाशक ने आज उन्हें दो सौ पृष्ठों की पुस्तक पर पचास रुपये दिये तो वे अन्दर से टूट गये ।

—लेकिन महादेव बाबू ! आपने तो एक रुपया पृष्ठ अनुवाद का देने के लिए कहा था ।

—हाँ साहब कहा था, लेकिन आप जानते हैं कि लड़ाई के मारे कागज नहीं आ रहा है स्याही नहीं मिलती । मिलमालिक लोगों ने भाव बढ़ा दिये हैं । छपाई कितनी महँगी होती जा रही है । अब बताइए अगर मैं आपको दो सौ रुपये दे दूँ तो मैं क्या करूँगा ? और फिर इस तरह की धार्मिक किताबों को कौन पढ़ता है साहब ?

—लेकिन मुझे कितनी मेहनत करनी पड़ी है आप नहीं जानते ।

—देखिए साहब बहस करने की मेरी आदत नहीं । आपको चालीस रुपये नहीं चाहिए तो पुस्तक वापस ले जाइए ।

—देखिए महादेव बाबू ! आपके लिए मैंने कई किताबें अनुवाद की हैं । अच्छा आप आठ आने पृष्ठ के हिसाब से सौ रुपये ही दे दीजिए ।

—श्रीधर बाबू ! जब आप कह रहे हैं तो दस रुपये और मैं बढ़ाये देता हूँ । पचास रुपये आपको मंजूर हों तो मैं बनवारी बाबू से कहे देता हूँ कि आपको पचास रुपये दे दें । बस ! !

श्रीधर बाबू की अन्तरात्मा चीख उठी । कोने में बैठे जाने कितनी आग सुलग रही थी लेकिन सिवाय धुएँ को आँखों में सहन करने के और क्या था उनके पास ? अपना सा मुँह लेकर पचास रुपयों पर महीनों की मेहनत देकर लौट आना पड़ा । वे इस स्थिति में नहीं थे कि बात का प्रतिकार करते । और उन्होंने घर आकर घंटों लकीरें ताकने के बाद निर्णय किया कि घर लौट जाएँगे । यह एक ऐसा निर्णय था जैसे कि आत्महत्या का निर्णय किया हो । लेकिन कई बार आत्महत्या का निर्णय भी तो मनुष्य करता ही है ।

व्यक्ति भी नदी होता है । जैसे समाप्त होती हुई नदी सम्पूर्ण आत्मसमर्पण होकर वापिस होती है अपनी यात्रा को दुहराने के लिए लौट देने को, वैसे ही श्रीधर बाबू की चिर-अभिलाषाओं में वे जैसे आत्महत्या कर की ओर, घर से घर में मिल जाने की छूटी पड़ रही थी । वे जानते थे कि घर में प्रतीक्षा ही नहीं, तिरस्कार भी है उनके लिए, लेकिन वे यह नहीं हैं जिसे ऐसी प्रतीक्षा का पात्र होना चाहिए । फिर भी घर की प्रतीक्षा तो थी ही । घर तो परमात्म होता है ।

शेष पद

काशी छोड़ते हुए जाने कितनी स्मृतियाँ घिर आयीं। एक दिन यहाँ सम्पूर्ण अपरिचित के रूप में विमल के साथ आये थे। जैसे जिस अनुत्सवी ढंग से आये थे आज इतने बरसों के बाद भी वे अनुत्सवी ढंग से ही 'पुनर्मूषिकोभव' हो रहे थे। इतना संघर्ष व्यर्थ हो गया। रत्ना फिर आयी। काशी के साहित्यिक एक एक करके याद आने लगे। शास्त्रीजी जाने कहाँ हैं। उनसे इन दिनों उनका सम्पर्क ही नहीं रहा। सुना शिवनाथ त्रिपाठी बहुत बीमार रहने लगे हैं।

ट्रेन चली जा रही थी। पुल से गंगा पार करते हुए असंयत काशी काशी के घाट 'माधोदास का धरहरा', 'दशाश्वमेध' सब सब जाने कितनी-कितनी बार दुहरे तिहरे। रत्ना जीवित रहती तो संभव था कि इतने न बिखर पाते न टूट पाते। सबने उन्हें एक सीमा के बाद निरर्थक समझ फेंक दिया। अपना सम्पूर्ण जीवन स्वास्थ्य कर्मठता काशी को सौंप वृद्ध बीमार, असफल निरवलंबित मन मालवा की ओर लौट रहे थे। उस घर की ओर जिसके बनने-मिटने में उन्होंने यही सहयोग दिया था कि वे लोग मिट जाएँ। मन में अत्यन्त ग्लानि असंतोष आशंका सभी थी। अब भी 'घर' शब्द मात्र से सिहर जाते। पता नहीं वे कैसे

घर पहुँचेंगे वे लोग कैसे उन्हें लेंगे। क्या कहा जाएगा? बापू-माँ देखकर क्या सोचेंगे? डरो   और वे संकोच से क्षुब्ध हो जाते।

पूरा दिन पूरी रात खुली आँखों में जगती हुई व्यतीत हुई। मालवी बयार का पहला झोंका जब हुशंगाबाद के पास आया तो लगा जैसे वे एक अबोध शिशु हों और स्तनपान कर रहे हों। मालवा   और यह नाम जैसे मूर्त होता हुआ बजता ही चला गया। जैसे माँ को पुकारा हो   मालवा!!

काले पठारों और काली माटी को रौंदती ट्रेन विन्ध्या की घाटियों के बीच से चली जा रही थी। जब तक उज्जैन नहीं आ गया वे पथरीली आँखों तथा बन्द ओठों में दाढ़ों तक दाँतों को भींचे मौन बने देखते रहे। जैसे संकोचवश उज्जैन स्टेशन पर उतरे। एक छोटा सा बिस्तरा बगल में दबाये तथा झोला लटकाये वे कैसे डरे-डरे से उतरे। पहला कदम धरती पर रखते आगे कैसा अपराध भाव घिर आया कि यह पृथ्वी क्या कहेगी? यह माँ क्या कहेगी कि तू तो मुझे ऐसे छोड़ कर चला गया था रे डर मत भाई, तुम लोग छोड़ जाओ लेकिन हम लोग तुम लोगों का छोड़ कर कहाँ जा सकती हैं?
वे अपने कस्बे जाने वाली 'नैरोगेज' वाली ट्रेन के स्टेशन की तरफ बढ़े। श्रावण मास था। मालवी श्यामली मेघ आकाश में भेड़ों के झुण्ड की भाँति भरे हुए थे। रात वर्षा हुई थी तभी तो सब भीगा-भीगा लग रहा था। ऐसे ही कभी श्यामलो मेघ थे जीजी की रेल की ट्राली थी, खूब भीगे थे। मुँह, नाक, गाल सब पर जैसे माँ के दूध की फुहारें ही फुहारें थीं।

सवेरे का समय था। कस्बे जानेवाली ट्रेन तैयार खड़ी थी। तीन-चार छोटे छोटे डिब्बे छोटा-सा स्टीम इन्जिन तथा छोटी कमसिनी रेल लाइन। डिब्बे में ग्रामीण भीड़ थी। घाघरा-लुगड़ा पहने मालवी औरतें। ऊँची ऊँची चोटी बाँधे माथे में मालवी देहाती समाज। तम्बाकू और पसीने की अजीब सी गंध डिब्बे में भरी थी। उसकी नाक में पच्चीस बरस बाद मालवी-पसीना गंधाने लगा कि कितनी भिन्न गंध है हमारी। बड़ी पहचानी सी। एक ही पसीनों तथा देहों से तो हमारा पसीना देह बनती है। आप सब कुछ अस्वीकार सकते हैं लेकिन अपने आदि-पसीने और देह को झुठला नहीं सकते। ये इतने बड़े सत्य हैं कि इससे मुक्ति नहीं।

वे एक गठरी बने हुए अपरिचित से अपने में सिकुड़े हुए थे। आज से पच्चीस

करीब पूर्व भी तो लोग एम ही थे। केवल दिल्ले में कालेज में पढ़ने वाले दो-चार लड़के दिखलायी दिये जो सिगरेट पी रहे थे। खिड़की से गुजरते उज्जैन में अवश्य परिवर्तन लग रहा था। बहुत सी नयी सड़कें बंगले कालोनियाँ दिख रही थीं।

दिन चढ़-चढ़ आने लगा। जैसे जैसे घर की ओर से मन खाली हुआ की विशेष ढंग मान लगी। एक-एक स्टेशन पर देखते कि क्या परिवर्तन हुआ है। लगता था शहर का प्रभाव बढ़ गया है। जगह जगह पनवाड़ियों का गाना सुनायी पड़ता। रेल के समानान्तर जाने वाली सड़क पर बैलगाड़ी ट्रकों पर मस्सा सवारियाँ लदी हुई दिखतीं। साइकिलों की भरमार हो गयी थी। भूषा में भी परिवर्तन आ गया था। काली पगड़ियाँ अब कम ही दिख रही थीं। कभी कोई मुझे भटके से उनसे भी पूछ लेता

—आप उज्जैन रहते हैं ?

—जी नहीं।

—तो इन्दौर ?

—जी नहीं।

और पता नहीं पूछने वाला जाने क्या सोचकर उपेक्षा के भाव से अपने साथ वाले के साथ फिर बातचीत में डूब जाता कि इस साल कपास का क्या भाव है। बस्ती के चारों ओर की छोटी-मोटी पहाड़ियाँ ढाक का जंगल लगराइयाँ खेत और तालाब विस्मय लग रहे जैसे माँ की देह हो। वैसे छोटे-मोटे मोड़ लेती ट्रेन घर की ओर बढ़ी जा रही थी। वो तालाब की बीच वाली छत्री दिख रही थी जहाँ वे चारों ओर बरगदी बुर्जों में भीगते बैठे रहते थे। आज भी मेघाच्छन्न था। बादल एकदम झुक पड़ रहे थे। किसी भी क्षण पानी गिर सकता था। अरे ये तो सब सुख ही देवास का डाकबंगला आ गया और यही तो छावनी की वह सड़क है जिस पर माधव बाबू की घोड़ागाड़ी आया-जाया करती थी। सब सब बिल्कुल वैसा ही है। छावनी बिल्कुल वैसी ही है। लेकिन ये तो वैसी फौजी मालूम होते हैं। मालूम होता है अब गोरे नहीं रह गये। कैसी सिरसिर हवा चल रही है। एकदम परिचित। एक-एक पेड़ पथ मकान सब कितने अपने लगते हैं जैसे बन्धु बान्धव हैं। इनसे विलग होकर जाने कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे भटकता रहा लेकिन क्या पाया ?

अरे, स्टेशन पर तो भारी भीड़ मालूम पड़ती है। स्कूली बच्चे स्काउट के लड़के बैंड के साथ खड़े हैं। कांग्रेस के वालंटियर भी वर्दियाँ पहने खड़े हैं। फूलमालाएँ लिये कई कांग्रेसी तथा दूसरे लोग खड़े हैं। मालूम होता है इस ट्रेन से कोई नेता या बड़ा अफसर आया है।
कितना छोटा सा घोंसले जैसा स्टेशन है। पानी की टंकी का लाल रंग मालूम होता है नया है, ५० ० गैलन' भी कितना साफ किया है। डिब्बा खाली हो रहा था वे भी उतरे। वालंटियर तथा बच्चे कांग्रेसी-जन मालाएँ लिए ट्रेन के एक मात्र फर्स्ट तथा सेकण्ड क्लास में किसी को खोज रहे थे। श्रीधर बाबू ने अपना बिस्तरा तथा झोला उठाया और गेट की तरफ बढ़े। प्लेटफार्म पर ढूंढने की कोशिश की कि वर्षों कोई आया कि नहीं? अभी वे इसी असमंजस में थे कि कोई कह रहा था
—मालूम होता है श्रीधर बाबू नहीं आये?
श्रीधर बाबू चौंके। ये लोग किसे खोज रहे हैं? क्या उन्हें खोजा जा रहा है? तभी उनकी दृष्टि एक व्यक्ति पर गयी जो काफी बड़े लग रहे थे लेकिन नारायण बाबू जैसे थे। वे उस तरफ बढ़े और पास पहुँच कर धीमे से बोले
—आप नारायण बाबू हैं?
नारायण बाबू ने आगन्तुक की ओर देखा और सहसा चीख पड़े
—कौन श्रीधर? लो भाइयो श्रीधर बाबू तो यह रहे।
सबने देखा कि यही श्रीधर बाबू हैं? वालंटियरों ने उनका सामान ले लिया। लोगों ने बढ़ कर उन्हें मालाएँ पहनायीं। और उनकी जयकार होने लगी। कुछ ही देर में लोगों ने उन्हें मालाओं से लदा बना दिया। वृष्टि की पूरी संभावना थी इसलिए स्वागत का प्रबन्ध वेटिंगरूम में किया गया था। उन्हें गद्दे पर बिठाया गया। उनके पास नारायण बाबू जिनके वकील कांग्रेसी मंत्री दुर्गादास जी सागर आदि बैठे। स्काउट का बैंड विजयी विश्व तिरंगा प्यारा!! की धुन बजा रहा था। लड़कियों ने स्वागत-गान गाया। कांग्रेसी मंत्री सागर जी ने श्रीधर बाबू की देश सेवाओं की चर्चा की तथा बीस-पच्चीस वर्ष बाद कस्बे में लौटने पर स्वागत किया तथा आशा प्रकट की कि उनका नेतृत्व पाने का सौभाग्य अब इस कस्बे को भी मिलेगा जो कि उनकी मातृभूमि है। देवीसिंह दारोगा ने आगे बढ़कर उनके चरण छुए तथा बताया कि उनके आगमन की सूचना सबसे पहले उन्हें मिली। नारायण बाबू ने श्रीधर बाबू से बड़े होने के नाते उन्हें घर लौट आने पर स्वागत किया और यह भी कि आज पंडित श्रीनाथ ठाकुर तथा माता जी

जीवित होते तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती। लोगों ने "शतनाद" के प्रकाशन का भी याद किया कि कैसे उस पत्र ने इस कस्बे की खबरें छापकर जनवासी को प्रोत्साहन दिया। श्रीधर बाबू ने अपने जीवन के उदाहरण से सिद्ध कर दिया कि यह कस्बा भी परम देश सेवक महान क्रान्तिकारी तथा विद्वान पत्रकार उत्पन्न कर सकता है।

नारायण बाबू की घोड़ागाड़ी मौजूद थी। वे उस पर चढ़ने ही जा रहे थे कि फोटोग्राफर देर से आने के कारण भागता हुआ आया और क्षमा माँग कर, एक ग्रुप फोटो के लिए आग्रह करने लगा।

श्रीधर बाबू का सब लोगों के साथ ग्रुप लिया गया। नारायण बाबू के साथ वे उनकी घोड़ागाड़ी पर चढ़े। बैण्ड बज रहा था। भीड़ में सोत्साह फिर नारे लगाये जाने लगे

—भारत माता की जय!!

—महात्मा गाँधी की जय!!

—श्रीधर बाबू जिन्दाबाद!!

श्रीधर बाबू ने देखा कि नारायण बाबू की वही परमात्मीय मुस्कान उनके वृद्ध मुख पर खिल रही थी।

—हाँ कृष्ण तुम आखिरकार घर आ गये। बेचारी माँ और बापू तुम्हें देखने के लिए कैसे तरस गये। खैर।

श्रीधर बाबू काँप उठे। वे यह भी न पूछ सके कि यह कब हुआ? और सरा कैसी है? घर में कौन है? घोड़ागाड़ी घर की ओर दौड़ रही थी।

घोड़ागाड़ी घर के सामने रुकी।

नारायण बाबू श्रीधर बाबू को लेकर भीतर चले। श्रीधर बाबू को देखकर बाहर के दुकानदार किरायेदारों ने पहले तो आश्चर्य से देखा और फिर नमस्कार किया। श्रीधर बाबू को लगा कि घर में किरायेदार रख दिये गये हैं। घर की रूपरेखा बदली सी दिखी। पास में ही तिमंजिला कोठी देखकर सप्रश्न उन्होंने नारायण बाबू की ओर देखा। वे बोले

—तुम्हारे भाइयों ने बँटवारा करवाकर अपना हिस्सा बेच दिया और यह मारवाड़ी सेठ की कोठी है।

श्रीधर बाबू घबरा उठे। माता-पिता नहीं रहे। भाई लोग अलग हो गये। तब घर में सिर्फ सरो और बच्चे ही हैं? बच्चों में सिवाय देवव्रत के और कौन होगा? लेकिन देवव्रत स्टेशन पर नहीं दिखा। क्या कहीं गया है?

नारायण बाबू 'गुनी' को पुकारते हुए अन्दर घुसे।

—गुनी! तुम्हारे बाबा आ गये।

श्रीधर बाबू जैसे ही घर के आँगन में घुसे पिता की बँसखट सूनी-सूनी सी मौन थी जैसे बापू की प्रतीक्षा कर रही हो। बँसखट पर सिंदरंगी (दरी) बिछी थी तथा बापू का साही गोल तकिया रखा था। बँसखट के पास वाली कोठरी के दरवाजे के पास गुनी बैठी हुई हाथ का कुछ काम कर रही थी। उन्हें लगा कि गुनी बहुत बड़ी-बड़ी सी लग रही थी। पासवाली कोठरी के आधे खुले किवाड़े के पीछे से किसी की सादी साड़ी का पल्ला दिखा कि जैसे वहाँ कोई खड़ा है। श्रीधर बाबू उमग कर गुनी की ओर बढ़े। साथ ही उन्हें आश्चर्य भी हो रहा था कि वह खड़ी होकर क्या नहीं उन तक आ रही है बल्कि वहीं बैठे ही बैठे प्रणाम कर रही है। श्रीधर बाबू ने लपक कर गुनी के दोनों हाथों को उठाया और भरी आँखों से उसकी ओर देखा। गुनी रो रही थी। दरवाजे के पीछे से भी सुबकने की आवाज आ रही थी।

नारायण बाबू ने आँखें पोंछते हुए कहा

—रोओ नहीं! अब रोने की जरूरत नहीं। अच्छा बेटी गुनी! इस समय मैं जाऊँगा शाम को आऊँगा।

—काका जी बैठिए, कुछ नाश्ता ही कर जाइए। बाबा को आप लाये तो मुँह ही मीठा कर लें।

गुनी की रोती हुई आँखों के सामने नारायण बाबू कुछ न बोल सके।

दरवाजे की आड़ से ही सरो ने नाश्ता तश्तरियों में बढ़ा दिया। गुनी ने बस ही बैठे-बैठे पास रख दिया। न श्रीधर बाबू न नारायण बाबू किसी का मन कुछ भी नाश्ता को नहीं कर रहा था। केवल गुनी की बात रखने के ख्याल से चख सा लिया और बोले

—गुनी! शाम को आऊँगा। इस समय तुम लोग खाओ-पीओ। अच्छा श्रीधर!

और नारायण बाबू ममियारे की तरफ बढ़े। श्रीधर बाबू उन्हें छोड़ने दरवाजे तक गये। नारायण बाबू ने घोड़ागाड़ी में बैठ कर एक बार फीका-फीका सा मुसकरा दिया और बढ़ गये। दरवाजा वहीं था। सब भी वहीं थी। वैसी ही आवाज उसे बन्द करते हुए हो रही थी। एक क्षण को मन हुआ कि क्या

वापस आकर अच्छा किया ? इसी क्रम को तोड़ने के लिए घर बन्द करके एक दिन कितना सवेरे चुपचाप गये थे और आज अपनी आयु उत्साह सब कुछ बाहर को सौंपकर एक टूटे हुए पराजित व्यक्तित्व के साथ घर लौट कर फिर उसी घर का वही दरवाज़ा वही क्रम वही आवाज़ बन्द करते हुए सुन रहे हैं। उस दिन दरवाज़े के उस पार एक समूचे संसार की आशा थी आँखों में पैरों में हाथों में लेकिन आज दरवाज़े के इस पार लौट कर टूटे हुए वृक्ष की भाँति बाहर को बाहर ही छोड़कर घर में हैं जहाँ आगे क्या-क्या बदल चुका है। गुनी के आँसू तो वे देख चुके हैं पता नहीं सामने जिसने कि उन्हें दरवाज़े की आड़ से देख लिया होगा। जिसकी केवल गुड़ुक भर होने से सुनायी पड़ी थी। कैसा घर है यह ? क्या इसी हाहाकार के लिए घर होता है ? लेकिन इस हाहाकार का दायित्व किस पर ? हमारा पुरुषार्थ आदर्श क्रम सब जब झूठे पड़ जाएँ तो व्यक्ति क्या करे ?

और वे लौटे। गुनी ने पिता को लौटा देखा तो पुकारते हुए कहा

—जिजी ! बाहर आ जाओ न ? बाबा ! बँगवई पर बैठिए।

श्रीधर बाबू बँगवई पर बैठ गये। कान कोठरी की तरफ लगे थे। लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे आधी रात में सोया हुआ सुनसान।

—कैसी हो बेटा ?

गुनी 'बेटा' सुनकर फूट पड़ी। हाथ का काम छोड़कर उसने पल्लू में मुँह छुपा लिया। बड़ा दबा-दबा सा रोना आने लगा। श्रीधर बाबू की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करें ? क्या कहें ? साथ ही गुनी इस बीच बराबर बैठी हुई थी यह बात भी उनकी समझ में नहीं आ रही थी। श्रीधर बाबू ने कपड़े निकाले और वहीं बँगवई पर रख दिये तथा अनजाने ही अपने पिता की मुद्रा में दोनों हाथ सिर के पीछे ले जाकर पाग तकिये पर टिका कर झूलने लगे। मौन बँगवई ने बरसों बाद मौन तोड़ा।

कुछ देर उपरान्त गुनी ने स्वस्थ होते हुए पूछा

—नहाइएगा न ?

—हाँ देवधर कहाँ है ?

नहाने के लिए उठते हुए पूछा।

—वो तो काफी बरसों से मामी जी के पास है। अब खूब पढ़ रहा है। चिट्ठी आयी थी मामा जी की कि अब की साल उसे बी० एस-सी० में भर्ती करवाया है।

—सुशीला ?

—अपने घर है।

—कब ब्याह हुआ उसका ?

—हां उसके तो दो लड़के और एक लड़की भी है। उज्जैन के पास पीपल्या में
बड़े भारी जमींदार हैं वहीं है वह।

इस बीच दो-चार बड़ी बूँदें टिपटिपायीं। गुनी फिर बोली

—तो आप पहले नहा लीजिए। जिज्जी ! पानी रख दो।

श्रीधर बाबू को फिर आश्चर्य हुआ कि गुनी स्वयं न उठकर अपनी जिज्जी को आदेश दे रही है। बोली

—असल में बाबा ! मेरे पैरों में काफी तकलीफ है इसलिए उठ नहीं पा रही हूँ।

—क्या हुआ पैरों में ?

—आप पहले नहा तो लीजिए। बात लीजिएगा। ऐसी क्या जल्दी है।

—गुनी। मैं ही पानी ले लेता हूँ। ये तालाब का पानी ही लेना है न ?

—तालाब में तो बरसाती पानी है बाबा। आप घड़े के पानी से नहा लें।

इस बीच पीठ पीछे से आकर उनके हाथ में से धोती-बनियान निकालकर सरो नहाने की जगह में जाकर रख आयी। श्रीधर बाबू ने देखा कि सरो अत्यन्त दुबली हो गयी है। हाथ-पैर एकदम सफेद तथा सूखी लकड़ी से हो गये हैं। सिर पर लम्बा घूँघट था। सरो ने जल्दी से बाल्टी लोटा तौलिया साबुन लकड़ी की चट्टियाँ आदि सब लाकर रख दिये।

—गुनी ! तुम्हारी जिज्जी की तबियत कैसी है ?

इस प्रश्न पर किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। मात्र गुनी ने अपनी जिज्जी को आदेश देना शुरू किया था कि पूजन के लिए आसन बिछा रही थी। सेवा और धूप बाती नारियल पंचपात्र प्याला आदि निकालकर रख रही थी। श्रीधर बाबू उतर की आशा से देर लगाने लगे।

श्रीधर बाबू ने बहुत चाहा कि गुनी अपनी जिज्जी से कहे कि चट्टियाँ बता दें तब गाय ही तालेगी भगिनी सरो न गुनी को धीरे से बताया कि यह नहीं होगा बेकार में नदी करने से क्या लाभ ? और श्रीधर बाबू तथा गुनी ने साथ-साथ खाना खाया। गुनी इस बीच बाबा की भांति गम्भीरता से सोच गयी थी। बाहर

सावन झमाझम बरस रहा था। धुआँ जलने में परेशान कर रहा था। गीली लकड़ियाँ थीं। मेरा फुंकनी-से फूँकती जाती और रोटियाँ सेंकती जाती। आज बरसों बाद मालवी गंध की रोटियाँ, दाल, भात, साग-भाजी कैसी स्वादिष्ट लग रही थीं। रोटियाँ बेलती मेरो की कलाइयों में अजीब दो-दो चूड़ियों का सुनायन खनक उठता था। सर्वकालहीन रूप झलक जाता। अभी तक वे मेरो का मुँह ठीक से नहीं देख पाये थे। लेकिन मेरा उन्हें रूप लगी तथा लगा कि वह स्पष्टतः कुछ दिख रही थी। बर्तन एक कैसे परिचित आवाज में आपस बात या करते जाते। दबी हुई दृष्टि से वह समझ गये कि घर के बँटवारे के बाद से यही रसोईघर बन गया है। सब परिचित या अनम्य दीवारें यहाँ के रहनेवालों की तरह झुकी हुई थीं। कैसा अजीब सन्नाटा था कि कौर चबाने तथा बेलन या रोटियों पर "छन्न" पकने के और कोई नहीं बोल रहा था। जगह-जगह पानी चू रहा था। उन्हें याद आया कि पहले जब ऐसे चुआ करता था तो बर्तन रख दिया करते थे और उसमें कैसे पानी की बूँद जोरों से टपक कर बूँदों में बिखर जाती थी। इस समय तो बूँदें टपक कर धरती में छेद बना रही थीं। खाना जब समाप्त हुआ और हाथ-मुँह धोकर जब वे अँगनाई पर बैठे तो मुन्नी रामेश्वर से बोली

—बाबा ! आप ऊपर चलिए आराम करिए। आपके लिए पान मैंने मँगवा कर रखे हैं। मिसी कह रही थी कि आप पान नहीं खाते। मैंने कहा कि बनारस में रहकर भला कोई पान नहीं खाय ?

सब हँस पड़े। जैसे सारा घर जोगन जाने कितने दिनों की चुप्पी के बाद हँस पड़ा हो। लेकिन जैसे हँसना भूल गया हो तो एकदम छोटा सा हँसकर फिर चुप हो गया। जिस जीने से उतर कर वे उस दिन गये थे अब वह काफी जीर्ण हो गया था। बाकी वैसा ही था। दीवार की तरफ से ऊँचे इस जीने पर चढ़ने-उतरने की रपट होनी चाहिए वना कोई बाहरी आदमी गिर सकता है। ऊपर पहुँच उनका ध्यान खिड़की पर गया कि उसके सामने मारवाड़ी की दीवार खड़ी थी। घर में चीजें न रहने के बराबर ही थीं लेकिन घर एकदम साफ सुथरा था। बाँसकी सूखती अलगनी पर मेरा के दो-एक अनूठे साड़ियाँ घुमट ढाक बीच में से मोड़ कर टँगी हुई थीं। एक चटाई और एक बिस्तर रखा था। बिस्तरे के सिरहाने की तरफ रामायणों की कुछ जीर्णिस्यां गीता-रामायण रखी थीं। वहीं एक लकड़ी के सिंहासन पर उनका स्कूल के दिनों का चित्र रखा था जिसके सामने दीप जल रहा था तथा रेशमी पविता (माला) में मंडित था। सहसा भीतर बाबू मन्मन्त विस्मित हुए कि यही वह स्थान है जहाँ बैठ कोई उन्हें महीनों पुकारता रहा है।

अँधेरे में कहीं भटक न जाए इसलिए दीपाधार किए रहा। पता नहीं कहीं ठौर
मिलता है कि नहीं इसलिए इस छोटे सिंहासन को विश्व बना दिया उस व्यक्ति ने।
उसका मन हुआ कि इस समय सरो यहाँ होती तो चीख पड़ते कि सरो तुम जिस
पति को पूजती रही पूजती रही हो वह जीवन के सारे पासे हार कर भत-विगत
हारकर लौटा है। इस तरह लौटनेवाला व्यक्ति सरो! मात्र आहत ही नहीं होता
कहीं न कहीं अपमानित अनुभव करता है। उपेक्षा उसे सालती है। उसे लगता
है कि उसका पुरुषार्थ मनुष्य का पुरुषार्थ था। वह जिन आदर्शों को पुस्तक में
पढ़कर बाहर लोगों के बीच गया था वे मरे हुए थे। किसी को पुस्तकों के आदर्शों
की कोई आवश्यकता नहीं होती सरो! जीवन पढ़नेवाला यह मारवाड़ी है
जिसने तुम्हारे बगल में कोठी बनवायी है तुम्हारे जेठ ने कोई किताब नहीं पढ़ी
है इसलिए वे सब सफल हैं सुखी हैं। चीज़ें उन्हें घेरे हुए चमक रही होती हैं!
इसने तुमने पुस्तक पढ़कर अपनी टपकती छतों को धूल से कैसे रोका जाए यह
तक नहीं सीखा। कोठरियों या चाली गलकर वृष्टि की इन टपकती बूँदों को कहाँ
तक रोकती फिरोगे? इसके लिए आदर्श पुस्तकें सब बेकार हैं। न टपकने वाली
छत पुस्तकों से ईमानदारी से आदर्शों से नहीं बना करती इसलिए सरो! हमें
इस टपकती छत के नीचे ही तब तक बैठना होगा जब तक कि यह छत ही
नहीं गलती।

वे चौंके कि वे क्या सोचने लगे थे। यदि सरो ने इसे सुन लिया होता तो जाने क्या
सोचती। अच्छा हुआ कि वे यह सब बोले नहीं थे। अपने कमरे की ओर निकल
आये। दीवार वाली आयु-विलम्ब लगी। एकदम सूख आयी थी। दीवारों की मामू-
-ली टिप बिलकुल न लगे अभी भी रंगीन बने खड़े थे। उनकी किताबें यथावत
थीं। दीवारों पर अभी भी चित्र उसी तरह लगे हुए थे। केवल दो-तीन नये चित्र
रहे थे। सुमी शायद अपने पति के साथ इस फोटो में थी। सुमी कितनी सुन्दर लग
रही थी न? इसका यह पति कौन है?—जब यह सुमी अपने घर न होकर यहाँ
—स्मृतियों का क्या हुआ? कहाँ और श्रीधर बाबू का हाथ पकड़कर
ही आ जाना कि पास वाली फोटो उन्हें देख रही थी। इस में सुनीता अपने पति
के साथ चमकती रही थी—अरे यह तो देवव्रत का चित्र है न? काफी बड़ा-बड़ा
सा लग रहा है—सुमी बता रही थी कि बी० एस-सी० में है। लोगों अपने माता
-पिता के पास। क्या ठीक है यहाँ रहना तो सिवाय आवारा बनने के और क्या
बनना? बाबू का बड़ा चित्र है। धुँधला हो गया है बाबूजी। उन्हें याद आ गया
कि एक बार एक फोटोग्राफर महाशय आये थे और कितनी मुश्किल से बाबू के

छात्रों के चित्र खिंचवाये गये थे। बापू और माँ के अलग-अलग चित्र पूजा करवाते लिये गये थे। कैसे भिन्न लगते हैं दोनों।
और श्रीधर बाबू सहसा हँस पड़े। इसी कमरे में दूर उधर, सरो के पैरों की आहट हुई। श्रीधर बाबू एक फोटो लेकर हँस रहे थे। कितने मुश्किल से घर के सारे स्त्री-पुरुष को एक ग्रुप के लिये तैयार किया था। स्त्रियों के घूँघट का प्रश्न था इसलिए औरतें पीछे खड़ी थीं ताकि मर्द लोग उन्हें न देख सकें। लेकिन सबको कितना आश्चर्य हुआ कि फोटो में सिवाय माँ को छोड़कर और सब औरतों ने घूँघट निकाल लिया था। यह सारी शैतानी सरो की थी क्योंकि उसने फुसफुसा कर अपनी जेठानी तथा देवरानी को बताया कि माना कि इस समय मर्द लोग हम छात्रों को नहीं देख रहे हैं लेकिन फोटो खिंचने के बाद तो सब देखेंगे ही? और ऐन मौके पर, फोटोग्राफर-एक दो तीन कहकर जब कैमरे की टोपी निकालकर वापस चढ़ाने के लिए अगले कमरे की ओर लेकर लगा तो तीनों ने घूँघट ले लिया। जब फोटो आया तो कितनी हँसी हुई थी। आज जब कि इस समय श्रीधर बाबू अकेले खड़े हँस रहे थे तब भी वही बरसों पूर्व की हँसी उनके कानों में गूँज रही थी। इस बीच सरो उन्हें अकेले हँसता देख देखने आयी। उसी चित्र के पास पति को हँसते खड़े देख सरो को भी जाने क्यों हँसी फूट आयी। सरो इस समय पति के सामने घूँघटहीन थी। वह बीमार थी लेकिन श्रीधर बाबू हँसती सरो में जाने कितने बरस पीछे विगत में आ गये।

सहसा श्रीधर बाबू ने सरो का चेहरा देखा और उसे कंधों से थाम लिया। कैसे विपुल-वेग से सरो की आँखें छलछलायीं नहीं बरसीं और अब तो उनके सीने पर वे फूट पड़ीं। श्रीधर बाबू अन्तर तक भीग उठे। वे सरो से अधिक फूट पड़ना चाह रहे थे लेकिन वश वे भीतर ही भीतर कहीं दूर अज्ञात अँधेरे में आयुहीन जीवन में रो रहे थे। उनके वक्ष पर उनकी बीमार वृद्धप्रिया सिर रखे मग्न बनी हुई थी जबकि सिर के ऊपर श्रावण बरस रहा था तथा कभी कोई बूँद टपक कर उसका अभिषेक कर जाती। खिड़कियों से श्रावण की फुहारें, भीगी-भीगी सी हवा के संग मुलायम भरी आ जाती।
श्रीधर बाबू, सरो और ऋतु सब मानसी श्रावण हो रहे थे।

शाम को नारायण बाबू सपरिवार आये। आधी रात तक बैठे रहे। धीवर बाबू ने सारा ब्यौरा बताया कि वे किस प्रकार इन्दौर-बनारस रहे। किशन मालती दीदी, कमल, रमला आदि के बारे में बातें होती रहीं। नारायण बाबू ने बताया कि किस प्रकार उनके बड़े भाई की सहसा मृत्यु हो गयी फलस्वरूप सारा लेन-देन का कारोबार चौपट हो गया। इस बीच वे रिटायर्ड हो चुके हैं। परिवार काफी मस्त है। गाँव वैसे ही पड़े हैं। उनका लड़का मदन बम्बई में एक मिल में लेबर मनेजर है। इस प्रकार वह सम्पन्न ही है। नारायण बाबू कोई खास अच्छी हालत में नहीं हैं। रमेश मजूमदार नीमच में है। तरक्की हो गयी है उसकी। वह भी किराये पर होंगे शायद। यहीं मकान बनवाना चाहता है। नारायण बाबू ने धीवर बाबू को बहुत फटकारा कि इस प्रकार घर से चला जाना बिल्कुल ठीक नहीं था। रात जब वे जाने लगे तब हम सब रो पड़े।

पच्चीस वर्ष के बाद आज फिर वे उन्हीं शहतीरों के नीचे सो रहे थे जहाँ कि वे पच्चे से मकर मुक्त हुए थ । आज स पच्चीस वर्ष पूर्व सरो उनके पास तब भी मटी हुई थी तब कितनी सुन्दर थी । कैसा भरा-भरा गोलमुख था लेकिन आज मात्र कंकाल रह गया था । कितनी जमर एव बूढ़ लग रही थी । सारे बाल सफेद लग रहे थे । सरो की आँखों में बुझते दीप की सी लौ थी । उन्हें लगा कि जम व आँखें प्रतीक्षा करते-करते बम थीं इमस अधिक कुछ नहीं था । उनमें न भर्त्सना न शिकायत । प्रतीक्षा में एक ठण्डा स्वागत का भाव भी कहीं था जैसे स्वयं को मौपने का । संभवत इसी दिन के लिए वे प्राण रहीं थी वर्ना बाने कब उस बीमारी में उन्हें बुझ जाना था। मुन्नी सो गयी थी केवल सरो धीमर बाबू और मद दीपक की मौन जाग रहे थे । धीमर बाबू की समझ में नहीं आ रहा था कि वे सरो से क्या कहें ?

—सरो !

—जी ।

धीमर बाबू ने "सरो' एस कहा जैसे आधी रात का अँधेरा हो और सरो न भी "जी" ऐसे कहा जैसे उस बड़े भारी अँधेरे को कोई दीपक समर्पित कर जाए ।

—मैं समझता था कि तुम बहुत नाराज होगी ।

सरो काँपना छोड़कर अँधेरा मुन्नी दीपक बनी थी ।

—सच मानो सरो ! अनुमान सान्त्वना था कि यह मेरी निर्ममता है या एक दिन अनकहे घर से निकल पड़ा उसके बाद दिन क बाद दिन और इस तरह बरसों बीतने लगे बस विवश ही होता चला गया । सच कहीं उपेक्षा जैसा कोई भाव नहीं था ।

—मैं जानती हूँ कि जरूर ही विवशता रही होगी । लेकिन आपने अपने को यह क्या कर लिया ?

—क्या कर लिया ?

—जंगलों में क्या गये स्वास्थ्य चौपट कर आये ?

—सच सरो ! पच्चीस बरसों में तेरह चौदह वर्ष तो जंगल में ही बीते । लेकिन तुम्हारा यह क्या हाल है ?

—आप तो मुझे कोमल कहते थे लेकिन देखिए न कि इतनी लम्बी बीमारी भी मुझे नहीं तोड़ सकी ।

—सरो ! मैं कल ही सालिगराम जी वैद्य से कहूँगा कि वे ठीक से इलाज करें ।

—एक बात पूछूँ आप !

श्रीधर बाबू समझ गये कि सरो क्या पूछने वाली है ।

—पूछो ।

—आप लौट आये न ?

—क्या मतलब ?

—केवल आश्वस्त होना चाहती हूँ ।

—हाँ सरो ! मैं लौट आया हूँ । तुम्हारा मतलब कहीं यह तो नहीं है कि मैं वापस बनारस जाने की सोच रहा हूँ ।

—मगर ऐसा कोई मतलब नहीं है । मैं तो जानना चाहती थी कि आप अब लौट आये न ?

—यह तुम बारम्बार क्या ऐसा पूछ रही हो ?

—इसलिए कि विश्वास नहीं आता ।

—किस पर ?

—अपने को विश्वास नहीं दिला पा रही हूँ कि जो एक रात अनायास ऐसे चले गये कि लड़कियों का ब्याह हुआ घर का बँटवारा हुआ बापू-माँ चले गये लेकिन इन चरणों की आहट फिर न सुन सकी । क्या नहीं हुआ इस बीच ? गनी के लिए सासू माँ ने क्या नहीं किया और वह बेचारी

मरा मुँह आयी थी । श्रीधर बाबू को मुन्नी के ब्याह की ससुराल की सारी बातें याद कर कैसी विडम्बना फिर आयी थी । इस समय भी वे घूँट न घूँट के आँसू पी रहे थे । गनी को वे सबसे ज्यादा प्रेम करते थे और आज वही लुटी हुई, परित्यक्ता बनी सिसकती उनके सामने दिन भर रेंगती रही जैसे किसी भारी शिला के नीचे हाथ दब गया हो । वे कुछ नहीं कर सकते थे । यदि कुछ करने को होता तो बापू-माँ ने क्या नहीं किया होता ?

—सरो ! मेरी बात सुनो ।

सरो ने श्रीधर के चेहरे का कुम्हलाया पहली रात का हल्का नीला आकाश हो उस ने नैराश्य उभार दिये जिनसे पति का चेहरा भरा जा रहा था । बोली,

—मैं तो उस दिन तक को पच्चीस बरसों तक जानती रही जिस ओर आप गये थे । बिना आपके पति सुहाग सुख सिन्दूरी होली तो कभी की चली गयी होती नाथ ! अब नहीं सम्हलता आपका यह संसार । मुझे मुक्त करो ।

—यह तुम क्या कह रही हो ?

—मैंने बापू-माँ को वचन दिया था कि जैसे भी होगा बिना आपके आये

इस घर की देहरी नहीं लांघूंगी। अब मुझे अपने चरणों से भगवान को सौंप आइए न ?

—सरो!

—अब चलती हूँ। आप आ गये, मेरे सब पुण्य आ गए। पुण्य पहन कर ही भगवान के यहाँ प्रतीक्षा करूँगी नाथ!

—यह सब क्या प्रलाप रही हो। नहीं, तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी। सच मानो सरो! तुम्हारे बिना पूरा जीवन होम कर देने पर भी एक बूँद भी इस अंजलि में नहीं संचित कर सका।

—मेरी प्रतीक्षा सार्थक हुई न ? एक सुख के लिए कितना दुख भोगना होता है। आप मुझे क्यों छोड़कर चले गए थे ? आपने किसलिए मेरी इतनी परीक्षा ली ? कभी यह नहीं सोचा कि मैं टूट जाऊँगी ? इतना लांछन, इतनी प्रताड़ना, इतनी सौतिया-डाह... नाथ! अब मुझे ठाकुरजी को सौंप दीजिए। मैं बाबू-जी को न रोक सकी, सुधी को लेकिन सौंप रही हूँ, पता नहीं मेरे किस पाप के कारण बेटी दुख पा रही है। सुशीला सुखी है अपने घर। देवव्रत की मुझे चिन्ता थी लेकिन अब वह

—देखो सरो! अब मैं आ गया हूँ तुम्हें चिन्ता नहीं करनी होगी। तुम स्वस्थ होने की चेष्टा करो।

सरो पति की बात पर ऐसे मुसकरा दी कि सोमेश्वर बाबू बड़े छोटे लगने लगे। बोली

—मैं अब और अपने को नहीं छलना चाहती। ठाकुर जी ने मुझे लांछनापवाद से बचा लिया, कितनी आभारी हूँ भगवान की। मुझे अपने से सटा लो। मैं आपको छूना चाहती हूँ ताकि विश्वास आ जाए।

और सरो बिल्कुल पागलों की तरह उन्हें देख रही थी, छू रही थी। आँखें प्रवाहित थीं।

—इसके लिए कितना तरसी हूँ। आप आ गये। आप आ गये न ? अब तो नहीं जाएँगे न ? आप जो कहेंगे करूँगी नाथ! लेकिन मुझे लोगों की दृष्टि में अब न गिराना ? यदि और कोई परीक्षा शेष हो तो प्रभु! अपने हाथों उसे ले लेना लेकिन अब छोड़ कर न जाना।

—पागल है सरो! मैंने कहा था न कि सीता को रावण ने अपवित्र नहीं किया था बल्कि...

सरो ने पति के मुँह पर हाथ रख दिया और छलछलाती आँखों से बरजती रही। बोली

—मैंने काम को जितना चाहा लेकिन मेरे सौभाग्य को नहीं। कितने वर्षों के बाद यह सुख

दोनों को ही नींद नहीं आ रही थी। मैं कुछ स्वस्थ हुई तो मुन्नी की शादी मृदुला का ब्याह घर का बँटवारा सब बताती रही। तथा उसने यह भी बताया कि कैसे उस बरस जब "श्रीनाथ" आया तो माँ-बापू प्रसन्न थे। माँ खूब फूट-फूट कर रोयी थीं। उसी बरस नवरात्रि में नरसिंहगढ़ महाराज के यहाँ सप्ताह थी' में 'भागवतजी" बाँचने गये थे। राजमाता को तथा राज-परिवार को राज भागवत जी सुनाते थे। आठवें दिन जब पूर्णाहुति हुई, लोगों ने चढ़ावा चढ़ाया उन्हें दान दक्षिणा मिली थी 'भागवतजी" की पोथी के सामने शान्ति पाठ कर रहे थे। जय जयकार हुई और बापू ने "बोलो भगवान कृष्णचन्द्र की जय!!" कह कर 'भागवतजी' को प्रणाम करते हुए ज्यों सिर झुकाया ठाकुर जी ने उन्हें अपने पास ही बुला लिया। जब बापू को काफी देर हो गयी कि "भागवतजी" को प्रणाम ही कर रहे हैं और उठ नहीं रहे हैं तो लोगों को पहले तो आश्चर्य हुआ उपरान्त डर। लोगों ने उन्हें हिलाया लेकिन वे तो गोलोकवासी वैकुण्ठप्रिय हो चुके थे। हाहाकार मच गया। चारों ओर शोर मच गया। वहीं से मोटर दौड़ायी गयी और सेठ जी को लेकर माँ वहाँ पहुँचीं। धोती पहन कर ब्राह्मणों ने अर्थी उठायी। स्वयं महाराज ने भी कंधा दिया। दान-दक्षिणा के साथ बापू ने अन्तिम यात्रा की। राजमाता ने सैकड़ों रुपये की रास्ते भर वर्षा करवायी और बापू का शवदाह एक राजा की भाँति हुआ। दूसरे दिन माँ लौट आयीं। माँ को न विलाप था न दुःख था वे तो बस विक्षिप्त-सी हो गयी थीं। राजमाता की ओर से संदेशा आया कि बापू की तेरहवीं का सारा खर्च वे करेंगी क्योंकि पण्डित श्रीनाथ ठाकुर गत पचास वर्षों से उन्हें 'भागवतजी" सुनाते आ रहे थे वे उनके गुरु थे। तेरहवीं के दिन राजमाता आयी भी थीं। कस्बे के सारे ब्राह्मणों अनाथों गरीबों को भोज दिया गया। दवजी को राजमाता ने खूब भारी दक्षिणा दी। अभी तेरहवीं समाप्त भी नहीं हुई कि माँ ने स्नान किया साड़ी पहनी ठाकुर जी की पूजा की और यही कहती रहीं—ठाकुर जी! मेरा भी पुण्य स्वीकारो। उनके बिना अब तो नहीं रह पाऊँगी—और दूसरे दिन सवेरे उनकी अर्थी ही उठी। कैसी पवित्र मृत्यु हुई दोनों की। दवजी ने माँ का दाह-संस्कार किया।

श्रीधर बाबू अन्धकार में बैठे माता-पिता की गाथा सुनते हुए अँधेरे में बैठे रहे थे। माँ बापू के लिए वे निरुपाय हो गये। उनकी आँखों में आँसू बह रहे थे। कुछ समय पर, घर के सारे बन्धु-बान्धव एक-एक करके घटनाओं में लिपटे उनके सामने से अँधेरे पट पर उभर रहे थे विलीन हो रहे थे। एक यात्रा की भाँति सब क्रमागत आ-जा रहा था। रह-रहकर भाइयों का व्यवहार उन्हें अखर रहा था। अपने पर आत्मग्लानि होने लगी कि वे माँ-बापू की सेवा तक न कर सके।

सरो के लिए सम्पूर्ण चिन्ता थी। उन्हें लग गया कि मेरा देह और मन दोनों से ही टूट गयी थी। मकान भी खँडहर होने की स्थिति में था। पीछे की दीवार गिर गयी थी। इस साल पानी काफी गिर रहा था और किसी भी समय रसोईघर का सारा हिस्सा बह सकता है। बड़े पिता के जमाने में भले ही कुछ मरम्मत होती रही हो लेकिन गत चालीस बरस से घर की एक शहतीर तक नहीं बदली गयी थी। पिछली रात में जब कड़ककर बिजली चमकी तब पूरा घर काँप कर आलोकित हुआ। उसके बाद काफी देर तक बादल गड़गड़ाते रहे। दीपक हवा में जाने कब बुझ गया था लेकिन सरो पति के वक्षस्थल पर सिर रख बरसों बाद सुखी सो रही थी।

श्रीपत बाबू के सामने सबसे बड़ी समस्या थी गंगो की। यद्यपि उस का रोग क्षय की बिल्कुल अन्तिम अवस्था पर पहुँच चुका था लेकिन फिर भी वे चाहते थे कि किसी प्रकार कस्बे में खुल गये क्षय के अस्पताल में भर्ती करवा दें। नारायण बाबू के द्वारा यह काम कठिन नहीं था लेकिन गंगो इसके लिए तैयार ही नहीं थी। उसका तर्क था कि जब वह इस घर को छोड़कर बाबूजी के साथ गौरों नहीं गयी जबकि माँ-बाबू के बाद यहाँ कोई था भी नहीं तब भला अब अस्पताल जाकर क्या करेगी? मरने के लिए वह वहाँ नहीं जाएगी। वह जानती है कि क्षय के रोगी की इस अवस्था के बाद मात्र मरना ही है। नारायण बाबू ने भी श्रीपत बाबू को समझाया कि अस्पताल में ले जाना बेकार है। गंगो का रोग न केवल असाध्य है बल्कि अन्तिम सीमा पर है। श्रीपत बाबू उदास हो गये। अपने चारों ओर फिर उन्हें अँधेरा नजर आने लगा।

आठ आठ महीने हो गए थे कांग्रेस में काम करते। कांग्रेस-मंत्री बुलाकर नागर का बड़ा आग्रह था कि श्रीधर बाबू स्थानीय कांग्रेस में काम करें। आपसी असन्तोष पद-लोलुपता लोगों में काफ़ी बढ़ गयी थी। जनता से नेता लोग छूटने लगे थे। कहीं आगे पर राजनीतिक वार्तालाप की गरमा-गरमी शुरू होने लगी थी। इन आठ महीनों में वे समझ गये थे कि वे फिर दलदल में फँस गए हैं। लोगों ने जिस उत्साह के साथ स्टेशन पर स्वागत से लेकर उनके कांग्रेस में आने को लिया था उसमें दरार पड़ गयी थी। श्रीधर बाबू गांधीजी के मार्ग को बारम्बार लोगों के सामने रखते लेकिन कांग्रेसियों का ध्यान अब इस बात पर लगा था कि निकट भविष्य में विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद क्या होगा? क्योंकि हिरोशिमा पर अणु बम गिराया जा चुका था और युद्ध स्थगन की बातें होने लगी थीं। राजनीति में अब मात्र यही चर्चा थी कि अंग्रेज भारत को कब तक स्वाधीनता देंगे और यदि नहीं दी तो क्या गांधीजी फिर "भारत-छोड़ो" आन्दोलन छेड़ेंगे? अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति यही हो रही थी कि भारत स्वाधीन होकर रहेगा। और जब स्वाधीनता मिल ही रही है—आज या कल तो फिर मंत्री कौन-कौन होंगे? चुनावों में टिकट किसे मिलेगी? दिल्ली कौन जाएगा तथा प्रादेशिक विधान सभाओं में कौन जाएगा? और इस खींचातानी में कांग्रेस संस्था कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों पर भला किसका ध्यान रहता? लोगों का यह अनुमान यह भी था कि श्रीधर बाबू यहीं राजनीति में घुस कर कोई पद-प्राप्ति की कोशिश तो नहीं कर रहे हैं?

गांधीजी तथा दल के अन्य नेता छूट गये थे। अंग्रेजों ने भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर वार्ताएँ आरम्भ कर दी थीं। देश के विभाजन को लेकर विभिन्न राजनीतिक दलों में मतभेद था। कांग्रेस संस्था का यह हाल हो चला था कि जैसे वह पीत रूप हो यहाँ कि पात्र-यात्राएँ तेजी से जाकर बिना किसी व्यवस्था का ध्यान किये अपने को सजाकर मंच की तरफ़ दौड़ जाने की तेजी में होते हैं। जबकि श्रीधरबाबू मंच और पीछे रंग दोनों में ग्रीनरूम को आधारभूत महत्त्वपूर्ण मानकर काम करना चाहते थे इसलिए वे प्रत्येक व्यक्ति को बाधक दिखलायी देते क्योंकि उसकी अपनी उपयोगिता अब ग्रीनरूम की अपेक्षा मंच पर ही थी इसलिए ग्रीनरूम अब मात्र माध्यम रह गया था क्योंकि अंतिम रूप से पर्दा उठने की तैयारी हो चुकी थी। लोगों में श्रीधर बाबू की अब धीरे-धीरे आलोचना होने लगी कि उन्हें राजनीति की कोई समझ नहीं है। वे जिस रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर देना चाहते हैं अब वह कांग्रेस का काम नहीं है।

कांग्रेस राजनीतिक संस्था है। गांधीजी ने इसीलिए चर्खा-संघ आदि रचनात्मक कार्यक्रमों के लिए अलग संस्थाएँ खड़ी कर दी हैं। श्रीधर बाबू की राजनीति की समझ बड़ी पुरानी है। अन्त में कांग्रेस-संगठन का काम छोड़कर जब वे कांग्रेस से अलग होने लगे तो लोगों ने उन्हें खादी-भण्डार में काम करने के लिए बाध्य किया—लेकिन श्रीधर बाबू तैयार न हुए। वे अन्तिम रूप से समझ गये कि उनकी कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं है। वे जिस पथ पर भी बढ़ते हैं वहाँ थोड़ी दूर चलने पर ही दो मार्ग फूटने लगते हैं। एक पथ पर जाने की आवश्यकता ही नहीं होती बल्कि उस पथ पर तो आप अनेकों के साथ पीढ़ियों से पीढ़ियों तक के लिए खड़े हुए होते हैं। दूसरे पथ पर जाने के लिए जाने कितनी ही वर्षों की आवश्यकता पड़ती है। उस पथ पर गिनती के ही लोग चल रहे होते हैं। कुछ को यह पथ जन्म से प्राप्त हुआ रहता है। कुछ उसे अर्जित करते हैं। इसके लिए तब न आदर्श न स्वत्व किसी भी विवेक का कोई प्रश्न नहीं रहता। यह पथ तो स्वतः सिद्ध होता है। जिसे विवेक से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

इस बीच श्रीधर बाबू जी तोड़ परिश्रम करके महाभारत का हिन्दी अनुवाद करने में लग थे। दो एक छोटी-मोटी पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशकों ने यह कह कर लौटा दिये थे कि भाषा आपकी थोड़ी पण्डिताऊ है, दूसरे, ब्रह्मचर्य एवम् धर्म संबंधी पुस्तकों की अब कोई पूछ नहीं है।

जीवन में सम्पूर्ण रूप से घिरे, परन्तु एकान्त में रह जाने के लिए वे बाध्य थे।

दिन प्रतिदिन मरो की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। अब सब कुछ निश्चित भविष्य सा लग रहा था। जिससे विद्रोह नहीं किया जा सकता था बल्कि जिसे स्वीकारने में ही गति थी। श्रीधर बाबू सवेरे चार बजे उठ जाते स्नान-ध्यान के बाद अपने तथा मुन्नी के लिए भोजन बनाकर मरा के लिए पथ्य बनाकर व दस बजे के आस-पास अपने लिखने-पढ़ने के काम में लग जाते। जिन दिनों कॉलेज में जाते थे मुन्नी को सिमट-सिमट कर घर का सारा काम करना पड़ता था। अब वे सभी दायित्वों से मुक्त थे। मरो उन्हें टोकती रहीं मुन्नी मना करती रही लेकिन पता नहीं आज कहाँ से सहसा वे इतने उत्साह में आ गए थे कि माँ-बेटी दोनों को चुप रह जाना पड़ा।

होली हो चुकी थी। चैत पूरा हो रहा था। दफ्तर ने उनका रिटायरमेंट कर दिया था। आठ-दस मास के परिश्रम से उन्होंने महाभारत के आदि-पर्व सभा पर्व एवम् वन-पर्व समाप्त कर लिये थे। बनारस के एक प्रकाशक ने उन अनुवादों को प्रकाशित करना स्वीकार किया था। अब वे लगभग पूरी तरह से अपने को सारी सामाजिकताओं से काट बैठे थे। घंटे-आध घंटे के लिए सरो के सिरहाने बैठ जाते। मुन्नी भी पास बैठी होती। श्रीधर बाबू कभी-कभी विचलित हो जाते कि पता नहीं कल क्या हो ? सरो नहीं होगी तो ? और प्रायः ऐसे ही समय सरो उन्हें टोकती होती

—देखिए, आपने बाबूजी के पत्र का उत्तर भी नहीं दिया न ?

—भूल गया था। कल जरूर दे दूँगा।

—देवव्रत की परीक्षाएँ कब समाप्त होंगी बाबू जी ने लिखा था न ?

—यह तो उसका पहला साल है बी०एस-सी० का।

—तो उसे बुला लो।

—क्यों ? आ जाएगा परेशान क्यों होती हो ?

—मैं चाहती हूँ एक बार सुशीला भी और आ जाती।

—वो होली पर तो आयी थी।

—लेकिन अब मेरा क्या ठीक है ?

—फिर तुमने ऐसी वैसी बातें शुरू कर दीं।

—कैसी ? क्या मैं नहीं जानती हूँ ? मन छलने से क्या लाभ ?

—ठीक है। लिख दिया जाएगा।

—मैं चाहती हूँ राखी पर बुला लो। कान्ता को भी एकबार देख लेती।

—लेकिन दादा-भाभी क्या आयेंगे ?

—एक वो ही इन्दौर में रहते हैं अब यहाँ हैं ही नहीं सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? मैंने कभी कान्ता को मुन्नी और सुशीला से कम नहीं समझा। मैं एकबार सबको देख लेना चाहती हूँ।

श्रीधर बाबू ने तीनों पत्र डाल दिया कि आप लोग आ जाएँ। सरो की हालत अत्यन्त नाजुक हो गयी है। सुशीला और कान्ता को भी सूचना कर दी गयी कि एक बार आ कर मिल जाओ।

रक्षाबन्धन पर सरो के माता-पिता देवव्रत सुनीता, कान्ता सब अपने बाल-बच्चों के साथ आ गये। कान्ता अपने 'काका जी' से खूब लड़ी। श्रीधर बाबू ने देखा कि देवव्रत अब काफी बड़ा हो गया था। सुनीता और कान्ता के बच्चों ने आकर घर को वन की भाँति गुँजा डाला।

आज रात भर घर के सारे लोग सरो के सिरहाने बैठे रहे। निश्चित सा हो गया था कि आज की रात सरो की अन्तिम रात है। सरो के पिता जी सिरहाने बैठे गीता का पाठ सुनाते रहे। सबेरे उधर सूर्योदय हो रहा था और इधर सरो की देह छूटी। घर में हाहाकार मच गया। आधी रात के पहले तक कभी कभी मंद आवाज तथा खुली पलकों से सरो कुछ बोलती रही देखती रही। उसके मुख पर अत्यन्त शान्ति सुख तथा सन्तोष आ गया था। ऐसा भोर का सा सौन्दर्य भी आ गया था जैसे उसे किसी बात की कोई कामना नहीं रह गयी थी।

उसे धरती पर लिटा दिया गया था। गंगाजल तथा तुलसीदल मुँह में रख उसने यह भवलोक छोड़ ठाकुरधाम की यात्रा आरंभ की।

किसीके पास किसी के लिए कोई शब्द नहीं थे। बच्चों को छोड़ सब के पास अपने भीतर ऐसा एकान्त बन रहा था जो अपने ही में बज रहा था। सरो का दाहदाह कर सब शाम को लौटे। श्रीधर बाबू को लगा कि वे यहाँ क्या सरो के इस महान अन्तिम कार्य को सम्पन्न करने के लिए ही जीते थे?

तेरहवीं भी हुई। बिलखती सुनीता और कान्ता को उनके दूल्हे ले गये। सास ने बड़ा आग्रह किया कि वे भी छोरों चलें। श्रीधर बाबू मुश्किल से इस बात पर राजी हुए कि थोड़े दिनों बाद वे आएँगे। सरो पहले ही अपनी माँ से कह गयी थी कि गुनी को भी अब अपने साथ ही ले जाएँ।

सरो की मृत्यु के बीस दिन बाद गुनी तथा देवव्रत आगरा नाना-नानी के साथ सौरों के लिए चल दिये। स्टेशन पर जब वे बिलखती गुनी तथा उदास देवव्रत को बिदा दे रहे थे तो उन्हें लगा कि जैसे भीतर का सब कुछ बाहर आना चाहता है।
कितनी तेजी से पत्नी पुत्र पुत्रियों सबने उनसे बिदा ली थी।
क्या यह बिगत ने उनसे बिदा ली थी?

जब वे कल तक के भरे-पूरे घर में पहुँचे साँझ घिर चुकी थी। सारा घर उदास था। कहीं से कोई स्वर नहीं आ रहा था और न आने की आशा ही थी। जो शब्द थे वे भी पृष्ठभूमि के थे और पृष्ठभूमि में तो अनेकों स्वर हो सकते हैं। काफी देर तक वे आँगन में खड़े रहे। उपरान्त वे बँगलाई की ओर बढ़े और पहला स्वर बँगलाई का था जिसने उस घर का उस ऐकान्तिक साँझ का कठोर मौन तोड़ा। यद्यपि उसके अंदर अनेक स्वर थे। सास-ससुर के आदेश थे
—दखिए, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखिएगा।
—क्यों नहीं आप भी कुछ दिनों सौरों चलकर रहते?
ये शब्द ये वाक्य ऐसे ही शब्द ऐसे ही वाक्य कानों में बज रहे थे। मानसून चल रहा था। वृष्टि थमने का नाम ही नहीं ले रही थी। तेज हवा के कारण पानी की बौछार से दीवारें ओसारा सब भीग रहे थे।

सामने से सरो को कैसा अन्तिम यात्रा के लिए सजाया था। हाथ-पैरों में मेंहदी महावर लगायी थी वाल बाढ़ थे। सरो जिस बनारसी साड़ी को पहन

कर इस घर में बहू बनकर आयी थी उसी साड़ी में उसका अन्तिम शृंगार किया गया था। समस्त अलंकार पहनाये गये। पाँवों में पायल और बिछिया मेंहदी से रगड़ कर चमकायी गयी थीं और सरो के पैरों में कैसी सुन्दर हो उठी थीं जैसे सरो अभी चलने लगेगी और सारा घर पायल-बिछिया से गुंजित हो जाएगा। माँग और टीका कम सुन्दर नहीं लग रहे थे। लगता कि स्वप्न में है। माया भी नहीं है। कैसे धाड़ें मार कर सरो की माँ अर्थी पर गिर कर बेहोश हो गयी थी। सुशीला और कान्ता को सम्भालना कठिन हो रहा था। रतन और गुनी के तो आँसू तक पथरा चुके थे। और सरो जैसे इसी महायात्रा-सुख के लिए पच्चीस वर्षों तक उसकी प्रतीक्षा करती रही थी। जैसे ही अवसर आया एक दिन भी नहीं रुकी। रोग से अत्यन्त सूख-सकुड़ कर वह लोथड़ी हो गयी थी। रंग सफेद हो गया था। फिर भी अर्थी पर लेटी कैसी निश्चिन्त सुखी सन्तुष्ट लग रही थी। कोई परिताप नहीं था मुख पर। कोई कामना शेष नहीं लग रही थी। जैसे वह विराट समापन हो। पूरा आकाश भर लिया हो। सांगोपांग सम्पन्न हो रही हो। न ऊपर न नीचे कोई भी इस सम्प्रयाण से वंचित न रहा हो। सम्पूर्ण आलाप विस्तार ताल के साथ राग का विसर्जन हुआ हो। वह निष्णात हंसिनी थी।

वृष्टि तेज हो गयी थी। तिरछे पानी में भीग रहे थे। वे ऊपर जाना चाहते थे लेकिन क्या करना था वहाँ? कौन था वहाँ जिसके लिए जाना था? सब जा चुके थे। कुछ दिनों के लिए नाती-नातिनों ने घर को नये संगीत से गुंजित कर दिया था। इन नाती-नातिनों को यथावत छोड़कर 'बहू' स्मशान-पथ से लौट गयी थी। बस्ती के इस एकमात्र पथ को साक्षी बना वह पालकी में बैठकर आयी थी और आज अपनी देह से उत्पन्न प्रजा के बीच उसी पथ से सबको बन्धु बना लौट गयी है।
जिसके परिवार थे वे सब अपनी अपनी दिशा में लौट गये थे। केवल वे ही इस भाद्रपद की आरम्भ होती हुई विलम्बित रात में भीगते बैठे हैं। पानी और

तेज हो गया था। दीवारों से पानी चूने लगा था। पीछे की दीवार फोड़कर पानी परनाला बन कर फूट पड़ा था। अँधेरा काफी हो गया था। रसोईघर में गये तो वहाँ देखा कि पानी काफी भर आया था। मुश्किल से चूल्हे के ऊपर दियासलाई खोजी। दियासलाई थी। लालटेन जलायी। अँधेरा भाग गया। वे लालटेन ले सीढ़ियों से ऊपर आये। घर काफी टपक रहा था। वहीं बराबर घरों का बिस्तरा लगा रहता था जो बीस दिनों से खाली था। उन्होंने इस बीच घर की सारी चीजें बँधवा कर रखवा दी थीं। जगह-जगह पानी के टपकने की आवाज आ रही थी। घरों का ठाकुर जी का सिंहासन अँधेरे में छिप रहा था। तेज हवा में ठाकुरजी के चित्र की पत्तियाँ हिल रही थीं।

उनके कमरे की सारी खिड़कियाँ बौछार और हवा से भीगती काँप-काँप पड़ रही थीं। पल्लों की दरारों से पानी धारियों में बहकर भीतर आ रहा था और फर्श गीला हो रहा था। श्रीधर बाबू लालटेन लिये पूरे घर में दो हाथ सूखी जमीन खोजने में लगे थे। हवा का एकाध झोंका लालटेन को भी भभका जाता। अपनी बैठक में आलमारियों की तरफ चटाई बिछाकर वे बैठ गये। आज वे सचमुच ही थक गये थे। अपने चारों ओर इतना एकान्त ऐसा विषाद इतनी विवशता पहले कभी नहीं लगी। बहुत देर आसन पर घबराहट लगने लगी। लगता जैसे ऊपर के कमरे में गुनी ने करवट बदली हो।

—पानी चाहिए गुनी!

और श्रीधर बाबू चौंके। किसने पानी माँगा? सामने रखी फर्शीमेज पर लालटेन जलती उनकी ओर देख रही थी और वे सिर थाम रोने की चेष्टा कर रहे थे क्योंकि गुनी की मृत्यु के बाद से अब तक वे रो न सके थे। हर बार प्रश्न उठता कि वे किस मुँह से रोयें? उन्हें दुःख नहीं परिताप था पश्चात्ताप था। अपने अपमान होने पर नहीं अपमानित होने पर। उन्होंने प्रत्येक बार समुद्र की रत्नाकरी सीमाओं में प्रवेश करने की भरसक चेष्टा की लेकिन कोई न कोई ज्वार उनके सारे श्रम को अगम्य सिद्ध कर हर बार किनारे पर ला पटक देता।

पर्यवसान वर्ष—एक सम्पूर्ण जीवन की आहुति!! उनकी आँखें सुलग रही थीं। अंग अंग से थकान वैसे ही फूट रही थी जैसे कि इस समय दीवारों से वृष्टि-जल मनमाने ढंग से फूट निकल बह रहा था। अकेली लालटेन साक्षी थी कि उनकी

पलकें भीगनी शुरू हुई थीं। बाहर की वृष्टि क्रमशः अन्तर में भी होने लगी थी। उनका पुरुषार्थ दीमक खायी पुस्तक था। आज उसका कोई मूल्य नहीं था!

बड़े भाई ने उनके परिवार की अवमानना की। उनकी पत्नी को चरित्रहीन कहा क्योंकि वे किसी से कुछ भी बताकर नहीं गये थे। उस पर उन्होंने क्या अर्जित किया? यह टूटा घर? पानी उलीचतीं दीवारें? पत्नी की मृत्यु? गुनी की अपंगता? और, आज की यह असमाप्त लगने वाली भादव की रात? वे चौंक पड़े

—सब व्यर्थ गया श्रीधर! सब व्यर्थ गया।

और धोती का खूँट आँखों पर रख बिसूरने लगे। लालटेन साथी नहीं रहना चाहती थी। हवा बारंबार उसे धमका कर अगत्या बुझा गयी। बाहर गरज गरज के साथ मूसलाधार बारिश हो रही थी। आकाश को कोड़े लगाये जा रहे थे और हवा टूट-टूट पड़ रही थी। श्रीधर बाबू जैसे सब कुछ मीटा जाने को व्याकुल हो उठे। लेकिन वे क्या नहीं जानते थे कि जिन अस्त्रों को लेकर वे जीवन में लड़े थे वे आदर्श थे। आदर्शों का मुलम्मा तो पहली ही चोट में उतर जाता है। युधिष्ठिर आदर्श थे इसीलिए मात्र निमित्त थे। महाभारत युधिष्ठिर ने नहीं जीता वह तो कृष्ण-अर्जुन थे जिन्होंने किसी भी नीति को पालन करने वाली नीति अपनाकर युद्ध जीता था। सत्य जीता था कि नहीं यह वेद व्यास भी नहीं कह सके।

स्वस्थ हो लालटेन फिर जलायी और निर्णय किया कि इस बार वे "मनुष्य का इतिहास" लिखेंगे। लालटेन उठायी और किताबों की आलमारी में कागज ढूंढने लगे। एक कपड़े में गोल लिपटी कोई चीज कड़ी-कड़ी सी लगी। काफी मोटी और लम्बी थी। खोला। ढेर सारे कागज थे। बड़े पुराने कागज थे। कागजों पर पुरानेपन के दाग पड़ गये थे। सहसा याद आया कि ये ही कागज वे हैं जो इन्दुदीदी ने एक बार काका साहब की आलमारी में से चुरा कर दिये थे। काका

साहब इन कागजों को ताले में बन्द रखते थे। खास तरह का यह कागज उनके अपने लिखने के लिए था। इन्दु दीदी ने कहा था कि जिस दिन तुम कोई महत्त्वपूर्ण पुस्तक इन कागजों पर लिखोगे तब तुम्हें दीदी की याद आएगी। कागज लगभग उतने ही थे। उन्हें झाड़कर मेज पर रखा और उन्हें याद आया कि संभवत: इसी कोने में बैठकर ही तो ' राज्य का का इतिहास" लिखा था। तब वे युवक थे। राज्य की लघुपरिसीमा से निकल कर अब उनके सामने मनुष्य जाति सफलताओं असफलताओं के साथ खड़ा था। युद्ध ही मानव जाति का इतिहास रहा है। युद्ध ही एक संस्कृति को मजबूत करने के लिए आता है तथा दूसरे का शीलारोपण कर जाता है। युद्ध-कला के विकास का ही मानव का इतिहास या विकास कहा जाता है। इसीलिए यह युद्ध-भाव व्यक्तियों, जातियों तथा युगों अवस्थाओं में निहित रहता है। और चूंकि युद्ध होना ही जीवन के लिए है इसीलिए नीति आदर्श संस्कृति, धर्म किसी का कोई महत्त्व नहीं। वे यह सब सोच रहे थे। अकेली लालटेन और भादव की मूसलाधार वृष्टि एकदम तेज हुआ जाती थी।

वे लिख रहे थे। अकेली लालटेन और भादव की मूसलाधार वृष्टि तेज हुआ, दीवारों से टकराकर यह आया हुआ चारों ओर का जल प्रतिध्वनित था—वे लिख रहे थे

मानव युद्ध का पर्याय है। नीति धर्म अवतारी पुरुष राजनीति विज्ञान सब युद्धभाव को युद्ध कौशल को विभिन्न नामों से विभिन्न युगों में सज्जित करते आए है। इसीलिए युद्ध हमारे रक्त मांस-मज्जा का अनिवार्य अविभाज्य अंग है। लड़ना प्राकृतिक है। न लड़ने के लिए प्रयास करना होता है। इसीलिए 'हिंसा' के लिए स्वीकारात्मक शब्द है 'अहिंसा' तो अस्वीकारात्मक संज्ञा है।

मानव इतिहास का आरम्भ किस काल में हुआ इसका निर्णय करना कठिन है। विभिन्न मत हैं, हो सकते हैं। लेकिन हम देखते हैं कि अलौकिकता धर्म, कला राजनीति एवम विज्ञान ये वे प्रमुख सोपान हैं जिन पर से होकर सभ्यता का साथ आया है। कोई नहीं जानता कि इस अलौकिकता की उपासना तक आने में सार्थ का कितनी हजार शतियों के हिमयुग सावार्जों के भूमण्डल एवम मरुस्थली विस्तार पार करने पड़े होंगे। उन दिनों की समाज रचना का तथा पारिवारिक संगठन का क्या स्वरूप रहा होगा इसका कोई पुरातत्वी प्रमाण उपलब्ध नहीं। प्राचीनतम जो लब्ध सामग्री उपलब्ध है वह वेद है। वेद इतिहास भी हैं इस की शोध अभी हमारे लिए शेष है। फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि वेद-कालीन श्लोकों-स्तोत्रों की भाषा छन्द अलंकार एव भावों की प्रयोक्ता-जाति बर्बर नहीं थी बल्कि काफी समुन्नत थी। और कला के इन शिखरों तक पहुँचने में उसे हजारों बरस की सामाजिक तपस्या करनी पड़ी होगी। इस प्रकार हम आज जिस मनुष्य के इतिहास को जानते हैं वह मात्र दो हजार वर्ष का है, नगण्य है।

वेदों एवम अन्य धर्मग्रन्थों में जिस प्लावन देवासुर संग्राम का वर्णन है उसे मात्र पुराण या धार्मिक उपाख्यान कह दिया जाता रहा है इसलिए हम आज तक इतिहास के कितने बड़े परिवर्तन संक्रमण से वंचित रह हैं इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। कदाचित यह प्लावन सृष्टि एवम जीव-जाति के इतिहास में महानतम घटना थी। प्लावन के उस पार जो मानव-यात्रा है उसके सन्दर्भ में हमारी वर्तमान प्रगति विकास का आनुपातिक विश्लेषण करना होगा। क्योंकि यह भी सम्भव है कि यह प्लावन मानव नियोजित रहा हो। इसके नियामक सुर भी हो सकते हैं असुर भी। ऐसी स्थिति में इतिहास को नयी व्यवस्था देनी होगी।

यदि प्लावन को आधार मान लें तो उस काल की संस्कृति एवम इतिहास को हम पूर्व-प्लावन संस्कृति तथा आज को उत्तर-प्लावन संस्कृति मान सकते हैं। इस प्रकार हम एक ऐतिहासिक रीढ़ प्राप्त कर लेते हैं जिसके दोनों ओर दो प्रकार की मानवीय संस्कृतियाँ विकसित हुई और

मानव इतिहास का आरम्भ किस काल में हुआ इसका निर्णय करना कठिन है। विभिन्न मत हैं, हो सकते हैं। लेकिन हम जानते हैं कि अलौकिकता धर्म कला राजनीति एवम् विज्ञान ये वे प्रमुख सोपान हैं जिन पर से होकर सभ्यता का सार्थ आया है। कोई नहीं जानता कि इस अलौकिकता की उपासना तक आने में सार्थ को कितनी हजार शतियों के हिमयुग, ज्वालाओं के भूमण्डल एवम् मरुस्थली विस्तार पार करने पड़े होंगे। उन दिनों की समाज रचना का तथा पारिवारिक संगठन का क्या स्वरूप रहा होगा इसका कोई पुरातत्त्वी प्रमाण उपलब्ध नहीं। प्राचीनतम जो लेखबद्ध सामग्री उपलब्ध है वह वेद है। वेद इतिहास भी है इस की खोज अभी हमारे लिए शेष है। फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि वेद-कालीन श्लोकों-स्तोत्रों की भाषा छन्द अलंकार एवं भावों की अभिव्यक्ति-शक्ति बर्बर नहीं थी बल्कि काफ़ी समुन्नत थी। और कला के इन शिखरों तक पहुँचने में उसे हजारों बरस की सामाजिक तपस्या करनी पड़ी होगी। इस प्रकार हम आज जिस मनुष्य के इतिहास को जानते हैं वह मात्र दो हजार वर्ष का है नगण्य है।

वेदों एवम् अन्य धर्मग्रन्थों में जिस प्लावन देवासुर संग्राम का वर्णन है उसे मात्र पुराण या धार्मिक उपाख्यान कह दिया जाता रहा है इसलिए हम आज तक इतिहास के कितने बड़े परिवर्तन संक्रमण से वंचित रहे हैं इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। कदाचित् यह प्लावन सृष्टि एवम् जीव-जाति के इतिहास में महानतम घटना थी। प्लावन के उस पार जो मानव-यात्रा है उसके सन्दर्भ में हमारी वर्तमान प्रगति विकास का मानदण्डिक विश्लेषण करना होगा। क्योंकि यह भी सम्भव है कि यह प्लावन मानव नियोजित रहा हो। इसके नियामक सुर भी हो सकते हैं असुर भी। ऐसी स्थिति में इतिहास की नयी व्यवस्था देनी होगी।

यदि प्लावन को आधार मान लें तो उस काल की संस्कृति एवम् इतिहास को हम पूर्व-प्लावन संस्कृति तथा आज को उत्तर-प्लावन संस्कृति मान सकते हैं। इस प्रकार हम एक ऐतिहासिक रीढ़ प्राप्त कर सकते हैं जिसके दोनों ओर दो प्रकार की मानवीय संस्कृतियाँ विकसित हुईं और